मुद्रकः—
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी-
निवासि श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद-
सूनुर्श्रीव्रजकिशोरसिंह
स्वयन्त्रालये
गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
नामके मुद्रापितवान्
स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

स्कन्दपुराणस्थ पञ्चम अवन्तीखण्ड के विषय में

श्रीसच्चिदानन्दघन परब्रह्म भगवान् कृष्णचन्द्र की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डलग्रन्थमाला के बीसवें पुष्प स्कन्दमहापुराण के पञ्चम अवन्तीखण्ड के पूर्वार्द्ध अवन्तीमाहात्म्य के भाग को विज्ञ पुराणप्रेमी विद्वद्वर्ग को समर्पण करते हुए अतीव आनन्द हो रहा है। इस भाग में वर्णित विषयानुक्रम का विवरण इस प्रकार है। यह नारदपुराण में वृहदुपाख्यानस्थ चतुर्थ पाद की १०४ अध्याय में प्रतिपादित है।

पञ्चमे अवन्ती खण्डे :—

"अतः परं त्ववन्त्याख्यं शृणु खण्डञ्च पञ्चकम्।
महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः॥
प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च समागमः।
देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम्॥
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः। तीर्थंकलकलेशस्यसर्वपापप्रणाशनम्
कुण्डमप्सरसञ्ज्ञञ्च सर्गेरुद्रस्य पुण्यदम्। कुटुम्बेशञ्च विद्याध्रमर्कटेश्वरतीर्थकम्॥
स्वर्गद्वारं चतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका। शङ्करार्कगन्धवती तीर्थंपापप्रणाशनम्
दशाश्वमेधैकानंशा तीर्थे चहरिसिद्धिदम्। पिशाचकादियात्राचहनूमत्कयमेश्वरौ
महाकालेव (कालस्य) यात्रा च वल्मीकेश्वरतीर्थकम्।
शक्रेशमेशोपाख्यानं कुशस्थलयाः प्रदक्षिणम्॥

ब्रह्माजी ने मरीचि ऋषि को सम्बोधन कर कहा हे महर्षे ! इसके बाद अवन्ती नामवाले पञ्चमखण्ड का विवरण आप सुनिये। श्रीगणेश में महाकाल वनका आख्यान ब्रह्मशिरके छेदन के साथ प्रायश्चित्त विधि अग्निदेव की उत्पत्ति और समागम, देवदीक्षा, नानापापों को नाश करनेवाले शिवशङ्कर का स्तोत्र कपालमोचन का आख्यान, महाकालवन की स्थिति सम्पूर्ण पापों को नाशकरनेवाले कल्कलेश तीर्थ का वर्णन, अप्सरो नाम के कुण्ड का प्रतिपादन है जो रुद्रसर्ग में पुण्यदायक है। कुटुम्बेश, विद्याधर, मर्कटेश्वरतीर्थ स्वर्गद्वार, चतु सिन्धुतीर्थ, शङ्करवापी, दशाश्वमेध, एकानशा,

---

अप्सरमन्दाकिन्यङ्कपादचन्द्रार्कवैभवम् । करभेशाकुक्कुटेशलड्डुकेशादितीर्थकम्
मार्कण्डेश यज्ञवापी सोमेशानरकान्तकम् । केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम्

केशार्कं शक्तिभेदश्च स्वर्णशुरमुखानि च।
ओङ्कारेशादितीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्त्तनम्॥
कालारण्ये लिङ्गसङ्ख्या स्वर्णश्रृङ्गाभिधानकम्।
कुशस्थल्या अवन्त्याश्चोज्जयिन्याभिधानकम्॥
पद्मावती कुमुद्वत्यमरावतीति नामकम्।
विशाला प्रतिकल्पाभिधाने च ज्वरशान्तिकम्॥
शिप्रास्नानादिकफल नागोत्मीता शिवस्तुतिः।
हिरण्याक्षवधाख्यान तीर्थं सुन्दरकुण्डकम्॥
नीलगङ्गापुष्कराख्यविन्ध्यावासनतीर्थकम्।
पुरुषोत्तमाधिमास च तत्तीर्थश्चाघनाशनम्॥

गोमतीधामनेकुण्डे विष्णोर्नामसहस्रकम्। वीरेश्वरसर कालभैरवस्य च तीर्थं महिमा नागपञ्चम्या नृसिंहस्यजयन्तिका।
कर्कराजाख्यतीर्थञ्च विघ्नेशादि सुरोहनम्। रुद्रकुण्डप्रभृतिपु ...

भगवान् हरि की सिद्धि देनेवाले तीर्थ का वर्णन है। पिशाचक आदि की यात्रा, हनुमत्केश्वर और यमेश्वर तीर्थ, महाकालेश की यात्रा, वल्मीकेश्वरतीर्थ शक्रेशमेशोपाख्यान, कुशस्थलीकी परिक्रमा, अक्रूरेश, मन्दाकिनी, अङ्कपाद, चन्द्र, सूर्यवैभव, करभेश, कुक्कुटेश, लड्डुकेश आदितीर्थ प्रतिपादित हैं। मार्कण्डेश, यज्ञवापी, सोमेश, नरकान्तक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशार्क, शक्तिभेद, स्वर्णक्षुरमुख, ओङ्कारेशादितीर्थ, अन्धकस्तुति कीर्तनवर्णन है। आगे कालारण्य में लिङ्गों की गणना, स्वर्णशृङ्गनामकतीर्थ का सविस्तर प्रतिपादन है। कुशस्थली, अवन्ती और उज्जयिनी नाम की प्रसिद्धि पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती ये नाम कैसे पड़े इसका विवरण है।

यात्राप्रतीर्थजापुण्यारेवामाहात्म्यमुच्यते। धर्म्मपुण्यस्यवैराग्येमार्कण्डेयेनसङ्गमः

प्राग्लयानुभवाख्यानं अमृतापरिकीर्त्तनम्।

कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्म्मदायाः प्रकीर्त्तितम्॥

स्तवमार्यनामंदश्चकालरात्रिकथाततः। महादेवस्तुतिःपश्चात्पृथक्कल्पकथाद्भुता

विशल्याख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा।

गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनन्ततः॥

देहपातविधानञ्च कावेरीसङ्गमस्ततः। दारुतीर्थं ब्रह्मवर्त्तं यन्त्रेश्वरकथानकम्॥

अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादादिदारुकम्। देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्यकरञ्जकम्

कुण्डलेशं पिप्पलादं विमलेशञ्च शूलभित्॥

शचीहरणमाख्यातमन्धकस्यवधस्ततः। शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्माःपृथग्विधाः

आख्यानं दीर्घतपसऋष्यशृङ्गकथा ततः।

चित्रसेनकथा पुण्या काशिराजस्य मोक्षणम्॥

ततो देवशिलाख्यानं शबरीचरिताचितम्।

व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम्॥

विशाला, प्रतिकल्प के अभिधान में ज्वरशान्ति, शिप्रा नदी में स्नान आदि आदि का फल, नागकृत शिवजी की स्तुति, हिरण्याक्ष के वध का आख्यान, सुन्दरकुण्डतीर्थ का वर्णन, नीलगङ्गा पुष्कराख्यान, विन्ध्यावासनतीर्थ, पुरुषोत्तमाधिमास और पापनाशक उस तीर्थ का वर्णन, गोमतीवामनकुण्ड, विष्णु का सहस्रनाम, वीरेश्वरसरोवर और कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमी में महिमा, नृसिंह की जयन्ती, कुटुम्बेश्वर यात्रा और देवसाधक का विवरण है। कर्कराज नामक तीर्थ, विघ्नेशादितीर्थ, रुद्रकुण्ड आदि में बहुत तीर्थों का निरूपण है।

आदित्येश्वरतीर्थञ्चशक्रतीर्थंकरोटिकम्। कुमारेशमगस्त्येशं च्यवनेशञ्च मातृजम्
लोकेशं धनदेशञ्च मङ्गलेशञ्च कामजम्। नागेशञ्चापितीर्थपारं गौतमं शङ्खचूडजम्॥
नारदेशं नन्दिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम्। दधिस्कन्दादितीर्थानि हनूमत्केश्वरन्तत॥

रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशं पिङ्गलेश्वरम्।
ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतिकेशं जलेशयम्॥
चण्डार्कंयमतीर्थञ्च वल्होडेशञ्च नान्दिकम्।
नारायणञ्च कोटेशं व्यासतीर्थं प्रभासिकम्॥

नागेशं सङ्गमकं मन्मथेश्वरतीर्थकम्। धरण्डीसङ्गमं पुण्यं सुवर्णशिलतीर्थकम्

करञ्जं कामदं तार्थं माण्डीरं रोहिणीभवम्।
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमाङ्गिरसाह्वयम्॥
कोटितीर्थमयोन्याख्यमङ्गाराख्यत्रिलोचनम्।
इन्द्रेशं कम्बुकेशञ्च सोमेशं कोहनेशकम्॥

मार्म्मदं धार्कमानेय भार्गवेश्वरमत्तमम्। ब्राह्मं दैवं च नागेशमादिवाराहकं वघे

रामेशमथ सिन्धुरेशमाहात्म्यं कङ्कटेश्वरम्।
शाक्रं सौम्यञ्च नान्देशं तापेशं रुक्मिणीभवम्॥

आगे अष्टतीर्थों की पुण्यकथाका निरूपण किया गया है उससे रेवामाहात्म्य आरम्भ होता है। धर्म्मपुण्य (राजायुधिष्ठिर)के वैराग्य होने पर मार्कण्डेय के साथ सङ्गम, प्रथमलय आदिका वर्णन, अमृताका परिकीर्तन, कल्प कल्प में नर्म्मदाका पृथक् नाम वताया है। नर्मदाजीका ऋषिप्रणीतस्तोत्र और कालरात्रि की कथा के वाद विभिन्न पृथक् कल्पों की अद्भुत कथा, विशल्याख्यान और फिर जालेश्वर कथा, गौरीव्रत का समाख्यान के अनन्तर त्रिपुरा का ज्वालन, देहपातविधान, कावेरी सङ्गम, दारुतीर्थ, ब्रह्मवर्ज्ज, ईश्वर कथानक, अग्नितीर्थ

योजनेशं वराहेशंद्वादशीशिवतीर्थके। सिद्धेशं मङ्गलेशञ्च लिङ्गवाराहतीर्थकम्

कुण्डेशं श्वेतवाराहं भार्गवेशं रवीश्वरम्।
शुक्लादीनि च तीर्थानि हूँकारस्वामितीर्थकम्॥
सङ्गमेशं नारकेशं मोक्षं सार्पञ्च गोपकम्।
नागं साम्वञ्च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके॥

कामोदशूलारोपाख्योमाण्डव्यंगोपकेश्वरम्। कपिलेशंपिङ्गलेशंभूतेशंगांगगौतमे
आश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशञ्च पापनुत्। कनखलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम्

चन्द्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यञ्च हंसकम्।
मूलस्थानञ्च शूलेशमाग्नायाचित्रदैवकम्
शिखीशं कोटितीर्थञ्च दशकन्यं सुवर्णकम्।
ऋणमोक्षं भारभूतिरत्रास्ते पुङ्खमुण्डिमम्॥

आमलेशं कपालेशं शृङ्गेरण्डीभवन्ततः। कोटितीर्थं लोटनेशं फलस्तुतिरतःपरम्

कृमिजङ्गलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथाततः।
धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोऽस्य च॥
वधो धुन्धोस्ततः पश्चात् सतश्चित्रवहोद्भवः।
महिमाऽस्य ततश्चण्डीशप्रभावोरतीश्वरः॥

रविस्तीर्थ, मेघनाद और दारुकतीर्थों का वर्णन है। देवतीर्थ, मर्कटेश, कपि-लाख्य, करकुर, कुण्डलेश, पिप्पलाद, विमलेश और शत्रुभित् शची (इन्द्राणी) का हरण फिर अन्धक का वध, शूलभेदोद्भवतीर्थ के प्रसङ्ग में नानाप्रकार के दानधर्म, दीर्घतपा का आख्यान, फिर ऋष्यशृङ्ग की कथा, चित्रसेन का पवित्र पुण्यचरित्र, काशिराज का मोक्षण, बाद में शबरी के चरित के सहित देव-शिलाख्यान का विवरण है। फिर पुण्याख्याख्यान और पुष्करिणी अर्क-तीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिक, कुमारेश, अगस्त्येश, च्यवनेश, मातृतीर्थ, लोकेश, धनदेश, मङ्गलेश, कामतीर्थ, नागेश, गोपार, गौतम, शङ्ख-चूडतीर्थ, नारदेश, नन्दिकेश, वरुणेश्वरतीर्थ, दधिस्कन्द आदि तीर्थों के बाद हनूमन्तेश्वर रामेश्वरादितीर्थ, सोमेश, पिङ्गलेश, ऋणमोक्ष, कपिलेश, पूतिकेश, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, कल्होडीश, नान्दिक, नारायण, कोटीश, व्यास-तीर्थ प्रभासिक, नागेश, सङ्कर्षण, मन्मथेश्वरतीर्थ, एरण्डीसङ्गम नामकतीर्थ, सुवर्णशिलतीर्थ नाम का पुण्य तीर्थ, करञ्ज, कामदतीर्थ,भाण्डार, रोहिणीभव, चक्रतीर्थ,धौतपाप, स्कान्द और आङ्गिरस, कोटितीर्थ, अयोन्याख्य, अङ्गाराख्य, त्रिलोचन, इन्द्रेश, कम्बुकेश, सोमेश, कोहनेश, नार्मद, आर्क, आग्नेय, भार्गवेश्वर, उत्तमतीर्थ ब्राह्म, दैव, मार्गेश, आदिवाराह, रामेश, सिद्धेश का माहात्म्य, कङ्कटेश्वर, शक्रतीर्थ, सौम्य, नान्देश, तापेश, और रुक्मिणीसम्भव, योजनेश, वराहेश, द्वादशी व शिवतीर्थ, सिद्धेश, मङ्गलेश, लिङ्गवाराहतीर्थ, कुण्डेश, श्वेत-वाराह, भार्गवेश, रवीश्वर, शुक्लादितीर्थ, हुङ्कारस्वामितीर्थ, सङ्गमेश, नारकेश

केदारेशो लक्षतीर्थं ततो विष्णुपदीभवम्। मुखारच्यवनान्धाख्य ब्रह्मणश्च मरस्तनः
चक्राख्यं ललिताख्यानतीर्थंच बहुगोमयम्। रुद्रावर्तंच मार्कण्डतीर्थंपापप्रणाशनम्
रावणेशं शुद्धपटं देवान्धुर्येनतीर्थकम्। जिह्वोदतीर्थसम्भूति शिवोद्भेदंफलस्तुति
एष खण्डो ह्यवन्त्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः।

मोक्ष, सर्प और गोपकतीर्थ, नाग, साम्ब, सिद्धेश, मार्कण्डेय, अक्रूरतीर्थ, कामोदशूलारोप, माण्डव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिङ्गलेश, भूतेश, और गाङ्ग तथा गौतमतीर्थ, आश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश पापनुत् (धौतपाप) हैं, कनखलेश, जालेश, शालग्राम, वराहक, चन्द्रप्रभास, आदित्य, श्रीपत्याख्य, हंसतीर्थ, मूलस्थान, शूलेश, 'आग्नायचित्रदैवकम्' (आश्विन, सावित्रीतीर्थ देवतीर्थ) शिखीश, कोटितीर्थ, दशकन्य, सुवर्ण, ऋणमोक्ष, भारभूति, पुङ्खमुण्डिम, आमलेश, कपालेश, शृङ्ग, एरण्डीभव तीर्थ, कोटितीर्थ, लोटणेश, फिर फलस्तुति का वर्णन है। *द्रुमिजङ्गल का माहात्म्य, रोहिताश्व की कथा, धुन्धुमार का आख्यान, धुन्धुमार के वध का उपाय, धुन्धुमार का वध, सतश्चित्रवह की उत्पत्ति। चित्रवह की महिमा, चण्डीशप्रभाव,रतीश्वर, केदारेश, लक्षतीर्थ, विष्णुपदीभव, मुखारच्यवनान्धतीर्थ, ब्रह्मसर, चक्रतीर्थ, ललिताख्यान, बहुगोमथतीर्थ, रुद्रावर्त्त और पापों का नाश करनेवाला तीर्थ रावणेश, शुद्धपटतीर्थ, देवान्धुतीर्थ, प्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थ का आविर्भाव, शिवोद्भेदतीर्थ और स आवन्त्यखण्ड की फलस्तुति का निरूपण है। यह अवन्ती नाम का खण्ड सुननेवाले का पाप नाश करने वाला है।

इस खण्ड की आदर्शप्रति पूर्वानुगत वेङ्कटेश्वरमुद्रणालय बम्बई (महाराष्ट्र) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ और वङ्गवासी प्रेस, कलकत्ता के वङ्गाक्षर मुद्रित ग्रन्थहैं। इनमें अवन्ती खण्ड में उपलब्ध चतुरशीति लिङ्गमाहात्म्य केवल वेङ्कटेश्वर मुद्रणालय और वङ्गवासी मुद्रणालय से मुद्रित ग्रन्थ प्राप्त होने पर

---

* द्रुमिजङ्गल माहात्म्य से ग्रन्थ के शिवोद्भेद पाठतक का अंश जो अधिक से अधिक कितने हजार श्लोकों में पूरा हो सकने का ठीक अनुमान नहीं है वह प्रचलित प्रकाशित अवन्ती खण्ड में अनुपलब्ध है इसकी विशेष अनुसन्धानपूर्वक उपलब्धि कराकर प्रकाशन करने की विनम्र प्रार्थना है।

उसे ही दिया गया है। कारण नवलकिशोर मुद्रणालय लक्ष्मणपुर [लखनऊ] में प्रकाशित अवन्ती खण्ड में अवन्ती खण्ड माहात्म्य के आगे चतुरशीति लिङ्गमाहात्म्य का ८४ अध्याय नहीं है और आगे रेवा खण्ड में ११६ अध्याय हैं, जो उपयुक्त दोनों ग्रन्थों के समान प्राय रेवा खण्ड से भिन्न है विद्वान् महानुभाव इस विषय में हमें मार्गदर्शन करावें यही प्रार्थना है।

अभी इस पञ्चम भाग का उत्तरार्द्ध रेवाखण्डनाम से अधिकतर शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। आशा है उसकी प्रस्तुति विद्वानों को विशेष प्रमोदावह होगी कारण उसमें रेवाखण्डस्थ सत्यनारायणव्रतकथा की चतुरध्यायी (वर्तमान प्रचलित ग्रन्थ के अनुसार पञ्चाध्यायी) का समावेश अत्यन्त सावधानतापूर्वक हुआ है।

श्रीशारदासदन पुस्तकालय लक्ष्मणगढ़ [सीकर] की स्थानीय प्रबन्धकारिणी समिति के पदाधिकारियों का हृदय से आभार मानता हूँ कि उन सहृदय महानुभावों की अविरत सहायता से इस ग्रन्थ के अद्यतन के भागों का इतनी सुविधा से प्रकाशन हो सका।

अन्त में इस ग्रन्थ के सम्पादकद्वय प० श्रीप्रह्लाददत्तजी त्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० तथा प० रामनाथजी शास्त्री पुराणसाङ्ख्यस्मृतितीर्थ नवलगढ़ (जयपुर) की उनके आशावान् भविष्य के साथ अभिनन्दनीय कार्यों में सहानतापूर्वक साफल्यमण्डन की कामना करता हुआ इस खण्ड में आई हुई सीसकाक्षर योजना पटु कार्यकारी लोगों तथा प्रेस के मूलों की असावधानताजन्य त्रुटियों के लिये बारम्बार करबद्ध क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस विशाल कार्य को ८११०० श्लोकों के साथ साङ्गोपाङ्ग प्रकाशित करने में आप सभी विद्वद्गण सहायता प्रदान करें यह मेरी प्रार्थना है जिससे

प्रातःस्मरणीय व्यासदेव भगवान् की पुराणवाणी विश्व में हमें आदर्श ज्ञान का दिव्य कोष प्रदान कर कृतार्थ करें जिससे उन उपदेशों को जीवन में उतार कर हम "सर्वभूतहिते रताः" बन सर्वप्राणी हित में लगें।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

शुभमिति ज्येष्ठ शुक्ला
निर्जला एकादशी
गुरुवार २०१६ वि०
१४।६।६२

कृपाकाङ्क्षी
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता—१

* श्रीगणेशायनमः *

स्कन्दपुराणान्तर्गतपञ्चमावन्तीखण्डस्य [पूर्वार्द्धस्य] विषयानुक्रमणिका

अध्यायः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
१	मङ्गलाचरणपूर्वकंमहाकालवनप्रशंसावर्णनम्	१
२	ब्रह्मशिरश्छेदवर्णनम्	४
,,	ब्रह्मणासृष्टिसर्जनवर्णनम्	५
,,	ब्रह्मणःपञ्चममुखच्छेदनवर्णनम्	७
३	ब्रह्मणःप्रायश्चित्तकरणवर्णनम्	६
,,	बालिसुग्रीवपूर्वजन्मवृत्तवर्णनम्	११
४	अग्नेराविर्भाववर्णनम्	१२
,,	अग्निस्थानदानवर्णनम्	१५
,,	ब्रह्मणोऽग्निनासम्वादवर्णनम्	१७
५	देवागमनवर्णनम्	१६
,,	महादेववरप्रदानवर्णनम्	२१
६	कपालमोक्षणवर्णनम्	२३
,,	देवकृतशिवस्तववर्णनम्	२५
,,	ईश्वरदेवसम्वादवर्णनम्	२७

समाप्तश्चायंस्कन्दपुराणान्तर्गतपञ्चमावन्तीखण्डस्य (पूर्वार्द्धस्य)

विषयानुक्रमणिका ।

इतिविद्वज्जनकृपाभिलाषिणी लक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ सीकरनिवासि)

महारत्नत्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ-जयपुरमण्डलनिवासि)

रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

* श्रीगणेशाय नमः *

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

स्कन्दपुराणम्

—:*:—

तस्येदं पञ्चममवन्तीखण्डम्प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणपूर्वकंमहाकालवनप्रशंसावर्णनम्

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा-
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च ।
लोकानामादिदेवः स जयतुभगवाञ्छ्रीमहाकालनामा;
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम् ॥ १॥

उमोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्याश्चसरितस्तथा ।
कथ्यतां तानि यत्नेन श्राद्धं येषु प्रदीयते ॥ २ ॥

समाप्तश्चेयं स्कन्दपुराणान्तर्गतपञ्चमावन्तीखण्डस्य (पूर्वार्द्धस्य)
विषयानुक्रमणिका ।

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गामिश्रेण (लक्ष्मणगढ-सीकरनिवासि)
ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—नवलदुर्गावास्तव्य (नवलगढ-जयपुरनिवासि)
रामनाथमिश्रशर्माणौ ।

शुभम्भूयात्

व्यास उवाच

भगवन्! क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथ्यताम् ॥ १९ ॥

महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यतेसर्वतोवरम् । कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठंसऊषरन्तथा ॥
फलंयथास्यक्षेत्रस्य मृतानाञ्चगतिर्यथा । स्नानेनयद्भवेत्पुण्यं दानेनापिचयत्फलम् ॥
कथमेतच्छ्मशानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथातथा । पृष्टोमेशङ्करेभक्ति ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद

सनत्कुमार उवाच

क्षीयतेपातकंयस्मात् तेनेदंक्षेत्रमुच्यते । यस्मात्स्थानञ्चमातृणां पीठन्तेनैवकथ्यते
मृताः पुनर्नजायन्ते तेनेदमूषरं स्मृतम् । गुह्यमेतत् प्रियन्नित्यं क्षेत्रंशम्भोर्महात्मनः
यस्मादिष्टंहिभूतानां श्मशानमतिवल्लभम् । महाकालवनंयच्च तच्चैवापिविमुक्तिकम्
एकाम्रकंभद्रकालं करवीरवनन्तथा । कोलागिरिस्तथा काशीप्रयागममरेश्वरम् ॥
भरतंचैव केदारं दिव्यं रुद्रमहालयम् । दिव्यश्मशानान्येतानिरुद्रस्येष्टानिनित्यशः ॥
रमतेभगवानेषु सिद्धिक्षेत्रेषु सर्वदा । पृथिव्यान्नैमिषंतीर्थमुत्तमं तीर्थपुष्करम् ॥ २८
त्रयाणामपिलोकाना कुरुक्षेत्रं च शस्यते । कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्यावाराणसीमता ॥
तस्माद्दशगुणंव्यास! महाकालवनोत्तमम् । प्रभासाद्यानितीर्थानिपृथिव्यामिहयानितु
प्रभासमुत्तमंतीर्थं क्षेत्रमाद्यंपिनाकिनः । श्रीशैलमुत्तमंतीर्थं देवदारुवनंतथा ॥ ३१ ॥

तस्माद्प्युत्तमा व्यास! पुण्या वाराणसी मता ।
तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं सर्वतीर्थोत्तमं यतः ॥ ३२ ॥

महाकालवनंगुह्यंसिद्धिक्षेत्रंतथोषरम् । किञ्चिद्गुह्यान्यथान्यानिश्मशानान्यूषराणिच
सर्वतस्तुसमाख्यातं महाकालवनंमुने !। श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठन्तु वनमेवच ॥ ३४॥
पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुराद्वते ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
महाकालवनप्रशंसानामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

अस्ति लोकेषु विख्याता गङ्गा त्रिपथगा नदी । सेविता देवगन्धर्वैर्मुनिसिद्धनिषेविता
तथान्या यमुना देवी यमुना लोकपावनी । पितॄणां वल्लभा देवि महापातकनाशिनी ॥ ४
चन्द्रभागार्पितस्ताश्च नर्मदाऽमरकण्टकम् । कुरुक्षेत्रं गयाऽपि देवि प्रभासं नैमिषं तथा
केदारं पुष्करं चैव तथा कायावरोहणम् । तथा पुण्यतमं देवि महाकालवनं शुभम् ॥ ६ ॥
यत्रास्ते श्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः । क्षेत्रं योजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ७
मुक्तिदं भुक्तिदं क्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् । मर्त्यैरप्यसुरैर्देवि दुष्प्रापं त्रिदशैरपि ॥

उमोवाच

प्रभावः कथ्यतां देव क्षेत्रस्याऽस्य महेश्वर ।
यानि तीर्थानि तिष्ठन्ति यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥ ९ ॥
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥ १० ॥

महादेव उवाच

शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् । क्षेत्रमाद्यं महादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥
धामरोल्लसन्निधाने यच्छिखरं रत्नविचित्रितम् । वैराजभवनं नाम ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
तन्त्रीदिव्याङ्गनागानमधुरस्वरनादिता । पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥ १३
मधुपावलिसम्भुग्नमहास्तम्भमण्डिता । रत्नतालपुत्तलिकानेकशीतलादिभनादिता ॥
चित्रवस्त्रा कोटिभिः स्तम्भैर्निर्मलादर्शशोभिता ॥ १४ ॥
अप्सरोनृत्यविन्यासविलासोल्लासशोभिता ।
समाकान्तिसमस्तानां देवानां हर्षदायिका ॥ १५ ॥
तस्यां निविष्टं पार्वतीशशङ्करासने स्थितम् । सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं ब्रह्मणो मानसं सुतम्
मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
पराशरसुतो व्यासः प्रणिपत्य यथाविधि ॥ १६ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भवभक्त्यानुभावितः । पप्रच्छ परया तुष्ट्या हर्षितो गद्गदाननः ॥
महाकालस्य माहात्म्यं श्रावितं मोहनाशनम् ।

अशेषभूतप्रकृतेः पराय वै परात्मरूपाय नमः शिवाय वै ।
नबुद्ध्यहङ्कारमनोविधाय धात्रे च षड्विंशकरूपकाय ॥ १५ ॥
भूवायुवह्न्यम्बरवारिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदन्तनूभिः ।
व्याप्तंजगद्यस्यनमोऽस्तु तस्मै भूतं भविष्यं त्वथ वर्तमानम् ॥ १६ ॥
यानीहतेजांसि जगन्तियानि भूतानि भव्यान्यथ कारणानि ।
भवन्ति सृष्टौ विलयं विनाशे व्रजन्ति यस्याऽऽत्मनि तं नमामि ॥ १७ ॥

सनत्कुमार उवाच

एवंसंस्तुवतोव्यास! ब्रह्मणोभगवान्परः । अन्तर्हित उवाचेदं ब्रह्मन्संवाच्यतांवरः ॥
सब्रवेमनसापुत्रं भवंगौरवकारणात् । विज्ञायान्तर्गतंतस्य परमेश उवाच तम् ॥१६
यस्मान्मांमनसापुत्रंचतुर्मुख!समीहसे । कस्मिंश्चित्कारणेतस्मादहंछेत्स्यामितेशिरः
अयाच्यं याचितं यस्मान्ममांऽशो नीललोहितः ।
रुद्रो भविष्यति सुतः स च ते हिंस्यति प्रभाम् ॥ २१ ॥
अन्यद्यस्मात्स्मृतो भवत्या त्वयाऽहं पितृभावतः ।
परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासा मम या कृता ॥ २२ ॥
तस्माद्ब्रह्मे तिलोकेत्रनामख्यातंभविष्यति । पितामहत्वंयेनापिततोह्यसिपितामहः
लब्ध्वा शापवरावेवं पुत्रसृष्टिचकारसः । स्वतेजोजनितंवह्निं जुह्वतः स्वेदआवहत्
समिद्युक्तेनहस्तेनललाटंमार्जतोऽभवत् । छिन्नंभूष्टस्ततोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ
सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रो भवाज्ञया । तदनन्तरमासाद्य उत्ततार सुतोऽन्तिकात्
पञ्चवक्त्रोदशभुजो शूलचापासिशक्तिमान् । त्रिपञ्चनयनोरौद्रो व्यालयज्ञोपवीतकः
सेन्दुं कपर्दंबिभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः । जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥२८॥
नीललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ।
ततः प्रववृते सृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २६ ॥
ससादौमानसाञ्श्र सनकादींस्ततोपरान् । मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोऽसृजत्
अष्टभेदान्सुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिश्च पञ्चधा । मनुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवं ससर्जह॥

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मशिरश्छेदवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पुरा त्वेकार्णवे प्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे। नाग्निर्न वायुरादित्यो न भूमिर्न दिशो नभः ॥१॥
न नक्षत्राणि न ज्योतिर्न द्यौर्नेन्दुग्रहास्तथा। न देवासुरगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥
सरांसि नैव गिरयो नापगा नोदधयस्तथा। सर्वमेव तमोभूतं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३

तदैको हि महाकालो लोकानुग्रहकारणात्।
तस्थौ स्थानान्यशेषाणि काष्ठास्त्वालोकयन् प्रभुः ॥ ४ ॥

सृष्ट्यर्थं स महाकालः करे कृत्वा प्रतिष्ठितम्। दक्षिणस्य तु तर्जन्या निर्मन्थ्याधिरोपितम्
कललं बुद्बुदं भूत्वा तीव्रवेगविवर्धितम्। अण्डं ततोऽण्डं सुदृढं सुपक्वं तु हिरण्मयम् ॥
करेण ताडितं तच्च द्विधाभूतं द्विदलं महत्। अथ खण्डस्तु ताभूमिरूर्ध्वं द्यौस्तारकान्वितम्
मध्येऽभवत्तदा ब्रह्मा पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः। महेश्वरोऽनुमान्यैतमयोजयदनन्तरम् ॥ ८

कुरु सृष्टिं महाबाहो विविधां मदनुग्रहात्।
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितः क्वाऽपि देवो ब्रह्मा न ज्ञातवान् ॥ ९ ॥

प्रेर्यमाणोऽपि वै स्रष्टुं नामुह्यद्धर्ममचिन्तयत्। ब्रह्मणा ध्यायमानश्च ज्ञानार्थं भगवानथ
ब्रह्मणस्तपसा तुष्टः प्रादाद्वेदं षडङ्गकम्। लब्ध्वेदं अपि न चिरात् सृष्टिं कर्तुं शशाक सः ॥
तपसाराधयद्भूयः समाराधयितुं भवम्। नापश्यत्स यदा देवं तदा तुष्टाव भावतः ॥

ब्रह्मोवाच

नमः शिवायाऽमलसत्त्वचेतसे गुणत्रयातीतविसारितेजसे।
षडङ्गवेदस्य ममाऽपि वेधसः परस्य रूपानुभवाय शम्भवे ॥ १३ ॥
नमोऽस्तु ते सृष्टिविधौ रजोजुषे जगत्स्थितौ सत्त्वमधिष्ठिताय ते।
विनाशहेतौ तमसोपयोगिने शिवाय निर्वाणसुखप्रदायिने ॥ १४ ॥

अशेषभूतप्रकृतेः पराय वै परात्मरूपाय नमः शिवाय वै ।
नवुद्ध्यहङ्कारमनोविधाय धात्रे च पड्विंशकरूपकाय ॥ १५ ॥
भूवायुवह्न्यम्बरवारिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदन्तनूभिः ।
व्याप्तंजगद्यस्यनमोऽस्तु तस्मै भूतं भविष्यं त्वथ वर्तमानम् ॥ १६ ॥
यानीहतेजांसि जगन्तियानि भूतानि भव्यान्यथ कारणानि ।
भवन्ति सृष्टौ विलयं विनाशे व्रजन्ति यस्याऽऽत्मनि तं नमामि ॥ १७ ॥

सनत्कुमार उवाच

एवंसंस्तुवतोव्यास! ब्रह्मणोभगवान्परः । अन्तर्हित उवाचेदं ब्रह्मन्संवाच्यतांवरः ॥
सवव्रेमनसापुत्रं भवंगौरवकारणात् । विज्ञायान्तर्गतंतस्य परमेश उवाच तम् ॥१६
यस्मान्मांमनसापुत्रंचतुर्मुख!समीहसे । कस्मिंश्चित्कारणेतस्मादहंछेत्स्यामितेशिरः
अयाच्यं याचितं यस्मान्ममांऽशो नीललोहितः ।
रुद्रो भविष्यति सुतः स च ते हिंस्यति प्रभाम् ॥ २१ ॥
अन्यद्यस्मात्स्मृतो भवत्या त्वयाऽहं पितृभावतः ।
परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासा मम या कृता ॥ २२ ॥
तस्माद्ब्रह्मेतिलोकेत्रनामख्यातंभविष्यति । पितामहत्वंयेनापिततोह्यसिपितामहः
लब्ध्वा शापवरावेवं पुत्रसृष्टिंचकारसः । स्वतेजोजनितंवह्नि त्रुद्धतः स्वेदआवहत्
समिद्युक्तेनहस्तेनललाटंमार्जतोऽभवत् । छिन्नंभ्रष्टस्ततोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ
सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रो भवाज्ञया । तदनन्तरमासाद्य उत्ततार सुतोऽन्तिकात्
पञ्चवक्त्रोदशभुजो शूलचापासिशक्तिमान् । त्रिपञ्चनयनोरौद्रो व्यालयज्ञोपवीतकः
सेन्दुं कपर्दंविभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः । जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥२८॥
नीललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ।
ततः प्रववृते सृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २६ ॥
सत्तादौमानसाञ्ज्ञे सनकादींस्ततोपरान् । मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोऽसृजत्
अष्टभेदान्सुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिश्च पञ्चधा । मनुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवं ससर्जह॥

सृष्टिं सुरादिकां जातां दृष्ट्वा ब्रह्माणमव्ययम् । प्रणम्याथ स पितुस्तत्रैव नीललोहितम्
ततो ब्रह्माऽवदद्रुद्रमपूज्योऽहं त्वयाकृत । स्वतेजसा मयाऽपूज्यो यतो याहि हिमालयम्

तथील्लोहितोऽप्युक्त्वा भवता नार्चितो ह्यहम् ।
ततो जगाम रुद्रोऽसौ स यत्र भगवान्भव ॥ ३४ ॥

ततो ब्रह्माऽभवन्मूढो रजसा कोपवृंहित । ततापतेजसा सृष्टिमन्यमा मोहपाशतः
मत्तुल्यो नास्ति वै देवो येन सृष्टिः प्रवर्द्धिता । सदेवासुरगन्धर्वपशुपक्षिमृगाकुला ॥
पञ्चमं वदनं पञ्चास्यो विरञ्चिः सृष्टिदर्पित । प्राग्वक्त्रमुत्स्वरं तस्य ऋग्वेदस्य प्रवर्तकम्
द्वितीयवदनं तस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् । तृतीयं वदनं तस्य सामवेदप्रवर्तकम् ॥ ३८ ॥
चतुर्थं वदनञ्चास्याऽथर्ववेदप्रवर्तकम् । साङ्गोपाङ्गेतिहासांश्च सरहस्यान्ससङ्ग्रहान्
वेदानधीत्य वक्त्रेण पञ्चमेन ससम्भ्रम । तस्यासुरास्सुरास्सर्वे वक्त्रस्याद्भुततेजस

तेजसा न प्रकाशन्ते दीपास्सूर्योदये यथा ।
सपुत्रा अपि मोहगा बभूवुनष्टचेतन ॥ ४१ ॥

नाभिगन्तुं न द्रष्टुं च विरञ्चेनोपसर्पितुम् । अभिभूतमिवात्मानं मन्यमाना विचिन्त्य
सर्वे ते मन्त्रयामासुर्देवा देहिसमात्मन । गच्छाम शरणं देवं निरञ्जं महत्तेजसा ॥

किं मन्त्रैर्न जानाम स्थानं यत्र व्यवस्थितम् ।
तस्मान्नमन्त्र द्रक्ष्यामो भक्त्या नान्येन केनचित् ॥ ४४ ॥

एवं संमन्त्र्य ते देवाः कृताञ्जलिपुटास्तदा । वक्तुमस्तो महेशस्य परयाऽन्यरसम्पदा

देवा ऊचु

नमस्ते देवदेवेश महाध्यानमोनम । न विद्म परमं भूत्वा अभिधानं तथाऽतुलम् ॥
यथा गगनं परं ब्रह्म भूतानां त्वं सनातन । प्रतिष्ठा सर्वभूतानां हेतुस्सर्वस्य सर्जने ॥

बिभर्ति च नक्षत्रान् सोमसूर्यविभावसून् ।
नामसङ्कीर्तनाद्यं मुच्यन्ते जन्तवोऽशुभात् ॥ ४८ ॥

पृथिव्यम्बवह्निचन्द्राक व्योमवायुप्रलक्षणा । मृतयस्ते महादेव यथा तस्माभिरदीपता
रजःसत्त्वतमोभावैर्भ्राम्यमाणं त्वया जगत् । नावबुध्यति सर्वेश सर्वमूर्तिधरोऽयत

ब्रह्मादीनां सुरेशानां सम्मोहनविमोहनः। त्वङ्करोपियुगावर्तं कालेकालेचदुस्सहम्

सनत्कुमार उवाच

एवंसंस्तूयमानोऽसौ देवर्षिपितृमानवैः। अन्तर्हितउवाचेदं देवाब्रूतयथेप्सितम्॥

देवा ऊचुः

प्रत्यक्षं दर्शनं स्थाणो! प्रार्थयामस्सदा तव।
त्वया कारुण्यतोऽस्माकं वरश्चापिप्रदीयताम्॥ ५२॥

यदस्माकंमहद्वीर्यं यश्चास्माकंपराक्रमः। तत्सर्वं ब्रह्मणोग्रस्तं पञ्चमास्यस्यतेजसा
विनेशुःसर्वतेजांसि त्वत्प्रसादात्पुनर्विभो!। जायन्तेतद्यथापूर्वं तथाकुरु महेश्वर!॥

सनत्कुमार उवाच

प्रत्यक्षं दर्शनं दत्त्वा देवानामनुकम्पया। प्रसन्नवदनोभूत्वा देवैश्चापिनमस्कृतः॥
आश्वास्यचसुरान्सर्वान् सहदेवैर्महेश्वरः। प्रत्यक्षमेत्य पश्चाच्च चलितः शर्वएव हि॥
जगाम तत्र यत्राऽसौरजोऽहङ्कारमूर्तिमान्। देवाःस्तुवन्तोदेवेशं परिवार्यउपाविशन्
ब्रह्मातमागतन्देवं न जज्ञे तमसावृतः। सूर्यकोटिसहस्राणां तेजसाऽरञ्जयज्जगत्॥

तदाऽदृश्यत विश्वात्मा विश्वभुग्विश्वभावनः।
स पितामहमासीनं सकलं देवमण्डलम्॥ ६०॥

तेजसाभिभवन्रुद्रः स्वयम्भोरग्रतःस्थितः। रुद्रतेजोऽभिभूतश्च ब्रह्मवक्त्रंनराजते
रात्रौप्रकाशकिरणश्चन्द्रस्सूर्योदये यथा। सगर्वोत्थात्मजं दृष्ट्वा रुद्रं देवं सनातनम्॥
अभिवन्दे करेणैव देवं तत्तेजसावृतः। ततोऽट्टहासंभगवान् मुमोच शशिशेखरः॥

पश्यतां सर्वदेवानां शृण्वतां वाचमुत्कटाम्।
तेनाऽट्टहासशब्देन मोहयित्वा पितामहम्॥ ६४॥
तेजोराशिःशशाङ्काभः शशाङ्कार्काग्निलोचनः।
वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः॥ ६५॥

चकर्त कदलीगर्भं नरः कररुहैरिव। छिद्यमानञ्च वक्त्रञ्च बुबुधेन पितामहः॥६६॥
रुद्रस्यतेजसातस्मान्मोहितोननर्तिगतः। छिन्नंतस्य शिरःपश्चाद्रुद्रहस्तेस्थितं तदा

अपश्यद्दैवतैः सार्द्धं रौद्रज्वालातिभयाज्ज्वलत् । महेश्वरकरान्तस्थं नखैर्वक्त्रविराजते
ब्रह्मण्डलमध्यस्थो द्वितीय इव चन्द्रमा ।
उत्क्षिप्य तत्कपालेन ननर्त शशिशेखर ॥ ६१ ॥
शिखरस्थेन सूर्येण कैलास इव पर्वत । छिन्नेवक्त्रे ततोदेवा हृष्टपुष्टावृषध्वजम् ॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं कपालिनम् ।

देवा ऊचुः

नमः कपालिने नित्यं महाकालाय शङ्किने ॥ ७१ ॥
ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभोगप्रदायिने । नमो दर्पविनाशाय सर्वदेवमयाय च ॥ ७२ ॥
कालसंहारकर्ता त्वं महाकालस्ततोह्यसि । भक्तानां दु खशमनो दु खातस्तेनरोचते॥
शङ्करोप्याशु भक्तानां तेन त्वं शङ्कर स्मृत ।
छित्वा ब्रह्मशिरो यस्मात्कपालं च बिभर्षि च ॥ ७३ ॥
तेनदेव ! कपालीत्व स्मुतोह्यप्रसीद न । एवंस्तुत प्रसन्नात्मा देवानुध्यायशङ्कर
वृन्दारकेशो भगवांस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ७६ ॥
शशिशकलमयूखैर्भासितोयस्कपर्दस्त्वमलगगनगङ्गातोयवीचीविचेय ।
विधृतसितकपालोमाल्या यश्चकास्ति स जयति जितदेवाऽर्जित प्राज्यतेजा
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
ब्रह्मशिरश्छेदोनाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मणःप्रायश्चित्तकरणवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

छिन्नेवक्त्रेततोब्रह्मा क्रोधेनतमसावृतः। ललाटेस्वेदमुत्पन्नं गृहीत्वाऽताडयद्भुवि ॥
तत्स्वेदात्कुण्डलीजज्ञे सधनुस्समहेषुधिः। सस्वर्णकवचोवीरःकिंकरोमीत्युवाचह
तमुवाचविरञ्चिस्तु दर्शयन्रुद्रमोजसा । वध्यतामेषदुर्बुद्धिर्जायतेनयथापुनः ॥ ३ ॥
ब्रह्मणोवचनं श्रुत्वाधनुरुद्यम्यपृष्ठतः। सप्रतस्थेमहेशस्य बाणहस्तोऽतिरोपभृत् ॥
सदृष्ट्वापुरुषं चोग्रमभवद्विस्मितोभवः। दिव्यबाणधनुर्हस्तं वेगविक्रान्तगामिनम् ॥

मया नवध्योऽतिबलो सखा विष्णोर्भविष्यति ।
अनुग्राह्यो ह्यहं तेन सण्यर्थं तपसि स्थितः ॥ ६ ॥
चिन्तयन्नित्थमीशोऽपि विष्णोराश्रममभ्यगात् ।
हुङ्कारध्वनिना ब्रह्मन्! मोहयित्वा ततो नरम ॥ ७ ॥

प्रयात्येवतदाहृष्टः क्रीडांकुर्वञ्जगत्स्थितौ। यत्रनारायणः श्रीमांस्तपस्तेपेप्रतापवान्
अदृश्यस्सर्वभूतानांविश्वात्माविश्वसृग्विभुः। तत्रप्राप्तोविरूपाक्षो ददर्श मधुसूदनम्
एकाङ्गुष्ठस्थितम्भूमौ तपोरतमनातुरम्। युगान्तार्कसहस्रस्य तेजसावृतमद्भुतम्
पुण्याधारसमायुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वानारायणंदेवो भिक्षान्देहीत्युवाचह ॥

कपालं दर्शयित्वाऽग्रे ज्वलज्ज्वलनवत्स्थितम् ।
कपालपाणिं सम्प्रेक्ष्य रुद्रं विष्णुरचिन्तयत् ॥ १२ ॥
कोन्योयोग्यो भवेद्भिक्षुर्भिक्षादानस्य साम्प्रतम् ।
योग्योऽयमिति सङ्कल्प्य दक्षिणं भुजमर्पयत् ॥ १३ ॥

विभेदान्तर्गतज्ञस्तं शूलेनशशिशेखरः । ततोप्रवाहउत्पन्नश्शोणितस्यविभोर्भुजात्
जाम्बूनदरसाकारो वह्निज्वालेवनिर्मलः। निष्पपातकपालान्तःशम्भुनासम्प्रतीच्छिता

ऋज्वीवेगवतीक्षिप्रा दीधितीवाम्बरेरवेः । पञ्चाशद्योजनादीर्घा विस्तारेदशयोजना
दिव्यंवर्षसहस्रं सा समुवाहहरेर्भुजात् । कियन्तंकालमीशोहि भिक्षाजग्राहमाधिव
दत्तानारायणेनाथ सत्पात्रेपात्रउत्तमे । ततोनारायणः प्राह हरंपरमिदं वच ॥ १८ ॥
सम्पूर्णंतवपात्रंहि ततोवैपरमेश्वर" । सतोयाम्बुदनिर्घोषं श्रुत्वावाक्यहरेर्हर. ॥ १९ ॥
शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशोभितः । कपालेदृष्टिमावेश्य त्रिभिर्नेत्रैर्जनार्दनम् ॥
अङ्गुल्याघट्टयन्प्राहकपालंवातिपूरितम् । श्रुत्वाहरिशम्भुवाक्यं रक्तधारांसमाहरत्
कपालस्य हरेरीश" स्याङ्गुल्याऽधिरन्तथा । दिव्यंवर्षसहस्रंच दृष्टिपातममन्ययत्
मथ्यमानेततोरक्ते कललं बुद्बुदं क्रमात् । बभूवततः पश्चात् किरीटीसशरासनः ॥
सहस्रबाहुरक्ताक्षो धनुर्ज्यासंस्पृशन्मुहुः । बभूवतूणीरधरो वृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान्
पुरुषोऽर्जुनसङ्काशो दिव्यमूर्तिर्बभूवह । तं दृष्ट्वा भगवान् विष्णुः प्राहरुद्रमिदं वचः
कपाले भगवन् कोऽयं प्रादुर्भूतोऽभववर" । उक्ति श्रुत्वा हरेरीशस्तमुवाचहरे श्रृणु
नरोनामेतिपुरुषः परमास्त्रविदांवरः । यस्त्वयोक्तोनरइति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥

नरनारायणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः ।
सङ्ग्रामे देवकार्येषु लोकानां परिपालने ॥ २८ ॥

दनारायणसखा नरस्तवभविष्यति । तवचकाङ्क्षिणः सख्ये तपसश्चमहामुने ॥ २१
विज्ञानस्यपरीक्षायै नेत्रोलोकेभविष्यति । तेजोऽधिकमिदं दिव्यंब्रह्मणःपञ्चमंशिरः
तेजसाब्रह्मणोदीप्त भुजस्यतवशोणितात् । ममदृष्टिनिपाताच्चत्रीण्येतेजांसियान्यतः
तत्संयोगात्समुत्पन्नःशत्रून्युद्धेजयिष्यति । अवध्यायेभविष्यन्ति दुर्जयास्तवचापरे
शक्रस्यचामरारीणां तेषामेषभयङ्करः । एवमुक्तस्तदाशम्भोर्विस्मितस्तस्थिवानसौ ॥
हरेरपिसतत्रैव तुष्टाव हरकेशवौ । नमो हर हरेतुभ्यं नमः शङ्करविष्णवे ॥ २४॥
नमस्तेशूलहस्ताय नमस्तेखड्गपाणये । नमोनमस्ते मेध्याय हृषीकेशनमोऽस्तुते ॥ २५
नमोऽस्तुवाचापतये श्रीधरायनमोनमः । एवंस्तुवन्तं तं व्यास! कृताञ्जलिपुटं नरम्
तथैवाञ्जलिसम्बद्ध गृहीत्वासुकरद्वयम् । उद्धृत्याथकपालात्तु पुनर्वचनमब्रवीत् ॥
यएषपुरुषोरौद्रो ब्रह्मणः स्वेदसम्भवः । सतुहुङ्कारशब्देन मोहनिद्रामुपागतः ॥ ३८

निबोध तं त्वच्चरितमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरः ।
नारायणस्य प्रत्यक्षं बोधयामास स्वाङ्नरम् ॥ ३९ ॥

वामपादेनतंहत्वा समुत्तस्थौनरोरुषा । तयोर्युद्धंसमभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत् ॥ ४०
विस्फारितधनुश्शब्दैर्नादिताशेषभूतलम् । कवचंस्वेदजस्यैकं रक्तजस्यतथाभुजौ ॥
एवंसमेनवैयुद्धं दिव्यं जातन्तु भूतले । त्रिवर्षोनानि वर्षाणां शतानिद्वशसुद्विज !॥
युद्ध्यतोस्समतीतानि स्वेदरक्तजयोर्मुने !। रक्तजोद्विभुजोदृष्ट्वा कवचैकेनस्वेदजम् ॥
विभेदबाणवेगेन ब्रह्मणः स्वेदजं नरम् । ससम्भ्रममुवाचेदं ब्रह्माणं मधुसूदनः ॥४४॥

मन्नरेणोच्छ्रितो ब्रह्मंस्त्वदीयो विनिपातितः ।
श्रुत्वा तदाकुलो ब्रह्मा बभाषे मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥

हरेऽन्यजन्मनि नरो मदीयो यदिहीयते । तदासहायं कर्तव्यं वचनान्मम माधव !॥
तेनतुप्रेनसम्प्रोक्तं हरिणैवं भविष्यति । ततस्तयोरणमपि निवार्यतामुवाचह ॥ ४७

अथान्यजन्मनि नरो मदीयो भविता कलौ ।
ततो महारणे जाते तत्राऽहं योजयामि तम् ॥ ४८ ॥
विष्णुनाऽथसमाहूय दिनेश्वरसुरेश्वरौ ।
उक्ताविमौ नरौ रौद्रौ पालनीयौ स्वयन्ततः ॥ ४९ ॥
स्वेदजातोऽप्यसृग्जातः स्वकीयांशौ धरातले ।
स्वांशभूतौ द्वापरान्ते नियोज्यौ भूतले त्वया ॥ ५० ॥

ततोऽब्रवीत्तदाविष्णुं सुरेशोदुःखितंवचः । अस्मिन्मन्वन्तरेदेव! त्रेतानाम्नियुगेहरे
तद्रूपेणैव महता सूर्यपुत्रहितार्थिना । वालीनाम महाबाहुः सुग्रीवार्थेनिपातितः ॥
तेनदुःखेन ततोऽहं नाहं गृह्णामितेनरम् । अग्रःह्यमाणं देवेशं कारणान्तरवादिनम् ॥
विष्णुःप्रोवाचमघवन् भुवोभारावतारणे । अवतारंकरिष्यामि मर्त्यलोकेऽप्यहंविभो
ततोहृष्टो ऽभवच्छक्रो विष्णुभावेनतेनवै । प्रतिगृह्यनरंहृष्टस्सत्यमस्तु वचस्तव ॥

इत्युक्त्वा तु रवीन्द्रौ स प्रेषयित्वा च तौ पुनः ।
गत्वा स पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणं ब्रह्मवेशमनि ॥ ५६ ॥

उवाचवाचधर्मज्ञस्तस्य पापविशुद्धये । कुनजुगुप्सितकर्म ब्रह्मशीशजिघांसता ॥५९॥
यत्त्वयाद्देवदेवेशः पुमान्कोपेन भावित । शुद्ध्यर्थमेवपापस्य प्रायश्चित्त परकुरु ।
गृहाणवह्नित्रयब्रह्मन्नग्निहोत्रमुपासक । एको वै गार्हपत्यस्तु द्वितीयोह्यवनीयक ।
दक्षिणाग्निस्तृतीयस्तु त्रिखण्डेषु प्रकल्पय ।
वर्तुले स्थापयाऽऽस्मान मामयो धनुराकृतौ ॥ ६० ॥
चतुष्कोणे हर देव श्रग्यजु सामनामभि ।
हुत्वात्वग्निश्च तपसा ह्याराधयंय तत्क्षणात् ॥ ६१ ॥
दिव्य वर्षसहस्रन्तु हुत्वाऽग्नि सिद्धिमाप्स्यसि ।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रतिपद्य महेश्वरम् ॥ ६२ ॥
ततो निष्कल्मषो भूत्वा विगतद्वन्द्वे गमिष्यति ॥ ६३ ॥
इत्येवमुक्त्वा हरिरमिततेजा गत स्वकीय निलय महात्मा ।
ब्रह्माऽपि चित्त तपसे निधाय समाद् रे सर्वमयाऽच्युतोक्तम् ॥ ६४ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे
ऽवन्तीखण्डे ब्रह्मण प्रायश्चित्तनाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्याय

अग्नेराविर्भाववर्णनम्

व्यास उवाच

योऽसौकपाल उत्पन्नो नरोनामधनुर्धर । किमेषसोऽधुनाजात उत्पत्तौविश्वकर्मण
चर्यरुद्रेणजनित प्रभुणाबुद्धिपूर्वकम् । विष्णुना वा भगवता ब्रह्मणामाधमेद्वत
केन कस्मातसमुत्पन्न शङ्कराच्युतब्रह्मणाम् ।
ब्रह्मा हिरण्यगर्भो यो यो जातश्च चतुर्मुखः ॥ ३ ॥

द्भुतं पञ्चमंवक्त्रंकथन्तस्याप्युपस्थितम् । सतस्थौ भगवान्ब्रह्मा कथंस्त्रैमनोदधन्
मूढात्मना नरो येन हन्तुं स प्रहितो हरम् ।

सनत्कुमार उवाच

महेश्वरहरीपतौ द्वावेवव्यास! तिष्ठतः । तयोरविदितंनास्ति सिद्धासिद्धंमहात्मनोः
ब्रह्मणःपञ्चमंवक्त्रं यत्तदासीन्महात्मनः । तस्यैव मानसःसोऽग्निः शिरसातेनवैधृतः
योनरो ब्रह्मणाप्रोक्तः सोऽप्यग्निस्तस्यमानसः । दधार तं महादेवःकृताङ्गुल्यन्तरान्तरे
पूर्वंदृष्ट्वा समुत्पत्तिमेवं तस्यमहात्मनः । तस्मात्कपालादङ्गुल्या वध्यमानादजायत ॥
सतंहत्वाशरेणाजौ ब्रह्मणोनिहितंरजः । मुमोहरजसासत्त्वं यदृच्छाकृतप्रभुर्यतः ॥

व्यास उवाच

कथमग्निः समुत्पन्नो योनिःशर्वेणधारितः । विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दित

सनत्कुमार उवाच

अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डंहितदजायत । जज्ञे सौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः॥
स्वयम्भूः स तपस्तप्त्वा दिव्यं वर्षशतं महत् ।
सन्तस्थौव्याजहाराऽथभूर्भुवःस्वरितिश्रुतिः ॥ १२ ॥
श्रुतियोगात्तु मनसः पश्चादग्निरजायत । अधोमुखःपपाताऽग्निः पृथिवींनिर्दहन् यदा
पाणिभ्यां ब्रह्मणा सोऽग्निर्भूमेरूर्ध्वं निवेशितः ।
ततो दक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निः प्रणीयते ॥ १४ ॥
पुरापतन्नधोज्वालऊर्ध्वज्वालोयतोधृतः । उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा
ज्वालाभिः प्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दः स्फुलिङ्गवान् ।
हिरण्यवर्णं ब्रह्माणं सउवाचाऽग्निरुत्कटम् ॥ १६ ॥
किमर्थं तु मया देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् । बुभुक्षयाहमाविष्टआहारोमेप्रदीयताम्
एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः । कृशश्चखादन्नग्निस्तु सर्वरोमाणिब्रह्मणः
अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः । त्वचंजुहावब्रह्मा स चखादाऽग्निस्तमेव च ॥१६
अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममैव हि ।

जुहाव स्थानि मासानि त्वचोत्कृत्य प्रजापतिः ॥ २० ॥

अब्रवीच्चनमतृप्तिनचमेदेहनिवृ त्ति । जुहाव ब्रह्माथास्थीनि तान्यश्नन्स बुभुक्षित ॥

ततोब्रह्माहुताशन कृतोदेहीविधातुक । तमदेहमथोवह्निब्रह्माणमवदच्च स ॥ २२ ॥

अहोब्रह्मनमेतृप्तिनचदेहनिवृ त्ति । क्रुद्धेनब्रह्मणासोऽग्निर्हुङ्कारेणद्विधाहृत ॥ २३ ॥

भाहतृवदसावग्नी आहारार्थं प्रजापतिम् । हुङ्कारेणपुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकमकार वै ॥२४॥

ब्रयस्तेषा वह्निस्तस्म उग्रमेकोहि संस्थित । क्रुद्धेनब्रह्मणात्यास हुङ्कारेणैवताडित

रोरुयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वित ।

आह कामाभिभूताना भुङक्ष्व त्व देहधातव ॥ २६ ॥

ते काले लब्धकामस्य मावृत्ति मत्प्रकल्पिता ।

अकाराग्नि सन्निविष्ट दृष्ट्वा मनसि मानसम् ॥ २७ ॥

अकाराग्नि प्रजज्वाल किमतदितिचाब्रवात् । ब्रह्मातमाहत्थमपि यथेष्टावृत्तिमाश्रय

एवमध्येवहिचापि मुनीनामाश्रयेषु च । इत्येवमुक्तस्तेनाऽऽशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥

अहमेव प्रभास्यामि पुन पुनरुपाय ह । यस्मादेपद्विनायोऽग्निर्हुङ्कारा समजायत ॥

साभिमानोऽपमानो वा हुङ्कारो यत्र कथ्यते ।

सा च वृत्तिममादेशाद्द बुभुक्षा शान्तये तव ॥ ३१ ॥

इकाराग्नि समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् । भवतोऽग्नेविवधृत्तिरन्नभुक्तदेहेरिति ॥३२॥

उकाराग्नि समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् । यत्पृथिव्या मरुस्थान भगवस्तत्वमाश्रय

अह तव वि राग्याभि स्थानमाहारमेवच । इत्युक्त मतुनेनाग्निय पृथिव्यां शिलाश्रय

यतोऽग्निर्यासतेनोक्तो गिरोर्दुर्गमहामुने । उकाराग्नि सदाध्येय समुद्रेवडवामुख

सोऽपि भिन्न समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया ।

त्वस्त्रभु सर्वलोकस्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

तस्मात्व सस्कृता वाणीं द्विजातीना प्रकाशय ।

दैवात्पुण्यासस्कृताचब्रायुष्यहन्त्यसस्कृता ॥ ३७ ॥

तस्माद्द्विजातैर्विद्वथा वाणी पुण्यप्रकाशिना ।

वाक्त्वमाताद्विजातीनां मुखे सा सम्प्रतिष्ठिता ॥ ३८ ॥
[ऋ]तृताक्षरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता । वकारंहन्त्यतोह्यग्निःसदासंस्कृतवाग्द्विजः
[आ]हूयभूयोऽकाराग्नि प्रजापतिरथब्रुवम् । तां देववाणीमवदत्सोऽपिसंमीलितेक्षणः
ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोऽहमुखमास्महे । स्थानंममप्रयच्छस्व सर्वतेजोवरंपरम् ॥
ब्रह्मातमाहयस्मात्त्वंतेजःस्थानंसमीहसे । तस्मात्तेजोमयंयत्ते रविस्थानंभविष्यति
यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चक्षुर्भवतिदुर्बलम् । तस्मात्त्वांतेजसायुक्तं पश्येदनिमिषश्चकः ॥
इकारमथसंभिन्नमग्निमाहपितामहः । सौम्यदृष्ट्यातुब्रह्माणं समुद्वीक्ष्यह्युपागतः ॥

यस्माच्छीघ्रंमहासत्त्व! सौम्यदृष्टिरिहागतः ।
तस्माद्दास्याम्यहं स्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥ ४५ ॥
त्वं सितात्मा श्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि ।
सर्वतेजोऽधिको दिव्यः सौम्यः परमभासुरः ॥ ४६ ॥
तत्रस्थः सर्वतेजांसि तेजसाऽभिभविष्यति ।
इत्युक्त्वा तं विसर्ज्याऽथ उकाराग्निमथाऽऽह्वयत् ॥ ४७ ॥

इहेह्येहीतिशिरसि समादायन्यवेशयत् । तत्रस्थः पञ्चमंवक्त्रमूर्ध्वमेतदजायत ॥
एषएवंरूपवह्निरुकाराग्निः प्रतिष्ठितः । तस्मादग्निश्चसूर्यश्च रुद्रावेतौविनिर्दिशेत् ॥
भवाग्निरूपः परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् । ममाऽपिरुचिरंस्थानं प्रयच्छस्वयथातथम्
ब्रह्मातमाहकतमत् स्थानंतेरोचतेतले । अग्निस्तुप्रत्युवाचेदंस्थानंकथयमेपरम् ॥

स्थानं नैवाऽस्ति नो भव्यं ततो ह्येवं भविष्यति ।
अत्र त्वास्थातुमिच्छामि यदि संरोचते तव ॥ ५२ ॥

ब्रह्मोवाच

लोकेनित्यसमाचार लोकसंस्थितिहेतुक !। सम्भवार्थमिहासत्त्वंनिजसत्त्वपराक्रमः
यदिहत्वंमहाज्वालस्ताभिःकलितशोभनः ।प्राप्स्यसेसर्वजन्तूनांभासुरस्त्वंसमुत्तमम्
तर्ह्येषधर्मश्चैवाद्यो मायामोहितकाम्यया । इत्युक्तोब्रह्मणासोऽपि प्रजज्वालसहस्रशः
ततोह्यनन्तज्वालाभिर्नानावर्णादिभिःश्रितः ।अकारेकारोकारैश्चब्रह्मातमथशान्तवान्

नैवासौ शान्ततायाति वह्निमूर्योऽप्यवर्द्धत । व्याप्तमग्निनासर्वं तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा
ज्वालाभिरुपरिक्षिप्त दृष्ट्वात्मानं समन्ततः । चिन्तयित्वा ततो ब्रह्मा भीतश्चैव विशेषतः

शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टावाऽथ प्रणम्य तम् ।
तेजोनिधिश्च सर्वेषां ज्ञातुमिच्छन्प्रजापतिः ।
निगमोक्तरहस्यैश्च ऋग्यजुःसामभाषितैः ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेजोनमस्तेऽस्तु परम्परमहात्मने । अद्भुतानां प्रतिष्ठोऽसि तेजसां निधिरव्यय ।
बीजयोनिश्च भावानां नमो हन विमोहनम् । अन्धकारो युगावर्ते कालेकालेषु सदा
ऊर्ध्वं वक्ष नमस्तेऽस्तु सत्यात्मक धरात्मक । ज्वलज्ज्वालोरुपञ्जलजलजेशाजलेश्व
जलजोत्फुल्लपद्माक्ष ज्वलद्दीप्तहुताशन । कृष्णकान्त कृष्णमार्ग स्थिर मार्गप्रदायक
यज्ञाहुतिसमाधार यज्ञरूप नमो नमः । स्वर्गगर्भशर्मगर्भ जयदेव सनातन ॥ ६४ ॥
नमो हारमहाहार स्वाहाप्रियतमोहर । अर्द्धाङ्गरोचिर्देव विश्वधामो नमोऽस्तु ते ।
वैश्वानरानलविभो ऊर्ध्वपापकमर्षण । विभावसो महाभाग कृष्णवर्त्म नमो नम ॥

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतस्तदा सोऽग्निर्विरञ्चिम् ब्रवीद्वचः । तुष्टोऽहं भवता ब्रह्मन्भवत्कर्मं प्रसिद्ध्यतु ॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा नमस्कृत्याथ तं पुनः । ज्ञातुमिच्छाम्यहं देव कोऽसि त्वं भगवानिति
अब्रवीत्सोऽथ ब्रह्माणं पुत्रस्त्वं प्रजापते । यज्ज्ञेयं परमं रूपं तेन योगेन पश्य मे ॥
अपश्यत्स दिव्येन भगवन्तं सनातनम् । सर्वज्ञं विधिकर्तारमीश्वरं सदसत्परम् ॥
ज्वलनं गगनं भूमिं ह्याद्यन्तं परमं पदम् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च जगत्स्थावरजङ्गमम्
सद्य पुरस्तैर्विश्वं भुङ्क्ते सर्वं यतः प्रभुः । तत सम्मूर्तिमध्येन स्तोत्रेणापि प्रजापतिः

तुष्टाव देवः प्रयतः पुराणमजमव्ययम् ।
ततो निरक्षर्षणं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः ॥ ७३ ॥

विश्वतोबाहुचरणं विश्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । व्यक्ताव्यक्तप्रणेतारं प्रणम्य शिरसा स्वयम्
तुष्टाव च नमस्तेऽस्तु तुभ्यं विश्वभवात्मने । पृथिवीवायुराकाशा यथान्यद्भुवनत्रयम्

लोकालोकेश्वरंचैव जगत्स्थावरजङ्गमम् । तत्वसर्गंभूतसर्गंभावसर्गंतथैवच ॥ ७६ ॥
ब्रह्मतेजो मयाऽऽत्मानं सम्पश्यंश्चक्षुषा स्वतः ।
यत्किञ्चिद्वस्तुजातं हि तत्सर्वमचरं चरम् ॥ ७७ ॥
एवंस्तुतः स तु तदा अनादिर्भगवान्प्रभुः । अथेशः प्राहब्रह्माणं त्वयादृष्टंयथातथम् ॥
सृजेदानीं प्रजाः सर्वाः स च त्वं विनयान्वितः ।
कर्ताहमनुकर्तात्वं लोकानांस्थितिकारणे ॥ ७६ ॥
कुरुष्व तत्तथाभाव्यं मयापूर्वंविनिर्मितम् । इत्युक्तोदेवदेवेशो ब्रह्मावचनमब्रवीत ॥
नमस्तुभ्यंमहादेव भवशर्वनमोऽस्तुते । त्वत्प्रसादात्प्रजासर्गं कुर्वतोमेमहेश्वर !॥८१
सखायं प्राप्तुमिच्छामि त्वया दत्तं जगत्पते !।

महेश्वर उवाच

तुष्टस्ते ध्यायतः पुत्रकामस्य भगवन्नहम् ॥ ८२ ॥
विधातःकल्पितां देव! ममोत्पत्ति यदीच्छसि ।
पुत्रत्वं प्राप्य हीशस्ते छेत्स्यामि पञ्चमं शिरः ॥ ८३ ॥
तत्र चोत्पादयिष्यामि नरनारायणावुभौ ।

ब्रह्मोवाच

कथं नारायणो देवस्तपसाऽनन्यचेतनः ॥ ८४ ॥
कीर्तयस्वसखा धन्यःसमेपूज्योभविष्यति । अथापश्यत्ततोब्रह्मातेजसाहरिमच्युतम्
तंसर्वगामिनंगम्यं शिवनारायणात्मकम् । महेश्वरस्यतेजोहि सत्त्वंनारायणःप्रभुः
चकार स ततस्तत्र श्रीयुक्तः शक्तिसम्मितः ।
अङ्गुल्या संस्पृशन् देवो ब्रह्माणमब्रवीद्वचः ॥ ८७ ॥
ब्रह्मा तेपरमंनाम ऋषिर्नारायणानुगः । भवितालोकवीक्षार्थंश्रेष्टः सर्वधनुष्मताम् ॥
नारायणमहावीर्य! शक्तिरेषामदीयका । इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तमग्निपाणिनाग्रहीत्
दक्षहस्ताङ्गुलिनखमध्यस्थंसमचीकरत् । इति संस्कृत्य सततं नरश्चैव महेश्वरम्
ब्रह्मणोदर्शयित्वाऽथ तत्रैवान्तरधीयत । अथाऽब्रवीत्ततोब्रह्मा अग्निश्चयुगक्षये ॥

स्पृशन् दक्षिणवामाभ्यां शान्तयन्निव तं गिरा।
पुत्रौ [illegible] भृग्वङ्गिरसौ भवितारौ न संशयः ॥ १२ ॥
यशश्चिख्यातकर्माणावत्रैवभवतांतव । द्विधासम्भज्यमेनाग्निसृष्टेयंशोभविष्यति
भवन्तौ तिष्ठतस्तत्र पृथिव्यां दानमाश्रितौ ।
तस्मादेव विधातव्यौ निर्मथ्य विधिपूर्वकम् ।
अतोऽश्वत्थे शमीगर्भे संयोगस्तत्र पठ्यते ॥ १५ ॥
भार्गवोऽङ्गिरसश्चैव द्विविधो देवउच्यते ।
तस्मात्सुरहितः श्रेष्ठश्चतुर्थ इति कथ्यते ॥ १६
एषोऽव्यासससमुत्पन्नोनरोऽसौपूर्वजन्मनि । एवंतुब्रह्मणोवक्त्र पञ्चम समपद्यत ॥ १७॥
एष विमुच्यते यो वै तेन सर्वमनुत्तमम् ।
ब्रह्मणो याति सालोक्यं शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥
एतद्योऽग्निसमुद्भव पशुपतेर्माहात्म्यसंसूचकं,
चित्ते साधुमतिः शृणोति सततं यः श्रद्धया भावितः ।
यो व्यासद्विजदेवतात्प्रमुखतः संश्रावयेद्भक्तितः
सोऽत्यर्थं भवभावितः शिवपुरे सम्पूज्यते दैवतैः ॥ १९ ॥
इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
अग्नेरुत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

देवागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

युद्धेनिवारितेतत्र रक्तस्वेदजयोःपुरा । किंकृतंब्रह्मणातत्र प्रायश्चित्तंह्यकर्मणा ॥ १ ॥
जनार्दनेनकिंकर्म शङ्करेणचयन्मुने ! । एतत्सर्वंसमाख्याहि प्रसीदवदताम्वर ! ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्माऽकरोदग्निहोत्रं वनौषधिफलच्छदैः । शस्तैः कुशसमिद्भिश्च यथोक्तंहरिणापुरा
बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणावृषी । तेपतुस्तौतपश्चोग्रं हितार्थंसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥

कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन् वसुधामिमाम् ।
कुशस्थलीं समासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ॥ ५ ॥

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् । नानापक्षिसमाकीर्णं नानामृगसमाकुलम्
द्रुमपुष्पभरामोदवासितं वरसुवायुना । बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तफलपुष्पैस्सुपूजितम् ॥
नानागन्धरसाद्यैश्च पक्वापक्वफलोद्भवैः । फलैस्सुवर्णरूपाढ्यै रासमन्तान्मनोरमैः ॥
जीर्णपत्रतृणादींनिशुष्ककाष्ठफलानिच । बहिःक्षिपतिजातानिमारुतोऽनुग्रहादिव ॥
नानापुष्पसमूहानां गन्धमादायमारुतः । शीतलो वाति तं भूमिदेशंयत्रविवासयन् ॥
हरितस्निग्धनिच्छिद्रद्रुमाणांतत्रकोटरैः । वृक्षैरनेकसङ्ख्यैश्च भूषितंशिखरान्वितैः
अरोगिदर्शनीयैश्च सुवृत्तैःक्वचिदुद्गतैः । कुटुम्बमिव विप्राणां सिद्धिर्विभाति सर्वतः
शोभनैर्वायुसङ्कीर्णैरङ्कुरैश्चावृताद्रुमाः । कुलीनैरिवनिच्छिद्रैः स्वगुणैः प्रावृतानराः

पवनोद्धूतशिखरैः स्पर्शयन्ति परस्परम् ।
आरात्पतन्ति चान्योन्यं पुष्पाः शाखावतंसकाः ॥ १४ ॥
नागवृक्षाःक्वचित्पुष्पैर्भ्रमरानीलकेशरैः ।
नयनैरिव शोभन्ते धवलैः कृष्णतारकैः ॥ १५ ॥

पुष्पसम्पन्नशिखरा कर्णिकारद्रुमाः क्वचित् । यथैवहिविवाहेषु शोभतेसाधुदम्पती
सुपुष्पविभवाटोपे सिन्धुवारस्यपङ्क्तय । भूर्मिमन्त्यइवाभान्ति पूजितावनदेवता

क्वचित्क्वचित्कुन्दलता सुपुष्पाभरणोज्ज्वला ।
दिक्षु दिक्षु च शोभन्ते बालचन्द्राइवोदिता ॥ १८ ॥
वल्लीवदुर्गमार्गेषु कान्ताराकुटिलता लता ।
पुष्पिता पुष्पविटपैर्वीजयन्ति इवोत्थिता ॥ १९ ॥
शालार्जुना क्वचिद्भान्ति वनोद्देशेषु पुष्पिता ।
धौतकौशेयवासोभि प्रावृता पुरुषोत्तमा ॥ २० ॥
अभियुक्ता सुवल्लीभि पुष्पितास्तु द्रुमास्तथा ।
उपगूढा विराजन्ते नारीभिरिव सुप्रिया ॥ २१ ॥

चूताश्चतिलकाश्चवमञ्जरीभि करैरिव । वायुनुन्नाभिरन्योन्यढौकन्तीव हिंसज्जना
परस्परप्रश्नमयुक्तैर्म्निलकाशोकपल्लवै । हस्तैर्हस्तान्स्पृशन्तीव सुहृदश्चित्तसङ्गता
फलपुष्पनतावृक्षा पेशल्यैनैवसज्जना । अन्योन्यमपयन्तीव सुपुष्पाणि फलानिच

मारुताश्लिष्टनिर्मुक्तै पादपा शीतवारिभि ।
आयान्समागताल्लोके प्रीतिं दातुमिव स्थिता ॥ २५ ॥

पुष्पाणामिवभारेण स्वशोभार्थं मजन्तिवै । समप्रभावमासाद्यपुरुषा स्पर्द्धयेवहि ॥
पुष्पाविशोभामरणै शिखरै कन्दलयुतै । नृ यन्तिपक्षिणोमत्तायुक्ताशोभनशेखरै
भृङ्गा पवनविक्षिप्ता मृतवल्ली लताश्रिता । सवल्लीका प्रनृत्यन्ति मानवाइवसप्रिया

पुष्टाभि कुन्दवल्लीभि पादपा [क्वचिदावृता ।
भान्ति तारागणैश्चित्र शारदीव नमस्तलम् ॥ २६ ॥

द्रुमाणामप्यथाग्रेषु पुष्पिता माधवीलता । शिखराइवशोभन्ते रचिताबुद्धिपूर्वकम्

हरिता काञ्चनच्छाया फलिता पुष्पिताद्रुमा ।
सौहार्दं दर्शयन्तीव नरा साधुसमागमे ॥ ३१ ॥

किञ्जल्कबहुलोदरा । किञ्जल्कमत्तभ्रमरा विशदाइवसारिक

शिरीषपुष्पसङ्काशाः शुका मिथुनतः क्वचित् ।
कीर्तयन्ति गिरश्चित्राः पूजिता ब्राह्मणा यथा ॥ ३३ ॥
संयुक्ताःसहचारिण्यामयूराश्चित्रबर्हिणः । वनान्तरेसञ्चरन्ति लोकान्तइवसंस्थिताः
कूजन्ति पक्षिसङ्घाता नानाद्भुतविराविणः ।
कुर्वन्ति रमणीयं हि रमणीयं घनं ... ॥ ३५ ॥
नानामृगसमाकीर्णं नित्यंसमुदिताण्डजम् । तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्द्धनम् ॥
कपालपाणिर्भगवांस्तथारूपंवनोत्तमम् । ददर्शशङ्करोदृष्ट्या सौम्ययानन्दनोपमम्
तावृक्षपङ्क्तयस्सर्वा दृष्ट्वारुद्रंसमागतम् । निवेद्यशम्भवेभक्त्यामुमुचुःपुष्पसम्पदाम्
पुष्पप्रतिग्रहंकृत्वा पादपानां महेश्वरः । वरंवृणीध्वंभद्रंवः पादपानित्युवाचसः ॥
एवमुक्तेभगवता तरवोनिरवग्रहाः । ऊचुः प्राञ्जलयस्सर्वे नमस्कृत्वा महेश्वरम् ॥४०॥
वरंददासिदेवेश प्रपन्नजनवत्सल !। इहैवविपिनेनित्यं भगवन्सन्निहितोभव ॥४१ ॥
एष नः परमः कामोदेवदेवनमोऽस्तुते । त्वं चेद्वससिदेवेशवनेऽस्मिन् विश्वभावन ॥
सर्वात्मनाप्रसन्नास्त्वां याचामोह्युत्तमंवरम् । इत्युक्तःपादपैस्सर्वैश्शरणागतवत्सलः
वरं ददौपादपेभ्यः प्रोच्यमानं मया शृणु ।

महेश्वर उवाच

बाढम्मे मनसा वासो नित्यमत्र वनोत्तमे ॥ ४४ ॥
वरन्ददामिभूयोवो न वृथादर्शनम्मम । नाग्निर्नवायुर्नजलं नसूर्यकिरणातपः ॥ ४५ ॥
नविद्युदशनिश्शीतं रुजंवोजनयिष्यति । कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः ॥
कामसन्दर्शनाः पुंसां तपःसन्ध्याज्वलद्दृशाम् ।
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ॥ ४७ ॥
एवं सवरदः शम्भुरनुजग्राहपादपान् । स्थित्वावर्षसहस्रन्तु कपालं चाक्षिपद्भुवि ॥
क्षितिनिपततातेन चकम्पेचरसातलम् । विवशास्तत्यजुर्वेलां सागराः क्षुभितोर्मयः
शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालान्वितानिच । शिखराणिव्यशीर्यन्तपर्वतानांसहस्रशः
देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणि च । प्रस्फुरन्तिविनिष्पेतुर्विनेशुश्चधरातले ॥

कन्यामयेषामयवर्ग जगत् सहस्त्ररश्मिना ।
ज्योतिर्मेदम्यायवस्तो मनुपुर्नतिभास्करा ॥ ५९ ॥

महदन्नरन्धरार्देन जडाम्भपधिर्ं एनम् । वमूवय्याद्गु नयं त्रैलोक्यं सचराचरम्
सुरासुरनरानर्वैता सर्गादिमितागिव । मयरेनुभवनपुष्प किन्नरदितिपत्रिरे ।
पैयमान्त्रवनयें त्रि नमानस्येन्द्रवंषा । नागलोकं समागतमन्ताज्जमिदयूषिरे ।
किवमन्नुनरश्रकि जिविनोमानदरानन् । त्रैलोक्यं नाशितंदेव संमुनेयासफर्मंव
जातंबन्नवानदानंत्र मिथमपर्यदनागतम् । नम्बारोदिगनाकिन्नुवमृनुत्वम्यता
परानमानृपा कल्पान्ननसगरवार्यिता । उन्मत्तिनीक्लिनमबन्धमगयमिन्द्रवोषनम्
यानृषोऽयपम शस्त्रो न भूनोमाविपिधम । त्रैलोक्यमानृतंयेन हन्तरिद्रिजपूवसा ।
पवमुनेऽर्चयेत्त्रुमता परमेशानुमाविन ॥ ६० ॥

मन्तृतममरा सर्वे रुगुर्ष्यं नव कारणम् । निधनेनाऽस्यविमेदं प्रहृपानैर्यथाविधि
सुर्न रित्रिन्ना मन्नामेन मनुद्देशाम्ववम शिर ।
कपालपाणिभगवान् पिण्डोराथममन्नयान् ॥ ६२ ॥

यदा देपाश्रमान्य मिदानारायणस्नानि । उन्पयानमुनिन्तत्र नदोनामधनुधर ॥
तत्र पुराण्यमस्थ मगधानन्तवनोत्तमम् । पिपेशारमार्गोणपुष्पामादामिनन्दितम्
मनुमाराधनगयान् पतनन्नपयाभ्यवम् । नगनोऽनुमहाधाय तत्रधाममदोऽयम्
सरकपालकरन्पयतन्यन्नमगवनाक्षितौ । नमेवाकऽिपनाभूमि इत्त त्रैलोक्यमाकुलः
तद्दर्शनं पिरूपाक्षं मापधनमयासह । आराध्यमानोभगवान् प्रदास्यतिपरं हिप ।
इन्मुषत्यामगधा ब्रह्मा सहतर्दैवदानवै । अगामनदनोन्द्रशो यत्रास्तेपुरमध्वज ।
मद्दएमनमम्नर्ये कोकिलागणनादितम् ।
पुष्पान्वित घन तद्वै विविधशुभ्रद्रुमप्रसवः ॥ ६६ ॥

सम्प्राप्त सचदेवैस्तद्वननन्दनसन्निभतम् । मुयद्वागृहशोभाढ्य द्रुमशुभेतदा ॥ ७० ॥
दृष्ट्वा तद्वनमुत्तमं तनुभूतां प्रोल्लासक चेतसा,
नानासत्फलपुष्पपादपवनैरासेवितसर्वत ।

ब्रह्मन्बर्हिणहंससारसरवैर्मण्डूकमत्स्यान्वितं,

दृश्यामो हरमत्र चेतसि सुराः प्रापुर्मुदं ते तदा ॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

देवागमोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

कपालमोक्षणवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

प्रविश्याथवनंदेवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् । इहदेवोऽत्रदेवोऽत्र विविशुस्तेदिदृक्षवः

अद्भुतस्यवनस्यान्तं ननेदृशिरेसुराः । विचिन्वन्तोमहादेवं देवैर्बहुविलोकितम्

तानुवाचसुमद्देवो नदृश्यथतपोविना । विचिन्वन्तोविरूपाक्षं नैवापश्यतशङ्करम् ॥

सुयुक्तहृदयेस्मृत्वा ब्रह्मादेवांस्ततोब्रवीत् । त्रिविधोदर्शनोपायस्तस्यदेवस्यसर्वदा

श्रद्धाज्ञानेनतपसा योगेनैवनिगद्यते । सकलंनिष्कलंवापि देवंपश्यन्तियोगिनः ॥

तपस्विनस्तुसकलं ज्ञानिनोनिष्कलंपरम् । समुत्पन्नेऽपिविज्ञानेमन्दश्रद्धोनपश्यति

भक्त्यापरमयोपेतः परंपश्यन्तियोगिनः । दृश्योनिर्विकारोऽसौ प्रधानपुरुषेश्वरः

नादीक्षितैस्ततोदेवाः शैवदीक्षांप्रपद्यथ । कर्मणामनसावाचा नित्ययुक्तामहेश्वरे ॥

तपश्चरथमद्देवो रुद्राराधनतत्पराः । शिवदीक्षांप्रपन्नानां भक्तानांसतपस्विनाम् ॥

सर्वकालंविशेषेण दातव्यंदर्शनम्मया । ब्रह्मणोवचनं श्रुत्वाहितमेवतदाचते ॥ १० ॥

शिवेसाविष्टमतयो ब्रह्माणमिदमब्रुवन् । मार्गेणविधिनाचैव शिवदीक्षांसुरोत्तम

प्रयच्छब्रह्मन्सर्वेषां तत्र नः कारणंभवान् । श्रुत्वाथवचनंब्रह्मा प्रत्युवाचविचारितम्

सन्दिदीक्षयिषुः क्षिप्रममराञ्छिवदीक्षया । शिवयज्ञार्थसम्भारानानयध्वमलंसुराः

वेदीप्रकल्प्यतामत्र यष्टव्योऽद्यतनुशिवः । पद्मयोनिवचः श्रुत्वाचक्रुस्सर्वमतस्सुराः

विनीतवेशा प्रणता अनेनोकसमन्वयु । शिवप्रसादसम्प्राप्त्यै पुष्कलज्ञानमीरितम्
यत्र चकारविधिना दीक्षाचन्द्रार्धधारिण । पद्मयोनिपुरस्कृत्य सदादीक्षाप्रयोगतः

अनुजग्राह देवास्तान् परेच्छाप्रेरित क्वचित् ।
ततो व्रतानां प्रवरं व्रतं दिव्यं महाप्रभु ॥ १७ ॥

तेभ्योऽददौ देवसाभ्यो सततप्यविरोधवित् । पठ्यते शिवशाखाया महापाशुपतव्रतम्
शैवधो दितयच्च आगमाचारवेदिनम् । शिवाराधनमुख्याना मुनीनातीव्रतेजसाम्

सदानुग्राहक शम्भु सवदेवै प्रकल्पितम् ।
तच्च प्रार्थिम बुद्ध्या व्रतं रौद्रशिवसमम् ॥ २० ॥
मनेभ्यो विस्मय त्यक्त्वा मायच्छत्स्कन्दकाण्डज ।
कामिक भस्मनामान सर्वदा कीर्तित शुभम् ॥ २१ ॥

पापघ्न तु प्रशमन पुष्टिमावलवर्द्धनम् । सिद्धिदं कीर्तिदं स्वान्तकलिकल्मषमोक्षकम्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मस्नानं समाहिता ।
कुर्वन्तो मानवाद्दान्ता शान्ताश्च सुजितेन्द्रिया ॥ २३ ॥

सर्वेकमण्डलुधराःसर्वेरुद्राक्षधारिण । अनिष्टदर्शनालापसङ्गत्यागविवर्जिता ॥
एवव्रतधरान्सर्वे यनेतस्मिन्महेश्वरम् । आराधयंस्तमीशान व्रतेनैवउमाधवम् ॥
भक्त्यापरमयायुक्ता विधिनापरमेणच । कालेनमहताध्यानाद्दृष्ट्वेव ज्ञात्वामनोगतम्

यद्ध्यानाग्निनिर्दग्धकल्मषाश्च श्रियान्विता ।
तदा गत्वा सुराञ्छम्भु प्रत्यक्षो भगवानभूत् ॥ २७ ॥

सनत्कुमार उवाच

प्रसन्नःसवरान्दिवान्सर्वे शर्वानुभाविता । समर्थीकरंस्तपस्तत्र ब्रह्माऽर्धीशानमाविश
गतपमहत्सदिव्यैर्देवेश्वरेश्वर । जातानुकम्पोदेवानांदीप्तोदरानमेयिवान् ॥ २९ ॥

गणैर्नानाविधैस्सार्द्धं नानाभूषणभूषितै ।
स्ववलैर्वदनैर्घोरैर्घोरविघातिभिः ॥ ३० ॥
कामरूपैःकामैश्चसर्वे कामसमन्वितै ।

करीन्द्रकरटाटोपपाटने सिंहदेहिभिः ॥ ३१ ॥
अणिमादिगुणैर्दिव्यैर्योगैश्वर्यादिनामभिः । व्यालोलकेशरसनादंष्ट्राकटकटोग्रकैः ॥
व्याघ्रव्यालानलैरौद्रैः काककङ्कमुखैस्तथा । अरूपैः समरूपैश्चसुरूपैर्बहुरूपकैः ॥
एकद्वित्रिशिरोभिश्च बहुशीर्षैरशीर्षकैः । एकद्वित्रिशिखैश्चैव नानारूपविराजितैः ॥
बहुनेत्रैरनेत्रैश्च एकद्वित्रिविलोचनैः । एककर्णैर्द्विकर्णैश्च बहुकर्णैरकर्णकैः ॥ ३५ ॥
एकद्वित्रिसुनासैश्च बहुनासैरनासकैः । एकजङ्घैर्द्विजङ्घैश्च बहुजङ्घैरजङ्घकैः ॥ ३६ ॥
एकपादद्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः । गौरश्यामैः श्यामगौरैः सितैःकर्बुरकैस्तथा ॥
भुजङ्गहारवलयैर्नागयज्ञोपवीतकैः । शूलासिपट्टिशधरैर्भुशुण्डिपरिघायुधैः ॥ ३८ ॥

चक्रक्रकचकोदण्डकालदण्डास्त्रपाणिभिः ।
गदामुद्गरपाषाणमुसलायुधहस्तकैः ॥ ३९ ॥

वज्रशक्त्यशनिप्रासकुन्तशस्त्रविधारिभिः । भम्भाभेरीर्वादयद्भिर्वीणापणवगोमुखान्

मृदङ्गमर्दलान्ढक्कामड्डुडिण्डिमझर्झरान् ।
हुड्डुकान्पणवाद्यांश्च वाद्यान्वादद्भिरर्चकैः ॥ ४१ ॥

एवं नानाविधैरौद्रैर्भीमैर्भीमपराक्रमैः । गणेश्वरैः सुदुर्दर्षैर्वृतः सूर्यो ग्रहैरिव ॥४२॥

आविर्बभूव भगवान् सगणैःपरिवारितः ।
सम्पश्यतां तदा व्यास! ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ ४३ ॥

अथब्रह्मादयोदेवा दृष्ट्वाग्रेगणनायकम् । तेजसाध्यासितास्तस्य बभूवुर्भ्रान्ततेजसः ॥
ततोऽवलम्ब्यतेधैर्यं दृष्ट्वादेवंयथाविधि । षडङ्गवेदयोगेन हृष्टचित्तवपुर्धराः ॥ ४५ ॥
शिरोगतैरञ्जलिभिः पादेभ्यश्चमहींगतैः । तुष्टुवुः सृष्टिसंहारस्थितिकर्तारमीश्वरम्

देवा ऊचुः

नमःशिवायशान्ताय सगणायसनन्दिने । वृषासनायसौम्याय शक्तिशूलधरायच ॥
नमोदिक्चर्मवस्त्राय सुचेतस्तीव्रतेजसे । ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मणायोजिताय च ॥ ४८
नमोऽन्धकविनाशाय सुरेशाय नमोनमः । रुद्रायपञ्चवक्त्राय सर्वरोगापहारिणे ॥४९
गिरिशायसुरेशाय ईशानायनमोनमः । भीमायोग्रस्वरूपाय विजयाय नमोनमः ॥

[illegible] यतानापनयेनमः । मुण्डाय चण्डदण्डाय वाक्षरसाह्वधारिणे ।
[illegible] विश्वरूपायवैनमः । शान्तायघनमोक्षाय त्रिनेत्राय नमोनमः ।
[illegible] त्रिपुरसंहारिणेनमः । भक्तानुकम्पिनेऽत्यर्थं दक्षज्ञानपरायण । ३
[illegible] पद्मास्याय शुभास्याय चन्द्रास्यायनमोनमः
[illegible] नमोनमः । त्रिनेत्रत्राणमस्माकं त्रिपुरघ्न । विधीयताम्
[illegible] प्रपन्नानां महेश्वर ।

देवानामनुरक्षार्थं श्रूयतामत्र कारणम्। असुरेन्द्रोहयोनाम वलवान्योगमायिकः ॥
अवस्थितोऽन्ववष्टभ्यरसातलतलाश्रयम्। तस्यदैत्यस्यवलिनो दैत्याः परपुरञ्जयाः

युष्माञ्ज्ञात्वा तपःस्थान्वै आययुर्बहवो हि ते।
सेन्द्रान्निहन्तुमिच्छन्तो मायाप्रच्छन्नविग्रहाः ॥ ६७ ॥
पुरीं कनकशृङ्गाढ्यामेकामधिकुशस्थलीम्।
समुद्ययुस्सुरान्हन्तुमुद्यता उद्यतायुधाः ॥ ६८ ॥

शब्देनचातिघोरेण भूमिनिष्कम्पनेनच। तेषांकपालपातेन देहात्प्राणाविनिर्ययुः ॥

लोकस्थितिविनाशार्थं तेषामासीत्समुद्यमः।
राज्यैश्वर्येणदर्पिष्टास्तेन ते निहता मया ॥ ७० ॥

देवा ऊचुः

विश्वस्तानांत्वयाचैव नोवाचानुग्रहःकृतः। देवाऽनुग्रहकर्त्तात्वं गुणस्मृतिनिषेवितः
दिव्यदृष्टिभिरत्यर्थं यशोऽर्थंभीमपूजितः। इत्युक्त्वाप्रणतान्देवानुत्थायोचेपुनर्भवः

शिव उवाच

परिचर्याभिसंयुक्तं नित्यमुग्रनिषेविणम्। ध्यानसाधननिष्पन्नं
मनोवाक्कायभावेन दुष्करंदुश्चरन्तपः। अनेनतपसादेवा

समन्तादभिवर्धन्तां युष्मत्तेजस्तथाधिकम्।

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्ता देवदेवेन देवा ब्रह्मपुरोगमाः ॥ ७१ ॥
ऊचुरुन्नम्यवक्त्राणि स्थिताजानुभिरीश्वरम्। महतातपसातुष्टं

देवा ऊचुः

प्राणदस्त्वं कारणस्त्वं तपसादेवदृश्यसे। तदस्मा
रक्षां कुरुष्व देवेश! भक्तानामभयङ्कर !।

ईश्वर उवाच

यत्नेन विधिना दत्तं सुव्यक्तं दर्शनं हि

व्रियतामभ्भो सुरश्रेष्ठा दास्यामोवरान्बहून् । एवमुक्ते भगवता ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥
देवानामग्रत स्थित्वा भ्रतशब्दोद्वघमवम् । प्रासोऽयचायमगवन् सुपर्याप्तोमहावर
दीयतामस्त्सर्वमव्यं तेषा स्थानमथाऽक्षयम् ।

शिव उवाच

लोकेऽस्मिन्समये भक्ता मया विनिहताश्च ये ॥ ८१ ॥
नैवतेदुर्गतियान्ति लभन्ते सुगतिपराम् । सार्द्धतत्र जटाजूटे शिरोभिश्शूलपाणय
भान्तिमहामपार्श्वस्थाश्मैतेद्रोहिणाङ्गणा । एषाविनिग्रहाथायपुष्मत्तस्योधनायच
सविकारमपाक्षिप्तकपाल रेरणीतले । कृतोमेऽनुग्रहस्तेषा मकाना भक्तिमिच्छताम्
वनेऽस्मिन्विस्थयासो मे सुरैस्त्र्यर्थितेनच । महाकालवनेदेवा भागतस्य ममाऽनधा
तपस्यतश्च भवता महाकालवनन्तत । नामद्वययुतगुह्य लोके ख्यात भविष्यति ॥
गुह्यवनश्मशानञ्चक्षेत्राणा प्रवर महत् । कपालव्रतचर्या च मयाद्येषा प्रकीर्तिता ॥
कपालपात्रेभुञ्जान कपालव्रतभूषण । कपालपाणिस्सन्तुष्टो भिक्षाव्रतसमन्वित
श्मशाननिलयो रौद्रो व्रतोन्मत्तविमूढधा ।
सन्वित सर्वभूतेषु प्रियाप्रियसमस्सदा ॥ ८६ ॥
भस्मभूषितसर्वाङ्गोज्ञानी धैर्यविशारद । जितेन्द्रियस्सर्वसङ्गीमूढभस्मोदकसङ्ग्रही
नित्ययुक्तसदाजापी जपार्चितवरासन । पुण्यतीर्थाश्रमोपेत शनैर्दैवे समाहित ।
लोकातीत परश्चम महापाशुपतं व्रतम् । कपालव्रतमास्थाय पुराचीर्णं मयाव्ययम्
कपालं परम गुह्य पवित्र पापनाशनम् । कपालव्रतमेतद्धि दुर्धर परमाद्भुतम् ॥
अत्यन्तमुत्कट रौद्रमघोरं रोमहर्षणम् । महाव्रतद्विजन्मोहात्पापेनैवस्थितो नर ॥
न मुच्यते स पापेन जन्मकोटि शतैरपि ।
महापाशुपतं तस्माच्च हन्याच्च न दूषयेत् ॥ ९५ ॥
एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिमर्वति घातिता ।
एक महाव्रतं यस्तु भोजयेच्छ्रद्धयान्वित
तेनभुक्ताभवेत्कोटिर्विप्राणा वेददर्शिनाम् ।

विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् । कपालमोजनं श्रेष्ठं मार्गोऽयं प्रथमस्स्वयः
वन्दितं लोकवेदेषु पूजितं देवदानवैः । धारयिष्यन्ति ये विप्राः कपालं भूतमोहनम् ॥
ममतुल्यास्तु ते ब्रह्मन् विचरन्ति महीतले । महाव्रतरता धीराः कपालकृतभूषणाः ॥
महापाशुपता लोके रुद्रास्संसारतारकाः । धर्माधर्मविमुक्ताश्च कृत्याकृत्यविवर्जिताः

दीक्षयाऽनेन योगेन प्राणिनस्तारयन्ति ते ।
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् षष्ठकोटिशतानि च ॥ १०२ ॥
विशुद्धस्य हि ज्ञानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
यथाऽहं सर्वदेवानां सम्पूज्योऽस्मि पितामह ! ॥ १०३ ॥

तथैव सर्वयोगेभ्यः सम्पूज्योऽयं महाव्रतः । संसारबन्धमोक्षार्थं शिवगुह्यमिदं व्रतम्
यदेतत्सर्वधर्मेण अपुनर्भवकारणम् । कपालव्रतमादाय यस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ १०५
रौरवं स प्रयात्याशु प्रणीतो यमकिङ्करैः । आलापयन्ति भावेन नतु कर्म करोति यः ॥ १०६
सरागचित्तश्शृङ्गारी नवधर्मप्रियङ्करः । एकत्रभोजी मिथ्याशी नार्पितवचः प्रियः ॥
कुग्रामे नगरे वासी कृषिवाणिज्यसेवकः । इत्यादि दुष्टदोषस्य तस्य सम्भाषणादपि ॥
नरो नरकगामी स्याद्यतो महाव्रतदूषकः । दृष्ट्वा तु दुष्टमथवा महाव्रतधरो नरः ॥ १०९ ॥

न स्पृशेदङ्गमङ्गेन स्पृष्ट्वा स्नायात्तु चाम्बुभिः ।
एवं वस्सर्वमाख्यातं कपालस्य च मोक्षणम् ॥ ११० ॥
यथा मयात्र निक्षिप्तं चाऽसुरा निहताः स्वयम् ।

सनत्कुमार उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ १११ ॥

क्षेत्रं निर्वासयामास यथावत्कथयामि ते । आद्यमेतच्छ्मशानञ्च पठ्यते मुनिसत्तमैः ॥
महाकालवनं व्यास ! यत्र सन्निहितो हरः । अनुग्रहस्य भुवनं भूमिभागेन शम्भुना ॥
अनुग्रहार्थं भूतानां क्षेत्रं तन्मृत्युधर्मिणाम् । सुवर्णवज्ररचिता वेदिकाच मनोहरा ॥
विचित्रकुसुमारत्नैः कारिता सर्वशोभना । स्वर्णवज्राङ्किततरा श्रेष्ठा द्वारनिशाद्भुता ॥
त्रिशच्चत्वारिंसस्पर्णाः कलशाः शोभनाः स्थिताः ।

द्वाराणि तत्र चत्वारि प्रयान्ति तपन्ति च ॥ ११६ ॥

कुम्भाः शोभन्तितत्रान्या अद्रिनामास्करादय । रमन्तेतत्रभगवान् वनानामुत्तमेवने ॥
त्रेतायांधर्मनिरतास्तापसाब्रह्मचारिणः । सनन्दीदेवगणपः संयुत कालदण्डिना ॥
वनस्पतयुगेसर्व प्रत्यक्ष दृश्यते वने । द्वापरेधर्मशीलाश्च श्रुतिविज्ञानशालिनः ॥११६
कलौतुगूढविज्ञानशालिनः शङ्करं हरम् । तपोऽधिकाः प्रपश्यन्तिदेवदेवं महेश्वरम् ॥
महाकालवनेनित्यं शूलखट्वाङ्गधारिणम् । एतत्तेकथमाख्यानं लोकानुग्रहकारकम् ॥

संहितानुक्रमेणात्र मन्त्रैश्च विधिपूर्वकम् ।
समर्चयन्ति ये विप्रा भक्त्या शम्भुमथापरम् ॥ १२२ ॥
वसन्तीह समीपस्थे महाकालानुभावतः ॥ १२३ ॥

पठतियइहलोके तस्य सन्ध्यानमेतत् प्रथितगुणगणौघैरर्चितं दीर्घहस्तु ।
शुभमतिरभिषिक्तः सोऽमरैरर्च्यमानो व्रजति हरपुरं वै य. शृणोत्येकचित्त. ॥

इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे कपालमोक्षणनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

महाकालवननिवासिविवर्णनम्

भगवच्छ्रेनविधिना महाकालवनेऽमरैः । रुद्रलोकमभीप्सद्भिर्वस्तव्यं क्षेत्रवासिभिः ॥
किंमनुष्यैस्तत्स्त्रीभिः सिद्धवद्भाश्रमान्वितैः । वसद्भि-किमनुष्ठेयं तत्सर्वमब्रवीहि नः
नरै.स्त्रीभिश्चवस्तव्यं वर्णाश्रमवासिभिः । स्वधर्माचारनिरतैर्दम्भमोहविवर्जितै
किंकुर्वाणैर्नरैः कर्म रुद्रभक्ति ब्रवीहि नः ।

सनत्कुमार उवाच

त्रिविधाकथिताह्यत्र मनोवाक्कायसम्भवा ॥ ४ ॥

लौकिकी वैदिकी चान्या भवेदाध्यात्मिकी तथा ।
ध्यानधारणया बुद्ध्या रुद्राणां स्मरणं हि यत् ॥ ५ ॥
रुद्रभक्तिकरीचैषा मानसीभक्तिरुच्यते । व्रतोपवासनियमैर्जितेन्द्रियनिरोधिनाम् ॥
रुद्रस्य कायिकीभक्तिर्ज्ञानध्यानस्यधर्मिणाम् ।
गोघृतक्षीरदधिभिर्गन्धरक्तकुशोदकैः ॥ ७ ॥
गन्धमाल्यैश्चविविधैर्धातुभिश्चोपपादिता । घृतगुग्गुलुधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः
भूषणैर्हेमरत्नानां चित्राभिःस्रग्भिरेव च । वासःप्रतिसरस्तोत्रैः पताकाव्यजनादिभि
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वप्रत्युपहारकैः । भक्ष्यभोज्यानुपानैश्च यापूजाचाक्षतैर्नरै ॥
महेश्वरं पुरस्कृत्य भक्तिः सालौकिकी मता ।
वेदमन्त्रैर्हविर्योगैर्या क्रिया वैदिकी मता ॥ ११ ॥
दर्शेचपौर्णमास्यांवा कर्तव्यंचाग्निहोत्रकम् । प्राशनंदक्षिणादानं पुरोडाशश्चरुक्रिया
इष्टिवृत्तिः सोमपानं याज्ञिकंसर्व कर्मच । ऋग्यजुस्सामजाप्यानिसंहिताध्ययनानिच
क्रियन्ते रुद्रमुद्दिश्य सा भक्तिर्वैदिकीस्मृता ।
अग्निभूम्यनिलाकाशनिशाकरदिवाकरान् ॥ १४ ॥
समुद्दिश्यकृतंकर्मतत्सर्वंदैवतंभवेत् । आध्यात्मिकीतुद्विविधारुद्रभक्तिःस्थितामुने
साङ्ख्या च यौगिकी चान्या विभागन्तत्र मे शृणु ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रधानादीनिसङ्ख्यया ॥ १६ ॥
अचेतनानियोज्यानि पुरुषः पञ्चविंशकः । चेतनः पुरुषोभोक्ता न कार्यंतस्यकर्मणा
रुद्रः षड्विंशकः कर्तासर्वज्ञश्चेतनः प्रभुः । अजन्मनित्यमव्यक्तमधिष्ठाताप्रयोजकः ॥
पुरुषोऽव्यक्तनित्यः स्यात्कारणञ्चमहेश्वरः । तत्त्वसर्गोभवेत्पूर्वं भूतसर्गश्चतत्त्वतः ॥
संख्ययापरिसर्गाय प्रधानंत्रिगुणात्मकम् । साधर्म्यमात्म्यमैश्वरं प्रधानंचैविधर्मिच
कारणंतच्चरुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते । सर्वत्रकर्तृतारुद्रेपुरुषेचाप्यकर्तृता ॥ २१ ॥
अचैतन्यं प्रधाने च तच्च तत्त्वमिदं स्मृतम् ।
तत्वान्तरेण मुच्येते कार्यंकारणमेवच ॥ २२ ॥

प्रयोजके च वै आत्य ज्ञात्वानत्त्वस्य सङ्ख्यया ।
सङ्ख्याऽस्तीत्युच्यतप्राज्ञै रुद्रतत्त्वार्थचिन्तकै ॥ २३ ॥
इति तत्त्वतस्वभाव तत्त्वसङ्ख्या च तत्त्वत ।
रुद्रतत्त्वाधिकश्चापि ज्ञानतत्त्व विदुर्बुधा ॥ २४ ॥
साङ्ख्ये तथो भक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकी मता ।
यौगिकीमपिमे भक्त्या शृणु भक्ति महासुरा ॥ २५ ॥
प्राणायामपरोनित्यध्यायेतनियतेन्द्रिय । धारणा हृदयेधृत्वा ध्यायते यो महेश्वरम्
हृत्कमलकर्णिकासीन पञ्चवक्त्रत्रिलोचनम् । शशाङ्कद्योतितजट व्यालामृतकटीतटम्
श्वेत दशभुज भद्र वरदाभयहस्तकम् । योगचामानसीध्यास रुद्रभक्ति परास्मृता ॥
यपघभक्तिमान्रुद्रेरुद्रभक्त सउच्यते । विधिम्तुशृणुमेव्यासय स्मृत क्षेत्रवासिनाम्
स्वयंरुद्रेणविहितो ब्रह्मादाना समागमे । कथितो विस्तरात्पूर्वं पूर्वंपातत्रसन्निधौ
निर्ममा निरहङ्कारा निस्सङ्गानिष्परिग्रहा ।
बन्धुवर्गे च नि स्नेहा समलोष्टाश्मकाञ्चना ॥ ३१ ॥
भूतानाकमभिर्नित्य त्रिविधैरभयप्रदा । साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्चधर्मज्ञाश्छिन्नसंशया
यजन्तेविविधैयज्ञैर्येविप्रा क्षेत्रवासिन । महाकालवनेभेषा सुतानायत्फल शृणु ॥
प्रजन्त्येवसुदुष्प्राप ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् । सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥
पुनरावर्तन हित्वा विधि माहेश्वर स्थिता । पुनरावृत्तिरन्येषा प्रपञ्चाश्रमवासिनाम्
गाहस्थ्यविधिमास्थाय षट्कर्मनिरतास्सदा ।
वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिता ॥ ३६ ॥
अधिकफलमाप्नोति सचद्रु खविवर्जित । सचल्लोकेपुधान्यत्र मतिस्तस्यनहन्यते ।
दिव्येनैश्वर्ययोगेन सुरूढ सुपरिग्रह । बहुसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा ॥ ३८ ॥
वृत स्त्रीणा सहस्रैश्च स्वच्छन्दगमनालय ।
विचरत्यविचारेण सर्वलोकान्दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥
स्पृहणीयतम पुं सा सर्ववर्णोत्तमो धनी । स्वर्गाच्च्युत प्रजायेतकुलेमहतिरूपवान्

धर्मज्ञोरुद्रभकश्च सर्वविद्यार्थपारगः। तथैव ब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेन च ॥ ४१ ॥
वेदाध्ययनसंयुक्तो भिक्षावृत्तिर्जितेन्द्रियः। नित्यंसत्यव्रतेयुक्तः स्वधर्मेचप्रमोदवान्
मृतः कामसमृद्धेन सर्वभोगावलम्बिना । सूर्येणेवद्वितीयेन विमानेनविराजितः ॥
गुह्यकानामरुद्रस्य गणाः परमसम्मताः। अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः ॥ ४४ ॥
तेषांचसमतांयाति तुल्यैश्वर्यसमन्वितः । देवदानवमर्त्येषु सचपूज्यतमोभवेत् ॥
वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानिच । एवमैश्वर्यसंयुक्तोरुद्रलोकेमहीयते ॥ ४६ ॥
उषित्वाऽसौविभूत्यावै यदा वै च्यवतेनरः। रुद्रलोकाच्च्युतोभूमौवसतेनात्रसंशयः
महाकालवनेक्षेत्रे ब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः । महेश्वरपरोनित्यंवसेद्वाम्रियतेऽथवा ॥ ४८
मृतोऽसौयातिदिव्ये वै विमानेसूर्यवर्चसि । पूर्णचन्द्रप्रकाशेन शशिवत्प्रियदर्शनः
रुद्रलोकं समासाद्य गुह्यकैस्सहमोदते। ऐश्वर्यंचमहद्भुङ्क्ते सर्वस्य जगतः प्रभुः॥

भुक्त्वा युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।
प्रच्युतस्तु पुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेण तु ॥ ५१ ॥

नित्यंप्रमुदितस्तत्र भुक्त्वालोकमनामयम्। द्विजानामुत्तमेचैव कुलेमहतिजायते ॥
मानुषेषुचसर्वेषु वसेद्भूत्वासुरूपवान् । स्पृहणीयवपुः स्त्रीणां महाभोगपतिर्भवेत्
वानप्रस्थसमाचारो वनौषधिनिषेवकः । शीर्णपत्रसमाहारः फलपुष्पाम्बुभोजनः ॥
कणाशेनाश्मकुट्टेन दन्तोलूखलकेनच । येनकेनाऽप्युपायेन जीर्णवल्कलवस्त्रतः
जटीत्रिषवणस्नायी मुक्तकेशश्चदण्डवान्। जलशायीपञ्चतपा वर्षास्वभ्रशयीतथा ॥
कीटकण्टकपाषाणभूम्यान्तुशयनं तथा । स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः ॥
अरण्यौषधिभोक्ताच सर्वभूताभयप्रदः। नित्यं धर्मपरो मौनी जितक्रोधोजितेन्द्रियः
रुद्रभक्तः क्षेत्रवासी महाकालवनेमुनिः। तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तम्भशोभिना॥
रुद्रभक्तोविमानेन यातिकामप्रचारिणा । विराजमानोनभसि द्वितीयइवचन्द्रमाः॥
गीतवादित्रशब्देन संवृतोऽप्सरसांगणैः। वर्षकोटिशतंसाग्रं रुद्रलोकेमहीयते ॥६१

रुद्रलोकाच्च्युतश्चापि विष्णुलोकेमहीयते।
विष्णुलोकात्परिभ्रष्टो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ६२ ॥

तस्मादपि च्युतः स्थानाद्द्वीपेषु स हि जायते ।
स्वर्गेषु च तथाऽन्येषु भोगान् भुङ्क्ते यथेच्छया ॥ ६३ ॥
भुक्त्वैश्वर्यं नरस्तेषु मर्त्यो मर्त्येषु जायते । राजा वा राजतुल्यो वा जायते धनवान्सुखी
सुरूपः सुभगः कान्तः कीर्तिमान् रुद्रभावितः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राद्याः क्षेत्रवासिनः ॥ ६५ ॥
स्वधर्मनिरता व्यास स्ववृत्त्याचारजीविनः । सर्वारम्भा रुद्रभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥
महाकालवनक्षेत्रे येवसन्तिमुमुक्षवः । मृतास्तेरुद्रभवनं विमानैर्यान्तिगाभनैः ॥ ६७
सर्वरोगणसंयुक्तैः कामगैः कामरूपिभिः । भवन्त्सम्विदग्नौ शरीरं विजुहोति यः
रुद्राध्याया महासत्त्वः स रुद्रभवनेवसेत् । रुद्रलोकात्क्षये तेषां पिशाचो गुह्यकैः सह
सर्वलोकोत्तमेरम्ये भवतीप्स्तामिसाधकः । येत्वजन्तिमहाकाले प्राणाननशनेनराः ॥
तेषामप्यक्षयो व्यास रुद्रलोको महात्मनाम् ।
सारूप्यास्तिष्ठन्ति ते रुद्र सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ७१ ॥
सर्वामरयुतन्देवं नन्द्यादिगणैर्युतम् । अनाशकमृता शूद्रा महाकालवने नराः ॥ ७२
सिद्धयुक्तैस्तु यान्ति विमानैरर्कसन्निभैः । नानावर्णसुवर्णैश्च पुष्पगन्धादिवासितैः
अनौपम्यगुणैरम्यैरप्सरोगीतवादकैः । रुद्रलोके नरामार्य सर्वेऽप्यनशनेमृताः ॥ ७४
तत्रोषित्वा चिरं कालं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
धनी विप्रकुले भोगी जायते मर्त्यमागतः ॥ ७५ ॥
करार्द्धसाधयेद्यस्तु महाकालवनेनरः । सर्वरोगविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥
रुद्रलोकेवसेतावद्यावत्कल्पक्षयोभवेत् । तत्रभुक्त्वा महाभोगानिह जातो महापतिः ॥
पृथिव्यास्सकलायाश्च रूपवान्सुभगो नरः ॥ ७८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे ऽवन्तीखण्डे
महाकालवननिवासविधिवर्णननामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

कलहनाशनादितीर्थवर्णनम्

व्यास उवाच

आचारः प्रथमोधर्मस्सर्वेधर्मपरायणः । स्वधर्मेनिरतश्चैवजितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥
रुद्रलोकेव्रजेदेव नात्रचिन्तामतेर्मम । असंशयञ्चगच्छन्ति लोकानन्याञ्छशिप्रभैः ॥
विनापिक्षेत्रवासेन तथैवनियमेनच । स्त्रियोम्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः
मूकाजडान्धबधिरास्तपोनियमवर्जिताः । एतेषांकागतिर्विप्र! महाकालवनेमृताः ॥

सनत्कुमार उवाच

स्त्रियोम्लेच्छाश्च शूद्राश्चपशवःपक्षिणोमृगाः । कालेनैवमृताव्यासरुद्रलोकंव्रजन्तिते
शरीरैर्दिव्यरूपैश्च सर्वभोगसमन्विताः ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

अस्मिन् महाकालवने शिवो वसति सर्वदा ।
एकस्मिन्दिवसे देवो लीलां कर्तुं शिवाम्प्रति ॥ ७ ॥

ऊचेकालिसमागच्छेत्यादीनिवचनानिसः । तयासहवसन्व्यास श्मशानेप्रेतसङ्कुले
इत्थमुक्तातुशर्वेण कालीतिपार्वतीयदा । तदासाकुपितादेवीकटूचेशङ्करम्प्रति ॥ ६ ॥
एवन्तुकलहोजातः शिवगौर्योर्हियत्रतु । देवस्तत्रसमुद्भूतो नाम्नाकलकलेश्वरः ॥
कृतमग्रेतदाकुण्डं नाम्नाकलहनाशनम् । स्नाने तत्रकृतेव्यास! नस्यात्कलहिनीप्रिया

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥ १२ ॥

तत्रयच्छति यो दानं त्रुटिमात्रञ्चचन्दनम् । आत्मनातारितास्तेन दशपूर्वेदशापरे ॥
भूमिदानंचयस्तत्र प्रदास्यति नरोमुने !। अपिगोचर्ममात्रेण सर्वभूम्यधिपोभवेत् ॥
ग्रामेकांरक्तकामेवभूमेरप्येकमङ्गुलम् । यः प्रदास्यतिभक्त्याहिसवैराजाभविष्यति

धेनुमश्वांस्तिलान् वस्त्रं भाजनं ताम्रदोहनम् ।
उपानद्वयच्छत्रञ्च तथा चैवेष्टपादुके ॥ १६ ॥
ये प्रदास्यन्ति विप्रेभ्यस्तेषां लोकाः सदाक्षयाः ।
तस्य दक्षिणपार्श्वे च पृष्ठमाता च देवता ॥ १७ ॥
साधैवसर्वलोकानां देवीदुरितहारिणी । तत्रतीर्थंमुनिश्रेष्ठ मणिकर्णिकमुत्तमम्
तस्मिन्स्नात्वातु यः पश्येत्पृष्ठमातेतिसञ्ज्ञिताम् ।
स मुक्तस्सर्वपापेभ्यः सिद्धिमाप्नोति वाञ्छिताम् ॥ १९ ॥
तस्यास्तुदर्शनं कृत्वा मार्गगमनमाचरेत् । नभयतस्यचोरेभ्यो रक्षोभूतभयंतथा
स्वदेशेपरदेशेवा पर्वतेष्वटवीषुच । नतमुद्भेभयतस्य तथाचैदुष्टमायनाम् ॥ २१
महापाडादुसर्वासु तथाराजभयादिषु । यस्तु वायदिवामर्त्य महिर्वाधापिघातयेत्
देवीमुद्दिश्ययोविप्र सोऽभीष्टफलमश्नुते।आश्विनस्यसिताष्टम्यां पूजनंचार्द्धरात्रि
च स्नातिपुरतोदेव्याः ससिद्धिंलभतेपराम् । सूतपुत्रायुयानारीकुण्डेस्नात्वासमर्थे
स्नाति वै यदि कुम्भेन अग्रे देव्याः विधानतः ।
स्नात्वा नान्यमुखं पश्येत् कुम्भस्नानं विना मुने ! ॥ २५ ॥
तस्यास्सञ्जायतेपुत्रो यथादेव षडाननः । पृष्ठमातुः पुरःपुण्यं तीर्थमप्सरसां शुभा
रूपसौभाग्यसम्पन्नस्तत्र स्नातो भवेन्नरः ।
उर्वश्यावै पुरा स्नातं तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ २७ ॥
भर्त्ता पुरूरवा लब्धो लोके योऽसौ महीपतिः ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
८ तीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितीर्थमहिमवर्णननामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अप्सरःकुण्डमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

कथमप्सरसांतीर्थं तत्रजातंमहामुने !। कारणे न यथा येन यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम्॥
तथातन्मेसविस्तारं सरहस्यंप्रकीर्तय। कथंपुरूरवाश्चासौ भार्य्यातेनवराप्सराः॥
उर्वशीनामकासातु केनजातावराङ्गना। सर्वमेतद्यथावृत्तं ब्रूहि कौतूहलंहिमे॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

नरनारायणौपूर्वं यत्रवैतेपतुस्तपः। बदरिकाश्रमस्थौतौ तेनेन्द्रोभयमागतः॥ ४॥

सर्वाश्चाप्सरसोह्वया रूपयौवनदर्पिताः।
आदिष्टायामघवता विघ्नार्थं च समागताः॥ ५॥

तौदृष्ट्वाप्सरसस्तत्र रमन्त्योमदविह्वलाः। विघ्नार्थंरहआयातास्तदादेवौप्रजल्पतः॥

अस्माकन्नस्त्रियः सन्ति तेन वै विघ्नकारणम्।
एवं सञ्जल्प्य च नरो नारायणमुवाच ह॥ ७॥

करिष्याम्यहमेकान्तामासां वैरूपतोऽधिकाम्।
मञ्जर्या सहकारस्य स्त्रीमूरुभ्यां चकार ह॥ ८॥

रूपेणाप्रतिमांलोके सर्वाभरणभूषिताम्। उच्छ्रितांप्रमदांदृष्ट्वा ज्वलनाभांवराङ्गनाम्
गत्वाशशंसुस्ताःशक्रंनतौलोभयितुंक्षमाः। शक्रस्तासांवचःश्रुत्वागत्वादेवावुवाचह
प्रणामावनतोभूत्वाशिरस्यञ्जलिमादधन्। अहमर्थीस्त्रियश्चास्याःप्रसादःक्रियतामिति
ततस्तान्ददतुर्देवाविन्द्रायपरमेश्वरौ। अस्मद्वचनसामर्थ्याद्गृहाणेमांत्वमुर्वशीम्॥
ऊरुभ्यांजनितायस्मान्नरेणेयंवराङ्गना। मञ्जर्यासहकारस्य तेनेयमुर्वशीमता॥ १३॥
पुरन्दरोगृहीत्वातामुर्वशींपरमाङ्गनाम्। शिक्षाञ्चक्रियतांचित्रपथानृत्येविचक्षणा॥
क्रियतामचिराद्देवा यत्नमास्थायशोभनम्। एवमुक्तेतुचित्रेण कृतातेन विचक्षणा॥

बहुमर्वाणासाजाता नृत्यगीतेषकोविदा । पपमान्यघसस्तत्र पुरासद्यनिसुन्दरी ॥
गतेपसुतिथेकान्ते तत्रागातस्तनरेश्वरः । इलस्यपुत्रोधर्मात्मानाम्नायेंवपुरूरवा ॥ १७
इन्द्रम्याद्धासनगतो नृत्यंपश्यतितत्रह । नृत्यन्तीवासवस्याग्रे उवशीधीक्ष्यकामुक
हृतचित्तस्तयाराजा नकिंचिन्न यपद्यत । धैर्यं चित्तेसमाधेय मुहूर्तंपर्यवस्थित ॥
उवशीचतदातस्य दर्शनाद्गतचेतसा । तन्मदेशाद्विनिष्क्रम्यकामातामातिविह्वला
भूमौ सा पतिता बाला उच्छ्रिताद्भूमण्डलात् ।
अथाऽऽस्मानञ्च सम्वेद्य उत्थिता भूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥
दृष्टासाराजर्निद्वेन मन्मथेनप्रपीडिता । गत पुरूरवाभूमिं तामेवमनसास्मरन् ॥
स्मरन्ती राजशार्दूल गतासाप्युर्वशीगृहम् । चित्राङ्गदगृहेगत्वा दूतसाप्यकारह
चित्राङ्गदेन सा नीता रात्रौ यत्र पुरूरवा ।
उवश्यारहितं स्वर्गं शून्योऽप्यासीत्त्रुदिवौकसाम् ॥ २४ ॥
राजायेघयमातेन आनीतात्रिदिवपुर । तयाविरहितस्सोपिद्यन्यचित्त परिभ्रमन् ॥
उन्मत्ततामतोव्यास पश्चिपर्णिपार्थिव । परिभ्रमस्सर्वाथानि महाकालवनगत
गन्धर्वेणोवशीस्वर्गे नीतासापरमाप्सरा । नादिशानेमकाशनानि हेराजन्निरितल्पसि
तावद्दरस्तस्म्यदर्शना प्रासादत्रवोवशी अभ्याशमेनकायैव प्रम्लोचापुञ्जिकस्थली
जलपूर्णाशुकापूर्णाचसम्ताचन्द्रिकातथा । सूयदत्ताविशालाक्षा चन्द्राचन्द्रप्रभातथा
आगत्यतान्तुतहिना उवशीवाक्यमब्रवन् । किंरोदिषिवरारोहे भत्यहेतो सुलोचने
तद्वाक्यमुवशी तासा श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।
सोऽयं गण्डो (ढो?) ■ जानाति सद्भावोऽपि सयोर्हि यत् ॥ ३१ ॥
अनयोपमया क्षया तस्याऽऽर्य कृतनिश्चया ।
श्रुत्वा चेतिव सस्तस्यास्तास्सम्मन्त्र्य समाहिता ॥ ३२ ॥
अज्ञातास्ताश्चदेवाना महाकालवनेगता । नृपश्चददृशुस्तत्रवृक्षच्छायानिवेशितम् ॥
दृष्ट्वाऽऽगत्य नृप सर्वा भृश जातास्सुविह्वला ।
दृष्ट्वा तथाविधास्सर्वा कामार्तास्सुरयोषित ॥ ३४ ॥

मूढचित्ताः प्रहस्यैवमुर्वशीवाक्यमब्रवीत् ।

उर्वश्युवाच

अयं सपुरुषव्याघ्रो विना येनाऽहमीदृशी । ३५

एलः पुरूरवानामा विख्यातोजगतीपतिः । एवंब्रुवन्त्यांवैतस्यामुर्वश्यामप्सरोगणः
मौनीभूतश्चिरंतस्थौलज्जयानतकन्धरः । एतस्मिन्नन्तरेप्रायाद्भगवांस्तत्रनारदः ॥

दृष्ट्वा तथागतास्सर्वा उर्वश्या सहितं नृपम् ।
सम्प्रेक्ष्य च ततःप्राह किं यूयमिह निःस्वनाः ॥ ३८॥
त्यक्त्वा तथाविधं रम्यमिन्द्रस्याऽऽलयमुत्तमम् ।
वरश्च व्रियतां शीघ्रं वियोगो न भविष्यति ॥ ३९ ॥
माहात्म्यञ्चाऽस्यतीर्थस्य कथयामास नारदः ।
अस्मिन्या दुर्भगा तीर्थे स्नायात्स्त्रीपुरुषोऽपिवा ॥ ४० ॥
सौभाग्यं लभते सम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ।
आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वा लवणेन वा ॥ ४१ ॥

शर्कराभिश्चवह्नीभिर्वित्तशाठ्यविवर्जितः । गुडेन मधुनावापि देवीमुद्दिश्य पार्वतीम्
लवणेन स्वरूपाढ्या तिलैस्सुर्वाङ्गशोभना । द्रव्यवृद्धिःशर्करया गुडेनाङ्गेषु पूर्णता
मधुनाचैवसौभाग्यं तीर्थस्याऽस्यप्रभावतः । द्वादशैवतुयुग्मानिदेव्यादेवस्यभोजयेत्

काञ्चीं मुखरिणीं दद्यात् ताटङ्कं मुकुराञ्जनम् ।
क्षौमजां कञ्चुकीञ्चैव वस्त्रे कौसुम्भके तथा ॥ ४५ ॥

श्वेतानुलेपनं पुसां स्त्रीणांदद्याच्चकुङ्कुमम् । आषाढे श्रावणे वापिमासिभाद्रपदेतथा
शुक्लाश्विनतृतीयायामुत्तमं व्रतमाचरेत् । उत्तमा जायते नारी यथा देवी तथैवच

उमामाहेश्वरी कार्यौ सौवर्णौ च स्वशक्तितः ।
धार्य्यौ नार्य्या हि तौ देवौ तुलाशिक्ये विधानतः ॥ ४८ ॥

फलानि चैव देयानि शाकानि विविधानिच । तत्रदत्तंहुतंजप्तं सर्वंकोटिगुणम्भवेत्
एवं याकुरुते तत्र तीर्थेनारी समाहिता । गन्धर्वाप्सरसांलोके मृतायातिनसंशयः

वहुप्रवीणासाजाता नृत्यैर्गानिषकोविदा । वचसान्यचसत्तत्र पुरासद्मनिसुन्दरी ॥
गतेवहुतिथेकाले तत्रागात्सनरेश्वर । इलस्यपुत्रोधर्मात्मानाम्नाचैवपुरूरवा ॥ १७
इन्द्रस्यार्द्धासनगतो नृत्यंपश्यतितत्रह । नृत्यन्तीवासवस्याग्रे उर्वशीचीक्ष्यकामुक
हतचित्तस्तदाराजा नकिंचिन्म्यपद्यत । धैर्य्यंचित्तेसमावेश्य मुहूर्तंपर्यवस्थित ॥
उर्वशीचतदातस्य दर्शनाद्धृतचेतसा । तत्प्रदेशाद्विनिष्क्रम्यकालातांचातिविह्वला
भूमौ सा पतिता बाला उच्छ्रिताद्‌द्रुममण्डलात् ।
अथाऽऽश्वासञ्च सम्प्रेक्ष्य उत्थिता भूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥
दृष्टासाराजसिंहेन मन्मथेनप्रपीडिता । गत पुरूरवाभूमिं तामेवमनसास्मरन् ॥
स्मरन्ती राजशार्दूलं गतासाप्युर्वशीगृहम् । चित्राङ्गदगृहेगत्वा दूतसाथचकारह
चित्राङ्गदेन सा नीता यत्री यत्र पुरूरवा ।
उर्वश्यारहितं स्वर्गं शून्योऽप्यासीद्दिवौकसाम् ॥ २४ ॥
यस्मात्रैवचसातेन आनीतात्रिदिवपुन । तयाविरहितस्सोपिदुःख्यचित्तपरिभ्रमन् ॥
उन्मत्ततागतोव्यास' पृथिव्यांणिपार्थिव । परिभ्रमन्सतीर्थानि महाकालवनंगत
गन्धर्वेणोर्वशीस्वर्गे नीतामायममात्सरा । नापिशानेभवाश्नाति हेराजन्नितिजल्पति
तावदप्सरसमन्सयान्ता प्राताग्रत्रचोर्वशी रम्भाचमेनकाचैव प्रम्लोचापुञ्जिकस्थली
जलपूर्णांशुभापूर्णांपसन्नाचन्द्रिकातथा । सुर्वंश्चाविशालाक्षी चन्द्राचन्द्रप्रभातथा
आगच्छनास्तुसहिता उर्वशीवाक्यमब्रवन् । किंरोदिषिवरारोहे' मन्यहेतो ह्युलोचने
तद्वाक्यमुर्वशी तासां श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ।
सौम्य गण्डो (दो?) न जानाति सद्भावस्त्वापि संयोर्हि यत् ॥ ३१ ॥
अनयोपमया ज्ञेया तस्याऽर्थे हन्तनिश्चया ।
श्रुत्वा चैतिच वचस्तस्यास्ताससम्मन्त्र्य समाहिता ॥ ३२ ॥
अज्ञातास्ताश्चदेवाना महाकालवनेगता । नृपश्चददृशुस्तत्रवृक्षच्छायानिषेवितम् ॥
दृष्ट्वाऽऽगत्य नृप सर्वा भृश जातास्सुविह्वला ।
दृष्ट्वा तथाविधान्सर्वा कामार्तास्सुरयोषित ॥ ३४ ॥

मूढचित्ताः प्रहस्यैवमुर्वशीवाक्यमब्रवीत् ।

उर्वश्युवाच

अयं सपुरुषव्याघ्रो विना येनाऽहमीदृशी । ३५

[ऐ]लः पुरूरवानामा विख्यातोजगतीपतिः । एवंब्रुवन्त्यांवैतस्यामुर्वश्यामप्सरोगणः
[म]ौनीभूतश्चिरंतस्थौलज्जयानतकन्धरः । एतस्मिन्नन्तरेप्रायाद्भगवांस्तत्रनारदः ॥

दृष्ट्वा तथागतास्सर्वा उर्वश्या सहितं नृपम् ।
सम्प्रेक्ष्य च ततःप्राह किं यूयमिह निःस्वनाः ॥ ३८ ॥
त्यक्त्वा तथाविधं रम्यमिन्द्रस्याऽऽलयमुत्तमम् ।
वरञ्च व्रियतां शीघ्रं वियोगो न भविष्यति ॥ ३९ ॥
माहात्म्यञ्चाऽस्यतीर्थस्य कथयामास नारदः ।
अस्मिन्या दुर्भगा तीर्थे स्नायात्स्त्रीपुरुषोऽपिवा ॥ ४० ॥
सौभाग्यं लभते सम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ।
आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वा लवणेन वा ॥ ४१ ॥

शर्कराभिश्चवह्नीभिर्वित्तशाठ्यविवर्जितः । गुडेन मधुनावापि देवीमुद्दिश्य पार्वतीम्
लवणेन स्वरूपाढ्या तिलैस्सुर्वाङ्गशोभना । द्रव्यवृद्धिःशर्करया गुडेनाङ्गेषु पूर्णता
मधुनाचैवसौभाग्यं तीर्थस्याऽस्यप्रभावतः । द्वादशैवतुयुग्मानिदेव्याद्देवस्यभोजयेत्

काञ्चीं मुखरिणीं दद्यात् ताटङ्कं मुकुराञ्जनम् ।
क्षौमजां कञ्चुकीञ्चैव वस्त्रे कौसुम्भके तथा ॥ ४५ ॥

श्वेतानुलेपनं पुंसां स्त्रीणांदद्याच्चकुङ्कुमम् । आषाढे श्रावणे वापिमासिभाद्रपदेतथा
शुक्लाश्विनतृतीयायामुत्तमं व्रतमाचरेत । उत्तमा जायते नारी यथा देवी तथैवच

उमामाहेश्वरौ कार्यौ सौवर्णौ च स्वशक्तितः ।
धार्य्यौ नार्य्या हि तौ देवौ तुलाशिक्ये विधानतः ॥ ४८ ॥

फलानि चैव देयानि शाकानि विविधानिच । तत्रदत्तंहुतंजप्तं सर्वंकोटिगुणंभवेत्
एवं याकुरुते तत्र तीर्थेनारी समाहिता । गन्धर्वाप्सरसांलोके मृतायातिनसंशयः

यत्रतीर्थेवह्नेलिङ्गे पूजिते देवदानवे । दृष्ट्वा ते परमां सिद्धि प्राप्नुतोऽदपती तथा
कार्त्तिक्यान्तु विशेषेण कृत्वा तत्र प्रजागरणम् ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पैश्च रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
यथा देव्या स्वरूपेण वियोगोनैव दृश्यते । तथातयोर्वियोगश्च दृश्यते न कदाचन
एव कृत्वा विना विप्र सर्वार्थान्विदिवगता । उक्तमप्सरसातीर्थं तीर्थान्तरमथोच्यते
दक्षिणे पृष्ठदेव्या वै माहिषकुण्डमुच्यते । महिषोदानव पूर्वं निहतो गणनायकै
तत्र तीर्थेनर स्नात्वा मातृ सम्पूज्ययत्नत । प्रेतत्व पिशाचानांपीडयासविमुच्यते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्रया संहितायां पञ्चमे
ऽवन्तीखण्डे ऽप्सरस कुण्डमहिमवर्णननाम
नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्याय

माहिषकुण्डरुद्रसरोवरमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

कथन्माहिषकुण्ड मातृणामावृति कथम् । रुद्रे वातु कथंक्षेत्रे महिषोदानवोहत ॥
सनत्कुमार उवाच
कपालखण्डमादाय महादेवोऽप्यतिप्रभम् । ब्रह्मनेजोमय दिव्य ज्वलन्तमिवपरितवा
मीड्यमानोजगत्राधोमेहयामासवैसुरान् । विमेयान्सर्वलोक योगात्मायोगलीलया
प्राप्यपुण्यतमक्षेत्र यत्रातिष्ठन्महाप्रभु । तत्र तत्र महादिव्य कपाल देवताधिप ॥४
स्थापयामास दीप्ताग्निर्णानामग्रत प्रभु ।
■ स्थापितमथो दृष्ट्वा गतास्सर्वे महौजस ॥ ५ ॥
विनदस्तो महानाद नादयन्तोदिशोदश । भुर्वार्णवाशनिप्रख्य नमोयेनचिदीर्यते ॥

तेनशब्देनघोरेण दानवोदेवकण्टकः । हालाहल इतिख्यातो देशन्तमभिधावितः ॥
अमृश्यमानःक्रोधार्तो दुरात्मादुर्जयस्सुरैः । ब्रह्मदत्तवरश्चैव माहिषंवपुरास्थितः ॥
दैत्यैःपरिवृतोघोरैः कोटिभिः प्रोद्यतायुधैः । तमायान्तन्तुसक्रोधंमहिषंदेवकण्टकम्

समावेक्ष्याऽऽह वै देवो गणान्सर्वान्पिनाकधृक् ।
मायावी गणपो दैत्यस्त्रैलोक्यस्याऽपि कण्टकः ॥ १० ॥

आयाति त्वरितोयूयंतस्मादेनंविनिघ्नथ । कपालस्यगर्तिसर्वे आश्रितागणनायकाः
ततोदेवगणाभीतास्तमायान्तं महासुरम् । गर्जमानं महानादं भ्रममाणं महाप्रभम्
विभिदुश्शूलसङ्घातैरसिभिर्मुसलैस्तथा । सम्मोह्यशरजालेन ततोभूमौन्यपातयन्
हतेतस्मिन्महादेवो देवान्प्रोवाच वै तदा । अहोदर्पोऽतिमूढस्य दर्पेण निधनं गतः ॥

एतस्मिन्नन्तरे व्यास! तत्कपालात्सुभैरवाः ।
दीप्तास्या मातरः सर्वाःप्रचण्डास्त्रामहाबलाः ॥ १५ ॥
अभ्यधावंस्तमुद्देशं महादेवं न्यवेदयन् ।
दैत्यान्ताभक्षयन्तिस्म भित्वा भित्वा महाबलम् ॥ १६ ॥
कपालमातरस्तस्मात् ख्याताःक्षेत्रे महाबलाः ।
महाकपालस्तस्माद्धि सदृशः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥
स्थापितस्य कपालस्य भित्त्वा तदभवत्पुरा ।
ख्यातं शिवतडागञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥

तदद्यापि महद्दिव्यंसरस्तत्रप्रकाश्यते । त्रिषुलोकेषु विख्यातं गन्धर्वगणसेवितम्
पात्रस्थमुद्धृतंवापि शीतोष्णंक्वथितंजलम् । पुनातिरौद्रसरसोऽश्वमेधावभृथोयथा
प्रागाद्ब्रह्मापितंदेशंदेवतानांशतैर्वृतः । स्वर्गलोकस्यनिश्रेणीकीर्तिताब्रह्मणास्वयम्

अत्र त्यजन्ति ये प्राणान् रुद्रलोकं व्रजन्ति ते ।
धन्या व्यास नरा मर्त्ये महाकालवने स्थिताः ॥ २२ ॥
रौद्रे सरसि ये स्नान्ति जलं वाऽपि पिबन्ति ये ।
स्वधर्माचारनिरताः पश्यन्तीशानमीश्वरम् ॥ २३ ॥

चैत्रेमासि सितेपक्षे पञ्चम्यां समुपोषितः। कर्पूरंकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिसचन्दनम्
निवेदयति देवाय नैवेद्यं घृतपायसम्। सुरूपञ्चैवविप्रेन्द्रं सभार्यंभोजयेद्द्विजम् ॥
रुद्रलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश। अतः परंप्रवक्ष्यामि तीर्थंविद्याधरस्यतु ॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे-
ऽवन्तीखण्डे कुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यं नामै-
कादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

विद्याधरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

कथंतीर्थमिदंक्षेत्रं जातमत्रमहामुने!। प्रसादाद्ब्रूहिमेब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामिसाम्प्रतम्

सनत्कुमार उवाच

विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्रूपधरःपुरा। ग्रथितापारिजातस्य मालातेनमनोरमा ॥
गृहीत्वासचतांमालां गतोवासववेश्मनि। नृत्यन्तींवासवस्याग्रेदृष्टातेनचमेनका ॥
दत्तातस्यैतदातेन सामालानृत्यसंसदि। सामेनकातुतत्स्थाने मालयामोहितासती॥
कोपाविष्टेनशक्रेण शप्तोविद्याधरस्तदा। पृथिव्यांगच्छपापिष्ठ!नृत्यभङ्गस्त्वयाकृतः
विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम्।
एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
अजानतामयानाथ अपराधःकृतोऽधुना। अनुग्रहमतोदेव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥ ७॥
एवमुक्तस्सशक्रोवै विद्याधरमुवाचह। गच्छावन्तीं त्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्गटीगुहा ॥

तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्धि तीर्थमुत्तमम् । ख्यातं तत्त्रिषु लोकेषु नाम्ना विद्याधरं शुभम् ।
भक्त्या तत्र नरः स्नात्वा विद्याधरपतिर्भवेत् । अतस्त्वमपि तत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नतः ।
एवमुक्तः स यक्षेण आगतोऽवन्तिमण्डले । स्नानं कृतश्च तेनैव तीर्थे तस्मिन् मनोर

प्रभावात्तस्य तीर्थस्य स विद्याधरोऽभवत् ।
एवं व्यास समाख्यातं तीर्थं विद्याधरं शुभम् ॥ १८ ॥

तत्पुण्याभिषेकात् [illegible] दिव्यचन्दनश्रुविलेपनम् । स्वर्गे समस्तभोगान्स भुङ्क्ते वै परत्र च

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
विद्याधरतीर्थमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरस्नानेन शीतलारोगभयनाशवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् । तत्र तीर्थं वसिष्ठस्य सर्वकामप्रदायकम् ।

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
विस्फोटकानां [illegible] बालानां चैव [illegible] ॥ २ ॥
मार्गेण विधिना स्नात्वा [illegible] ।
शीतलायाः प्रभावेन बालाः सन्तु निरामयाः ॥ ३ ॥
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या शीतलाम्बुनिवासिनीम् ।
न तेषां दुष्कृतं किंचिद् दारिद्र्यं त्रिजन्मनि ॥ ४ ॥
न च रोगभयं तेषां सर्वपीडा तथैव च ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
शीतलामाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

स्वर्गद्वारमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

स्वर्गद्वारेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवञ्च भैरवम्। श्राद्धंतत्रैवकुर्वीत पितृनुद्दिश्य भक्तितः।
पितृंश्चसनरोव्यास तारयेदात्मना सह। स्वर्गद्वारेणसोऽभ्येति रुद्रस्यपरमं पदम्
भैरवस्याऽग्रतोदेवी पूर्वेतिष्ठतिचाम्बिका। तां तु दृष्ट्वानरः स्त्रीवा मुच्यतेसर्वपातकैः
महानवम्यांपुरुषःकृत्वावस्त्तमयंबलिम्। महिषंवासुरांमांसं मालां बिल्वमयींशुभाम्
भक्त्या निवेदयेद्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पूजां कृत्वा शिवस्य च ॥ ५॥
स्वर्गद्वारेण सोऽभ्येति रुद्रस्य भवनं द्विज! ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे ऽवन्तीखण्डे
स्वर्गद्वारमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

राजस्थलसमीपेचतुःसमुद्रस्थितिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

स्नात्वाचतुस्समुद्रेतुपश्येद्राजस्थलंशिवम्। यस्यदर्शनमात्रेण पुत्रवाञ्जायतेनरः॥
समुद्रास्सन्तिचत्वारः क्षारक्षीरदधीक्षवः। समीपेतस्यदेवस्य सुद्युम्नेनप्रतिष्ठिताः

व्यास उवाच

लक्षयोजनपर्यन्तंजम्बूद्वीपं सुशोभनम्। मर्यादायांस्थापितोऽयंसमुद्रःक्षारसञ्ज्ञितः

शाकद्वीपेद्विलक्षेतु क्षीरादिरससप्रतिष्ठित । दध्यग्निश्चकुशद्वीपे चतुर्लक्षेप्रतिष्ठितः
शाल्मले त्विक्षुजलधिश्चष्टलक्ष प्रतिष्ठित ।
चत्वारस्ते समाख्याता समुद्रा भूमिमण्डले ॥ ५ ॥
राजस्थलसमीपे तु कथमेकत्रता गता ।

सनत्कुमार उवाच

सुद्युम्नो नामराजाऽऽसीत् पुरा कल्पेषु धार्मिक ॥ ६ ॥
तस्यपत्नीवरारोहा नाम्नाख्यातासुदर्शना । सा दाल्भ्यंमुनिंदृष्ट्वा पप्रच्छसुतकाम्यया॥
भगवन्केनदानेन स्नानेनविधिनाऽथवा । सर्वलक्षणसम्पूर्ण पुत्रोलभ्यो मयाकथम्

दाल्भ्य उवाच

विहितस्त्वैपुरापुत्रि सर्वपुत्रेषुसत्तम । स्वयम्भूनेनदेवेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ९॥
ते भर्ता शङ्कर देवमाराध्य त प्रसादत ।
आनयिष्यत्यपस्या येचतुरोऽब्धीस्त्वरूपत ॥ १० ॥
तेपुराशाङ्खतेस्नाने तव पुत्रोभविष्यति । शङ्कराराधनेपुत्रितस्मात्प्रेरयचल्लभम् ॥ ११
दाल्भ्यस्यैववाक्येन विचित्राख्यानकैस्तव । प्रस्थापयामासपति शङ्कराराधनेषु च ॥
सगत्वातोषयामास शङ्कर गन्धमादने । सन्तुष्ट प्राह शशिसूर्याग्निलोचन ॥ १३ ॥
अवन्तीं गच्छ राजेन्द्र ! पुत्र प्राप्स्यसि शोभनम् ।
मच्छासनाज्जलधरा गमिष्यन्ति कुशस्थलीम् ॥ १४ ॥
महाकालेस्थलेराजन् मत्समीपेशङ्करस्यच । द्रक्ष्यसि त्व महाश्रेष्ठ अर्थतस्तत्रसङ्गतान्
अभ्यर्थितास्त्वया तत्र स्थास्यन्ति कल्पया सदा ।
एवमुक्त्वा महादेवो जगामाऽदर्शनं विभु ॥ १६ ॥
सुद्युम्नोभार्ययासार्द्धमाजगामकुशस्थलीम् । आगतांस्तुकुशस्थल्यासमुद्रांश्चददर्शह
तांस्तुदृष्ट्वानमश्चक्रे राजस्थलसमीपत । तदृष्ट्वाचसुद्युम्न प्रणतभक्तवत्सला ॥ १८
प्रोचुर्वारिधयस्सर्वे वरं वरय सुव्रत ! । सप्रेमनसापुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १९ ॥
उवाचचपुनाराजावाचस्तिष्ठतिमेदिनी । स्थानमर्घ्यतावदत्रैव राजस्थलसमीपतः ॥ २०

षोडशोऽध्यायः

शङ्करादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वान्य' महातीर्थं शङ्करादित्यसंज्ञितम् । यत्स्नानेनार्चनेन निर्मलत्वं गतोत्तमम् ॥
प्रक्षिप्तं दर्शनेनैव कल्मषाणां सञ्चयम् । पापौघहरं तन्माहात्म्यं शङ्करादित्य ॥ २ ॥
अवाप्नोति नरः स्नात्वा दिशासु विदिशासु च ।
पूर्वादिक्रमतोऽथ पापिमध्ये तथैव च ॥ ३ ॥
दधिचमत्र पुनास्त्यासरदायश्च दानपात् । शाकपूर्णाश्चविधमश्यन्नाम्यपुण्यफलमश्नु
पश्यन्ति ये लोकाः सर्वभोगसमन्विताः ।
तत्र तत्र समाप्नोति भुक्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥ ५ ॥
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति माहात्म्यमतिभावुकाः ।
तल्लोकेऽपि ते पुण्यात्मानोऽस्तु सततं मम ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

ततो वैदपद्वेदा पिनाकी वृषभध्वजः । तुष्टावच नमोभूत्वा देवदेवदिवाकरम् ॥ ७ ॥
आजगाम दिवानाथ सन्तुष्ट प्राह शङ्करम् ।

सूर्य उवाच

वरं वरय भूतेश' वरदोऽस्मि ददामि ते ॥ ८ ॥
तमादयपरश्चास्य धारूपमानं कुरुष्व मे । अंशानस्यायतामत्र हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥
अवतार्णोरविन्तत्र युक्तमाहेश्वरं यत । ततो देवाधिदेवेशो ययौ ख्यातिमहामतिः
शङ्करादित्यनामेति लोकानां शान्तिकारकः ।
देवादैत्याश्च गन्धर्वा विस्मितास्सह किन्नरैः ॥ ११ ॥
अहोधन्यमिदं स्थानं यत्राऽऽस्ते त्रिपुरान्तक ।

भास्करोऽपि च तत्रस्थस्तीर्थमाहात्म्यवर्णने ॥ १२ ॥
ततस्तुष्टाश्चतेसर्वे ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः । देवेशंपूजयामासुर्देवमादित्यशङ्करम् ॥
मूर्त्तिमन्तंश्च ते देवा अवतीर्य्य च शोभनम् ।
स्थापयित्वाऽब्रुवन् वाक्यं ये त्वां स्तोष्यन्ति मानवाः ॥ १४ ॥
नदुःखंजायतेतेषांजरामरणदुःखजम् । सर्वयज्ञेषुयत्पुण्यंसर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १५ ॥
तस्माच्चैवाधिकंह्यत्र शङ्करादित्यदर्शनात । व्याधयोनाधयश्चैव दारिद्र्यं नकदाचन
एश्वर्यञ्चातुलंतेषां जायतेभुविसर्वदा । नरोगोनचदारिद्र्यं वियोगोनचवन्धुभिः ॥
जायतेमुनिशार्दूल! शङ्करादित्यदर्शनात् । इत्येवं देवदेवेन पुरा वै शूलपाणिना ॥ १८
स्थापितं परमं तीर्थं स्वनाम्ना मुनिसत्तम! ॥ १९ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशातिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
शङ्करादित्यमाहात्म्यंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

नीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

एकस्मिन्समयेव्यास ! कपालक्षालनायवै । शुद्धोदकंगृहीत्वातु कपालेनमहेश्वरः ॥
प्रक्षाल्यचाक्षिपद्भूमौतत्रतीर्थमनुत्तमम् । नाम्नागन्धवतीपुण्यानदीत्रैलोक्यविश्रुता
ब्रह्मणो रुधिरेणाऽपि परिपूर्णाऽभवत् क्षणात् ।
तस्यां स्नानं सदा शस्तं स्वयं देवेन भाषितम् ॥ ३॥
श्राद्धंकृतंतर्पणञ्च तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् । वायुभूतास्तुपितरस्तस्यास्तीरेतुदक्षिणे ॥
तिष्ठन्ति मुनिशार्दूल! चिन्तयन्ति स्वगोत्रजम् ।

आगमिष्यति पुत्रो नो नप्ता वा सन्ततादिह ॥ ५ ॥
सयावपायसंवापिश्यामाकसन्निवारकम् । सक्तुक्षीद्रतिलैर्युक्तं पिण्डंदास्यतियैकदा
तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवतिवाक्षया। यस्तुस्नात्वाचवैपिण्डं दद्याद्वैचन्द्रपर्वणि ॥
पितरो द्वादशाब्दानि तृप्तिं यास्यन्ति तस्य वै ।
येऽत्रागत्य सुविद्वांसो मानवा वै तथा द्विजाः ॥ ८ ॥
पितॄन्सन्तर्पयिष्यन्ति स्वर्गस्तेषामसंशयः । तत्रयद्दीयतेदानंतुष्टिमात्रमुकाञ्चनम्
अक्षयंतद्भवत्प्रोक्तंब्रह्मणावैस्वयम्भुवा । गङ्गाद्वारे प्रयागे च कुरुक्षेत्रे च पुष्करे ॥
वाराणस्यां गयायाञ्च मासात्तृप्तिर्भविष्यति ।
तुष्टाश्च पितरो नृणां दास्यन्ति काङ्क्षितान्वरान् ॥ ११ ॥
योऽयमुद्दिश्ययत्कामंमिहश्राद्धंकरिष्यति । तस्यतज्जायतेसर्वंमृतस्यपरमागतिः
अष्टमीनरमावस्यामावस्यावाथपूर्णिमा । सर्वास्वेतासुवैव्यासांरवे सङ्क्रमणेतथा
ब्रह्मेन्द्ररुद्रदेवाश्च सूर्याग्निब्रह्मदेवताः । विश्वेदेवान्सगन्धर्वान् यक्षाश्चमनुजान्पशून्
सरीसृपान् पितृगणान् यच्चान्यद्भुवि संस्थितम् ।
श्राद्धं वै श्रद्धया कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ १५ ॥
मासिमासिसितपक्षे पञ्चदश्यांद्विजोत्तमाः । इन्दुक्षयेयदातत्रविशाखाचैवरोहिणी
श्राद्धंपितृगणानांतृप्तिप्रयान्तिशतवार्षिकाः । वालखाजैकपादर्क्षेपितॄणांतृप्तिमिच्छताम्
भक्त्या श्राद्धंप्रकुर्वीतपितरस्तेनतर्पिताः । अपिधन्याः कुले जाता अस्माकंतृप्तिहेतवे
येकुर्वन्तिचवैश्राद्धं पिण्डाम्यैविवपन्तिच । तत्पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवितावाक्षया
इष्ट्वैव वै पुण्यजलेषु सम्यक्स्नात्वा नरः स्वान्नु लभेत कामान् ।
यान् प्राप्य च प्रेतगणैः समेतः स मोदते देववृतोऽपसिद्धः ॥ २० ॥
वित्तञ्च चित्तञ्च यशोविशुद्धं देशस्तुकालः कथितो विधिश्च ।
पात्रं यथोक्तं परमाञ्च भक्तिं नृणां प्रयच्छन्ति हि वाञ्छितानि ॥ २१ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
नीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

दशाश्वमेधिकेस्नात्वाटृष्ट्वादेवंमहेश्वरम् । दशानामश्वमेधानांफलंप्राप्नोतिमानवः
मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञाचैवययातिना । रघुणोशनसाचैवलोमशेनमहर्षिणा ॥ २ ॥
अत्रिणाभृगुणाचैव दत्तात्रेयेणधीमता । पुरूरवसापुण्येन नहुषेणनलेनच ॥ ३ ॥
अत्रस्नानेनसंप्राप्तं दशाश्वमेधिकंफलम् । सम्प्राप्तेद्वापरस्यान्ते राज्ञायाप्कलिनातथा
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्तंद्विजोत्तम !। कृष्णवर्णंतथालिङ्गं पूजितंभक्तितः सदा
दृष्ट्वास्पृष्ट्वाचतंदेवं प्रागुक्तंलभतेफलम् । चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवंसंपूज्यभक्तितः

अश्वं दद्याच्च विप्राय सुरूपं च गुणान्वितम् ।
यावन्ति तस्य रोमाणि गण्यन्ते सङ्ख्यया द्विज ! ॥ ७ ॥

तावद्वर्षसहस्राणिशिवलोकेमहीयते । शिवलोकात्परिभ्रष्टः सार्वभौमोभवेद्भुवि ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
दशाश्वमेधमाहात्म्यंनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

एकानंशामाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

एकानंशानमस्कृत्य देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् । पूजाकृत्याविधानेनसर्वसिद्धिफलंलभे
अणिमादिगुणान् सर्वान् गुटिका सिद्धमञ्जनम् ।
खड्गं च पादुके चैव बिलवासं रसायनम् ॥ २ ॥
सर्वं तुष्टा प्रयच्छेत्तु नाऽत्र कार्या विचारणा ।
सुरामांसोपहारैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पूजिता ॥ ३ ॥
सर्वान्कामान्नृणां देवी तुष्टा दद्याच्च सर्वदा । महानवम्यांयोदेवीं महिषेण प्रपूजये
नैवेद्यैश्च यथालाभं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।

व्यास उवाच

कथं देवी समुत्पन्ना एकानंशेति विश्रुता ॥ ५ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशनम् ।

सनत्कुमार उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥
निद्रातस्तस्माद्भगवान् ध्यातवान्पूर्वमम्बिकाम् । ततोभगवतीरात्रिरुत्पन्नस्तस्थौपितामह
तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम् ।
विभावरि महाकाये! व्यवधाने ह्यनिन्दिते ॥ ८ ॥
यत्कर्तव्यं त्वया देवि! शृणु धार्म्यं निश्चयम् ।
तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः ॥ ९ ॥
तस्माद्भयेनवैदेवास्त्रस्ताः सर्वेदिवौकसः । तस्माद्रुद्रे महेशोऽपि उत्पत्स्यतिचेद्वरम
सुतंसम्भवितातस्य तारकस्यान्तकःकिल । शङ्करस्याऽभवत्पत्नी सतीदक्षसुतातुया

सापितुःकुपिताभद्रेकस्मिंश्चित्कारणान्तरे। भवित्री हिमशैलस्यदुहितालोकपावनी
विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम्। अतपद्धिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते
प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालं वसिष्यति।
तस्मात्सुतप्ततपसो भविता यो महाप्रभुः॥ १४॥
सभविष्यतिदैत्यस्यतारकस्यनिवारकः। जातमात्रातुसादेवीस्वल्पसञ्ज्ञैवभामिनी
विरहोत्कण्ठिता वाढं हरसङ्गमलालमा। तयोःसुतप्ततपसोस्संयोगःस्यात्सुगुप्तयोः
पार्वती हरयोस्तस्मात्सुराणां शक्तिकारिणम्।
विघ्नं त्वया विधातव्यं यथा ताभ्यां तथाःशृणु॥ १६॥
गर्भस्थितेऽथतांदेवीं स्वेनरूपेणरञ्जय। ततो रहसिशर्वस्तां विभिन्नानन्दपूर्वकम्
भर्त्सयिष्यतिकालीति ततःसाकुपितासती। प्रयास्यतितपःकर्तुंततस्सातपसायुता
जनयिष्यति यं शर्वादिन्दुवज्ज्योतिमण्डलम्।
स भविष्यति हन्ता वै सुरारीणां न संशयम्॥ २०॥
त्वयाऽपिदानवा देवि!हन्तव्यालोकदुर्जयाः। यावच्चनसतीदेहे सङ्क्रान्तगुणसञ्चयः
तत्सङ्गमेनतावत्तु दैत्यवंशो भविष्यति। एवंकृते त्वयादेवि तपः कालीकरिष्यति
समाप्तनियमा सा च यदागौरीभविष्यति। तदातुचैवसारूप्यं शैलजासम्प्रदास्यति
ततस्तवाऽपि सहजा सैकानंशा भविष्यति।
रूपांशेन च संयुक्ता त्वमुमा सम्भविष्यसि॥ २४॥
एकानंशेतिलोकस्त्वां वरदे!पूजयिष्यति। भेदैर्बहुविधाकारैस्सर्वगांकामसाधनीम्
ॐङ्कारवक्त्रा गायत्री त्वमेव ब्रह्मचारिणी।
आक्रान्तरुचिराकारा राज्ञां चाहवशालिनाम्॥ २६॥
विशां त्वं कमला देवि! शूद्राणां जननी स्वयम्।
ज्ञानिनां ज्ञेयरूपा त्वं त्वं गतिः सर्वदेहिनाम्॥ २७॥
त्वञ्च कीर्तिमतां कीर्तिस्त्वं भूतिस्सर्वदेहिनाम्।
रतिदारक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वं स्नेहवर्तिनाम्॥ २८॥

त्वं शोभा स्तभूपाणां त्वं शान्तिः शान्तिकर्मणाम्।
त्वं भ्रान्तिस्त्वल्पबोधानां त्वं कीर्तिः क्रमयाजिनाम् ॥ २९ ॥
महावेला समुद्राणां विलासस्त्वं विलासिनाम्।
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकशालिनाम् ॥ ३० ॥
इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्विबुधार्चिता। ये त्वां पश्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति धार्यिके
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियतं नात्र संशयः। इत्येवं सा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता सती
एकानंशा महादेवी ध्यातव्या साऽपि भक्तितः ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
एकानंशामाहात्म्यनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

हरसिद्धिमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हरसिद्धिसुसिद्धिदम्। पार्वत्या हरयोर्यत्र सिद्धिः प्राप्ता हरेण च
बलिनौ दानवौ आस्तां चण्डप्रचण्डकौ। उत्साद्य त्रिदिवं सर्वं गिरिं कैलासमागतौ
दृष्ट्वा तत्र गिरीशं तु द्यूतासक्तैकहस्तकम्। पिनाकं परस्तदवष्टभ्य गृहीत्वा दक्षिणे करे
देवि देवीति जल्पन्तं दासस्तेऽस्मीति वादिनम्। यावदेकं तु फलकं तावद् द्यूतमवर्तताम्
शरणीभूतेस्तदा देवैस्तौ प्राप्तौ देवकण्टकौ। उत्सादितौ शिवगणान्नन्दिना प्रतिषेधितौ
ततस्ताभ्यां तदा नन्दी शूलाभ्यां प्रविदारितः।
सम सव्यदक्षिणाभ्यां सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ६ ॥
नन्दिनं ताडितं दृष्ट्वा तदा सर्वं चित्रयनन्दनम्। ध्याता हरेण सा देवी प्रणता प्राञ्जलिः स्थिता

वध्यतांतौ महादैत्यौ वधामीतिवचोऽब्रवीत् ।
तदा तया हतौ दुष्टौ दानवौ बलगर्विंतौ ॥ ८ ॥
हरस्तामाह हे चण्डि! संहर्तौ दुष्टदानवौ । हरसिद्धिरतोलोके नाम्नाख्यातिगमिष्यसि
ततः प्रभृति सादेवी हरसिद्धिप्रदायिनी । हरसिद्धिरितिख्याता महाकाले बभूवह
यःपश्येत्परयाभक्त्याहरसिद्धिनरोत्तमः । सोऽक्षयांल्लभतेकामान्मृतःशिवपुरंव्रजेत्
आदिसिद्धिं महादेवीं नित्यं व्योमस्वरूपिणीम् ।
हरसिद्धिं प्रपश्येद्यस्सोऽभीष्टं लभते फलम् ॥ १२ ॥
यःस्मरेद्धरसिद्धीति मन्त्रञ्च चतुरक्षरम् । न वैरिणोभयन्तस्य दारिद्र्यं नैवजायते
नरोमहानवम्यां यो हरसिद्धिं प्रपूजयेत् । महिषञ्च बलिं दद्यात्सभवेद्भूपतिर्भुवि
नवम्यां पूजिता देवी हरसिद्धिर्हरप्रिया । तुष्टा नृणां सदाव्यास! ददात्यनवमंफलम्
सापुण्या सापवित्राच सासर्वसुखदायिनी । स्मृता सम्पूजिता दृष्टा धनपुत्रसुखप्रदा
महानवम्यां ये व्यास! हन्यन्ते महिषादयः । सर्वेतेस्वर्गतियान्ति घ्नतांपापंनविद्यते
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
हरसिद्धिमाहात्म्यं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

वटयक्षिणीमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

मासमेकन्नरोभक्त्यापश्येद्योवटयक्षिणीम् । पूजयेत्स्वर्णपुष्पैश्चतस्यसिद्धिर्महीयते
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
वटयक्षिणीमाहात्म्यंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

चतुर्दशयात्रावर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पिशाचत्वेन नः स्नात्वा चतुर्दश्यां पिशाचतः । तिलान्दत्त्वा तिथौ भक्त्या न पिशाचः प्रजायते
पैशाच्योद्धिरणयद्वत् नरश्च नरंभवेत् । मन्युक्तं हि पिशाचस्थाने मुक्त्यर्थेनात्र संशयः ॥ २ ॥

यस्य माता नरः स्नाति पिशाचस्थाने स मुच्यते
कुम्भाण्डा राक्षसाश्चापि योऽत्र दद्यान्ममाण्डकान् ॥ ३ ॥

तस्य पैशाच्यवर्ता मुक्ति कुण्डेनोनजायते । शिवागुप्तेश्वरं दृष्ट्वा छद्मकालीजितेन्द्रियः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेन फणी यथा ।
स्नात्वा पाऽगमन्येश्वरं पश्येत्पाऽतिमवश्याऽपि मानवः ॥ ५ ॥
स्वकण्ठा यमपृष्ठं स्नात्वा इन्द्रलोकं स गच्छति ।
शिवाया यो नरः स्नात्वा पश्येद्दुण्ढेश्वरं शिवम् ॥ ६ ॥

सोऽश्वमेधफलं स्नात्वा लभते नात्र संशयः । दृष्ट्वेनायतुष्यास पादितोऽश्वमेधतं
दैत्यान्तमवाप्नोति नाऽमासमकेश्वरं । भवन्यापदेश्वरोत्पन्नु देवदमदेश्वरम्
मेधस्याधिमयं नन्द मुन शिवपूजमतेन । प्रशादितस्नात्वा तु भवस्यापश्यतिमानवः
राज्यसत्यस्नात्वा यथादेव पुनः । दशाननस्नात्वा स्नात्वा च दर्शनमस्नादनरेत्
कल्पकादिशतं मातुमागतमनुमोदते । पश्येत्स्वदेश्वरं यत्नुर्धारतदृष्ट्वा पिठसाम्
सोऽश्वमेधमवाप्नोति जपेयद्यमानवः । अर्घंजातेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वार्तार्थे विधिपूर्वे
स्वर्गेन । जपेद्य सप्तार्थ प्रमुच्यते । स्नात्वापश्येत्सरामवश्या च शिवकेश्वरम्
नरश्चोनमर्थं नरं च द्दृष मवश्यते । यः पश्येत्परमावश्या महामायांसनातनीम्
विष्णुमायाविनिर्मुक्तमवाप्नोतिनिर्वाणपदम् । भवयेत्परमामवश्या य कपालेश्वरं नर
समुत्पन्नमहापापपरिश्रद्धामयेत् । स्वर्गंद्वारंनरस्नात्वा दृष्ट्वा देवश्रमेरवम् ॥

दर्शनात्तस्य देवस्य शतयज्ञफलं लभेत् ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुर्दशयात्रानामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रिदशपूजितम् । हनुमत्केश्वरंनाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्

शैवेसरसियः स्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् । कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोकेसमोदते

व्यास उवाच

हनुमत्केश्वरोयस्तु ह्युक्तः पूर्वस्त्वयानघ! । कथांकथयह्येतस्य व्रतरूपांसनातनीम्

सनत्कुमार उवाच

त्रैलोक्यकण्टकः पूर्वो रावणोनामराक्षसः । विष्णुनारामरूपेण लङ्कायांविनिपातितः

घातयित्वातुतंदुष्टं सीतामादायजानकीम् । वानरैस्सहसंश्च नगरींस्वामुपागतः

तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिः परिवारितः । कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः

पृष्टोऽधिकोद्वयोर्वापिशम्भुर्वातजयोऽस्तुकः ।तदादाशरथिंप्राहअगस्त्योमुनिसत्तमः

अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौर्येमहेश्वरः । ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥

एवंश्रुत्वाथहनुमान्यच्छिवेनोपमामम । कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षं राघवस्यहि ॥ ६ ॥

गमिष्येनगरींलङ्कां लिङ्गमेकं प्रयाचितुम् । राक्षसेन्द्रं महाभागं विभीषणमकल्मषम्

ततोगतस्सलङ्कायां विभीषणमुवाचह । देहिमेत्वंमहाभाग लिङ्गमेकञ्चशोभनम् ।

उक्तश्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणेनयथारुचि । एतानिषड्वैलिङ्गानि रावणस्थापितानिवै

त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना । एतेषु यदभीष्टन्ते लिङ्गंकथय सुव्रत! ॥ .

तत्प्रयच्छामितेऽद्यैव सत्यमेतत्प्लवङ्गम । ततोऽग्राहद्धनुमाल्लिङ्गं मौक्तिकसन्निभम्
यद्येतद्धृदयनेवीर तत्प्रयच्छममानघ । श्रुत्वा हनुमतोवाक्यमथोवाचविभीषण ॥
दत्तमेतन्महावीर लिङ्गयत्त्वन्तवानसि । श्रूयतेहिपुराग्वृत्तं लिङ्गमेतद्धनेश्वर ॥ १६ ॥
रक्षमद्य पामनापुकम्मिकालमप्यपूजयम् । रावणेनयदाप्रदत्तंतदानींहिधनेश्वर ॥ १७
लिङ्गस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत । प्रसादात्तस्यलिङ्गस्य धनेशोधनरक्षक
गृहीत्वा तन्महालिङ्गं स्वस्थो जातोऽद्य वानर ।

सनत्कुमार उवाच

गृहीत्वा तु ततो लिङ्गं प्रस्थितो विमलेऽम्बरे ॥ १९ ॥
सप्तमेदिवसेचैवसम्प्राप्तोऽवन्तिकापुरीम् । सस्याप्यरुद्रसरसस्तीरेस्नानमथाकरोत्
महाकालस्यपूजार्थं गमनप्रत्यचिन्तयत् । उद्धर्तुंकामस्तल्लिङ्गमुद्धर्तुंनशशाकस. ।
ततो व्योमस्थितो देव प्राह त वायुनन्दनम् ।
अस्मिन् क्षेत्रे हनुमत्त्वं स्थाप्य स्थाप्य पूजय ॥ २२ ॥
हनुमत्केश्वरश्चापि लोकेख्यात भविष्यति । शैलधन्योन्नत लिङ्गं स्थापितवायुसूनुना
यानीपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरशिवम् । तस्यशत्रुभयनास्ति सङ्ग्रामेजयमाप्नुयात्
नचचौरभयतस्य महाविघ्नस्य नदुर्गति । तैलाभिषेकय कुर्याद्धनुमत्केश्वरं शिवम्
तस्यरोगा प्रलीयन्तेग्रहपीडानजायते । येपश्यन्तिनरास्तस्यातेषांमोक्षोभविष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
हनुमत्केश्वरमाहात्म्यनामत्रयोविंशोऽध्याय ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

यमेश्वरन्तुयःपश्येत्स्नापयित्वातिलाम्भसा । कुङ्कुमेनसमालिप्य पूजयेदुत्पलैस्ततः
दहेत्कृष्णागुरुंधूपं दापयेत्तिलतण्डुलान् । यएवमर्चयेद्देवमीश्वरंशूलहस्तकम् ॥ २ ॥
यत्र कुत्र मृतस्यापि यमः पितृसमो भवेत् ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
यमेश्वरमाहात्म्यंनामचतुर्विशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

रुद्रसरोमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कथयामिपरंव्यास!तीर्थंतीर्थेषुचोत्तमम् । नाम्नारुद्रसरः प्रोक्तं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पश्येत्कोटिवरं शिवम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ २ ॥
श्राद्धंतत्रैवकृत्वातु शृणुयात्फलमाप्नुयात् । दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य च ॥
फलंकोटिगुणंव्यास!लभतेनात्रसंशयः । पितृनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते
तत्सर्वं कोटिगुणितं जायते नाऽत्र संशयः ।
कोटितीर्थे नरस्स्नात्वा ध्यायेद्यःपरमाक्षरम् ॥ ५ ॥
मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकेनयथोरगः । प्रातरुत्थाययोविप्र तत्रस्नानंकरोतिवै ॥ ६

कोटितीर्थे नरः स्नात्वा सप्तरात्रोषितः शुचिः ॥ ७ ॥
चान्द्रायणसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः । जागरं तत्र कुर्याद्यो ह्यनन्तं फलमश्नुते
गन्धपुष्पादिभिः कृत्वा महास्नपनपूर्वकम् । यस्तु नयनेरात्रिं सोपवासो जितेन्द्रियः
लभते सर्वकामांश्च यत्सुरैरपि दुर्लभम् । कार्त्तिक्यामथ वैशाख्यां दर्शं तत्र प्रपूजयेत्
गन्धपुष्पैश्च कालीनैस्तथा वस्त्रैः सुशोभनैः । कर्पूरकुसुमश्चैव श्रीखण्डमगुरुं तथा
समभागानि कृत्वा तु शिलापृष्ठे च पेषयेत् । अनुलिप्य महाकालं रुद्रसरोवरो भवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रुद्रसरोमाहात्म्यनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः
महाकालयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः ।
शिवश्चयस्करीं पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥ १ ॥
स्नात्वा सरसि रुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ।
नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥ २ ॥
गन्धैः पुष्पैर्नमस्कारैः सम्पूज्य त्रिदशेश्वरम् । प्रणिपत्य ततो गच्छेद्देवं कपालमोचनम् ॥
तत्रैव देवदेवेशः कपालं न्यस्तवान्क्षितौ । कपालं तत्क्षणान्न्यस्तं तत्राभूल्लिङ्गमुत्तमम्
कपालमोचनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र वै स्नपनं कुर्यादाज्यपलशतं तु वै ॥
तदर्धार्धेन पादेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । कालेपूर्णे स विप्रेन्द्र शिवलोके महीयते
नमस्कृत्य ततो गच्छेत् कपिलेश्वरमुत्तमम् । स्पर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः
हनुमत्केश्वरं देवं ततो गच्छेत्समाहितः । ऐश्वर्यमतुलं व्यास दर्शनादस्य जायते ॥

ततोगच्छेन्महादेवंपिपलादं सनातनम् । यस्यदर्शनमात्रेणमुक्तिःस्याद्द्विजसत्तम!
स्वप्नेश्वरंततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः । दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नश्चविनश्यति

ततो गच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण विश्वस्यैव पतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

सोमेश्वरन्ततोगच्छेज्जितक्रोधोजितेन्द्रियः । कुष्ठरोगादिदोषेभ्योदर्शनादस्यमुच्यते
वैश्वानरेश्वरंव्यास ततोगच्छेत्समाहितः । तस्यवृद्धिस्सदालोकेजायतेतस्यदर्शनात्
बीजापूरकहस्तन्तु लकुलीशन्ततो व्रजेत् । रुद्रत्वं दर्शनात्तस्य जायते नात्रसंशयः
ततो गच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम् । यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः

अभ्यर्थितस्सदादेवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ।
तेनाभ्यर्थितपूरोऽयं विख्यातो विघ्ननायकः ॥ १६ ॥

वयोवृद्धं ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् । न रोगो नजराव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः

विघ्ननाशं ततो गच्छेत्प्राणीशं देवमुत्तमम् ।
स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ॥ १८ ॥

तस्यचैवकृते स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः । स्वर्गश्चापिसदा व्यास!दर्शनादस्यजायते
मार्गगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणिं ततो व्रजेत् । यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकोन दृश्यते
पुष्पदन्तं ततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः । यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥
गुह्यंचैवमहाकालं ततो गच्छेत्समाहितः । यस्यदर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते
ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम् । यस्यदर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत्

श्वासावरोधनं कृत्वा दुर्वासस्य समीपतः ।
गौरीं गत्वा महादुर्गां व्रजेच्छ्वासमनन्तरम् ॥ २४ ॥
तत्रोच्छ्वासो विमं कृत्यन्तामर्चन्सुसमाहितः ।
कालेश्वरं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥ २५ ॥

यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं नपश्यति । बधिरेशं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥
यस्य दर्शनमात्रेण बधिरत्वंनजायते । यात्रेश्वरन्ततो गच्छेद्यात्रापूर्णफलप्रदम् ॥

कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थान गोत्रञ्चनश्वरे । न कीर्त्तयेद्यदानाम सायात्राधिफलीभवे

देवस्याऽग्रे ततो व्यासा उपविश्य समाहित ।
भक्तियुक्त स्तुति ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुन पुन ॥ २९ ॥
मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
संसारसागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्पते ॥ ३० ॥

अनेन विधिना यस्तु महाकाल प्रदक्षयेत् ॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा
गोलक्ष द्विजवर्याय दत्त्वायत्लभतेफलम् । तत्फलन्देवदेवस्य सहस्कृत्यामदक्षिणा
भक्त्या परमयायुक्तो महाकाल प्रदक्षयेत् । पदेपदे यज्ञफलमितिमेशङ्करोऽब्रवीत्
षष्टिकोटिसहस्राणिषष्टिकोटिशतानिच । पूजितानिभवन्त्यत्र यात्रेश्वरलभवना
यएवकुरुतयात्रा शिवध्यानपरायण । सवत्सदक्षिणा दद्यात्सत्पुण्यफलभृत्
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतनात्र संशय । एव यात्रा समाप्याऽथगत्वाच स्वगृहनर

यात्रादैवतसख्यान्वै षड्विंशतिद्विजोत्तमान् ।
भोजयेच्छिवभक्ताश्च शिवध्यानपरायणान् ॥ ३७ ॥
सवत्सा दक्षिणा दत्त्वा प्राप्यानुज्ञा विसर्जयेत् ।
यात्राक्रमेण चकक तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥

धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करमेयुताम् । धेनुम्पयस्विनीदद्याद्विप्रशाठ्यविवर्जित

भुञ्जीताथ स्वयव्यास सधभृत्यसमन्वित ।
दीनानाथदरिद्रान्धविकलाश्चापि भोजयेत् ॥ ४० ॥

यदत्रफलमुद्दिष्ट तद्वदामिशृणुष्वमे । कुलाना शतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहित

कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके स मोदते ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
महाकालयात्रामाहात्म्य नाम षड्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

वाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

वाल्मीकिरीश्वरं व्यास! भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ।
मौनी ध्यानपरोभूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

व्यास उवाच

कथमत्रसमुत्पन्नो कोवाल्मीकेश्वरःप्रभुः । यस्यदर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥

सनत्कुमार उवाच

आसीद्व्यासपुराविप्रःसुमतिर्भृगुवंशजः । रूपयौवनसम्पन्नातस्यभार्याऽथकौशिकी
तस्यपुत्रःसमुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेतिनामतः । सपित्राप्रोच्यमानोऽपिवेदाभ्यासंनमन्यते
ततोवहुतिथे काले अनावृष्टिरजायत । तदापि वहवश्चाऽसौ दक्षिणामाश्रितोदिशम्
ततोऽसौसुमतिर्विप्रः सभार्यःससुतस्तथा ।विदिशंकाननंप्राप्तःकृत्वाचाश्रममाश्रितः

आभीरैर्दस्युभिः सार्द्धं सङ्गोऽभूदग्निशर्मणः ।
आगच्छति यथा तेन यस्तं हन्ति स पापकृत् ॥ ७ ॥

स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतंगोत्रंगताश्रुतिः । कस्मिश्चिदथकाले तु तीर्थयात्राप्रसङ्गतः

सप्तर्षयःपथा तेन सुव्रताः समुपस्थिताः ।
अग्निशर्माऽथतान्दृष्ट्वा हन्तुकामोऽब्रवीदिदम् ॥ ६ ॥

वस्त्राणीमानिमुञ्चध्वं छत्रकोपानहौतथा । हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोयमसादने
तस्यतद्वचनंश्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् । अस्मत्पीडनजंपापं कथंतेहृदिवर्तते ॥ ११ ॥

वयं तपस्विनो भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ।

अग्निशर्मोवाच

ममास्ति माताऽथ पिता सुतो भार्या गरीयसी ॥ १२ ॥

पोषयामि सदावास्तु यतन्मे हृदि संस्थितम् ।

अत्रिरुवाच

पित्रादीननुपृच्छ च स्वकर्मोपार्जित प्रति ॥ १३ ॥

यद्युष्मदर्थं क्रियते पापतत्कस्यचकथ्यताम् । चेन्नकथयन्तिस्ममामृगाश्राजिनोपधी

अग्निशर्मोवाच

मत्कृताश्चित्तयानेतु मत्पुत्रांदृशास्य । युष्माकवचसात्स्य प्रतिबोध प्रवर्तते ॥ १५

गत्वा पृच्छामि तानसवान् कस्य भावश्च कीदृश ।

यूयमत्रैव तिष्ठन्तु यावदागमन मम ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वातानग्रामाद्विप्रमरण्यमुधावह । धर्मस्यप्रणिधानेन प्राणिनामपीडनेनच ॥
सुमहद्दुरुपनपाप कस्यत कथ्यतामम । पिताप्राहायतन्माता नापुण्यमायमयारिह
स्वजानतिमकुरुषे यन्कृतभोग्य तुमत्वया । भवस्तत्वचनश्च या भार्यावचनमब्रवीत्
यथाप्युक्तनमप प पापमतसर्वधनु । तद्वाक्यमनवारपुत्र बालोऽहमितिसोऽब्रवीत्
त त्ताभ्यामाश्रितेनैव चेतसिश्रुचमत्तवत । नष्टोऽहमितिमत्वात शरणमेतपस्विन
क्षिप्त्वापलकुटीन्नयेनैव भल्लचोहतः प्रकाशयकेशास्त्वरितोऽस्वर्णामगत स्थित

प्रणम्य दण्डपातन तनो वचनमब्रवीत् ।

न मे माता न च पिता न माया न च मे सुत ॥ २३ ॥

सर्वैस्तै परित्यक्त ऽह भवनाशरणागत । सुप्रदेशशतात्मानरकात्त्रातुमर्हथ ॥
एवतवाद्विनदृष्ट्वा सुप्योऽविस्मय भवत् । भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागत ॥
मन्त्रनाऽयमनुमान्त्र शिष्यामवमुनेर्मुने । तथेत्युक्त्वाधतश्राह इमंध्यानसमाधर ॥
अनेनध्यानयोगेन पापमुत्र प्रणाशय । संस्थितोवृक्षमूलेन्त्व परासिद्धिगमिष्यसि ॥

इत्युक्त्वा ■ ययुस्सर्वे सत्तम सोऽपि तत्र वै ।

तद्ध्यानम्योऽभवद्योगी व सदापि त्रयोन्दश ॥ २८ ॥

निवृत्तात्स्तुययानन मुनयस्त प्रभुभुवु । उ ि गतध्यनित्तेनवल्मीकेपिस्थयान्विव

ततस्तु दृष्ट्वा वल्मीक काष्ठाभूतोक्षणद्रुमि ।

तं दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयो नयसंयुतम् ॥ ३० ॥

नमश्चक्रेऽथतान्सर्वान् समुनिमुनिपुङ्गवान् । तान्प्राहप्रणतोभूत्वातपसादीप्ततेजसः

प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानंलब्धंमयाशुभम् । दीनोऽहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोऽहंपापकर्दमे ॥ ३२

श्रुत्वा तस्येति तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ।

वल्मीकेऽस्मिन् स्थितः पुत्र!यतस्त्वमेकचित्ततः ॥ ३३ ॥

वाल्मीकिरिति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति ।

इत्युक्त्वामुनयोजग्मुः स्वां दिशं तपसान्विताः ॥ ३४ ॥

गतेषुमुनिमुख्येषु वाल्मीकिस्तपताम्वरः । कुशस्थलयामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम्

तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम् ।

रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥ ३६ ॥

ततः प्रभृति देवेशो वाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञकः ।

ख्यातोऽवन्त्यां ततो व्यास!कवित्वदायको नृणाम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्देमाहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे वाल्मीकेश्वरमहिमवर्णनंनामसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शुक्रेश्वरंसमभ्यर्च्य सितपुष्पैर्विलेपनैः । प्रणिपत्यततोभक्त्या रुद्रलोकेमहीयते ॥

भीमेश्वरंनरोदृष्ट्वा भक्त्यासम्पूज्ययत्नतः । नभयंलभतेव्यास!रणेरात्रौजलेऽनले ॥ २

गर्गेश्वरंस्नापयित्वा तिलतैलेनमानवः । बिल्वपत्रैस्तुसम्पूज्य धर्मवृद्धिमवाप्नुयात्

उपोषितश्चतुर्दश्यां तिलप्रस्थतिलाम्भसा ।

स्नापयित्वा तिलैरिष्टैर्यस्सदा सौख्यमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥
गोसहस्रतरोत्तराणामाकृतावविशेषेण । भवबन्धविनिर्मुक्तो रुद्रलोके स गच्छति ॥ ५ ॥
कामेश्वरं समभ्यर्च्य कुङ्कुमादिविलेपनैः । कामिकेन विमानेन याति स्वर्गं न संशयः ॥
चूडामणिं नमस्कृत्य नवम्यां कार्त्तिके सिते । न वियोनिं नरो याति धर्मबुद्धिस्तु जायते ॥
चण्डेश्वरं समभ्यर्च्य पुष्पाण्यमुपोषितः । निर्माल्योल्लङ्घनोत्पन्नसदोषेण न लिप्यते ॥
इत्यादितीर्थानि महेश्वरस्य पुण्यानि सर्वाणि नरोऽभिगम्य ।
विशुद्धचित्तो शुचि भावितात्मा प्रयाति शम्भोर्भवनं सुरम्यम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे तीर्थमाहात्म्यनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

तीर्थप्रसङ्गपञ्चेशानीयात्रावर्णनम्

व्यास उवाच

गुह्यस्थानेषु चित्राणि कीर्तितानि त्वया मुने । प्रमाणं कथयस्वाद्य महाकालवनस्य मे ॥

सनत्कुमार उवाच

यथाश्रुतं मया पूर्वं गदतो ब्रह्मणः स्वयम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना मम ॥
योजनं सर्वतः प्रोक्तं चतुर्दिक्षु सुशोभितम् । सौधर्पैस्तोरणैश्चैव मुक्तादामविलम्बिभिः ॥
द्वाराणि तत्र शोभन्ते काञ्चनैः कलशैः स्थितैः ।
सितपद्ममुखैर्द्वारैरनेकैर्मणिमण्डितैः ॥ ४ ॥
महेश्वरप्रयुक्ताश्च द्वारपक्षा महाबलाः । द्वारेषु तेषु शोभन्ते लोकानुग्रहकारकाः ॥
पिङ्गलेशः स्थितः पूर्वे चाल्करूपोऽपि भावसु । तीर्थस्याभिमुखे गौरो गुरुर्गणरपानुग
दक्षिणेऽपि महायोगी नाम्ना कायावरोहणः ।

विल्वेशः पश्चिमे द्वारे क्षेत्रस्याभिमुखं स्थितः ॥ ७ ॥
नियुक्तो वै महेशेन वारुणीन्दिशमास्थितः ।
उत्तरान्दिशमाश्रित्य स्थितश्चैवोत्तरेश्वरः ॥ ८ ॥
साधकस्सर्वकार्याणामादिष्टश्शङ्करेणसः । मानवायेवसन्त्यत्र क्षेत्रमध्येसुधार्मिकाः
मृतारुद्रपुरंयान्ति विमानैस्सर्वकामिकैः । कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामथवार्केन्दुसङ्गमे ॥
पञ्चेशानींनमस्कृत्य प्रतिलोमानुलोमतः । उपोषितोदिनैकेन ध्यायमानोमहेश्वरम्
मुच्यतेसर्वपापैस्तु बहुजन्मकृतैरपि । एवंचविप्रयोयात्रांपञ्चेशानींसमारभेत् । १२
अनेनैवस्वदेहेन रुद्रलोकंसगच्छति । पञ्चेशानीमथान्यांते सुखेनक्रियतेयथा ॥
तथाऽहंसुप्रवक्ष्यामिसर्वपापप्रणाशिनीम् । प्रातःस्नात्वारुद्रसरस्येकादश्यांसमाहितः
श्राद्धं कृत्वा महाकालं नत्वा ईशानमीश्वरम् ।
पिङ्गलेशंततः प्राप्य स्नात्वा श्राद्धं समाचरेत् ॥ १५ ॥
उपगम्यततोदेवं गणेशंपिङ्गलेश्वरम् । गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च तमभ्यर्च्यनिवर्तयेत् ॥
महाकालेश्वरम्प्राप्य भूयस्स्नातोजितेन्द्रियः । अर्चयेद्देवदेवेशं स्वयंभूतंसनातनम्
ईशानेगमयेद्रात्रिंकृत्वाचैनक्तभोजनम् । ध्यायमानोमहेशानं भूमौचिन्त्यस्यविग्रहम् ॥
द्वादश्यांपूर्ववत्सर्वं प्रातस्स्नात्वाव्रजेन्नरः । कायावरोहणेगत्वा पिङ्गलेश्वरचव्रजेत्
त्रयोदश्यामथाप्येवं विल्वेशंपश्चिमेऽर्चयेत् । चतुर्दश्यांतथासौम्ये पूजयेदुत्तरेश्वरम्
अमायान्तुशुचिस्स्नातो महाकालेश्वरं व्रजेत् ।
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथ ॥ २१ ॥
गीतनृत्यादिकंकृत्वा प्रणिपत्यक्षमापयेत् । यात्रांकृत्वानुपूर्वोक्तां ततोनिजगृहंव्रजेत्
ब्राह्मणान् भोजयेत् पञ्च शिवभक्तिपरायणान् ।
प्रणम्य देवरूपांश्च महाकालेऽपि तान्द्विजान् ॥ २३ ॥
पूजयित्वाहिरण्येन सूक्ष्मवस्त्रैस्तथानवैः । रथंपिङ्गलकेदद्याद्गजंकायावरोहणे ॥ २४
दत्वाबिल्वेश्वरेचाश्वं वृषंदत्वाथचोत्तरे । धेनुं दद्यान्महाकाले सर्वोपस्कारसंयुताम्
यएवंकुरुतेव्यास तस्यपुण्यफलं शृणु । पितृकैर्मातृकैस्सार्द्धं कुलैस्सदिविमोदते

अप्सरोगीतनृत्याढ्यै र्विमानैस्सार्वकामिके ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे पञ्चेशानीयात्रामाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्याय ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

सप्तदेवीनांमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

यस्तुप्रदक्षिणा कुर्यान्नियमेनकुशस्थलीम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपावसुन्धरा
यस्तुपद्मावतींपश्येद्गन्धैरपङ्कजैर्नर । धूपदीपसनैवेद्यं भूतोमहापुरमजेत् ॥ २ ॥
स्वर्णशृङ्गाटिका व्यासां कुसुमै स्वर्णसन्निभे ।
समभ्यर्च्य महाभक्त्या स याति शिवमन्दिरम् ॥ ३ ॥
अवन्तिकान्तुय पश्येद्देवींत्रैलोक्यविश्रुताम् । कामगेनविमानेनयातिपौरन्दरंपदम्
अर्चयेत्पङ्कजैर्भक्त्यायोदेवीममरावतीम् । अमरैस्सहसहृष्टो मोदतेदिविसर्वदा ॥
देवीमुज्जयिनींभक्त्या य पश्यतिसमाहित । सर्वैश्वर्यसमायुक्तो रुद्रलोकेमहीयते
विशालाञ्चैवय पश्येत्तुभक्त्यासमाहितः । मुच्यतेत्रिविधै पापैर्मानकायाधिवारणा

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे सप्तदेवीनामहिमवर्णननामत्रिंशत्तमोऽध्याय ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

अक्रूरेश्वरमहिमवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुव्यासमहातीर्थं पुण्यंयद्ब्रह्मणार्चितम् । अक्रूरेश्वरमित्याख्यंयत्रसिद्धःपितामहः

तत्र देवार्चनंकृत्वा कृष्णाष्टम्यामुपोषितः ।

जितेन्द्रियश्शुचिर्दान्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥

न वदेत्केनचित्सार्द्धं नरः प्रातस्समुत्थितः । दृष्ट्वाऽक्रूरेश्वरंदेवं हेमदानफलं लभेत् ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽ

क्रूरेश्वरमहिमवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

यस्तु पश्यति ब्रह्माणं शुचिस्स्नातो जितेन्द्रियः ।

मुच्यते पातकाद्घोराद् ब्रह्मलोकमतो व्रजेत् ॥ १ ॥

पद्मासनस्थितोब्रह्मा ध्यायमानःपरम्पदम् । वशिष्ठाद्यैर्मुनिवरैर्विज्ञप्तः कर्मसम्भवात्

ऋषय ऊचुः

आदित्यामरुतस्साध्या वसवश्चाश्विनावुभौ ।

पितरो ये च लोकानां पूज्यन्ते भुवि मानवैः ॥ ३ ॥

ग्रहार्कास्तारकायक्षा दिग्गजाश्चानलानिलाः । अमीदेवावयंसर्वे प्रपद्यन्तेत्वदंशतः

क ते ध्यायसि देवेशं एतत्सर्वं ब्रवीहि नः ।

ब्रह्मोवाच

द्वे विद्ये तत्त्वरूपे ये परा चैवाऽपरा तथा ॥ ५ ॥
द्वे ये मम स्वरूपेण मूर्त्तामूर्त्तात्मिके सदा ।

ऋषय ऊचुः

पितामह कथं विष्णो भवत परमा विभु ॥ ' ॥
येनास्माकं परा सिद्धिर्जायते तव दर्शनात् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

माहेश्वरपरक्षेत्र पुराऽभवदतिशब्दितम् । यज्ञार्थिनामथादेव श्रीकण्ठ पार्वतीपति
यावितस्तेन देवेन उक्तोऽहं तत्र शम्भुना । समस्तायोजनं साग्र क्षेत्रमेतत्पितामह ॥ ९
मपाद्यत्तत्वयमिमो महाकालवनाद्भुते । यावितोऽपि मयात्र पर्वेशुर्माहिरोत्तर ॥ १०
भार यीचैतलोयञ्च भारायणपरिग्रहात् । ज्ञानस्तथाऽपि मे यज्ञो देवदेवेन शम्भुना ॥
यस्याकपर्दी यान्ना भिक्षार्थमागत । ध्याकिर्कंस्तोऽपत्राचोमाऽवतिष्ठगुप्सित
कपर्दनाच ते तत्र इकायास्वामत पुन । एवमुक्त्वाकपालतुर्मूर्भानन्धाय तत्र हि
स्थानुनदीयर्यो शिप्रा कपर्दोनमीश्वर । उक्तं तस्मिन्गते शिप्रा कपर्दी निद्रिपातिति

कथं हि विपते होम कपाले सदसि स्थित ।
सकपालानि यौचानि पुरा प्रोक्तानि सूरिभि ॥ ११ ॥
तत्कपालं महादेव उत्क्षिप्त पाणिना स्वयम् ।
तस्मिन् क्षिप्तेऽभवच्चाऽन्यत्क्षिप्ते क्षिप्तेऽभवत्पुन ॥ १'

एवमनन्तकपालानां मध्ये मुनिसत्तमे । ... नत्वा स्तुत्वा ते समागता ॥
ततस्तस्मान्महाद्भुतमाहेश्वर । कपालधारिभगवान् मामुवाच पुन प्रभु
वरं वरय भद्रं ते यत्रैव मिष्यन । नान्यदेव मया तुभ्यं सर्वं दास्यामि तत्पत
ब्रह्मोत्तरमिदं स्थानं मया दत्तं चतुर्मुख । कार्यस्त्वयथकालं तथाचच्चतुर्मुखम ॥ २०
एवं वदन्तं वरदं शम्भुमीश्वरम् । तथेति च नत्वा सद्रूपं नमस्कृत्योपरोकृत ॥ २१

उज्जयतीति वैनाम कुशस्थल्यानिवेशितम्। कुण्डंमन्दाकिनीतत्र मयाकृतमनन्तरम्
त्रविप्रकृतेस्नाने सर्वपा ःप्रमुच्यते। तस्यां संस्थापयेद्विप्रचतुरोऽथ घटाञ्छुभान्

सतिलांस्तान्सवस्त्रांश्च सफलान् मण्डनैस्सह।
कार्त्तिक्यामथ माघ्याञ्च चतुर्विद्भ्यःप्रदापयेत्॥ २४॥

थमंचऋग्वेदाय यजुर्वेदायदक्षिणम्। पश्चिमंसामवेदाय अथर्वणे तथोत्तरम्॥ २५
वेदानुद्दिश्यचाप्येवं प्रीयतां मे पितामहः। कृतेचेवंहि यत्पुण्यं तच्छृणुध्वंसमाहिताः
सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं मन्दाकिन्यां तथाभवेत्। सहस्रगुणितंस्नानंजाप्यंलक्षगुणंभवेत्
दानंकोटिगुणंज्ञेयं मन्दाकिन्यांनसंशयः। कार्त्तिकेमासिसम्प्राप्ते गोदानंतत्रकारयेत्
घृतधेनुञ्चकार्त्तिक्यांमाघ्यांतिलमयींतथा। जलधेनुंतुवैशाख्यांदत्त्वामुच्येतपातकात्

वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यच्च दुष्कृतम्।
विनश्येत्किल्बिषं सर्वं मन्दाकिन्यास्तु दर्शनात्॥ ३०॥

मन्दाकिनीसमं तीर्थं पृथिव्यां नैवदृश्यते। यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्मलोके स मोदते

मन्दाकिन्यां तु यःस्नानं कृत्वा श्राद्धं प्रदास्यति।
दर्शे च पूर्णिमायां वा पितृलोके स मोदते॥ ३२॥

पितामहन्तुयोभक्त्या नित्यं पश्यतिमानवः। अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च॥
युज्यतेनात्रसन्देहः सत्यमेतत्तपोधनाः!। ततोमन्वन्तरेऽतीते प्राप्तेवैवस्वतेपुनः॥
तेनैवोन्मत्तवेषेण ऊर्ध्वशेफोमहेश्वरः। प्रविष्टोब्राह्मसत्रेतु दृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः॥ ३५

तं ब्राह्मणाः शपन्तिस्म निन्दां कुर्वन्ति चापरे।
अपरे पांशुभिः शिश्नं घ्नन्ति तस्याऽशपन्द्विजाः॥ ३६॥

लोष्टैर्लगुडकैश्चान्ये घ्नन्तितंबलगर्विताः। जटामुकुटकंकेचिद्धृत्वाकर्षन्तिचापरे॥
पृच्छन्तिव्रतचर्यांवै व्रतंकेनप्रदर्शितम्। अत्रचैवस्त्रियस्सन्ति कथमेवंत्वयाकृतम्॥
ब्रह्मणाचेदृशीचर्या विष्णुनावाकृतास्वयम्। गिरिशेनाऽपिदेवेन केनेदंदुष्कृतंकृतम्
माविडम्बयदेवेशं वद्धोह्यसित्वमधनः। एवन्तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्रशङ्करः॥ ४०

स्मितं कृत्वाब्रवीत्सर्वान् ब्राह्मणान् परमेश्वरः।

ममाभिप्रघ्नन्ति किं यूयमुन्मत्तं नष्टचेतसम् ॥ ४१ ॥

यूयं कारुणिकास्सर्वे मित्रभावेष्ववस्थिता । ममेधवादिनं दिव्यं ज्ञानरूपधरं हरम् ।

मायया तस्य देवस्य मोहितास्ते द्विजातयः । पुनः कपर्दिनं जघ्नुः पाणिपादैस्तु वै द्विजाः

ताड्यमानस्तु तैर्विप्रैः परं कोपमुपागमत् । ततो देवेन ते शप्ता यूयं वेदविवर्जिताः ॥

ऊर्ध्वशूद्रास्सलगुडाः परदारोपजीविनः । रताधनेषु वेश्यायाः पितृमातृविवर्जिताः

न पुत्रैः पितृवित्तं च विद्या वाऽपि भविष्यति । शेषा ममप्रहतायै ये तैः सर्वेन्द्रियवर्जिताः

रौद्रा भिक्षान्तु भिक्षन्तः परपीडोपजीविनः ।

आत्मानं वर्णयिष्यन्ति धनधान्यविवर्जिताः ॥ ४३ ॥

यैस्तु न नष्टस्ताडितो विप्रैर्मन्यमानेकृपामयि । तेषां धनं च पुत्राश्च दासीदासादयश्च वै ॥ ४८ ॥

कुलोत्पन्नाश्च वै नार्यो भविष्यन्ति यथा मम । एवं शापवरं दत्वा ततोऽन्तर्धानमीश्वरः

ततो द्विजा गते देवे मत्वा तं शङ्करं विभुम् । अन्वेषयन्तो यत्नेन महाकालवनं गताः ५० ॥

स्नात्वा सरसि रुद्रस्य जपन्तः शतरुद्रियम् ।

आप्यायमाने तान्देवोऽशरीरिण्या गिराऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥

अनृतं मम यत्प्रोक्तं क्लेशोऽपि कुतस्तु वै । भूयोऽप्यनुग्रहं विप्रा युष्माकं करवाण्यहम्

शान्ता दान्ताश्च ये विप्रा भक्तिमन्तो मयि स्थिताः ।

न तेषां छिद्यते वंशो न धनं न च सन्ततिः ॥ ५३ ॥

अग्निहोत्ररता ये च भक्तिमन्तो जनार्दने । पूजयन्ति च ब्रह्माणं तेजोराशिं दिवाकरम् ॥

नाशुभं विद्यते तेषां येषां साम्ये स्थिता मतिः ।

एतावदुक्त्वा देवेशो तूष्णीमासीज्जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥

एवं शापवरं लब्ध्वा देवदेवान्महेश्वरात् । आजग्मुस्सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः

विरञ्चिमथ ते ज्ञात्वैस्तोषयन्तः पुरः स्थिताः ।

तुष्टस्तानब्रवीद् ब्रह्मा मत्तोऽपि व्रियतां वरः ॥ ५७ ॥

ब्रह्मणस्तेन वाक्येन तुष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः । कोऽपरो याच्यतामिति विप्राः परितुष्टे पितामहे

एकेतत्प्राहुरन्विप्रा वेदाश्चैव वृणुयामहे । ततोऽन्यैश्च धनधान्यं वृतमेवाविशङ्किते ॥ ५६

अन्ये प्राहुः किमस्माकं धनैस्तुष्टे पितामहे ।
अग्निहोत्रादिवेदाश्च शास्त्राणि विविधानि च ॥ ६० ॥
शान्ताआढ्याश्चयेलोका वरदानाद्भवन्तुनः । एवंप्रजल्पतांतत्र विप्राणांकोपआविशत्
परस्परंवरार्थेऽथ युद्धंकर्तुंमसमुद्यताः । युध्यन्तेसायुधाः केचित्केचित्तत्रोपसर्पकाः
उदासीनाश्चयेविप्रास्ते चमौनेनसंस्थिताः । दृष्ट्वैवंभगवान्प्राह विप्रान्युद्धंप्रकुर्वतः
यस्मादुपद्रुतं विप्रैः शालायां वाह्यसंस्थितैः ।
तस्मादामूलतो विप्रा गुल्मो युद्धेविसर्प्पकः ॥ ६४ ॥
उदासीनस्तु यो गुल्मो वृत्तिहीनोभविष्यति ।
वेदास्तस्यभवेयुर्वै यस्त्वासीन्मौनसंस्थितः ॥ ६५ ॥
तृतीयस्सायुधो गुल्मो योद्धुकामस्तु यः स्थितः ।
चातुर्विधस्सर्वैविप्रा वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ ६६ ॥
परदारासु वेश्यायां द्यूतेचौर्येसदारतः । नज्ञानंनचमोक्षः स्यात्तेषांवैदुष्टचेतसाम् ॥
ऐवमुक्त्वाययौब्रह्मा वैराजं भवनोत्तमम् । एवंमेपरमंक्षेत्रं मुनयोऽवन्तिमण्डले ॥ ६८
यांदेवनगरींलोके प्रवदन्तीहमानवाः । तस्यान्तुयेद्विजाश्शान्ता वसन्तिक्षेत्रवासिनः
नतेषांदुर्लभंकिञ्चिन्ममलोकेभविष्यति । कोकामुखेकुरुक्षेत्रे नैमिषेपुष्करेषुच ॥
वाराणस्यांप्रयागेच तथावदरिकाश्रमे । गङ्गाद्वारेप्रभासेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ७१ ॥
रुद्रकोट्यांविरूपाक्षे मित्रस्याऽपितथावने । तीर्थेष्वेतेषुक्षेत्रेषुयासिद्धिर्द्वादशाब्दिका
प्राप्यतेमानवैर्लोके या मासेनैवलभ्यते । उज्जयिन्यांनसन्देहो ब्रह्मचर्येमनोयदि ॥
तीर्थानांप्रवरंतीर्थं क्षेत्राणामविचोत्तमम् । सदाभिरुचिरंमह्यमेतद्वैमुनिसत्तमाः ॥
मन्दाकिन्यास्तु माहात्म्यं क्षेत्रस्योत्पत्तिरुत्तमा ।
भूयः किमन्यदिच्छन्ति श्रोतुं वैद्विजसत्तमाः ॥ ७५ ॥

सनत्कुमार उवाच

एतत्तेब्रह्मणोवाक्यंश्रुत्वाव्यासतथाविधम् । वशिष्ठाद्याश्चमुनयःपरंध्यानमथोगताः
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं तत्र वासे मनो दधुः ।

माग्निहोत्रास्त्सपत्नीका गताश्चावन्तिमण्डले ॥ ७७ ॥
महाकालवनं दृष्ट्वा शिप्रां चैव महानदीम् । श्मशानमूषरञ्चैव नदीं गन्धवतीं तथा ॥ ७८ ॥
कोटितीर्थमुपस्पृश्य चक्रुर्वासञ्च ते नवे । स्मृत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं हृष्टचित्ता तदाभवत् ।
अदृश्य यावशिष्टञ्च गमनप्रतिमोदितं । उवाच तां महात्मासौ स्वां भार्यां मुनिसत्तम
महाकाले सरिच्छिप्रा गतिश्चैव सुनिर्मला ।
उज्जयिन्यां विशालाक्षी वासः कस्य न रोचते ॥ ८१ ॥
स्नानं दानं तपस्तत्र महाकाले हि दुर्लभम् । महाकालवनं स्वक्ता नैव त्वं तु स्ववानयेत्
मृत कीट पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत् । अत्रैवाप्युत्तममुक्ति कथं सा त्वयोत्तमया
तथ प्रजल्प्याथमुनिप्र ग्रानस्तत्रैव वास महसा चकार ।
यतस्य च्युतिं परिविलियस्तु स्थितस्सहैवात्र मुनिप्र ग्रामे ॥ ८४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
मन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णननाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः
शङ्करादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथ-यामङ्करादित्ये पश्येद्यामजनार्दनं । यद्दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति ॥
व्यास उवाच

कथं तावङ्करादित्ये याता वाथ महामुने । नपश्येच्च मलोकं स यच्च विप्र महामते ॥ २
सनत्कुमार उवाच

भारावतारणार्थाय द्वयोर्यामजनार्दनौ । अवतीर्णौ यदोर्वंशे दिव्यरूपौ महाद्युती ॥ ३ ॥
कंसहन्याथ चाणूरमुष्टसेनन्नर जिपम् । अभिषिच्य स्वयं राज्ये यदुसिंहउग्रसेनम् ॥

किंकार्यंतेमयाब्रूहि कर्तव्यन्तेसुतेहते ॥ एवमुक्तस्सराजावै उग्रसेनोऽब्रवीदिदम् ॥५
सर्वंसम्पत्स्यतेकृष्ण!भवतोहिनदुर्लभम् । विज्ञाताखिलविज्ञानौभवितारावुभावपि
गच्छेतामुज्जयिन्यांवै कृतविद्यौभविष्यथः । ततस्सान्दीपनिंविप्रं जग्मतूरामकेशवौ
कण्ठस्थांश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलश्चतौ । सरहस्यंधनुर्वेदं ससंहारंतथैवच ॥ ८ ॥
अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्यातदद्भुतमभूद्द्विज! । सान्दीपनिरसम्भाव्यंतयोःकर्मातिमानुषम्
विचिन्त्यतौतदामेनेप्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ । ततःकिञ्चित्सनोवाचस्नातुंतीर्थमथोययौ

शिष्यैस्तु सहितो विप्रो महाकालमथाविशत् ।
शिष्यैस्सह प्रविष्टौ द्वौ तदा तौ रामकेशवौ ॥ ११ ॥

वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् । त्वयानाथेनदेवानां मनुष्यत्वेहितिष्ठता ॥
सुखमासीच्चसाधूनामज्ञानानाञ्चसर्वदा । जनपीडाकराये तु सदा वा बलदर्पिताः ॥
युवाभ्यांतेहतास्सर्वेकंसप्रमुखतोनृपाः । मुनिसिद्धसुरादीनांस्थितिःकार्यात्वयानघ

करिष्यामि तमित्युक्त्वा स नमस्यस्ततो ययौ ।
दृष्ट्वा सान्दीपनिं शिष्या ऊचुरेवं दिनेदिने ॥ १५ ॥

कोपिनाश्रद्दधत्तेषांवचस्त्वत्यद्भुतंयतः । स्वयंययौततोद्रष्टुमाश्चर्यंशिष्यभाषितम्

ततस्तथोत्थितः शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ।
तावागतौ गृहं तत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

नवैज्ञातौमयावीरौयदिवृष्णिकुलोद्भवौ । ततस्सान्दीपनिंकृष्णःकृतकृत्योऽब्रवीद्वचः
गुर्वर्थंकिन्ददामीतिसहरामेणहर्षितः । तच्छ्रुत्वावचनंहृद्यं गुरुःप्रोवाचहर्षितः ॥ १९ ॥
पुत्रमिच्छाम्यहंत्वत्तोयोमृतो लवणाम्भसि । पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहृतः
प्रभासेतीर्थयात्रायां त्वमेवतमिहानय । तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगतः ॥
तंसमुद्रउवाचेदं दैत्यः पञ्चजनोमहान् । तिमिरूपेणतंबालं ग्रस्तवान्मयिसंस्थितः
ततः पञ्चजनं हत्वा ग्राहरूपंमहाबलम् । तन्मध्यस्थंचजग्राह शङ्खंग्रस्तोहियः पुरा ॥
जलमध्यस्थितेनैवग्राहेणातीवलीलया । तस्योदरेयदाबालंनददर्शजनार्दनः ॥ २४ ॥
यमालयगतंमत्वा तदावरुणमब्रवीत् । भगवन्यादसामीश रथोमेदीयताम्महान् ॥

येनाहवेहिनाञित्वापश्येयग्रेनवयमम् । पुराजिरेहतादैत्यादानवाबलदर्पिता ॥ २६ ॥
मयायेनरथेनाथ समहार्दायिताश्च । न्यासभूतौरथोयस्ते विधृतोपरतेरणे ॥ २७ ॥
मयाधर्मंपुरस्कृत्य यदीयस्तासहायान्पतेः । एतस्त्वन्धामहणभाकात्वाकायाधिनहरिम्
दृष्टौतुरथमक्षोभ्य रणेतस्मिन्सुरासुरे । ततोहरिस्समालोक्य रथरत्नपरिष्कृतम् ॥
द्वीपिचर्मपरीधान घंटाग्रपरिवारितम् । नानाविधविचित्राङ्ग गरुडध्वजराजितम् ॥
संयुक्तशैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः । अजेयन्देवदैत्येन्द्रदानवासुरराक्षसैः ॥ ३१ ॥
अनेकायुधसम्पूर्णमणिविद्रुमभूषितम् । सहस्रसूर्यप्रतिमभारथश्च धनुर्युगम् ॥ ३२ ॥

किङ्किणीशतशोभाढ्य घण्टाचामरचर्चितम् ।
सघर्त्ताकारधिष्म खगेन्द्रवरकेतनम् ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वाहरिणस्त्रशमस्तु मुमुदे वीतविस्मय । प्रदक्षिणमुपागत्य देवतांश्च प्रणम्य च
आरुरोह रथं विष्णुर्विमानं साप्रजोऽञ्जन ॥ ३४ ॥

ततो जगाम रथिनो जगादुर्द्धमो अगक्षिवासो यमलोकमाश्रिताम् ।
दिशः सहस्रे किरणैर्व्याप्य पुरीं ददर्श शङ्खं परिगृह्य चाच्युत ॥ ३६ ॥

तत्रप्रध्मापयामास शङ्खं खड्गधनुर्धर । तेनशब्देनविभ्रस्ता दृत्याम्नाल्यपद्यातित
नरकान्तगतास्मर्त्या पापाचारपरायणा । सुखमापुः प्रशान्ताश्च घट्टय कृष्णदर्शनात्

शस्त्राणि कुण्ठता प्रापुर्यन्त्राणि विविधानि च ।
विदीर्णानि तदा चाशु देवदेवस्य दर्शनात् ॥ ३९ ॥

असिपत्रवननाम शीर्णपर्णमजायत । रौरवनामनरकममैरवमभूत्तदा ॥ ४० ॥
अभैरवमैरवाख्य कुम्भीपाकमपाचिकम् । शङ्काटशङ्कसङ्कुशा लोहसूच्यप्यसूचिका ॥
दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणाह्वयाम् । नरकान्तेनदाचानेगतेविदग्रेश्वरेहिमे ॥
पापक्षयात्तनरस्सर्वे नमुक्तानरकाश्रया । पद्ममव्ययमासाद्य दृष्ट्वा विष्णुं तमोपहम् ॥
विमानेषुमहत्स्वेषु ह्यारूढास्तेसमन्तत । समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तास्तेसर्वपातकात्
ततश्शून्यमुनेनाभू सर्वं निरयमण्डलम् । दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिण
ततोदूता कृतान्तस्यवरुणश्चयुद्धकारिणम् । धारयामासुरव्यग्रा विशन्तनरकान्प्रति

किङ्करा ऊचुः

मावीरानेनमार्गेण रथमानयमानघाः । प्रयान्त्यधोगतिं पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः

यमादिष्टानराः पापाद्ये मोच्या वर्षकोटिभिः ।

दृष्ट्वा तएवसद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमथावृताः ॥ ४८ ॥

एतच्छ्रुत्वावचस्तेषां कृपयापीडितोभृशम् । पुनः प्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागतः

सर्वेषांस्वर्गदाताऽहं यमलोकनिवारकः । अञ्जसायमराड्दूता यमायाख्यातमेव च ॥

एतच्छ्रुत्वावचोदूतास्सत्वरायममागताः । सर्वमाचक्षिरेवृत्तं यथानारकिमोक्षणम् ॥

ततोयमोरुषाविष्टः प्राहतान्यमकिङ्करान् । यः कश्चिदागतोमर्त्यो मर्यादाभेदकृन्नरः

तंगत्वावारयध्वंवै गृहीत्वानीयतामिह । अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः

एवमुक्तो यमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः । गत्वातंवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम्

यदानवारितस्तस्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः । तदाशरैरतीघोरैस्ताडितस्तेनकेशवः ॥

बलदेवोऽपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः । तावुभौताडितौघोरैः समन्ताद्यमकिङ्करैः

आदायधनुषीदिव्ये जघ्नतुर्यमकिङ्करान् । बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरामजनार्दनौ ॥

नरान्तकोऽपिसमरे बलेनबलिनार्दितः । पपातगदयाभिन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ॥

ततोनरान्तकेवीरे पतितेयमकिङ्करे । किङ्कराणामभूत्सैन्यमार्तंरणपराङ्मुखम् ॥

तेदूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभयातुराः । यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ॥

ततोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किङ्करैर्वृतः । ततः प्राह यमः क्रुद्धोनोजितोऽहंपुरापरैः

ततोवादित्रघोषैस्तु मुरजानकगोमुखैः । नानाडमरुकाद्यैश्चचित्रगुप्तेचगच्छति ॥

देवाविद्याधराः सिद्धा द्रष्टुं प्राप्ता महाबलम् ।

कृतान्तस्य रणेऽक्षोभ्यं कामपालं जगत्पतिम् ॥ ६३ ॥

ततस्तेकिङ्कराः सर्वेचित्रगुप्तेननोदिताः । रथामावृत्यबाणौघैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥

बलश्चकेशवं सङ्ख्ये जघ्नतुस्तावुभावपि । रणेचविविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यतः

विदार्यचसहस्राणि किङ्कराणांसमन्ततः । कृतान्तानीकिनीमध्ये कृतान्तइवकेशवः

चचार रणदुर्द्धर्षः कामपालेन पालितः ॥ ६७ ॥

ततश्चित्रगुप्तोरणे किङ्करैश्च विदीर्णं निरीक्ष्याऽनन्तनादं चकार ।
शरैः पञ्चभिः कृष्णमायान्तमाजौ अथानाष्टभिर्वक्षदेशे समित्र ॥ ६८ ॥
प्रापतोऽस्योपरुष्य आसात्तदानीं तमालोक्य भिन्नं रणे नष्टसञ्ज्ञम् ।
रथं स्वं समादाय यात कृतान्तं ततश्चित्रगुप्तेश्वरार्ते प्रसुप्ते ॥ ६९ ॥
रणे कीर्तिलुप्तमयक्षोभयुक्ता स्वसैन्यैश्च युक्ताभयार्तानिवण्णा ।
प्रधानाश्च भग्नापि चिन्ताश्च भग्नान्ततश्चित्रगुप्त निशाम्याऽथ भग्नम् ॥ ७० ॥
स कालान्तमायान्तमालोक्य दूरादूर सैन्यमादाय दैत्यारिशत्रुम् ।
विनाशाय युध्यद्युगान्ते प्रजाना यथा वाडवो ज्वालवृद्ध प्रवृत्त ॥ ७१ ॥
तमायान्तमालोक्य काल कराल शरत्रातृणोदन्तक कालकल्प ।
स काल कराल समादायदण्डं मुमोचाच्युते पश्यतां देवतानाम् ॥ ७२ ॥
तत कालदण्ड प्रजाना विनाशो हरेस्सन्निकाश समभ्याजगाम ।
ततो देवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्रा पर विस्मय प्रापुरन्वीक्ष्य रामम् ॥ ७३ ॥
ज्वलन्तञ्च जग्राह कालस्य दण्ड स रामो वर लीलयानन्तमूर्ति ।
कालदण्डे गृहीते बलेनाहवे मोक्तुकामे पुन कालनाशाय वै ॥ ७४ ॥
तूर्णमभ्येत्य सङ्गान्तरे पद्मजन्म रणे वारयामास कृष्णतदा ॥ ७५ ॥
मा मुञ्च त्वमथादिधा काल कालायुध बली ।
त्वयाप्यवतावार धराधरधराधरा । धायते शिरसाद्य ससारेनास्ति ते सम ॥ ७६
त्वयाभिभवति विष्णुरुत्सङ्गेनसहोद्भवे । कोऽन्योऽस्ति त्वत्समो राम यो जगद्वहनेक्षम
नग स्वगाजगन्नीताजगद्भूताजगत्पति । पाल्यतेयस्त्वयासोऽपिविष्णुर्विश्वैकनायक
कस्त स्तुतिकराऽस्तीह को गुणान्वेतुमर्हति ।
ततो धय त्वदङ्कस्था विष्णुनाभिमवायना ॥ ७६ ॥
युक्त्वावलदेवश्च वासुदेवपुनर्वच । उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्वं जनन्सुरै ॥
कृष्णाकृष्णाकरालास्याकालस्यास्य कृपा कुरु ।

वेत्तिनायंजगन्नाथ नरकार्णवतारकम्। त्वयाचैभगवन्पूर्वंयमः संस्थापितः पदे॥
नृणांदुष्कृतकर्तॄणां नरकाययमः प्रभो!। तस्मादस्य जगन्नाथ क्षम्यतांपुरुषोत्तम!
विभो!कृतापराधस्यब्रूहियत्तेविवक्षितम। एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्कृष्णोधातःशृणुगुरोर्मम
सान्दीपनेस्समानीतस्सुतस्तेनागताविह। समर्प्यतांगुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठायगुरुदक्षिणा॥

आवाभ्यां या प्रतिज्ञाता तस्मात्सा पाल्यतां विभो!।
एतत्पितामहः श्रुत्वा यमं समरनिर्जितम्॥ ८६॥
समाहूयाऽब्रवीद्विष्णुर्यद्ब्रवीति कुरुष्व तत्।
तच्छ्रुत्वा धर्म्मराजस्तु विरञ्चिमिदमब्रवीत्॥ ८७॥

भगवन्विश्वकृल्लोकेनैषमार्गस्त्वयाकृतः। यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनः शरीरवान्॥
शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते। तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुःस्वयम्

विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छति करोतु तत्।
तस्मादर्पय पुत्रं त्वं मुनेस्सान्दीपनेश्च वै॥ ९०॥

नरकायं पुनः कृत्वा तच्चानयमहामते। तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा॥
ससर्जबालरूपञ्चतदात्मानंतदुद्भवम्। अर्पयामासकृष्णायबालरूपसमन्वितम्॥९२॥
समक्षंदेवतानाञ्च तदद्भुतमिवाभवत्। ततःप्राप्यगुरोः पुत्रं प्रभुःप्रीतःप्रजापतिम्

प्राह प्राप्तो मया ब्रह्मन् स्वरूपो द्विजदारकः।

श्रीकृष्ण उवाच

अद्यप्रभृति लोकेश! देशे मच्चरणाङ्किते॥ ९४॥

अवन्त्यामङ्कपादाख्ये मृतानेऽश्नन्तितेयमम्। महाकालोत्तरे देवमाद्यं वै पुरुषोत्तमम्
विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खोद्धारंचकेशवम्। येपश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेषांमूर्तिपञ्चकम्
नेनरानगमिष्यन्तिविरञ्चेनिरयंक्वचित्। तथैवागमनादत्र मम रामस्य नारकाः॥९७

विमुक्तास्ते त्वया घोरात् प्राप्नुवन्त्यखिला दिवम्।
इत्युक्ते वचने वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम्॥ ९८॥

यत्त्वयोक्तं वचःकृष्णतदस्तुसकलंसदा। ये च त्वामादिपुरुषं प्रथमंपुरुषोत्तमम्॥

प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि॥ ।
अघोज्चरे महाकाल सोऽश्वमेधफल लभेत् ॥ १०० ॥
एवमुक्तो हरि पुत्रमादायबलेन (हलिना) सह (?) ॥ १०१ ॥
मापृच्छ्यपवेधसदेवमारुरोहरथततः । शङ्खमापूरयामास कृतकार्योजनार्दन ॥ १०२ ॥
मोक्षायनिरयस्थान नृणावैपापकर्मणाम् । ततस्तेनशङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च
विष्याम्यिमानानारुह्य दिवमेवाखिलागता ।
शून्यतन्मण्डल जात नारायणसमागमे ॥ १०४ ॥
कालो पि दण्डमासाद्य बल्देवात्पुर पुरम् ।
प्रविवेश ततो धाता तथैवान्तरधीयत ॥ १०५ ॥
कृष्णोऽपिबल्यान्वार प्रामउज्जयिनींपुरीम् । बल्देवसहायस्तुरथेनाशुगामिना ॥
ततस्सान्दीपने पुत्रमपयामासकेशिहा । गुरवेयदभिप्रार्थ ततस्माद्कृष्णोऽभवत्
एवंसान्दीपने पुत्रदृष्ट्वाचतुनरागतम् । नागरास्तत्रराजाच विस्मयपरमययु ॥
तौचारावचयामासुमत्वादेवोत्तमोत्तमौ । सान्दीपनिरुवाचेद तौचरामजनार्दनौ ॥
इह स्थास्यति च कीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
स्थाने तु ययमेतस्मिन् स्थास्यामो यदुमल्लौ ॥ ११० ॥
नविज्ञातौमयार्वारौ यदुवृष्णिकुलोद्वहौ । नरनारायणौदेवौ देवकार्यायमागतौ ॥
माहरनुष्युमदेवत्तरवनंधाधिनवर्तते । प्राप्नोत्यत्रबल्नात्क्षेत्रस्वर्गलोकेमहीयते
शङ्खिलचिन्त्वरूपश्चमाधवश्चग्रिणतथा । च चारिविष्णुक्षेत्राणि अङ्कपादस्तुपश्चम
एषा यात्रा प्रवक्ष्यामि यथा कार्या मनीषिभि ।
मन्दाकिन्या कृतस्नानो दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ ११४ ॥
शङ्खोद्धारे ततस्स्नात्वा प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नान कृत्वाततः कुण्डे गोविन्दश्च समर्चयेत् ॥ ११५ ॥
चक्रिणश्चततोदृष्ट्वा चित्रकूपंततोत्रजेत् । तस्याग्रत करीकुण्डेस्नानकृत्वायथाविधि
पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद् बलकेशवौ ।

स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥ ११७ ॥

तथैव चक्रहस्तौ तौ दृष्ट्वा केशवमाव्रजेत् ।

शिप्राम्भसि नर स्स्नात्वा भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ॥ ११८ ॥

परावृत्याङ्कपादेतु तां रात्रिगमयेच्छुचिः । प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चसुव्रतान् ॥

गोदक्षिणाश्शक्तितु विश्वरूपायचैहयः । गोविन्दाय गजः प्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम्

उपोष्य द्वादशींविप्रायाङ्कपादंसमर्चयेत् । गन्धपुष्पैश्चधूपैश्चनैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥

श्राद्धंयःकुरुतेसर्वं तस्यपुण्यफलं शृणु । कुलानांशतमुद्धृत्य विमानैस्सार्वकामिकैः

गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सुचिरंवसेत् । पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायतेकुले ॥

प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकं पुनर्व्रजेत् ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽङ्कपादमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

चन्द्रादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि देवं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

चन्द्रादित्यमितिख्यातं चन्द्रादित्यार्चितम्पुरा ॥ १ ॥

यस्तंसमर्चयेद्देवं सुरासुरनमस्कृतम् । गन्धैः पुष्पैस्तथाधूपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥

चन्द्रादित्यादिसालोक्यं;प्रयाति सार्वकामिकैः ।

विमानैस्सूर्यसङ्काशैर्यावच्चेन्दुदिवाकरौ ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चन्द्रादित्यमाहात्म्यंनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

करभेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

करभेशस्ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण कुयोनौ नैव जायते ॥ १ ॥

व्यास उवाच

करभेशकथां देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । कथं देवस्समुत्पन्नः करभेशेतिसंज्ञितः

सनत्कुमार उवाच

पुरा देवगणैस्सार्द्धं देवदेवो महेश्वरः । वनेऽस्मिन् क्रीडयामास परमाह्लादसंयुतः ॥

क्रीडन् कदाचिदेकाले शङ्करः करभोऽभवत् । ततस्तैस्सर्वदेवैः शङ्करः करभाकृतिः ॥ ४

अन्वेष्यन्विन्देवास्ततो विस्मयसंयुताः । नापश्यंस्तिष्ठन्तात्र च देवं शूलपाणिनम् ॥

देवैः पृष्टस्ततो ब्रह्मा क्वास्ति देवो महेश्वरः । ध्यातोऽपि न ब्रह्मणा दृष्टो शुभयोगप्रभुर्हरः ॥६

देवैस्सार्द्धं ततो ब्रह्मा पप्रच्छ गणनायकम् । नन्दीश शङ्करोऽस्माभिर्गतः कुत्र विनायकः

कथयस्व नमस्तुभ्यं दासयामो त्वद्दृहुकान् विभो ।

एवमुक्तस्तदा हृष्टः प्रोवाच गणनायकः ॥ ८ ॥

करभोऽयमहादेवो दृश्यतां विबुधोत्तमाः । श्रुत्वाचैवं वचो देवा ब्रह्मणा करभं ययुः

ज्ञातोऽस्माभिर्महादेवो जल्पन्त इति ते स्वयम् ।

गत्वा देव तत सर्वे चतुर्दिक्षु स्थितास्स्वयम् ॥ १० ॥

विचिन्त्यैतिक्षयज्ञात शङ्करोविस्मयं गतः । त्यक्त्वा यकारमरूप देवदेवो महेश्वरः ॥

लिङ्गमुत्पादयामास देवस्तत्करभेश्वरम् । तद्दृष्ट्वा सुरास्सर्वे साष्टाङ्गप्रणतिस्थिताः

तत प्रभृति विख्यातश्शङ्करः करभेश्वरः ।

स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा यस्तमर्चयते शिवम् ॥ १३ ॥

गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैः शृणुतेषां यत्फलम् । सर्वमेधेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥

ततोऽधिकं स लभते नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
करभेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

गणेशमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

लड्डुकैश्चततोदेवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः । तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशोलड्डुकप्रियः
यस्समर्चयतेभक्त्या तस्यविघ्नंनजायते । तस्मैंददातिसन्तुष्टस्सर्वकामान्विनायकः
नक्ताहारश्चतुर्थ्यांच स्नात्वाशिप्रांविशेषतः । रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम्
रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रैस्स्नपनपूर्वकम् । चन्दनेनापिरक्तेन तंविलेप्य प्रपूजयेत् ॥ ४
धूपंदद्यात्तथादिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् । नैंवेद्येलड्डुकादद्याआज्यखण्डपरिप्लुताः
नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नं कदाचन । लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥ ६
अवतीर्णः पुनर्लोके जायतेवसुधाधिपः । मतिमान् पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशातिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
गणेशमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

गोमेश्वरादिवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

सुरसुरासुरद्वारे सुसत्सुस्नमहत्तमम् । यदपापूजदेवानु दिवह्नोवैं न शोचते ।
अथैश्वरस्तुय पश्येद्वृषध्वजंमहेश्वरम् । जयीश्वरास्सर्वकार्येषु शिवलोकंनगच्छति
शिवद्वारेशिवन्द्रिमध्येश्मामचोपदि । त्रिदिवंयातिपानेन गाणपत्यश्रुधिन्दति
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ।
मार्कण्डेयो मुनिवर तत्र तप्तसुमहत्तप ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा तंशङ्कर्रं दृवं पाजरामरत्वमाप्नुयात् । सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुजायतेनर
शृणु व्यास महाम्यानमत्यां पुर्ण्यमनुत्तमम् ।
यत्र तिष्ठति सा दृवा महाप्ता हंसवाहिनी ॥ ६ ॥
मत्तामांपूरयेदशातपुत्रपत्स्रविसालयेत् । यथा माता तथादेवी इष्टाशान्तिपरैरपि ॥
अर्चितामन्त्रण्यासस्तु स्नुमाहर्षात्सुरोत्तमै । अथयेद्रूस्यपुष्पेश्च सैंधवैस्तपसिद्धिद
अपिपामन्त्रण वृषमभूद्वर्षास्तुमिद्धिद । यस्मात्ररघातस्सरसिपश्येद्धुमन्मेश्वरं शिव
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकसमोदते । अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यक्षयापामनुत्तम
यत्रपेमन्त्रणावृषमिषोशङ्कस्सदक्षिण । यत्रायंयस्ततंकुण्डं यक्षपापोघसात्स्मृता
पशुश्च पातितो यस्मात्तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ।
तस्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पश्येत्पशुपतिं तु य ॥ १२ ॥
उद्धरेत्सपितृन्व्यास पशुयोनिगतानपि । सुवर्णमणिमुक्ताढ्यैर्विमानैस्सर्वकाम
याति रुद्रपुरं दिव्यंयत्रदेवोमहेश्वर । रूपकुण्डे नरस्स्नात्वा सुरूपोजायतेतथा ॥
स्वर्गे सदैव गन्धर्वैस्स्पृहणीयवपुर्भवेत् ।
कुण्डेस्नात्वाऽप्यनङ्गे यश्शुचिर्भूत्वा समाहित ॥ १५ ॥

पश्येच्च देवदेवेशमनङ्गेनार्चितम्पुरा । कामंसलभतेऽभीष्टं मृतोयाति शिवालयम् ॥
आषाढेतुसिताष्टम्यां जागरंयस्तुकारयेत् । केदारेयत्फलंप्रोक्तं तत्समानमवाप्नुयात्

करीकुण्डे नरस्स्नात्वा विश्वरूपन्तुयोर्चयेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥

अजागन्धेनरः स्नात्वा दृष्ट्वाब्रह्मेश्वरंशिवम् । ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणात्सव्यपोहति
चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा चक्रस्वामिनमर्चयेत् । जायतेसनरोव्यास! चक्रवर्तीसदाभुवि

सिद्धेश्वरञ्च यः पश्येत् स्नात्वा सुविधिपूर्वकम् ।
कामिकेन विमानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥ २१ ॥

सोमवत्यांनरस्स्नात्वासोमेश्वरमथार्चयेत् । सोमवन्निर्मलोभूत्वासोमलोकेसमोदते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
सोमेश्वरादिवर्णनंनामसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सोमवतीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

तीर्थंसोमवतीनाम लिङ्गंसोमेश्वरंतथा । अभूदेतत्कथंनाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थंसुशोभनम् । सोमेश्वरंतथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते

यो देवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनं परम् ।
आसीत्तस्य पुरा व्यास! पिता विप्रो महातपाः ॥ ३ ॥
अवन्त्याञ्च महाभागो योऽत्रिनामातपोनिधिः ।
वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणि तपो महत् ॥ ४ ॥

तुष्टोऽथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने! । दशवर्षसहस्राणि तेपेऽतिदुस्सहंतपः
ततस्तस्मैददौस्वाम्यंब्रह्मालोकपितामहः । बीजौषधीनांविप्राणांसोमोराजाबभूवह
सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः । पत्न्यःप्राचेतसोदक्षोददौनक्षत्रसञ्ज्ञकाः
सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा । समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥
होताचभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः । हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥

सदस्यो भगवान् विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृतः ।
ददौ स दक्षिणां सोमस्त्रींल्लोकान्सुसमाहितः ॥ ३० ॥
सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभावसुः ।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीस्तं देव्यो दिव्यास्सिषेविरे ॥ ३१ ॥

प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः । अतीवराजतेचन्द्रो दश प्रोद्भासयन्दिशः ॥

तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ।
विबभ्राम मतिर्व्यास! तदामृतमयस्य च ॥ ३३ ॥
बृहस्पतेस्तदा भार्यां तारानाम्नीं यशस्विनीम् ।
जहार तमसा साध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥ ३४ ॥
याच्यमानस्तदा सोमो देवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसाय च ॥ ३५ ॥

बृहस्पतेस्ततः पक्षं शक्रोजग्राहकोपतः । सहिशिष्योमहातेजाः पितुः पूर्वं बृहस्पतेः
ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरंशक्रसोमयोः । देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासङ्करंमहत्
सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणंशरणंगताः । अग्रतोब्रह्मणोयुद्धं कथितंसोमशक्रयोः
देवानांवचनं श्रुत्वा सार्द्धंदेवैः पितामहः । आगत्य युद्धसमयेऽवारयद्देवदानवान् ॥

वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सुरासुराः ।
तारामादाय स तदा ददावाङ्गिरसे द्विजः ॥ ४० ॥

ताञ्चसप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्यांबृहस्पतिः । अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भोधार्यःकथञ्चन
उत्ससर्जततस्तारां कुमारंदेवरूपिणम् । ग़ैषिकास्तंसमादाय ज्वलन्तमिवपावकम्

स तेजो जातमात्रोऽपि देवानामाक्षिपद्यशः ।
ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारां दिवौकसः ॥ ४३ ॥
कस्यायं ब्रूहि सुभगे सोमस्याथ बृहस्पतेः । नाब्रवीद्देवतानां वै धाता पप्रच्छ तां पुनः
यदत्र सत्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतो ह्ययम् । सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं विभुम्
सोमस्येति महासौम्य कुमारो देवसन्निभः ।
सोमस्य स सुतं मत्वा परिष्वज्य पितामहः ॥ ४६ ॥
बुधस्त्वकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य चैव तदा । परदारापहाराच्च यत्पापं समुद्भवं महत् ॥ ४७
तेन सोमोऽभवत्कुष्ठी क्षयरोगयुतस्तदा । ततो राज्येऽस्थापयत् पुत्रं स्थापयित्वा यथाविधि
अवन्तीमागमाग्रु सोमोऽपि विह्वलस्तथा । सोमाह्वे सोमवत्याश्च समायोगे जितेन्द्रियः
स्नात्वा सम्पूजयामास सोमस्सोमेश्वरं ततः ।
तस्य भक्त्या च सन्तुष्टः प्राह सोमं महेश्वरः ॥ ५० ॥
मत्प्रसादाद्ध्रुवं कान्तं तव सोम भविष्यति ।
सोमेश्वरमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥
यत्र तु व्यास तत्तीर्थं लिङ्गं चैवातिदुर्लभम् । कथितं भक्तिभावेन मयाद्योऽयं साम्प्रतम्
श्रावणं प्राप्य यो मासं सोमनाथं जितेन्द्रियः ।
नित्यं पश्येन्नरो व्यास तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५३ ॥
सौराष्ट्रे सोमनाथस्य पूजाया यत्फलं स्मृतम् ।
लभते स नरो व्यास नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
सोमवतीतीर्थमाहात्म्यनामाऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

तीर्थस्यनरकस्यास्य माहात्म्यंशृणुसाम्प्रतम् । तीर्थेत्वनरकेस्नात्वादृष्ट्वादेवंमहेश्वरम्

न पश्येन्नरकं क्वाऽपि यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ।

व्यास उवाच

कियन्तो नरकास्तात! कस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥

पतन्तिकेनपापेन पापिनस्तेपुदुःखिताः । तत्कथंप्राणिनस्तत्रगच्छन्तिपापकारिणः

एतत्सर्वं समाख्याहि यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो! ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वनरकान्व्यास! यावन्तोयत्रसंस्थिताः । नलभ्यन्तेयथातेतु सत्यमेतद्वदामिते

पातालनिलयास्सर्वे विख्याता दुःखदास्सदा ।

पुण्यप्लावेन ते सर्वे निर्यान्ति स्वकर्मभिः ॥ ६ ॥

रौरवश्शूकरोरौद्रस्तालोविनशकस्तथा । तप्तकुम्भस्तुतप्तायो महाज्वालस्तथैव च

कुम्भीपाकः क्रकचनस्तथा चैवातिदारुणः ।

कृमिभुक्तिश्च रक्ताख्यो लालाभक्षश्च गण्डकः ॥ ८ ॥

अधोमुखश्चास्थिभङ्गो यन्त्रपीडनकस्तथा । सन्दंशोरुधिराङ्कश्च असिपत्रकुभोजनौ

इत्येवमाद्यस्सर्वेनरकाभृशदारुणाः । यमस्यविषयेसन्ति श्रुता हि भयदायिनः १०

पतन्तिपुरुषास्तेपु पापकर्मरताश्चये । पतिताश्चप्रपच्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः ॥ ११

यातनाभिर्विचित्राभी रौद्रकर्मक्षयोभृशम् । सुगाढंहस्तयोर्बद्ध्वा तप्तश्टङ्खलयानराः

महावृक्षस्यश्टङ्गेपु लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ।

शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ १३ ॥

असिपत्रैः शङ्कुभिश्च लोहदण्डैस्सकण्टकैः ।
हन्यन्ते किङ्करैर्घोरैस्समन्तात्पापकारिणः ॥ १४ ॥

ततः प्रपन्नस्तस्यन्ते द्विना घविदीरन । समन्ततः प्रक्षिप्यन्ते कृताध्वजर्जरीकृता
कृतमाख्यनपानस्य पक्षपातेनयोवदेत् । यथान्यदन्नतृषा मनरोयातिरौरवम् ॥
सुरापोब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य गुरुतल्पगः । प्रयान्तिनरकञ्चैव तैस्संसर्गमुपैति यः १९
भूपदारागुरुद्रव्यहर्ता गोघ्नश्च मुनिमत्तमः । यान्त्येते नरकं रौद्रं ये च विश्वासघातका
न्यस्तन्यासापहर्ता ये तथैव गुरुतल्पग । करोतिकर्मवैभिन्न यश्चगा प्रतिषेधयेत्
नरोयोनरकेयाति नरकेभृशदारुणे । स्वामिद्रोहीच योरौद्रन्तनुकुम्भेसपात्यते ॥
तप्तलोहेपुरञ्चैव बन्धुभनपरित्यजेत् । स्नुषासुताश्चयोगच्छेन्महाज्वालेसपात्यते
कुम्भीपाकेप्रयान्त्येव पादैरूर्ध्वैरधोमुखः । देवदूषयिताचैव वेदविक्रयकास्तथा ॥ २२
परस्त्रीगामिनोयेच यान्तितप्तवनेतुते । चौरोऽतिदारुणेयाति मद्यपानेरतस्तथा
देवद्विजपितृद्वेषी रत्नदूषयिताच यः । सयातिकृमिभक्षे च रक्तान्येव पतन्तिये ॥ २४
पितृदेवगुरूणाञ्च सपर्यां न करोति यः । लालाभक्षनयात्युग्रं कूटकर्मकरोति यः
सात्यजेत्पुत्रमहानाथ नरकेयात्यधोमुखे । अस्थिभङ्गेप्रयात्येव यकोमित्राणमुद्गर
कृतघ्नः पिशुनः क्रूरः कूटमानाविदम्भकः । यश्चपौंडनके याति परगुह्यप्रकाशकः ॥
लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानाञ्चरसस्य च । विक्रयाब्राह्मणोयाति सन्दंशेनाशमस्य
मधुहाग्रामहन्ताच यातिवैतरणींनदीम् । धर्माधर्मविरुद्धं च कर्मकुर्वन्तियेनराः ॥ २६
कसणामनमायासा महानद्याप्रयान्तिते । गुरूणामवमन्ताच शास्त्रदूषयिताचयः ॥
असिपत्रेप्रयात्येव तथापववित्दूषकः । धनयौवनमत्ताये मर्यादाभेदिनो नराः ॥ २१
ते यान्ति नरके घोरे असिपत्रे तिदारुणे । असंस्कृतश्चयो विप्रो वृषलीसेवनेऽनुवै
वृषलीमिथुनाच्चैव पततस्तावुभावपि । उच्छिष्टायेस्पृशन्तीह भामग्निजननींद्विजान्
तेपच्यन्तेकृमोज्येहि मित्रद्वेषीविशेषतः । पङ्क्तिभेददिवास्वप्न येनराब्रह्मचारिणः
पुत्रैरध्यापितायेचै तेपतन्तिकृमिभोजने । एतेचान्येच नरकाः शतशोऽथसहस्रशः ।

तत्र दुष्कृतकर्माणः पच्यन्ते यातनागताः ।

नृणां स्वर्गाश्च यावन्तस्तावन्तो निरयास्तथा ॥ ३६ ॥
पापं कृत्वा तु बहुलं प्रायश्चित्तपराङ्मुखाः ।
कृते पापे च वै तापो यस्य पुंसः प्रजायते ॥ ३७ ॥
प्रायश्चित्तन्तुतस्यैकं शिवसंस्मरणंपरम् । तस्मादहर्निशंशम्भुं संस्मरन्पुरुषोत्तमम्
नयातिनरकंशुद्धस्सङ्क्षीणाखिलपातकः । कार्त्तिकस्यासितेपक्षे याभवेच्चचतुर्दशी
तस्यां दीपः प्रदातव्यो देवदेवस्य चाग्रतः ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे नरकेश्वरनरकतीर्थमाहात्म्यं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

दीपदानमाहात्म्येशिवशिवासम्वादवर्णनम्

व्यास उवाच

दीपेऽस्मिन्यत्फलंदत्तं विधिनायेनदीयते । तत्सर्वंब्रूहिमेतात!दीपोत्पत्तिञ्चशोभनम्

सनत्कुमार उवाच

पुराकृतयुगेशम्भुः पार्वतींशङ्करोयदा । अभिप्रयाचितुंयातस्तयापिसोऽभियाचितः

पार्वत्युवाच

शरीरेकृष्णताशम्भो ममास्तेरूपहारिणी । तस्माद्याचेभृशंशम्भोप्रसीददिव्यलोचन
भवेनवर्णितासावैअतीवशोभनामम । लोचनेपक्ष्मपङ्क्त्येव शोभतेऽतितरांसदा
सिताब्जसंस्थितो भृङ्गो यथा शोभयते च तम् ।
तथा तथा याचितोऽसौ धूर्ज्जटिर्वृषभासनः ॥ ५ ॥
विरूपरूपकर्ता त्वं नश्रृणोषिवचोयदा । तदात्वहंतुवैराग्याच्चरेयं दुष्करंतपः ॥
भवस्तयापि चोक्तस्तु तस्या वै पाणिमग्रहीत् ।

कदाचिच्छङ्करो देवो रतिं याचितवान् प्रियाम् ॥ ७ ॥
रतिंदत्त्वनीसातु जहासनामकातयन् । सुदुःखिताभवत्सातु तविहायपराङमुखी
उवाचरोषसयुक्ता स्मरन्तीद्वभाषितम् । तपोवनवआमयद्य सुगौरत्वोपलब्धये।
सुवर्णरूपरूपिणी यदा पुनर्भवामि चेसदातयानुरागिणी भवामि चैव नान्यथा ॥१०
इतीदमेव अहपती जगाम विन्ध्यपर्वतं दुरत्सुशोभ ता ततो गताक साविहाय माम
स्मरसदेव चेष्टितं यदेव पूर्वभाषितं तदैव मे वृथामतिमुदा यदा नमानिता॥
यतोमया हिमाद्रिजा समस्तलोकसुन्दरी पुरैवनाभिनन्दितामतां विहायमामिति ॥
इतीदमेव सोऽपदद्गृनतस्त्वदर्शन तत प्रियावियोगमीदृशं शुरुनशोदुमुत्सहे ॥ १४ ॥
समोजनसदाभवन्महामयेनसयुतम् सुरासुरामहर्षय परंविषादमभ्ययुः ॥ १५ ॥
विहायमन्दिराणितेपरंविषादमागता । हरेत्मुर्तिपराञ्जतमचकुरद्भुतोपमाम् ॥ १६ ॥

सनत्कुमार उवाच

नष्टश्यतियदारुद्रो देवोयाञ्चेन्दुशेखर । नष्टालोक जगत्सर्वं कान्तारमभवत्तदा ॥ १७
त्रीणिनेत्राणि रुद्रस्य यतस्सूर्येन्दुवह्नय । गतरुद्रे न ते भान्ति जगत्यस्मिश्चराचरे
ततस्तमसि दुस्तारे सम्भूते लोमहर्षणे ।
न योग्य हि न पश्यन्ति सुरा दैत्यास्तमोवृता ॥ १६ ॥
एवायुक्तिस्ततस्तेवामु पद्माकायसिद्धये । ययाबुद्धयाजगन्नाथो ज्ञायतेपार्वतीपति
नष्टालोकोविभातमशशिसूर्याग्निवर्जुया । परस्परप्रब्रुवन्तिस्मदुःखितास्तेधिसश्चया
हेदेवहेमुनेसिद्ध हेमृप हेनिशाचर । हेदैत्यहेदनुश्रेष्ठ हेमनुष्यनिदेशक ॥ २२
गतोऽसि का दिशं तात ! को वा त्वं जस्त्वया धिमो !
क च विश्रामभूमिस्ते किञ्चिद्दालम्बनतव ॥ २३ ॥
पाथेयमस्ति किञ्चित्तेदैशिकोवायकुत्रचित् । प्रकाश वाहन छत्रमशन शयनं गृहम्
क च वास कथं ते वाप्यथवा चित्तनिर्वृति ।
बन्धु पुत्रोऽस्ति वा तात वृक्षच्छाया सुशीतला ॥ २५ ॥
एवंप्रकारंकरुणं समाभाष्यपरस्परम् । मुयश्चिन्तापरास्सर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमा

भूमेर्विवरमाश्रित्य प्राणिनोयेवसन्त्यपि । रसातलेचद्वैतेयास्संस्थिताः पन्नगाश्चये
नतेषांविद्यतेसूर्योनेन्दुर्नान्येमहाग्रहाः । नाग्निर्देवमुखंविद्युच्चैव तारककोटयः ॥ २८

केनालोकेन पश्यन्ति समानि विषमाणि च ।
नरकस्था नरा लोकं केन पश्यन्त्यलोकनात् ॥ २९ ॥

विचरंस्तु सनःकोवा मनोरथशतप्रदः । तृष्णाम्भः क्षुधितान्नञ्च श्रान्तानामथवाहनम्
श्रमे शय्याजलेनौश्च रोगेसत्परिचारकः । श्रेष्ठौषधिरसद्रोगे सम्पदोव्याधिसङ्कटे ॥
सुहृद्विदेशेछायोष्णेनिर्धूमशिशिरेशिखी । महाभयेपरित्राणं प्रकाशश्चमहानिशि ॥
सर्वदार्थेवसर्वेषां मनोरथशतप्रदः । एकएवमवेद्योनस्तन्नजानीमहे वयम् ॥ ३३ ॥
ब्रुवन्तस्त इतिव्यास!शुश्रुवुर्मधुरांगिरम् । श्रुतपूर्वांनभोमध्याद्विष्णोरतुलकर्मणः ॥

न जानन्ति स्थितः कुत्र भाषते केशवो विभुः ।
शृणुध्वमिति मे वाक्यं सर्वे चैव समाहिताः ॥ ३५ ॥
दानमेकं सदा सम्यक् चिन्तामणिसमं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव दानानां दीपदानं प्रशस्यते ॥ ३६ ॥

तद्देयमतःसर्वे शृणुध्वंतत्त्वतोभृशम् । मयारसातले पूर्वं नागानामनुकम्पया ॥ ३७
उत्पादितोदीपवरो येनध्वस्तमिदंतमः । एवंभूतस्तुवायूनामप्रधर्ष्योमहाप्रभः ॥

निष्कम्पो निर्मलो हृद्यःसुन्दरो भास्करप्रभः ।
नात्युष्णो नातिशीतश्च दिव्ययोगसमुद्भवः ॥ ३९ ॥

तेदीपप्रकाशेनगोकर्णानिर्वृतिययुः । नागा शेषादयः सर्वे नोद्यमानाश्चसङ्घशः ४०
तदादीपसहस्राणिददुस्तेचैवशिवाग्रतः । पर्वतेषुसमुद्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ४१ ॥
नदीतीरेषु सर्वत्र दीपान्प्रज्वाल्यरेमिरे । भुञ्जानाः फलमूलानि दिव्यानीक्षुरसंतथा
परमान्नञ्च मांसानि मकरन्दं घृतोदनम् । चन्द्रशालिभवंभक्तं ताम्बूलंसमधागतम्
मद्यमष्टप्रकारंतु भार्यापीतावशेषकम् । शयनेषु महार्हेषु हृद्यासु वनराजिषु ॥ ४४ ॥
वृक्षमूलेषुसर्वेषु घनच्छायोपशोभिषु । रमन्तेस्मचतेसर्वेउद्वेष्टन्तःपरस्परम् ॥ ४५ ॥

कामतन्त्रोपदिष्टैस्तु चेष्टितैश्चुम्बनादिभिः ।

सूर्यतापभयान्मुक्ताश्चन्द्ररश्मिभयाच्च ते ॥ ४६ ॥
विमुक्ताश्च भयाद् घोरात् पिपीलिकोद्भवात्तथा ।
सूर्यतापेन दाह स्याच्छीत चन्द्रमरीचिभि ॥ ४७ ॥
मयूरनकुलाद्यैश्च पिपीलीसरणाद्भयम् । सौवर्णान्दीपकान्कृत्वा द्विजेभ्यस्तेददु पुन
तेन पातालमाश्रित्य कृत्वा भोगवतीम्पुरीम् ।
वसन्ति सुखिनस्तत्र स्वर्गादष्टगुणास्तदा ॥ ४६ ॥
एवमन्यत्तमोदेवा पाताले दीपतोगतम् । एतद्गुह्यमयाख्यात भवतामनुकम्पया ॥
दीपदानमतो यूयं कुरुध्व सुसमाहिता ।
दीपाग्निना विना नैव तमो दाह मदहाने ॥ ५१ ॥
नारायणपरा देवा निशम्याथ समाहिता । एवमुक्तेपुन सर्वे हृष्टादामोदरम्विभुम्
ब्रूहि नोत्रि जगन्नाथ सदीपोयेन जायते । घोरतमसि वैभवा नाभिजानीमहेवयम्
देवानामानसोवह्निरथकृष्णो मुकीर्तित । तेनदीप च प्रज्वाल्य देवा शिवपरायणा
ददुस्ते शिवमुद्दिश्य सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।
दत्त दीपे ततो देवैर्नष्टो हृष्ट महेश्वर ॥ ५५ ॥
तिमिरतन्नतश्चापि जगत्यनञ्जीकृतम् । ततोदेवा सुखम्प्रापु स्वर्गेसेन्द्रपुरोगमा
दीपदानफल ज्ञात्वा दैतेयाश्चापि विस्मिता ।
राज्य भोगान्विसम्प्राप्य सार्द्धं स्त्रीभिश्च रेमिरे ॥ ५७ ॥
तदैव फलहारं ता व्यास यक्षाश्च विस्मिता । पूजयित्वामहादेवपुष्पैश्च निर्मलजलै
ददुर्दीपसहस्राणि सर्वे शिवपरायणा । स्वस्थानेवामवन्सर्वे दीपदानाच्च शोभनात्
स्वेच्छया भुञ्जते भोगान् बन्धुभृत्यादिसयुता ।
निराहारास्ततो व्यास पिशाचा वै निराश्रया ॥ ६० ॥
दीपदानफल ज्ञात्वा सर्वे तपरिविस्मिता । चाण्डालादग्निमानीय ददुर्दीपशिवे रता
दीपदानफलात्तेवै पुत्रदारसमन्विता । लिहामानगतरस पूतिपर्युषित तथा ॥ ६२ ॥
उच्छिष्ट सूतिकास्पृष्टमभक्ष्यञ्चातिलङ्घिनम् ।

भुञ्जानास्ते सदाहृष्टा रमन्ते दुष्टभूमिषु ॥ ६३ ॥
विद्याधरास्तथामर्त्याः सिद्धाश्चशिवमानसाः। दीपदानफलंप्राप्त्याद्दुर्दीपंशिवाग्रतः
दीपदानात्ततःसर्वे सर्वभोगसमन्विताः। स्थानेषुमुदिताःस्वेषु रमन्ते सुखिनः सदा
तिमिरंतद्गतञ्चैव व्याप्तंलोकेषुदीपतः। ततोघोरंस्थितंसम्यक् प्रेतलोकेषुसर्वदा
प्रेतलोकंतदा दृष्ट्वा घोरेणतमसावृतम् । दामोदरंजगन्नाथमूचुः सर्वे सुरोत्तमाः ॥
घोरञ्चैवतमोहत्वाप्रसन्नास्तेसदाविभो। गन्धर्वाश्चतथायक्षाः सिद्धाविद्याधरोरगाः
वयञ्चैवतथामर्त्याःसर्वेभोगैश्चसंयुताः। स्थानेषुच सदास्वेषु रमन्ते सुखिनोभृशम्
प्रेतलोके नरायेवै घोरेणतमसावृता। वसन्ति च जगन्नाथ! वर्तन्तेश्चातिदुःखिताः
नतैःकृतंशुभंकर्म कृष्णालंपापमोहितैः। नतेषां विद्यतेकिञ्चित्प्रकाशंकरोति च ॥
घोरेतमसितेमग्नास्तत्रनार्केन्दुवह्नयः । नसहायोनजायेयं नालम्बोनच दैशिकः ॥

न वाहनं न शय्या च केवलं तु महत्तमः ।
तत्राष्टाऽविंशतिः ख्याता घोरा नरकभूमयः ॥ ७३ ॥
तमोमयाश्च ता सर्वाः पापिनां भयदाः सदा ।
सुखं तत्र कथं कृष्ण! लभन्ते दुःखिता नराः ॥ ७४ ॥
दारिद्र्य दुःखरोगैश्च मायामोहैश्च सर्वदा ॥ ७५ ॥

सनत्कुमार उवाच

इतिश्रुत्वातु देवानां प्रार्थनांगरुडध्वजः। उवाचवचनंहृद्यं मनोरथफलप्रदम्॥
शृणुध्वं त्रिदशास्सर्वे यत्प्रवक्ष्यामिवोवचः। अवन्त्यांवर्ततेतीर्थं सद्यःपापहरंपरम्
अनकाख्यंमहापुण्यंसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। कार्तिकस्यासितेपक्षेचतुर्दश्यांसमाहितः

तत्र स्नात्वा नरो यस्तु यमध्यानपरायणः ।
संगृह्य वै तिलान्कृष्णान् पितृभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ७६ ॥

दक्षिणाभिमुखोभूत्वा मध्याह्नेसुरसत्तमाः !। अपसव्यंतथाभूत्वा मन्त्रैःसन्तर्पयेद्यमम्
यमाय धर्मराजाय मृत्यवेचान्तकायच। वैवस्वताय कालाय दक्षाय मनचेतथा॥
कृष्णाय कृष्णगुप्ताय प्रेतलोकपरायच। हरयेरविपुत्राय कालिन्दीसोदराय च ॥

तथा च श्राद्धदेवाय पितॄणां पतये तथा ।
मन्त्रैरेभिर्नम प्रान्तैरेतैराद्यैस्तुशोभनैः ॥ ८३ ॥

जलाञ्जलिमर्घ्यं च दद्यात्तु तिलसंयुताम् । सन्तर्पयेद्यमं देव तिलपात्र समाहित प्राज्ञो विप्राय चैव दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जित । अनेनविधिनायस्तु तर्पयेद्यम विभुः पितरस्तस्य मुच्यन्ते निरये ये गता अपि । राजितशायलप्राप्य मानव कीर्तिसंयुत मम पितृभ्य प्रेतेभ्यो नमोधर्माय विष्णवे । नमस्सूर्याय रुद्राय कामनायपनयेनम एभिर्मन्त्रैर्यमं दीप योदत्वा द्युतपूरितम् । कार्तिकन्तु समग्रन्तु यद्वन्तेसस्यसम्पद

सम्पूर्णे कार्तिके चैव दीपोद्यापनमारभेत् ॥ ८९ ॥
दिवाकराहेऽस्तमिते च सूर्ये दीपस्य वृत्ति पुरुषप्रमाणम् ।
यूपाकृतिं यज्ञियदारुणा च करोति धीमान्यमभक्तिचित्त ॥ ९० ॥
निक्षिप्य भूमावथ हस्तमात्र मूर्ध्नि द्विहस्तायतलाञ्छिताश्च ।
धार्याश्चतत्र शुभपट्टिकाश्च छिद्रे प्रयुक्ताश्चतुरङ्गुलेन ॥ ९१ ॥
तत्कर्णिकायान्तु महाप्रकाशो देयो हि दीप परया च भक्त्या ।
विशुभ्रुषा दीपवरास्तथाष्टौ दलेषु तस्याघृतपूर्णमात्रा ॥ ९२ ॥
अनङ्गपत्रस्याङ्कितशङ्खखण्डं नव सुरक्त ह्यथवा सुशुक्लम् ।
वस्त्रं प्रदेयञ्च ततो हि दद्यात्सिग्धे स्वखण्डे सुसमे प्रशस्ते ॥ ९३ ॥
तच्छाक्तिविप्रो परिसन्निधाय यथा न निर्याति न कम्पते च ।
हस्तान्प्रकाशत्रिगुणप्रमाणो मध्यस्थित स्यात्तथ दीपराज ॥ ९४ ॥
दलेषु शोभार्थमतीव कुर्यान् मनोरथप्राप्त्युपलब्धये च ।
घण्टाष्टक रञ्जितपुष्पदामसवस्त्रशोभान्वितमत्रकार्यम् ॥ ९५ ॥
संलिप्य भूमिं त्वथ गोमयेन पुन सुगन्धेन जलेन लिप्त्वा ।
कुर्याद्विचित्रं त्वथ मण्डलञ्च दलाष्टकं वै कमलञ्च रम्यम् ॥ ९६ ॥
ततो जलं शीतलमानयित्वा आपूर्य चाष्टौ कलशांस्तु रम्यान् ।
निधाय मूर्ध्नि क्रमशो हि धीमान् फलानि मूलानि तथेक्षुकाणि ॥ ९७ ॥

मध्वाज्ययुक्तादधिदुग्धयूपा नैर्ऋत्यकोणादथ दक्षिणान्तम्।
धर्माय दद्यादथ शङ्कराय दामोदरायाप्यथ वेधसे च ॥ ९८ ॥
प्रजापतिभ्यःक्रमशो हि भक्त्या प्रेतेभ्यइन्द्राय तथा पितृभ्यः।
हेमादिपात्रं तिलपूर्णमेव दद्याद् द्विजानाञ्च सदक्षिणञ्च ॥ ९९ ॥
गावो हिरण्यं रजतञ्च वस्त्रं फलादिमूलानि यवाश्वधान्यम्।
गृहं रथं कुञ्जरमश्वमेव मनोज्ञमन्यं हृदये हि यच्च ॥ १०० ॥
विद्याधिकेभ्यो द्विजसत्तमेभ्यः पौराणिकेभ्यश्च तथा द्विजेभ्यः।
एकैकसम्प्रीणनमत्र कुर्याद्दीपैर्दलस्थैश्च यमादिकानाम् ॥ १०१ ॥
धर्माय देयस्त्वथ मध्यदीप आज्ञाञ्च लब्ध्वा स्वगुरोः सकाशात्।
नृत्येन गीतेन सुशोभनेन युक्तं सुवाद्येन च कारयेच्च ॥ १०२ ॥
एतत्समग्रं विधिवच्चकुर्यात्स्वशक्तिमादौ स्वधनं समीक्ष्य।
आहूय विप्राञ्छुभभावयुक्तान् वदेच्चधीमान्परया च भक्त्या ॥
दीपान् समग्रानपि वर्जयित्वा सर्वं नयेयुः स्थितमत्र विप्राः ॥ १०३ ॥
प्रदक्षिणीकृत्य विसृज्य विप्रांस्ततो भवेद्वै स च नक्तभोजी।
एवं कृते नागलोकाद् विशिष्टं सुखम्भवेत्प्रेतलोके स्थितानाम् ॥ १०४ ॥
एवमेव नरो व्यास! दीपदानं करोति यः।
तस्यैव यत्फलम्प्रोक्तं तदिहैकमनाः शृणु ॥ १०५ ॥
वैमानैःकामिकैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः। उह्यमानोदिवं यातियावच्चन्द्रदिवाकरौ

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
दीपदानमाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

तथा वै भाद्रदेवाय विभूत्यै धनदे तथा ।
सर्वेभ्यो निवेदयेत्सर्वेभ्यो [illegible] ॥ ८३ ॥

[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

[illegible] ॥ ८९ ॥

दिवाकरेऽस्तमिते च पूर्वे दीपस्य वृत्तिं कुरुतस्मादाय ।
घृतादिभिः [illegible] करोति धीमान् [illegible] ॥ ९० ॥
निर्दीप्य भूमावथ [illegible] ।
[illegible] ॥ ९१ ॥
[illegible] दीपो हि देव [illegible] ।
[illegible] ॥ ९२ ॥
[illegible] गुरुत्वं [illegible] ।
[illegible] ॥ ९३ ॥
[illegible] यथा न निर्वाति न कम्पते च ।
[illegible] ॥ ९४ ॥
दत्त्वेषु सोमाय [illegible] कुर्यात् [illegible] च ।
घण्टादिकं ध्वजवितानपुष्पदामसमन्वितमत्र कार्यम् ॥ ९५ ॥
संलिप्य भूमिं स्वयमेव गोमयेन पुनः सुगन्धेन जलेन सिक्त्वा ।
कुर्याद्विचित्रं स्वयं मण्डलञ्च दलाष्टकं वै कमलञ्च रम्यम् ॥ ९६ ॥
ततो जलं शीतलमानयित्वा आपूर्य चार्घ्यं कलशांस्तु रम्यान् ।
निधाय मूर्ध्नि प्रयतो हि धीमान् फलानि मूलानि तथेक्षुकाणि ॥ ९७ ॥

उज्जयिनीति वै नाम्ना ख्याति लोके गता विभो! ॥ १७ ॥
तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय । सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोव्यवस्थितः ॥
देवःसदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः। दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते
तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः । लभन्तेतेपरं स्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः॥
तीर्थानामपि तत्तीर्थं भोधिष्णोऽवन्तिमण्डले ।
आजगाम ततोऽवन्तीं सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ॥ २१ ॥
तस्यांस्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् । महाकालं यदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः
वाण्या ततोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।
भोभोराघव! भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापयस्व माम् ॥ २३ ॥
अत्रस्थानं मयादत्तं माविचारय राघव! । ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्
अनुगृहीतः सौमित्रे देवदेवेनशम्भुना । तस्मात्स्थापयतीर्थेऽस्मिँल्लिङ्गंरामेश्वरंशुभम्
वाक्यं तल्लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ।
दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय । करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनं शुभम्
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतयाकिंकरिष्यसि । रामनाऽहंसर्वकालंदासभावंकरोमिते
इयंचपुष्टासुदृढा पावराचममाप्यतः । वद राघवसत्येन अनया किंकरिष्यसि ॥ २८
श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् । विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना
यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह । स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ
नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे । उत्तिष्ठवत्ससौमित्रे व्रजामोदक्षिणां दिशम्
सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ताकथञ्चन । व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण
नाहमग्रेवनं यामि नचायोध्यांकथञ्चन । एवं ब्रुवाणंसौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः॥
कथंपूर्वमयोध्याया निर्गतोसिमयासह । वने वसाम्यहंराम नववर्षाणिपञ्च च ॥ ३५
प्रसादः क्रियतांमह्यं नयमामपिराघव । इदानींत्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिशत्रुहन् ॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ता वनं पुनः ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच ११

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् । प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रु
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा च पश्यतिमहेश्वरम् । केदारेयत्फलं प्रोक्तं तदत्रापिलभे
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः । विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ।
जटाश्टङ्गेनरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः । दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं तत पापाद्विमुच
महाहनयनमाद्दीच कृष्णामकृष्णेविउचअप्रसि । मातृकपैतुकचैव कुलानातारयेच्छा
इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेश्वरं शिवम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शक्रलोकेमहीः
कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायण । लभतेसनरोव्यास! शिवदीक्षाफलंशुभ
गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्वरंशिवम् । शिवलोकं सचैयाति ह्यमृतावमरोय
स्नात्वाशुचिपिशाचतीर्थे शिवदेवंप्रणम्यच । तिर्यग्योनिंनरो नैव प्रयातिमुनिपुङ्गव
विजयेचनरः स्नात्वाआनन्देश्वरपूजनात् । विमुक्त सर्वपापेभ्य स्त्यशैवे विजयीभवे
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि कुशास्थल्या विनिर्मितम् ।
देवं रामेश्वरं व्यास! भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥
चित्रकूटात्पुरारामो वैदेह्यालक्ष्मणेनच । अत्रराम समागत्य पप्रच्छमुनिसत्तमम्

रामोवाच

कानितीर्थानिपुण्यानि किंवाक्षेत्रमहामुने! । यत्रगत्वानचाप्नोतिवियोग सहयान्धवै
अनेनरनचासीन मरणेनपितुः प्रभो । सुतस्यवियोगेन प्रतप्येऽहं त्रिभिर्मुने ॥ १४।
तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वाविप्रर्षभस्तदा । ध्यात्वानुसुचिरं कालमिदंवचनमब्रवीत
साधुपृष्टंत्वयावीर रघूणां वंशवर्धन । ममपित्राकृतं क्षेत्रं प्रयाचशिवमादरात् ।
अवन्तीविषये राम पुरा तस्मिन् कुशास्थली ।

उज्जयिनीति वै नाम्ना ख्यातिं लोके गता विभो! ॥ १७ ॥
तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय । सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोव्यवस्थितः ॥
देवःसदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः। दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते
तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः । लभन्तेतेपरं स्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥
तीर्थानामपि तत्तीर्थं भोविष्णोऽवन्तिमण्डले ।
आजगाम ततोऽवन्तीं सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ॥ २१ ॥
तस्यांस्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् । महाकालं यदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः
वाण्या ततोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।
भोभोराघव! भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापयस्व माम् ॥ २३ ॥
अत्रस्थानं मयादत्तं माविचारय राघव! । ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत्
अनुगृहीतः सौमित्रे देवदेवेनशम्भुना । तस्मात्स्थापयतीर्थेऽस्मिल्लिङ्गंरामेश्वरंशुभम्
वाक्यं तल्लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ।
दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय । करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनं शुभम्
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतयाकिंकरिष्यसि । रामनाऽहंसर्वकालंदासभावंकरोमिते
इयंचदुष्टासुदृढा पापराचममाप्यतः । वद राघवसत्येन अनया किंकरिष्यसि ॥ २८
श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् । विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना
यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह । स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ
नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे । उत्तिष्ठवत्ससौमित्रे व्रजामोदक्षिणां दिशम्
सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ताकथञ्चन । व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण
नाहमग्रेवनं यामि नवायोध्यांकथञ्चन । एवं ब्रुवाणंसौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥
कथंपूर्वमयोध्याया निर्गतोसिमयासह । वने वसाम्यहंराम नववर्षाणिपञ्चच ॥ ३५
प्रसादः क्रियतांमह्यं नयमामपिराघव । इदानींत्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिशत्रुहन् ॥
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ता वनं पुनः ।

लक्ष्मणं विरतं ज्ञात्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

मामनुव्रज सौमित्रे एको यास्यामि काननम् ।

द्वितीया ■ त्विय सीता उक्तो रामेण लक्ष्मण ॥ ३८ ॥

धनु सगृह्यधिमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा । प्रासौप्राकारमर्यादा क्षेत्रसीमा परन्तपौ

स्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयधमेधनु । रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतावैलक्ष्मणोऽब्रवीत

किमर्थं हि परित्यक्त कोऽपराध कृतो मया ।

रामेण च परित्यक्त प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसशयम् ॥ ४१ ॥

रामततोऽब्रवीत्सीता किमर्थंलक्ष्मणस्त्वया । देवमन्यउपतेवीर सुमित्रानन्दवर्धन

राघवस्त्वब्रवीत्सीता माऽद्य त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।

न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥ ४३ ॥

श्रुतपूर्वन्तु सुश्रोणि क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम् ।

अस्मिन् क्षेत्रे न सौभ्रात्र सर्वो हि स्वार्थतत्पर ॥ ४४ ॥

परस्पर न मन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतव । न शृण्वन्तिपितु पुत्रा पुत्राणाश्चतथापिता

मच शिष्योगुरोर्वाक्य गुरवो शिष्यकर्म च ।

अर्थानुबन्धिनी प्रीतिन कश्चित्कस्यचित्प्रिय ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा । लिङ्गतत्रप्रतिष्ठाप्यस्वनाम्नारघुनन्दन

रामतीर्थे नर स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वर शिवम् ।

विमुक्त सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यनामैकचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

तीर्थ सौभाग्यके स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यकेश्वरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥ १ ॥

घृततीर्थेनरः स्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् । घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥
देव्यांयोगेश्वरींप्राच्यं सुरासुरनमस्कृताम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः परंयोगमवाप्नुयात्
शङ्खावर्तेनरः स्नात्वा सर्वपापविवर्जितः । धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥
शुद्धोदकेचतुर्दश्यां मुक्त्यर्थंस्नानवान्नरः । शिवंसुरेश्वरंदृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥

तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
किंपुनरिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ६ ॥

पूर्वंत्रेतायुगेव्यास! सुनेत्रोनामवैद्विजः । तस्यपुत्रः समुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः

यवक्रीतस्य शापेन स पिता तेन घातितः ।
ब्रह्महत्यान्वितो व्यास! तीर्थात्तीर्थं परिभ्रमन् ॥ ८ ॥
तीर्थे किं पुनके स्नात्वा धारातीर्थे गतो द्विजः ।
ततः कपिलधारायां चिन्तयित्वाऽऽत्मना स्वयम् ॥ ९ ॥
कथं मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम् ।
एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥ १० ॥
अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणीं ततोऽशृणोत् ।
किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन्!येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥

नतेऽस्तिब्रह्महत्यावै तीर्थस्नानेननाशिता । गच्छशीघ्रं गृहंविप्र!पापहीनोयथासुखम्
पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् । तत्रस्थित्वा महेशेन पुनःपत्तनमीक्षितम ॥

पत्तनेश्वर इत्याख्यो देवदेवो महेश्वरः । यस्तु गन्धैश्च पुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥ १४ ॥
भावयुक्तो नरो व्यास पूजयेद्विधिवत्सदा । यश्च पश्यति तल्लिङ्गं यश्चाच्छेदेन नास्ति
हंसयुक्तेन यानेन शिवलोकं स गच्छति । तथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्

दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ।
पुरा दिवाकरो व्यास चक्रे दुर्धर्षनामतः ॥ १७ ॥

तीर्थमस्मिन्महानदीतीरे विख्यातं सूर्यसंस्कृतम् । तेजःपुञ्जोऽभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम्
सप्तम्यामथ षाष्ठ्यामथ रविवासरे । तत्र स्नात्वा यो नरो स्थाणु त्रिरात्रमुपोषितः
दृष्ट्वा महेश्वरं तत्र शिप्राकूलव्यवस्थितम् । पूजयित्वा तु भावेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥
पितृमातृकुलं सर्वं समुद्धृत्य शिवं व्रजेत् । तत्र षष्ठ्युतियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥
तावत्स्वर्गं लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ । अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रतीर्थमुत्तमम्
गौतमेन पुरा यत्र इन्द्रः शापाद्विमोक्षितः । अगस्तीडायुतं शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम् ॥

मनोरथस्तदोग्रेण तपसा शङ्करं पुरा ।
तुष्टेन शम्भुना विप्र वै भगास्तस्योरगाः ॥ २४ ॥
गोसहस्राहृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते ।
तत्र स्नात्वा दिवं याति शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥

येऽमृतान्नेऽनुजन्मनाम्नुखितमहीतले । गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यमाप्नोति पुष्कलम्

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तु गङ्गाया फलमादिशेत्
गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्करकम् ॥ २७ ॥

पुष्पकेण विमानेन प्रयाति दिवि मोदते । नरकादुद्धरत्याशु नरः स्नात्वोत्तरेश्वरे ॥
इत्मोगसमापन्नो यानि स्वर्गं न संशयः । भूतेश्वरे नरः स्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥

गन्धपुष्पादिनैवेद्यैः स तु सुरपुरं व्रजेत् ।
शिप्राया [redacted] नरः स्नात्वा कैलासं तु नमस्यति ॥ ३० ॥

सर्वाहतंतमोयद्ब्रह्महत्यापापं प्रणश्यति । अम्बालिकाख्यं पश्येत् समाधिनियमेन च ॥
समुक्तः सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेन फणी यथा । घण्टेश्वरं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपि पूजितम्

यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलंलभेत् । अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥
शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुण्येश्वरंतुयःपश्येच्छुचिःस्नातोजितेन्द्रियः
सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् । लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वासमभ्यर्च्यमहेश्वरम्
नयातिनरकंमर्त्यः स्वर्गलोकेमहीयते । तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥

पूजितं ब्रह्मणा पूर्वं स्थविराख्यं विनायकम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥ ३७ ॥
गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैः फलं शृणु ।
समीहिता भवेत्सिद्धिर्मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३८ ॥

नवनद्याः समीपे तु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः । गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुलंलभेत्

कामोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ।
स्वर्गे च देवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ ४० ॥

प्रयागेतुनरः स्नात्वा प्रयागेशंतु पश्यति । सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे सौभाग्यतीर्थमहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

नरादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथान्यंसंप्रवक्ष्यामि नरादित्यंदिवाकरम् । यस्यदर्शनमात्रेण सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥

स्थापनान्ते प्रवक्ष्यामि नरादित्यस्य यादृशी ।
युद्धे निवारिते तस्मिन् रक्तस्वेदजयोः पुरा ॥ २ ॥

नरनारायणौदेवाववतीर्णौधरातले । कुन्त्यांदेव्यांसुदेवक्यां मथुरायांसमागतौ ॥

एवं तौ भवतो लोके कान्तौ वृद्धिम्परां गतौ ।
अन्यस्मात्कारणात् कृष्णोऽन्यस्माज्जातो धनञ्जयः ॥ ४ ॥
कंसादीन् दानवान् सर्वान् निजघान रणे हि सः ।
स्वर्गं गतस्तत पार्थो वासवादस्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥
कृतास्त्रेणतुवीरेण देवराजस्तुदक्षिणाम् । सस्तुतोदेवराजेनदक्षिणामानुयाचिता ॥
निवातकवचाह्यस्य हिरण्यपुरवासिनः । वध्यतामर्जुनक्षिप्रमेषा मे गुरुदक्षिणा ॥ ७
अर्जुनेनप्रतिज्ञातो वधस्तेषांदुरात्मनाम् । रौद्रंसत्वमास्थाय गृहीत्वासशरंधनु ॥
निहत्य तांस्तत पार्थः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
प्रीतिमुत्पादयामास सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ ६ ॥
कृतकार्यंतदाशक्रस्त्वर्जुनंवाक्यमब्रवीत् । वरंऽभिरुचिरंवीरमर्त्यंलोकेसुदुर्लभम् ॥
मनसाकाङ्क्षितम्पार्थ वरंतवरयोत्तमम् । सवव्रेप्रतिमेद्वेतुयेऽर्चितेब्रह्मणास्वयम्
ब्रह्मणामीतियुक्तेन दक्षायप्रतिपादिते । दक्षेणापियुगसाग्रं पूजिते तिमिरापहे
सुराणामसुराणाञ्च विग्रहेसमुपस्थिते । दानवैर्निर्जितः शक्रोहृतराज्योवनंगत ॥
तपश्चचारसुधर्मैकपाद शतक्रतु । दिव्यवर्षसहस्रन्तु विपन्नस्तददर्शह ॥ १४ ॥
दृष्ट्वातदेवराजन्तु बृहस्पतिरुवाचह । हित्वात्रिदिवमायात कथशक्रत्वमद्यवनम् ॥
एकाकिना वनस्थेन न साध्या शत्रवस्त्वया ।
गत्वैव देवराजत्वं शीघ्रं दक्षाश्रमं व्रज ॥ १६ ॥
पूजार्थंब्रह्मणादत्ते पारिजातसमुद्भवे । चकारविश्वकर्मायेते याचस्वप्रजापतिम् ॥
शत्रूणाक्षयोभावी प्रसादात्दर्शनात्तयो । गुरोस्तुतेनवाक्येन हृष्टोदेवशतक्रतु ॥
जगामसत्वरस्तत्र यत्रदक्ष प्रजापति । विनयावनतोभूत्वा ययाचेप्रतिमेशुभे ॥
ददौयस्मैततोदक्षः शक्रायप्रतिमेशुभे । पूजितेप्रतिमेव्यास शक्रेणशरदांशतम् ॥
तयोस्तुतेजसासर्वे विनष्टादानवागता । प्रतिमेचोचतुः शक्रं वरयस्ववरोत्तमम् ॥
भक्त्याऽनयापरतुष्टा आवांजानीहिवासव । वरवव्रेतदाशक्र प्रसन्नात्माद्विजोत्तम
अस्माकं प्रतिपक्षा ये दानवाः पापचेतसः ।

सर्वे ते नाशमायान्तु वरएष मतो मम ॥ २३ ॥
युवां पूजितुमिच्छामि यावदिन्द्रो भवाम्यहम् ।
तथेति चोक्त्वा प्रतिमे ते नाकं प्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥
तत्तु याच्यमवश्यार्थे वरार्थे प्रतिमाद्वयम् ।

इन्द्र उवाच

साधु पार्थ! पुनः साधु यतश्चेत्थं त्वयोच्यते ॥ २५ ॥
इमेचप्रतिमेपार्थ! शङ्करेण महात्मना । सुरक्तैः शतपत्रैश्च पूजितेब्रह्मणो दिनम् ॥२६॥
त्रैलोक्यपालनार्थञ्च पूजितेविष्णुनापुरा । नीलोत्पलैःसुगन्धैश्च सहस्रपरिवत्सरान्
ततःप्रजापतिःसृष्टिं कर्तुकामःसमाहितः । पूजयामासप्रतिमे पद्मैरक्तोत्पलैश्शुभैः ॥
त्वमेव हि कथं पार्थ! मृत्युलोकं नयिष्यसि ।
एताभ्यां रहितस्स्वर्गस्तृणतुल्यो भविष्यति ॥ २९ ॥
आदातुकामं देवेन्द्रं प्रणिपत्यतमर्जुनः । उवाचचाहमर्थ्यस्मि वरेणानेनवैप्रभो ॥
ततः शक्रः पुनः पार्थमुवाच मुनिपुङ्गव! । गृहीत्वात्वमिमेवीर कुशस्थल्यांनिवेशय
शिप्रायाउत्तरेतीरे केशवार्कंतुकेशवः । स्थापयिष्यतिवैतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥
भविष्यति सदा यात्रा आषाढी चाथ कार्त्तिकी ।
आगमिष्याम्यहं तत्र सहितोऽप्सरसां गणैः ॥ ३३ ॥
मरुतश्चागमिष्यन्ति मेघाश्चैवसविद्युतः । मेघखण्डे समुद्भूते मयि तत्र प्रवर्षति
प्रवदिष्यन्तिवैलोकाः प्राप्तोदेवःपुरन्दरः । भास्करंतुनमस्कृत्यब्रह्माद्यैःपूजितं विभुम्
प्रतियामितुवीभत्सो पुनरेव यथागतम् । एवंमूर्त्तिद्वयंशौरिर्दत्त्वापार्थाय वासवः ॥
भूर्लोकंप्रेषयामास सुतेन सहपाण्डव! । नारदोद्वारकायांतु कृष्णास्याह्वानकारणात्
देवराजस्य तद्वाक्यं सरहस्यञ्च केशवम् ।
श्रावयामास विप्रेन्द्र! एहि कृष्ण! कुशस्थलीम् ॥ ३८ ॥
अर्चस्व पारिजातस्य विश्वकर्मसुकारिते । इन्द्रेणाथप्रदत्तेवै तेतुभ्यंपाण्डवायच ॥
श्रुत्वा शौरिस्तु तद्वाक्यं प्रतस्थेऽवन्तिकाम्पुरीम् ।

अत्रान्तरे ह्याकाशात्समालिङ्ग्य च पाण्डवम् ॥ ४० ॥

प्रीत प्रोवाच वचन परिष्वज्य च फाल्गुनम् । जन्म मे सफलं जात प्रीतिर्मेऽतुलार्जुन

यतो मे प्रीतिरतुला क्रियता कार्यमुत्तमम् ।

इत्युक्त्वा तौ तदा व्यासं समायातौ कुशस्थलीम् ॥ ४२ ॥

पार्थं प्राह तदाऽरण्ये सुमनः पूर्णमनोरथ । गत्वाऽर्जुनदिशमाशां मूर्तिमेकामिहार्पय ॥

पूर्वाह्णे दिशमन्नामं भविष्यति मनोरमम् । अहमप्युत्तरा याम्ये स्थापनार्थे महामुने

मम शङ्खस्वनादेन प्रतिष्ठापयभास्करम् । पूर्वं गत्वा तत पार्थं शुभस्थानं व्यलोकयत्

स्थानं ता स्थापयामास दिननाथस्य सुस्थिर ।

क देव स्थापयामीति यावच्चिन्त्यो च पाण्डव ॥ ४९ ॥

तावत्साहास्त्रवीद्देव स्थानकारणशोभनम् । दर्शयामास पार्थाय तेजसा स्वेन तु सहम्

सव्यसाची ततोभीतो दृष्ट्वार्का ता प्रजल्पनीम् ।

तेजस्त्वसहमानो वै देवं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

क देवत्वामसुञ्जामि किं स्थानतयरोचते । सौम्यरूप सुदर्शश्च प्रजास्योभयगोपते

द्विविस्थाश्चयेदेवा नागा पातालसंश्रया । भुविस्थामानवा पूताभवन्तु तवदर्शनात्

सोऽर्जुनमवराद्देवो माभैस्त्वममदर्शनात् । दक्षिणेनकरेणाथ ह्यमयेनाभयप्रद ॥

समाश्वास्याथ सं शान्त सौम्यमूर्तिर्बभूव [illegible] ।

प्रभाकरेण देवेन निजन्तीज प्रदर्शितम् ॥ ५२ ॥

ततस्सूर्योऽब्रवीत्स्थानमेतद्देवाचल मम । प्राप्तेऽस्मिन्नेव हरिणा शङ्खश्चापूरितोमहान्

नरेण च स वै सूर्यं स्थापितोऽमरसंस्तुत ॥ ५४ ॥

अर्जुन उवाच

नयति किरणमाली भासुरस्त्रस्तसमस्तकलभुवनरामा प्राग्दिगन्ताट्टहास ।

भवति विगतपाप कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैश्चस्तभङ्ग नराणाम् ॥ ५

ब्रह्माद्यैर्मुनिभिरभिष्टुत पतङ्ग क स्तोतु कविरभिवाञ्छति प्रकामम् ।

स्तोष्येऽह तदपि सुधिस्तरात्सुबुद्ध किं दीपो ज्वलति हि प्रोदिते शशाङ्के ॥

शास्त्रार्थकामनिपुणैर्मुनिभिःस्तुतस्य किं वस्तु यन्न रचितं विविधैः प्रयोगैः ।
द्वैपायनप्रभृतिभिर्मुनिभिःपुराणैरापीतसारमिह भाति जगत्समस्तम् ॥ ५७ ॥
कामं तथाऽप्यहमतीव विचार्य बुद्ध्या भानो त्रिलोकगुरुपूजितपादयुग्मम ।
वृत्तैस्फुटार्थमधुराक्षरसन्धियुक्तैस्त्वां वै विचित्रगतिभिः परिकीर्त्तयिष्ये ॥
तावज्जगद्भवति निश्चलमेव सर्वं तावत्क्रियाश्चविविधा न च यान्तिसिद्धिम् ।
यावच्चनाथकमलामलमण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसेव्यपनयन्किरणैस्तमांसि ॥ ५६ ॥
यावन्नभान्ति शिखराणि महीरुहाणां गुच्छान्यफुल्लतनुमीलितलोचनानि ।
सुमानि वोधयसि षट्चरणाकुलानि यावन्नभाभिरमलाभिरनुत्तमाभिः ॥ ६०
उद्यन्तमम्बरतलेसुरसिद्धसङ्घाः सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनागयक्षाः ।
त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैःशिरोभिश्चञ्चरिकरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः ॥६१
अस्तङ्गते त्वयि जगद्भवति प्रसुप्तं भूयस्त्वयिप्रतपति प्रतिवोधमेति ।
एवं सदा वरद!लोकहितार्थहेतोरेकस्त्वमेव भगवंस्तिमिरस्य हन्ता ॥ ६२ ॥
उत्साहशक्तिनयशौर्यसमन्वितानां सेवाप्रयोगरचनाविधितत्पराणाम् ।
कार्याणि यन्नफलदानि भवन्तिपुंसां हेतुस्त्वभक्तिरिह नाथ!तवेतिनूनम् ॥६३
यत्संयुगेषु रथकुञ्जरकुन्तशक्तिनाराचचक्रशरतोमरभीमखड्गैः ।
क्षिप्रं नराःसमुपयान्ति विजित्य शत्रून्सर्वं सदा प्रणतवत्सल चेष्टितं ते ॥ ६४
कान्तारदुर्गविषमेष्वपि वर्तमाना ऋक्षेभसिंहबहुकण्टकतस्करेषु ।
कष्टान्विताश्च बहुशोकविमूढचित्तास्त्वत्कीर्तनाद्विगतमृत्युभया भवन्ति ॥६५॥
तेजोराशे!त्वमिह शरणं सर्वतो दुःखितानां
त्वत्तुल्योऽन्यो जगति सकले नास्ति कश्चिद्दयालुः ।
त्वय्येकस्मिन्भवति सकला भक्तिरन्विष्यमाणा
त्वामासाद्य प्रभवति कुतो व्याधिदुःखं नराणाम् ॥ ६६ ॥
कः कुष्टाभिहतोनरोऽरिभिरपि व्याध्यादिभिः पीडितः
के पङ्ग्वन्धजडाश्च शीर्णचरणाः कोवाऽधनः कोऽक्रियः ।

स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलं त्वदंशुपूरितम् ।
विभात्यतीवकान्तमम्बरं गृहच्च पाटलम् ॥ ७६ ॥

हरसि त्वमेव तापमिह तावदुदेत्यनृणां भवतिचयाघदेवकिरणैस्तवपूर्णमिदम्
ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशं श्रुतिमार्गपरै-
र्वरद न शक्यते तव गुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥

त्वंविष्णुस्त्वं शशाङ्कस्त्वमसुरमथनः षण्मुखस्त्वं धनेश-
स्त्वंकालस्त्वञ्च धाता क्षितिधरभृदपामाश्रयस्त्वं हुताशः ।
ॐङ्कारस्त्वंद्विजानां त्वमिहजलनिधिस्त्वंयमस्त्वंचरुद्र-
स्त्वंशक्रस्त्वं पयोदो व्रतयमनियमास्त्वं जगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥

त्वमनिन्द्यगोपते!त्रिपुरमथन!मन्मथदाहकस्त्वमसुरभामदर्पहा ।
त्रिदशाधिप!कमलवराननस्त्वमिह!देवगुरुर्भगवं-
स्त्रिभुवनमण्डलेऽस्तिकतमस्तव तुल्यगुणः ॥ ८२ ॥

आदित्य!भास्कर!दिवाकर!सप्तसप्ते!मार्तण्ड सूर्य!हरिदश्व!पतङ्ग!भानो! ।
अश्रान्तवाहनस्वरूप!गभस्तिमालिस्त्वां लोकनाथ!शरणं प्रणिपद्यतेऽसौ ॥

प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर!मन्दाकिनीदयितनाथ!जगत्प्रदीप! ।
हेमाद्रितापन!नभस्तलहाररत्न!सन्ध्याङ्गनावदनराग!नमोनमस्ते ॥ ८४ ॥

ब्रह्मण्य!सत्य!शुभ!मङ्गललोकनाथ! व्योमाम्बुजेश!मुनिसंस्तुत!विश्वमूर्ते! ।
आर्तस्य!शोकहरकिङ्करपालकश्च त्वमद्य प्रसीद!भगवञ्छरणागतस्य ॥ ८५

कृत्वाञ्जलिं शिरसिपङ्कजकुड्मलाभ्यांयत्संस्तुतस्त्वमिहदेवमयाद्यभक्त्या ।
तेन प्रभो!भव ममोपरि सौम्यमूर्त्तिर्धर्मे मतिं कुरु सदा श्रियमूर्जिताञ्च ॥

नमःसवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥

सूर्य उवाच

तुष्टोऽहमधुनापार्थ स्तोत्रेणाऽनेनसुव्रत । वरंदास्यामि यत्नेन यत्तेमनसि वर्त्तते ॥

इत्येवं प्रसमाश्रित्य देवं कृपया दोषात्परित्रायसे
कस्यान्यस्य परोपकारनिरता चेष्टा यथैका तव ॥ ६७ ॥
धर्मं त्वत्र किल तिष्ठति सेवितोऽसौ कालान्तरेण विबुधावरदा भवन्ति ।
त्वं सेवित प्रणतवत्सल भूतिकामैः सद्य प्रयच्छसि फलं यदभीप्सितं तैः ॥ ६८
विभ्राजत्कामहरिणीसदृशेक्षणाभिरङ्गेषु हारमणिकुण्डलमेखलाभिः ।
सेवा भवन्ति भवनानि विलासिनीभिर्येषां भृशार्चनमसि वरद प्रसन्न ॥ ६९
येस्त्वम्भर सकृदपि प्रणत कथञ्चिद्ध्यातोऽथवा भुवननाथ तथान्तकाले ।
निष्कल्मषा जगति दुष्कृतिनो भवन्ति ते निर्मला सुकृतिनो गतिमाप्नुवन्ति
ये त्वां कुतर्कमतिभिर्न नमन्ति भक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकशताकुलितैः शरीरैः ।
ते निर्धनाः परगृहेष्ववभूतमन्न क्षुत्क्षामकण्ठवदना परितङ्कयन्ति ॥ ७१ ॥
उद्भिन्नलतरङ्गक्षोभलोलाक्षियुग्मैः सुमणिगणमयूखोद्भासितैर्लेलिहद्भिः ।
प्रणिपतितशिरोभिर्नागमुख्यैरजस्रं धृतिभिरनुपमाभिः स्तूयसे पुष्कलाभिः ॥ ७२ ॥
तव सुरवर गच्छतोऽप्युदेतुं त्रिदशनदीकमलोद्भवानि वाते ।
कनककमलरेणुरञ्जितानि भ्रमरकुलानि पतङ्ग उत्पतन्ति ॥ ७३ ॥
त्वद्वन्दनाय कर्तुं जलनिधिमध्ये स्थित्वा किरणकनिषदैः ।
आशीर्वादं प्रजपन्ति भगवन्! कस्ते तुल्यस्त्रिभुवनमध्ये ॥ ७४ ॥
उदयाद्रिनिकुञ्जसंस्थितस्य हृदयेष्वन्तमयेषु चावृतस्य ।
किरणास्तपनीयसप्रभास्ते विलसन्तस्तडितो विडम्बयन्ति ॥ ७५ ॥
यथा यथा व्रजति रथस्तवाम्बरे विपाटयन् घनतिमिरौघसञ्चयान् ।
तथा तथा क्षुभितमहानिलेरितः प्रतीयते मुहुरिव दुन्दुभिर्यथा ॥ ७६ ॥
चारुपद्मविनिमीलितेक्षणां चक्रवाककलहंसमेखलाम् ।
कामिनीमिव रतिश्रमालसां त्वां विबोधयसि पद्मिनीं करैः ॥ ७७ ॥
नीललोलमतिकान्तमुत्पलं भृङ्गतुङ्गचरणाकुलीकृतम् ।
त्वत्प्रभाभिरनुरागरञ्जितं पद्मरागमिव शोभते भृशम् ॥ ७८ ॥

स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलं त्वदंशुपूरितम् ।
विभात्यतीवकान्तमम्बरं वृहच्च पाटलम् ॥ ७९ ॥
हरसि त्वमेव तापमिह तावदुदेत्यनृणां भवतिचयावदेवकिरणैस्तवपूर्णमिदम्
ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशं श्रुतिमार्गपरै-
र्वरद न शक्यते तव गुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥
त्वंविष्णुस्त्वं शशाङ्कस्त्वमसुरमथनः षण्मुखस्त्वं धनेश-
स्त्वंकालस्त्वञ्च धाता क्षितिधरभृदपामाश्रयस्त्वं हुताशः ।
ॐङ्कारस्त्वंद्विजानां त्वमिहजलनिधिस्त्वंयमस्त्वंचरुद्र-
स्त्वंशक्रस्त्वं पयोदो व्रतयमनियमास्त्वं जगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥
त्वमनिन्द्यगोपते!त्रिपुरमथन!मन्मथदाहकस्त्वमसुरभामदर्पहा ।
त्रिदशाधिप!कमलवराननस्त्वमिह!देवगुरुर्भगवं-
स्त्रिभुवनमण्डलेऽस्तिकतमस्तव तुल्यगुणः ॥ ८२ ॥
आदित्य!भास्कर!दिवाकर!सतसप्ते!मार्तण्ड सूर्य!हरिदश्व!पतङ्ग!भानो! ।
अश्रान्तवाहनस्वरूप!गभस्तिमालिंस्त्वां लोकनाथ!शरणं प्रणिपद्यतेऽसौ ॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर!मन्दाकिनीदयितनाथ!जगत्प्रदीप! ।
हेमाद्रितापन!नभस्तलहाररत्न!सन्ध्याङ्गनावदनराग!नमोनमस्ते ॥ ८४ ॥
ब्रह्मण्य!सत्य!शुभ!मङ्गललोकनाथ! व्योमाम्बुजेश!मुनिसंस्तुत!विश्वमूर्ते! ।
आर्तस्य!शोकहरकिङ्करपालकश्च त्वम्मे प्रसीद!भगवञ्छरणागतस्य ॥ ८५
कृत्वाञ्जलिं शिरसिपङ्कजकुड्मलाभ्यांयत्संस्तुतस्त्वमिहदेवमयाद्यभक्त्या ।
तेन प्रभो!भव ममोपरि सौम्यमूर्त्तिर्धर्मे मतिं कुरु सदा श्रियमूर्जिताञ्च ॥
नमःसवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥

सूर्य उवाच

तुष्टोऽहमधुनापार्थ स्तोत्रेणाऽनेनसुव्रत । वरंदास्यामि यत्नेन यत्तेमनसि वर्त्तते ॥

मद्दर्शनद्विविधफलं नकदाचित्प्रणाश्यते । शृणुष्वार्जुनविशेषेण ह्यदेयनास्तियत्तव ॥

अर्जुन उवाच

यदीहाथवरोमह्य वराणामुत्तमोत्तम । अत्र सन्निहितोदेव सर्वकालंभवप्रभो ॥ १०

ये च त्वां मानवा भक्त्या स्तोष्यन्ते प्रणता सदा ।
तेषां धनञ्च धान्यञ्च पुत्रदारादिकं वसु ॥ ११ ॥

मनसश्चेप्सितसर्वंदातव्यंहिवरोमम । अथादित्यो नरं देव उवाच वचनंशुभम् ॥
येमांस्तुवन्त्यनेनाङ्ग पूजयिष्यन्तिभक्तितः । श्रियान्विताभविष्यन्तितेषांमद्देववरोमम

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
नरादित्यमाहात्म्यं नामत्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

केशवादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

नारायणोऽपि संस्थाप्य शङ्खं प्रध्माय यत्नतः ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा स्तोत्रेणानेनभास्करम् ॥ १ ॥

आदित्यंभास्करंभानुं रविंसूर्यंदिवाकरम् । प्रभाकरंदिवानाथं तपनंतपतांवरम् ॥
वरेण्यंवरदंविष्णुमनघाख्यानुजम् । वरधीयंसहस्रांशुं सहस्रकिरणद्युतिम् ॥

मयूखमालिनं चित्रं मार्तण्डं चण्डरोचिषम् ।
सदागतिं सुभास्वन्तं सप्तसप्तिं सुखोदयम् ॥ ४ ॥

देवदेवमहिर्बुध्न्यं धामानिधिमनुत्तमम् । तपोऽग्र्यममयालोकं लोकानन्दपापतिम्
जगत्त्रयैकचक्षुषं जगद्दीपंजगत्प्रभुम् । अर्कं निःश्रेयसपरं कारणंश्रेयसाम्परम् ॥
अप्रमाथिनंपुण्यं पतङ्गंपतगेश्वरम् । दातारंवाञ्छितार्थानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥

अहंग्रहकरंहंसं हरिदश्वंहुताशनम् । मङ्गल्यंमङ्गलंमेध्यं ध्रुवंधर्मप्रबोधनम् ॥ ८ ॥
भवसम्भावितंभावं भूतभव्यंभवात्मकम् । दुर्गमंदुर्गतिहरं हरनेत्रंत्रयीमयम् ॥ ९ ॥
त्रैलोक्यतिलकंतीर्थंतरणिंसर्वतोमुखम् । तेजोराशिसुनिर्वाणंविश्वेशंधामशाश्वतम्
कल्पंकल्पानलंकालं कालचक्रंक्रतुप्रियम् । भूपर्णमरुतं सूर्यं मणिरत्नंसुलोचनम् ॥
त्वष्टारंविष्टरंविश्वं सदसत्कर्मसाक्षिणम् । सवितारंसहस्राक्षं प्रजापालमधोक्षजम्
ब्रह्माणंवासरारम्भं रक्तवर्णमहाद्युतिम् । सूक्ष्मंमध्यदिनेरुद्रं श्यामंविष्णुं दिनक्षये ॥
नाम्नामष्टशतंदिव्यं विष्णुनासमुदाहृतम् । यइदंप्रयतोभूत्वा पठेद्भक्त्यासमाहितः ॥
नतस्यविपदः क्वापि सर्वत्रापिशुभागतिः । धनधान्यसुखावाप्तिः पुत्रलाभश्चजायते
तेजः प्रज्ञापरंज्ञानं बुद्धिश्चपरमागतिः । एवंश्रुत्वाजगन्नाथो जगामादर्शनंततः ॥
केशवार्कमुखं दृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम् । विमुक्तःसर्वपापेभ्यःसूर्यलोके महीयते ॥ १७
दशाश्वमेधमध्ये तु रेणुतीर्थं प्रचक्ष्यते । तद्दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः ॥
केशवार्कसमीपे तु रेणुतीर्थं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
केशवादित्यमाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

शक्तिभेदतीर्थवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

तीर्थमन्यत्तथावक्ष्येशक्तिभेदमितिस्मृतम् । स्कन्दस्यचजटाभद्रंचक्रेऽथात्रपुराशिवः
तारकश्चतथादैत्यं हत्वातत्रसुरद्विषम् । शक्तिस्कन्दःस्वयंक्रुद्धो निचिक्षेपमहीतले ॥

व्यास उवाच

भगवन्ब्रूहियत्नेन संशयोमेमहामुने । कथंस्कन्दःसमुत्पन्न एतदिच्छामिवेदितुम् ॥

सनत्कुमार उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे निर्जिता दानवैस्सुराः । दिवं त्यक्त्वा दिशो याता शाक्राताममथविह्वलाः
ततस्तु देवराजेन तपसो विप्रकालिङ्ग' । आराधितो महादेवस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः
ततस्तुष्टो महादेव शक्रस्याभिमुखः स्थित । उवाच वचनं शक्र यत्परमिष्टं ददामि ते ॥

शक्र उवाच

यदि तुष्टोऽसि भगवन्सेनान्यं मम शङ्कर! । महासेनाधिपतिर्देव प्रयच्छ परमेश्वर' ॥ ७

हर उवाच

उत्पादयामि देवेन्द्र सर्वासुरनिबर्हणम् । नामतो यो महासेनस्सुराणां भयहारक

सनत्कुमार उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्सर्वभूतपतिर्हरः । स तु चिन्तापरो देवो जगाम हिमालयम् ॥
हिमवच्छिखरे तस्मिन् ध्यानपरोऽभवत् । ब्रह्मादयोऽपि यं देवं योगिनो ध्यानचिन्तका'

ध्यायन्ति नियतात्मान प्राणायामपरा मुने' ।
लिङ्गमूर्तिश्च यो नित्यं पूज्यते सर्वजन्तुभि ॥ ११ ॥

स ध्यायति किमर्थं तु न विद्म परमार्थत । एवं ध्यानपरे देवे देवी हिमवतो गृहे ॥
तथैव च स्थिता तस्मिन् या सा दक्षात्मजा सती । पितुर्गृहे निजो देहो यया योगाद्विसर्जितः
निमन्त्रितो न भर्ता मे इति कोपं चकार या । तां देवी हिमवान्पुत्रीं पूर्वं देवर्षिनारदात्

अथ भार्या भविष्यति नान्यं वरमचिन्तयत् ।
या तपस्यति रुद्राय सा सखिभ्यां समन्विता ॥ १५ ॥

कथं हि शङ्करो देवो मम भर्ता भविष्यति । यावदेव गता देव देवी हिमवतस्सुता ॥ १६
ततस्समागता देवा इन्द्राग्नियमसूदनम् । जग्मुर्ब्रह्मसदः पुण्यं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम्
ते सुराश्च स्तुतिं कृत्वा वाक्यमेतत्समब्रुवन् । शरणं भव देवानां दानवैर्विजितात्मनाम्

ततोऽब्रवीत्सुरान्ब्रह्मा ज्ञातं कार्यं मयाखिलम् ।
नैतच्छम्भोर्विना वीर्यात्कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ १६ ॥
तथा यतध्वं देवेशो यथा वाञ्छति पार्वतीम् ।

इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा स्वप्ने लब्धं धनं यथा ॥ २० ॥

ततोमेरुं समागत्य पुनर्मन्त्रं प्रचक्रिरे । तेषामाहेदृशं शक्रस्तुष्टः शम्भुः पुरा मम ॥ २१
प्रतिज्ञातञ्चदेवेन स्वाङ्गात्सेनापतिम्प्रति । तस्माद्देवंगतेकार्ये कारणंमकरध्वजम् ॥
इतिसञ्चिन्त्यदेवेशो कामामाहूयसत्वरम् । उवाच वचनं हृद्यं देवानामनुकम्पया
यथा देवोभजेद्देवीं तथा कामं विधीयताम् । कारणंमहदेतद्धिदेवानां समुपस्थितम्
कामोवाक्यंहरेः श्रुत्वा प्रहस्यैवमुवाचह । करिष्येसर्वमेवंहि सखाचेन्मे भवेन्मधुः

तस्मिन् क्षणेऽथ शक्रेण कामवाक्यादनन्तरम् ।
समादिष्टो मधुःक्षिप्रं कामस्यानुचरो भव ॥ २६ ॥
लब्ध्वा कामो मधुं मित्रं प्रतस्थे भार्यया सह ।
कृत्वा सज्जं धनुर्बाणं पौष्पं पाणौ समाहितः ॥ २७ ॥

यत्रदेवाधिदेवेशो देवदारुवनेस्थितः । नन्दीश्वरः प्रतीहारः कृतध्यानोऽवतिष्ठते

चूतवृक्षाश्रितः कामो यावद् बाणं सम्मोहनम् ।
सन्दधत्यन्तरे चास्मिन् देवी प्राप भवाश्रमम् ॥ २९ ॥

त्यक्तध्यानव्रतोदेवो हृष्टश्चाह्लादचेतनः । ततोविलोकयामास दिशःसर्वाःप्रयत्नतः ॥

चूतवृक्षाश्रितं काममपश्यत्स रुषान्वितः ।
भस्मीकृतस्तृतीयाक्ष्णा वह्निज्वालाकुलेन सः ॥ ३१ ॥
देवोऽप्यन्तर्दधे तस्मात् स्थानादाशु गणैस्सह ।
पार्वती विस्मिता साध्वी लज्जिता दुःखिताऽभवत् ॥ ३२ ॥
हिमवांस्तां समुत्थाप्य निनायाशु निजंगृहम् ।
गते देवे च देव्याञ्च कामपत्नी सुदुःखिता ॥ ३३ ॥

भस्मीकृतंपतिंदृष्ट्वा विललापसुदुःखिता । दृष्ट्वा रतिंसुदुःखार्त्तां वागुवाचाशरीरिणी

आश्वासयन्ती कृपया सखीमिव सुदुःखिताम् ।
मा रोदीस्त्वं शुभापाङ्गि!तव भर्त्ता करिष्यति ॥ ३५ ॥

सर्वकार्याण्यनङ्गोऽपि मित्रकार्यविधानतः। यदावापंमहादेवः परिणेष्यतिपार्वतीम्

तदा तस्मोऽनुधावन्तु स्वात्मनिर्मलमानसः । द्वारपालो वरारोहे योऽसावत्रैव तिष्ठति

सम्पूज्य महिमा देवि! यत्र यो मां न पश्यति ।

इत्युक्त्वा सोऽभवत्तत्र शक्तया तया स्थितः ॥ ४५ ॥

अनिर्ममतया देवी उमापि हिमवद्गृहे । कामं स्वयं मेना गर्भे यैः न्तुलम्

गर्भतया जवे हि कामदेवो न्यपातयत् । मेनया ऽविनाशयन्तं हिमवन्तापि विदधे

पतन्ति भ्रमधियाय मनांसि महिमानम । तदास्वरूपमदन् पितरं तात्मदना

पार्वत्यास्तनयं कन्या हिमवत्सुताहिता ।

धीमते यश्च प्रसन्नतः तपस्तुष्टे समन्विता ॥ ४६ ॥

तां दृष्ट्वा तपसोऽस्या प्रणाशित पुरंदरः ।

आजगाम यथा देवाः स्मात्मपोऽसर्वादिरिम ॥ ४७ ॥

इत्यमन्येरस्यापि विमर्शनं तपसे । तप. करोति कल्पाणि कल्पार्यकारणंपद

उपायनो तत्र्यार्थ तपश्चमधुनाथा । यतो महालमारकमः पितृदेशादुपासये ॥ ४८

पिनाकपदर धत्वा तिष्ठन् वार्यमातम । उमामपि परीक्षार्थं नमहेतगिरेन्द्रम्

तत्तुष्टामात्मुमां मन्वा तस्मात्स्थानान्महेश्वरः ।

स्व वपुर्दर्शयामास त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ४९ ॥

लज्जितापूर्वकानीश दृष्ट्वा यामधोमुखी । पितापायाचार्ययागेन्द्रं यथामेन्या सयच्छ

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देव्यगाद्य पितुर्गृहम् ।

देवीलाभाय सप्तर्षीन् सस्मार स्मरशासनः ॥ ५० ॥

प्रणेमुस्तैश्चागत्य सस्मृता. परमेश्वरम् । ऊचुश्च प्राञ्जलिपुटा शुभं किमाधिनोद्गुतम्

ततोऽप्रवीन्मुनीनीशस्समन्ताच्च गिरेर्गृहम् ।

गत्वा तथा कुरुध्वमे पार्वती स्याद्यथा प्रिया ॥ ५१ ॥

तथेति च प्रतिज्ञाय सङ्केतं शम्भुनास्वयम् ।

कृत्वा जग्मुस्सपत्नीका गिरीन्द्रस्य निवेशनम् ॥ ५२ ॥

दत्तार्घ्यभूधरेन्द्रेण कृतासनपरिग्रहा । ऊचुरद्रिमुमां यच्छ शङ्करायार्थिनेप्रियाम् ॥

द्त्तेत्युक्तागिरीन्द्रेणनिरूप्योद्वाहवासरम् । लब्ध्वानुज्ञांसमायाता यत्रास्तेसमहेश्वरः
ऊचुस्तेशङ्करंसर्वे दत्ताहिमवताशिवा । कृतकार्याश्च सर्वेऽपि ययुजुस्तेयथागताः ॥
चक्रुर्विवाहसामग्रींब्रह्मवन्हिचन्द्रनारदाः । वृषासनं जगामाशु नन्दीशप्रमुखैर्गणैः ॥
मातृदुन्दुभिनादैश्च ब्रह्माद्यैरमरैस्सह । प्राप्यागेन्द्रालयं शम्भुः कृतकौतुकमङ्गलः ॥
विवाह्यैनां विधानेन जगाम स्वालयम्पुनः ।तत्रैकान्तरतिर्देवो यावत्तिष्ठतिकामधान्
तावत्त्रस्तैस्सुरैरग्निः प्रेषितोऽगान्महेश्वरम् । अग्नौतत्रगतेदेवो रतित्यक्त्वामहेश्वरः
निचिक्षेपमुखेवह्नेः स्वरेतोव्रीडितोभृशम् । रेतसातेनतप्तोऽग्निर्गङ्गातोयेव्यचिक्षिपत्

हररेतोऽग्निनोद्गीर्णं गङ्गामध्ये पपात ह ।
तया तु स्वतटे न्यस्तं दग्धया तस्य तेजसा ॥ ६१ ॥
सप्तर्षीणाञ्च पत्न्यः स्नानार्थं जाह्नवीं ययुः ।
शीतार्तास्ताः कृतस्नाना दृष्ट्वा तेजस्तटे ज्वलत् ॥ ६२ ॥

मत्वाग्निमितिताःसर्वास्तप्तुकामासमाययुः । तपन्तीनाञ्चवैतासां तद्वीर्यमभवन्मुने
षडाननंसमारूढंश्रोणिद्वारेण सत्वरम् । यदान्योन्यमुत्पतितुंशक्तानाग्नेःपुरःस्थिताः

चिन्तामगुस्तदा सर्वा मुनित्रासात्ततो भयात् ।
ततश्च तपसो वीर्याद्विकृष्य स्वोदरात्ततः ॥ ६५ ॥

षड्भिरेकत्वमापन्नं श्वेतपर्वतमस्तके । मध्येशगणाचैकृत्स्नं निक्षिप्तंवीर्यमुत्तमम्
शुक्लायांप्रतिपद्यासीद्द्वितीयायांसमीकृतः । तृतीयायांचसाकारस्सर्वलक्षणलक्षितः

चतुर्थ्यां परिपूर्णाङ्गः षण्मुखो द्वादशेक्षणः ।
अलङ्कृतस्तु पञ्चम्यां षष्ठ्याञ्च समुत्थितः ॥ ६८ ॥

तेजसास्वेनतीव्रेण ततापसजगत्त्रयम् । जातमित्थं समाकर्ण्य सर्वेशक्रमुखाःसुराः
समागत्यास्यसंस्कारं ब्रह्माचक्रेयथाविधि । तुष्टेनपार्वतीशेन शक्तिर्दत्ताद्दृढा शुभा
ततोगौर्यामयूरश्च वाहनेपरिकल्पितः । छागश्चैवाग्निनादत्तःकुक्कुटं सरिताम्पतिः
ततःसकृत्तिकाभिश्च वर्द्धितः पुत्रकाम्यया । ततस्तुप्राप्तसंस्कारो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः
शक्तिहस्तोऽभिषिक्तस्तुदेवसेनासमावृतः। वित्ताधिपोमहासेनःपावकःषण्मुखोऽजशः

गाङ्गेय कार्त्तिकेयश्च गुहस्स्कन्द उमासुतः ।
देवसेनापति स्वामी सेनानी च शिखिध्वज ॥ ७४ ॥
कुमारः शक्तिधारी च तस्य नामानि षोडश ।
यः पठेन्मानवो भक्त्या बाधा तस्य न जायते ॥ ७५ ॥

एवंजातोमहासेनोदानवानांक्षयङ्कर । कुमारस्त्वंसमानीत शम्भुनास्थानकारणात्
अभिषिक्त स तेनासौ भद्रित सजट पुरा । तेनभद्रजटोनाम इवतार्थश्चकल्पितं
कृताभिषेक स्वध्याऽस्य महासेन महेश्वर । तमुवाच स मधुरं सर्वदेवसमागमे ॥
रक्षाकार्या त्वयापुत्र सामरस्यजगतस्तो । देवाना बाधकास्सर्वे निहन्तव्या सुरां
इत्य महोत्सवे जाते तत्र प्रथमसागरे । मातरोऽभ्यागता सर्वा पातालतलसंस्थि

तासामाहारसक्षाभिक्षन्ते नामानि शङ्कर ।
यानि तानि प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ८१ ॥

वटभोजनकामाया क्षयान्ता वटमानर । भुक्तानुविभटीयाभिस्ताभैर्विभंटमा

क्रीडार्थं शम्भुना चाथ प्राता या वटभोजने ।
वटपाद्यसिमीतरश्चासन् सर्वास्ता वटमातर ॥ ८३ ॥

सर्वासादर्शनपुण्यं गृहभूतविनाशकम् । तावलस्तत्सग्रादेश्यो वृणुध्वा मानवैर्मुं
लब्ध्वा शक्तिमहासेनो देवसेनासमावृत । अथान्दानवेन्द्रत तारक तरसातन
इस्वाराज्यतथेन्द्रायस्फीतनिहतकण्टकम् । कुशस्थलीसमागम्यतत्रयासस्मात्र
एवं निहत्यदैत्येन्द्र सगाङ्गेयो महाबल । शक्तिशिप्राअटेमुक्त्पाताल च विभेद
ततो भोगवती-यासा शक्तिभेदेननिर्गता । वन्दिता सर्वदेवश्च मुनिभिश्चतपोध

पृथिव्या यानि तीर्थानि समुद्रादिगतानि च ।
शक्तिभेदे तु न्यस्तानि शतकोटिसहस्रश ॥ ८९ ॥
अतोऽतिपुण्य त्रैलोक्ये कोटितीर्थमुदाहृतम ।
ब्रह्मणा स्थापितस्तत्र कोटितीर्थेश्वर शिव ॥ ९० ॥
कोटितीर्थे नरस्स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वर शिवम् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो निर्मोकादिव पन्नगः॥ ६१ ॥

श्राद्धंकरोतियस्तत्र पितृभक्तोनरोमुने! । दशानामश्वमेधानां प्राप्नोति सकलम्फलम्

पितॄनुद्दिश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते । तत्सर्वंकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः

तत्र तीर्थे नरो यस्तु गां ददाति पयस्विनीम् ।

सर्वलोकानतिक्रम्य स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६४ ॥

यावन्त्यङ्गेऽपिरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषुच । तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोकेमहीयते ॥

पौर्णमास्याममावस्यां पश्येच्छक्तिधरं तु यः ।

नाऽपुत्री (त्रो) नाधनो रोगी सप्तजन्मनि जायते ॥ ६६ ॥

जलप्रवेशंयःकुर्यात्तत्रतीर्थेनरोत्तमः । सोऽक्षयं लभतेलोके यावच्चन्द्रार्कयोःसुखम्

वृषोत्सर्गंतु यः कुर्यात् पितृभक्तोनरोमुने । सोक्षयंलभतेस्थानं यत्सुरैरपिदुर्लभम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

शक्तिभेदमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

स्वर्णक्षुरेनरस्स्नात्वा दृष्ट्वादेवं महेश्वरम् । कपिलाशतदानस्य फलमप्यधिकंभवेत्

वाप्यांपितामहस्यापि यःस्नायाद्विजितेन्द्रियः । हंसयुक्तेनयानेनब्रह्मलोकंसगच्छति

तैलाभिधानमातॄणां रात्रौ यो यच्छते बलिम् ।

तस्य सिद्धिर्भवेत्सद्यो मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३ ॥

विष्णुवाप्यां नरः स्नात्वा चैत्रे वा फाल्गुने तथा ।

जागरं यस्तु कुर्वीत सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति। अगस्त्येश्वरदेवस्य भक्त्या नियतमानसः
पठेद्यो धर्मयोद्धा स्वर्लोकं स गच्छति। लोके तु जायते दाता सर्वभोगी महीपतिः
यस्त्वगस्त्येश्वरं गच्छेदेकचित्तो नरो मुने। दृष्ट्वागस्त्येश्वरं देवं सोपवासो जितेन्द्रियः
अगस्त्योदयवेलाया मुच्यते सर्वपातकैः।
कृत्वाऽगस्त्यस्य सौवर्णं रौप्यं वाथ स्वशक्तितः ॥ ८ ॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणैव समन्वितम्। तत्कालेन फलैः पुष्पैः पूजनीयो विधानतः
विधानं तस्य वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यं द्विजोत्तम।
सप्तधान्यानि मुख्यानि तावन्त्येव फलानि च ॥ १० ॥
एकधान्यं फलं चैकमग्रे स्थाप्यमथो मुने। यावत्सप्तवर्षाणि व्रतमेव समाचरेत् ॥
काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसंभव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते
दद्यादर्घ्यमगस्त्याय व्यासं तद्वदेकमना शृणु। पुत्रवान्धनवांश्चैव जायते नात्र संशयः
मृतः स्वर्गमवाप्नोति सम्पन्ने जायते कुले। मर्त्यलोके पुनः प्राप्य महायोगीश्वरो भवेत्
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वा सुसमाहितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो मुनिलोके समोदते
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे
ऽवन्तीखण्डेऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यं नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच
महाकालः किमर्थं तु किं वा शिवपदः स्मृतम्। कोटीश्वरः किमर्थं तु पावकः तत्किमुच्यते
नरदीप किमर्थं तु द्वितीया वटमातरः। अभयेश्वर किमर्थं तु शङ्खोद्धारणमेव च ॥ २ ॥
शूलेश्वरं किमर्थं [illegible] किमोङ्कारस्तु कथ्यते।

धूतपापं किमर्थं तु किमङ्गारेश्वरं तथा ॥ ३ ॥

पुरीचोज्जयिनीदिव्या सप्तकल्पाकथंस्मृता । कथयस्वमुनिश्रेष्ठतस्यानामानियानिच

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास! यथा ख्याता पुरी दिव्या सुपुण्यदा ।
स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ॥ ५ ॥

तृतीयेऽवन्तिकाप्रोक्ता चतुर्थेत्वमरावती । विख्यातापञ्चमेकल्पे पुरीचूडामणीतिच
षष्ठेपद्मावतीज्ञेयोज्जयिनीसप्तमेपुरी । पुनरन्तेतुकल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिकास्मृता ॥

एतानि सप्तनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

उज्जयिन्यां पुराराजा बभूवकिलचान्धकः । तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकनकदानवः
युद्धार्थेसमहावीर्यः शक्रंयुद्धेसमाह्वयत् । क्रोधादिन्द्रेणसंग्रामेयुद्ध्यमानोनिपातितः
निहत्यदानवंशक्रो भयादन्धासुरस्यतु । जगामशङ्करान्वेषी कैलासंशङ्करालयम् ॥
दृष्ट्वाप्रणम्यदेवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् । भीतोविज्ञापयामास सहस्राकुललोचनः ॥
अभयंदेहि मेदेव! दानवादन्धकाच्चवै । शक्रस्येत्थंवचः श्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥
ददावभृथमेवास्मै माभैस्त्वमन्धकाद्धिवै । कृत्वारूपंमहादेवो विश्वरूपंसुभैरवम् ॥

सर्पैर्लिहद्भिरत्युग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ।
पातालोदररूपैश्च भैरवारावनादिभिः ॥ १५ ॥

भुजैरनेकसाहस्रैर्बहुशस्त्रधृतैस्तथा । सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् ॥ १६ ॥
गजाजिनकृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् । महामहीध्रतुल्याभिर्जङ्घाभिर्भूषितंसदा
क्षोभयंश्चालयन्सर्वान् पातालस्यतलावधि । ईदृग्रूपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥
अवातरन्महींभीमः पादेनैकेनशङ्करः । तत्रैवहिहृदोजातः सर्वदैवतवन्दितः ॥ १९ ॥
ख्यातंशिवपदंतद्धियत्पदाक्रान्तवान्विभुः । यस्मादत्रपुराकोटिःपादाङ्गुष्ठस्यधारिता
कोटितीर्थमतःख्यातंसर्वपापप्रणाशनम् । अगस्त्येनतथाकोटिस्तीर्थानामत्रधारिता

अतोऽपीदृक् शुभं लोके कोटितीर्थं सदा स्मृतम् ।

दृष्ट्वा ॥ त्रिदशाः सर्वे स्नाता वै हितकाम्यया ॥ २२ ॥

महाकालस्त्वनरूप महाकालस्तेन स्मृतः । अन्धासुरोपि दनुजः पुत्रशुम्भाहतयुधि ॥
क्रोधेन महता विप्रोरणतूर्याण्यवादयत् । ससैन्यो निर्गतः शालोयत्र त्रिदशा स्थिता
महत्या सेनया सार्द्धं रथवारणयुक्तया । तं दैत्यदानवान्वीक्ष्य महाहयरतोद्यमान् ॥
देवास्तस्ते सुपन्नसा शम्भु शरणमाययुः । मा भैष्टमहाकालो देवान्सूचे त्रिलोचन
गृहीत्वा शूलमातिष्ठद्द्वारणाधरोऽक्षा । कोपयुक्तविरूपाक्षो ज्वालाभिः पूरितम्भ ॥

अन्धकेनाथ दृष्टेन शरकोटिस्तु तु सदा ।
मुक्ता जगाम देवानां नाशाय कालमाकृतिः ॥ २८ ॥

विस्फुलिङ्गाचितं वह्निं मुमुराण पिनाकधृक् । शरशतसहस्रैस्तञ्च बाणैरताडयत्

अन्धकोऽपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलायुधः ।
निरस्तश्शम्भुना बाणैरलिभिः पङ्कजं यथा ॥ ३० ॥
तस्य सैन्यञ्च बहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ।
योधुपरैहत दिव्यैः स्थाणुमाश्रित्यमास्थिते ॥ ३१ ॥
ततोऽन्धकेन सैन्यं स्वं भिन्नं दृष्ट्वा तथा सुरैः ।
आत्मानञ्च महेशेन विद्धं च बाणकोटिभिः ॥ ३२ ॥

विकलाङ्गनदेहोऽसौ भयमाश्रित्य वेगतः । चकार तामसीं मायां मायाशतविशारदः
तयान्तर्हितदेहोऽसौ जगाम दिशमुत्तराम् । शम्भोर्भीतिहरं विप्र द्रुमग्राममुपैति महत्
येनान्धनागतो दैत्यस्सनद्योजगामह । यदृष्टस्यन्वासौ गता दुष्ट पुनः पुनः ॥
उवाच चान्धकध्वस्तं तथोवाच महेश्वरः । तत्र तीर्थमथोत्पन्नं पापघ्नमितिश्रुतम्

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यो वै दद्यात्स्वशक्तिकम् ।
नवम्यां मार्गशीर्षस्य शुक्लायां श्रद्धयान्वितः ॥ ३७ ॥

अभयं तद्वधे स्वर्पं दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् । शिवमुद्दिश्य यत्किञ्चिद्दीयते भक्तितः शिवे

कृतास्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
तमसा छादिता देवा सम्भ्रमुः समाकुलाः ॥ ३८ ॥

सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदपिमेनिरे । एतस्मिन्नन्तरेव्यासनरादित्यःस्वतेजसा
उत्तस्थौ नररूपेण कुर्वन्वितिमिरा दिशः ।
नष्टे तमसि दैन्येऽपि प्रकाशे प्रकटे सति ॥ ४१ ॥
देवामुदमवापुस्ते दृष्ट्वाऽनन्तंनुलोचनैः । स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रैर्नररूपंदिवाकरम्
उत्तस्थौनररूपेण दीप्तोयस्मादुदिवाकरः । तेनास्यनामतेचक्रुर्नरदापइतीश्वराः
यःपश्यतिनरोभक्त्या नरदीपं दिवाकरम् । मुच्यतेसर्वपापेभ्योयद्यपिब्रह्महाभवेत्
षष्ठ्यामर्कदिनेविप्र सप्तम्यामुपवासकृत् । दिनक्षयेऽथसंक्रान्तौ ग्रहणेविषुवत्यथ
कुण्डेस्नात्वाशुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः । नरदीपंनरः पश्येत्स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः
गन्धैर्धूपैस्तथादीपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।
गीतं वाद्यं पुरा कृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥ ४७ ॥
प्रातर्मध्येपराह्णे वा कृत्वार्कस्यप्रदक्षिणाम् । समुक्तस्सर्वपापैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
सूर्यलोकं प्रयात्याशु यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ४६ ॥
शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्भानुरत्रप्रतिष्ठितः ।नरेणैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥ ५०
तदैवास्यपुराव्यास! यात्रा शक्रेणनिर्मिता । आगमिष्याम्यहंपार्थसार्द्धंदेवैःसमाहितः
ज्येष्ठेऽतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा । तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यदर्पणात्
ततोऽनन्तरमागम्य देवा ये त्रिदशालये । दृष्ट्वा देवं तथारूढं नरदीपंसुदीपनम् ॥ ५३
कृत्वायात्राञ्चतेयान्तिदेवयात्रात्ययेततः । यःपश्येन्मानवोभक्त्यानरदीपंरथस्थितम्
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।
रथयात्रामथो वक्ष्ये नरदीपस्य या पुनः ॥ ५५ ॥
तां कृत्वा चैव तत्पुण्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ।
ज्येष्ठेऽतीते द्वितीयायां रथस्थो हि दिवाकरः ॥ ५६ ॥
कुशस्थल्यां द्विजश्रेष्ठैर्बाहुक्षेपैः प्रणीयते ।
उत्तरां दिशमायान्तं यः पश्यति दिवस्पतिम् ॥ ५७ ॥

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य लभते सोऽखिलं फलम् । निवृत्ते शिवरात्र्यां योऽथ पश्यति मानवः
मुण्डीरस्वामिनो यात्रां स्नातो नर्मसंशय । रथमाकर्षयेद्यस्तु रज्ज्वाकर्षणयैर्मुने ।
कुलमुद्धरते सोऽपि पूर्वान्पितृपितामहान् ।
दक्षिणाभिमुखं यान्तं नरो दीपं द्विजोत्तम ॥ ६० ॥
ये सर्वदा प्रपश्यन्ति ते यान्ति च त्रिविष्टपम् ।
सूर्यस्य येन क्षेत्रं रथं देवमथापि वा ॥ ६१ ॥
सर्वकामानवाप्नोति नरः पुण्यफलं लभते । प्रदक्षिणां तु सूर्यस्य भक्त्या कुर्वन्ति ये नराः
प्रदक्षिणीकृतास्तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा । मानव यायया भक्त्या मौनी याति दिवाकरम्
दृष्ट्वा तु पूर्वद्वारेण नमस्कृत्य द्विजोत्तम । प्रविश्य दक्षिणेनैव रथं च प्रपूजयेत् ॥ ६४
तेन द्वारेण निष्क्रम्य प्रणिपत्य प्रजेश्वर । पश्चिमद्वारमाश्रित्य रथस्थं सूर्यमर्चयेत् ॥
चामरे च वितानञ्च घण्टा चापि निवेदयेत् ।
पूर्वद्वारे तु गौरीया तथाऽश्वश्चैव दक्षिणे ॥ ६६ ॥
पश्चिमे च गजः प्रोक्त उत्तरे चैव च । कुर्यादेवं तु यो यात्रां रथदीपस्य मानव ॥
सोऽसूर्यशिवरामाणां स्थालोक्य लभते सुखम् ।
प्रदक्षिणा महामेरो कृता तेन भवेन्मुने ॥ ६८ ॥
गवां सहस्रं यो दत्वा पातशतेन च । अश्वानाञ्च सहस्रेण यात्रायां तत्फलं लभेत्
नरदीपे रथारूढं ध्वजं कारयेत्तथा । श्रिया स विच्युतिस्तस्य सूर्यलोके महीयते ॥
सूर्यस्य पुरतो वाप्या मासं नित्यं विगाह्य च ।
यस्तमालोकनं भक्त्या दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥
अथ यायोऽनुदिनं व्यास नरो दीपं प्रपश्यति । उत्तमस्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः
प्रक्रीड्य च भुवि सार्द्धं मृत सूर्यपुरं व्रजेत् । प्रणष्टे तिमिरे विप्र जाते सर्वत्र सुप्रभे
हतेऽन्धके महेशेन शूलेन त्रिशिखेन च । ब्रह्मणाश्च सुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥
शङ्खं दध्मौ तदा विष्णुः सुरगणा हितकाम्यया ।
तत्र तीर्थमथोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसञ्ज्ञकम् ॥ ७५ ॥

तत्र सन्निहितोविष्णुर्लिङ्गञ्चैवचतुर्मुखम् । अनाद्यञ्चैवधिप्रेन्द्रलिङ्गस्यच समीपतः

देवस्य दक्षिणे भागे शूलेनालक्षितः स्थितः ।
चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां ये पश्यन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७७ ॥
ते क्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ।
योगिनीनां बलिं यस्तु यथावत्सम्प्रदास्यति ॥ ७८ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौकेनापिबाध्यते । द्वादशीं समुपोष्यैव स्नात्वादेवंजनार्दनम् ॥

यः पश्येच्छङ्खिनं देवं सोऽच्युतं स्थानमाप्नुयात ॥ ८० ॥
यःस्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यस्सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैव हि विश्वहेतुर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ८१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे विष्णुमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अङ्गारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भिन्नेऽन्धके त्रिशूलेन ध्वनीरुद्रस्यनिर्गतः । तत्रोङ्कारःसमुत्पन्नो देवदेवोमहेश्वरः ॥
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा समाधिनियमेनच । दृष्ट्वोङ्कारं महादेवं मुच्यते सर्वपातकैः
हत्वाऽन्धकं त्रिशूलस्तु भोगवत्याजलेऽथयौ । दृष्ट्वाशूलंमुनेजस्कंहाटको विस्मयंगतः
पप्रच्छकेनकार्येण भवानिह समागतः । कथयामास शूलोसौ शङ्करेणाहमीरितः
अन्धकस्यवधार्थाय पापवृत्तेःसुदुर्मतेः । भित्त्वातमहमायातो भोगवत्याजले शुभे ॥

गमिष्यामि पुनस्तत्र यत्र तिष्ठति शङ्करः ।
शूलोक्तं वचनं श्रुत्वा परमेशदिदृक्षया ॥ ६ ॥

हाटकश्शूलमार्गेण निर्गताममयेनम । पद्मवनसमाकीर्णं सुगमं सुमनोहरम् ॥
तं दृष्ट्वा त्रिदशाः सर्वे शूलेशाहाटकेश्वरम् । प्रणम्य हृष्टरोमाणो यथाप्रोत्फुल्लपङ्कजम्

तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
हाटकेश्वरनामासीत् पाताले यो व्यवस्थितः ॥ ९ ॥

निर्गतश्शूलमार्गेण तेनशूलेश्वरः स्मृतः । धूतपापञ्जतीर्थञ्च देवदेवस्य चोत्तरे ॥ १० ॥
तत्र पापस्सदैवेन्द्रो धूतश्शूलेनपीडयवान् । तेनतीर्थमिदव्यास धूतपापञ्चवक्ष्यते ॥

अष्टम्यां वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां शर्नौ तथा ।
उपोष्य रजनीमेकां शिवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥

धूतपापेतुयः पश्येद्देवदेवं महेश्वरम् । विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृतैरपि ॥
कुलानाशतमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति । हस्ताभिषेकं यः पश्येत् पौर्णमासिसथैवर
शूलेश्वरप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया । विमानानां सहस्रेण मृतोयाति परम्पदम्
इतिश्चाण्डकशूलोयं यावद्दोगपनीगतः । तावत्समुत्थिताघोरा असुराः रुधिरोद्भवाः

खड्गहस्ता महावीर्या अनेकशतसङ्ख्यया ।
चतुर्दिक्षु स्थितैर्घोरैः हन्यमानो महेश्वरः ॥ १७ ॥

सिंहनादंमुमोचाथ पीडितस्तैरुपातमभि । सिंहनादेनतेपापा मूर्च्छिता पतिताभुवि
पुन समुत्थितास्जग्मुर्देवदेव महेश्वरम् । विश्वस्ताश्च ततोदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः

असाध्यास्तास्तथा मत्वा मन्त्र कृत्वा हितैषिणः ।
ततो देवा विचार्याथ क्रौं सङ्ग्राम इति स्वयम् ॥ २० ॥
इत्युक्त्वोपादयामास ब्रह्मा हंसासना शुभाम् ।
चतुर्वक्त्रा चतुर्हस्ता ब्रह्माणीरूपधारिणीम् ॥ २१ ॥

कुमारश्चैवकौमारीं मयूरवरवाहनाम् । रक्तमाल्याम्बरधरा शक्तिखड्गचधारिणीम्
पुन कुमार कौमारीं पक्षीन्द्रवरवाहनाम् । कृष्णाकरालदशना धर्मराजस्तथासृजत्
दैत्यदेहप्रमथिनीं दण्डमुद्गरधारिणीम् । ललाटलोचना नीला कपालकरभूषिताम्

सिंहाननधरा कृष्णा सर्वभूषणभूषिताम् ।

कर्तृहस्तां सखट्वाङ्गां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ २५ ॥
चर्मास्थिकेशवपुषं चामुण्डामसृजत्प्रभुः। घटस्यनिकटेपूर्वं निर्मितालोकमातरः
ततो लोकेषु विख्याताः प्रत्यक्षा घटमातरः।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यस्तु पश्यति मातरः ॥ २७ ॥
समुक्तस्सर्वपापेभ्यो मातृलोकेमहीयते। सिंहनादोऽपिदेवेन कृतो यत्र महावने ॥
तत्र सिंहेश्वरो देवस्सर्वदुष्कृतनाशनः। दर्शनात्तस्यदेवस्य सिंहवत्सबलीभवेत् ॥
सिंहनादेकृते यत्र जातंकण्टकितम्वपुः। तत्र कण्टेश्वरोदेवो भक्तानां सर्वदासदा ॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कण्टेश्वरं शिवम्।
गृहभूतपिशाचेभ्यो न भयं प्राप्नुयात्कचित् ॥ ३१ ॥
तत्रतामातरस्सर्वा आदिष्टास्तुहरेणवै। अन्धासुरस्य रौद्रस्य पिबध्वंरुधिरंद्रुतम्
एतस्मिन्नन्तरे व्यास! प्रज्वलज्ज्वलनोपमम्।
अभयं शक्र!मा भैस्त्वं यत्रोवाचेति शङ्करः ॥ ३३ ॥
तत्र लिङ्गं समुद्भूतमभयेश्वरमुत्तमम्। वन्दितंदेवगन्धर्वैः सिद्धविद्याधरोरगैः
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा सोपवासो जितेन्द्रियः।
अर्चयेद्देवदेवेशमश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३५ ॥
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो न भयं विद्यतेक्वचित्। सिंहयुक्तेनयानेन शिवलोकंसगच्छति
अन्धकस्यतुयामाया रक्तासुरसमुद्भवा। मातृभिर्युध्यमानाभिः क्षयमाशुजगामसा
देव्यःपिबन्त्योरक्तं वै दैत्येयतनुतस्सृतम्। तृप्तिंपरमां जग्मुर्नतुतृमाललाटजाः।
हतमायः शिष्टकस्तु भिन्नशूलतनुच्छदः। उत्तराभिमुखं शूलमन्धकोऽकर्षयद्बुचलं
संनिरुद्धोमहादेवो वारितोगणरेनसः। महाविनायकः ख्यातस्तस्माल्लोकेऽभवन्मुने
दर्शनात्तस्यदेवस्य नविघ्नैः पीड्यतेनरः। मासेमासेचतुर्थ्यांयो गणेशंपूजयेद्द्विज
नतस्यविघ्नं जायेदि (तइ) हलोकेपरत्र च। स्वेदबिन्दुरथोतस्य ललाटादपतद्भुवि
तस्मादङ्गात्ततो जातो रक्तमाल्यानुलेपनः।
आवन्त्ये विषये जातो लोहिताङ्गो धरासुतः ॥ ४३ ॥

अङ्गारकस्तु तत्रासौ महादेवमुमस्तथा । नामनिर्माणमेतस्तु तत्प्रभृत्यद्येऽपि पीठेपित
तत्रतीर्थं तपोऽस्य समङ्गारेश्वरमुत्तमम् । प्रमाणान्यापितं लिङ्गं गणगन्धर्वसेवितम्
शुचिस्तत्र यः स्नाति नरस्त्वङ्गारपालरे ।
दृष्ट्वाऽङ्गारेश्वरं सोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४९ ॥
चतुर्थ्यामङ्गलदिने नरो वाऽर्घ्यं निवेदयेत् । यावत्पूर्णाश्च नव स्युस्तावत्कार्यं नवपत्तन
पञ्चवैकरका कार्या मन्त्राधपार्थसमयुता । गुडपिण्डमया कार्या रक्तवस्त्रसमन्वित
रक्तचन्दनसंयुक्तारक्तपुष्पैश्च पूजिता । निदध्याद्वस्त्रसंपूर्णं तत्रैव कारयेत् ॥
द्विर्नाथं रक्तकुञ्चैव तृतीयं पयसा तथा ।
नायांमुनिधनुर्यस्य पञ्चमं मूलकैस्तथा ॥ ५० ॥
रश्मालयविधानेन मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत् । कुजायलोहिताङ्गाय ग्रहमध्यस्थितायच
कामिदेवानुरूपाय सुरूपायनमोनम । शिवस्वेदसम्भूत धरणीगर्भसम्भव ॥ ५१
ऋणार्थं त्वां प्रपन्नोऽस्मि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।
अरुलिताङ्गारवर्णाभ स्निग्धविद्रुमसमप्रभ ॥ ५२ ॥
पुत्रार्थं त्वां प्रपन्नोऽस्मि गृहाणार्घ्यं धरात्मज ।
आवन्त्यमण्डले जातो धरण्याश्च शिरेन वै ५४ ॥
धनं देहि यशो देहि रूपं देहि नमोऽस्तु ते । एवं सम्पूजिते भौमे चतुर्थ्यां द्विजसत्तम
भुक्त्वा भोगांस्तथा पुत्रान् प्राप्य वै क्षितिमण्डले ।
मृतः स्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽङ्गारेश्वरमाहात्म्य नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अन्धकवृत्तान्तवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

नास्तिशेषंयदारक्तंपीयमानञ्चरक्षसाम् । चामुण्डायास्ततोरक्तमभूदास्यञ्चभास्वरम्
कृष्णंभूतान्तकल्पान्तकरालदशनाधरम् । प्रज्वलद्वह्निकेशान्तंज्वलज्ज्वालनलोचनम्
घोरघुर्घुरनिर्घोषस्फीतफेत्कारविस्वरम् ।
तार्क्ष्यपक्षकृतापीडं तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥
तस्मिन्मुखेकपालाग्रं निधायरुषितानना । अपिबद्रुधिरञ्चण्डी चण्डदोर्दण्डमण्डिता
तयापिबन्त्यादैत्येन्द्रशरीरेकृशतांगतः । सर्वाःसंहृत्यमायाया बलक्षीणमथाकरोत् ।
तीव्रंभयंसमासाद्य प्राणत्राणपरायणः । दृष्ट्वानान्यांगतिंलोके दैत्यस्तुष्टावशङ्करम्
कृताञ्जलिपुटोभूत्वारोमाञ्चितशरीरकः । सात्त्विकंभावमापन्नस्त्यक्त्वाचैवरजस्तमः
लोकानां कारणं देवं विबुधाधिपतिं विभुम् ।
शश्वद् बुध्यान्वितो भक्त्या निर्मलेनान्तरात्मना ।
श्लाघ्यं शिवं च तुष्टाव देवं चन्द्रार्द्धशेखरम् ॥ ८ ॥
कृत्स्नस्य योऽस्यजगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य चतथा सुखदुःखदाता ।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ९ ॥
यं योगिनोविगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्त्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि १०
यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा सुरधुनीं शिरसाबिभर्त्ति ।
वामाङ्कके विधृतवान्गिरिराजपुत्रीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ ११ ॥
यस्सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गांमहोर्मिविषमां गगनात्पतन्तीम् ।
मूर्ध्नादधेस्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥ १२ ॥

कैलासगौरशिखरैरपरिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेनदशाननेन ।
य पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्त शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १३ ॥
दक्षाध्वरे तु नयने च तथा भगस्य पूष्णस्तथादशनपङ्क्तिमशातयच्च ।
व्यस्तम्भयत्कुलिशहस्तमथेन्द्रमीश त शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १४ ॥
येनासुरेन्द्रदितिसुताश्चदनोस्सुताश्च विद्याधरोरगगणाश्च वरै समग्रा ।
सयोजिता मुनिवरा फलमूलभक्षास्त शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १५ ॥
पापकृतेऽपि विषयेष्वपि सक्तभावा ज्ञानेनवयुस्तगुणैरपि येन युक्ता ।
यं सश्रिताःसुखभुजः पुरुषा भवन्ति त शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १६
ब्रह्मेन्द्रविष्णुमरुता च सषण्मुखाना योऽदाद्वराश्च सुबहुशोऽभगवान्महेशः ।
तन्नन्दि मृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तं शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १७ ॥
आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्रावृतेन तपसाऽपिपरैरगम्य ।
सञ्जीविनीमदितयोभृगवेमहात्मा त शङ्करं शरणद शरण व्रजामि ॥ १८ ॥
क्रीडार्थमेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ।
सब्रह्मकानि सत्सृजे सुकृताभिधानि त शङ्करं शरणदं शरण व्रजामि ॥ १९ ॥
य सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवस्त पञ्चम प्रसभमेव करालरूपम् ।
ब्राह्मच शिरस्तरणिपद्मनिभञ्चकर्त त शङ्करं शरणदं शरण व्रजामि ॥ २० ।
यै त्वा सुरोत्तमगुरु पुरुषा विमूढा जानन्ति नान्यजगत सचराचरस्य ।
तत्सश्चयमानविगमन महेशपश्चात्ते यान्ति नामनुभवन्ति यथा ह्यमेव ॥ २१ ॥
य पठेत्स्तवमिद शुचिकर्मा य शृणोति सतत शिवभक्त ।
विप्रसंसदि सदाशुभकर्मा स प्रयाति शिवलोकमखण्डम् ॥ २२ ॥

सनत्कुमार उवाच

तस्यैवस्तुवतोदेव शूलपाणिर्वृषध्वज । पूर्णवर्षशतस्यान्ते प्राह प्रीत्याचशङ्करः ।
तुष्टोऽहमिमद्रन्तेचातस्त्वनिर्मलोऽधुना। दिव्यदर्शनमेत्र सुम पश्यमाविगतज्वर
यच ते मनसा यापि किञ्चिचाकाङ्क्षित फलम् ।

तत्ते (तत्तत्) सर्वं प्रदास्यामि ब्रूहि दानवसत्तम ॥ २५ ॥

अन्धक उवाच

ब्राह्मं वैष्णवमैन्द्रं वापदव्रातृत्तिलक्षणम् । विदितं मम तत्सर्वं मनागपिनकाङ्क्षये

यदितुष्टोऽसिदेवेश गाणपत्यंददस्वमे । सविशेषं विशुद्धश्च तदक्षरश्चसर्वदा ॥ २७

शिव उवाच

अमरोजरयात्यक्तःसर्वदुःखविवर्जितः । भविष्यसिगणाध्यक्षस्सर्वलोकनमस्कृतः

कामरूपोमहायोगी महासत्त्वोमहाबलः । अणिमादिगुणैर्युक्तः प्रियश्च ममसर्वदा

सनत्कुमार उवाच

ततश्च सोऽन्धकः श्रीमान् वराँल्लब्ध्वा सुदुर्लभान्

महादेवगणो भूत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥

गतेऽन्धके ततो देव्यो ब्रह्माण्याद्यास्समागताः । स देवोयत्रभगवानन्धकस्यवरप्रदः

तास्तुष्टुवुर्महादेवमथतुष्टो महेश्वरः । चामुण्डापि महेशेन समाश्वस्ताशिवाभवत्

शङ्करंप्रणतंदृष्ट्वातासामग्रेव्यवस्थितम् । ब्रह्मादयोऽपि ते देवास्तुष्टुवुर्विविधैस्स्तवैः

प्रशान्तास्ता यदा दृष्टाः शम्भुना रुधिराशनाः ।

तदावोचदिदं वाक्यं तासां स्थित्यर्थमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

आवन्त्यविषये सर्वा यस्माज्जाता महाबलाः ।

आवन्त्यमातरस्तस्मात् ख्याता लोके भविष्यथ ॥ ३५ ॥

अवन्त्यां प्रीतिसम्पन्नास्सर्वपापप्रणाशिकाः (नीः ?) ।

स्थिरा वसन्त्यो लोकानां वरदाश्च भविष्यथ ॥ ३६ ॥

श्रावणस्य तु मासस्यामावस्यायां समाहिताः ।

ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या न गां लोका महोदयाः ॥ ३७ ॥

अपुत्रोलभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम् । रूपवान्सुभगोभोगी सर्वशास्त्रविशारदः

हंसयुक्तेनयानेन पितृलोके महीयते । पुरीमिमाश्चरक्षध्वं कल्पे कल्पे क्रमेण तु

एवमुक्त्वाच देवेशो गतःकैलासपर्वतम् । स्तूयमानोगणैरौद्रैर्देवैश्चामरगणेश्वरैः ॥

असुरसुरगणानां नायकस्यानुकीर्तिं कथयति कथनीयां श्रद्धया य शृणोति ।
सकलसुखनिधानं रुद्रलोकं सकान्तं सुरगणदनुजाद्यैरर्चितं या यनन्तम् ॥ ४९ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽ
रुपकृत्नाग्नं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महाकालमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

भगवन् क्षेत्रमाहात्म्यं कथितञ्च यथाक्रमम् । तीर्थानामुत्तमं तीर्थं पुण्यानां पुण्यवर्धनम्
कति सन्त्यत्र नाथानि लिङ्गानि च तथा कति । कथयस्व प्रसादेन पृच्छतो मम साम्प्रतम्

सनत्कुमार उवाच

षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च । महाकालवनेऽप्यासं लिङ्गसंख्या न विद्यते
अकामो वा सकामो वा जायते योऽत्र मानव । महाकालवने रम्ये शिवलोके महीयते
कृतकामादितीर्थानि प्रासादायतनानि च । तेषु स्नात्वा शुचिर्भूत्वा शिवलोके महीयते
पुण्यानि च यतो यानि सिद्धक्षेत्राणि सर्वतः । तेषामुत्तममेव हि क्षेत्रं तीर्थं तथोत्तमम्
य शृणोति महाभक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ७ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
महाकालमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

उज्जयिन्याःकनकशृङ्गेतिख्यातिहेतुवर्णनम्

व्यास उवाच

भगवन्भवता सर्वं भवभीतिविनाशकम् ॥ १ ॥

ईश्वरस्थानमाख्यातं समंतात्साग्रयोजनम् । यत्रक्षेत्रेमृतामर्त्या सदाचारास्तथेतरे
विमानस्थाःपुरेनूनमैश्वरे ते वसन्ति च । यत्र कीटपतङ्गाद्या मृतायान्तिपरांगतिम्
किं तीर्थंपुण्यमन्यच्च महाकालवनादृते । तस्माद्ब्रूहिममैकंतु प्रश्नंतथ्येनसाम्प्रतम्
कथं कनकशृङ्गेतिख्याताख्ये पायुरामुने! । कुशस्थलीकथन्नामतथाऽवन्तीकथंस्मृता
पद्मावती कथं साधो! कथमुज्जयिनी तथा । नाम्नांहेतुमथाप्येषां ब्रूहित्वंमुनिसत्तम

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि यथापूर्वं विरञ्चिना । कथितंवामदेवाय गौरकल्पे पुरातने
महेश्वरश्च भगवान् विधाता चात्र हेतुषु । (महेशेन भगवता विधिश्चैवात्रहेतुतः)

व्यास उवाच (?)

जगत्यां स्वश्च्युतानाञ्च कुतोनिवसतां सुखम् ॥ ८ ॥

स्वर्गप्राप्तिश्च भवति स्वेच्छाचारविहारिणाम् ।

कोऽस्ति पुण्यतमः श्रेष्ठः प्रदेशः पापहारकः ॥ ९ ॥

कुतोनिर्वृतिर्भगवान्जायतेवसतांक्वचित् । वसतामपिलोकेशऐहिकीपारलौकिकी

एतन्मे भगवन्ब्रूहि हितार्थं सर्वदेहिनाम् ।

सनत्कुमार उवाच

एवमार्द्रौ पुराकल्पे प्रोक्तःपृष्टः स शम्भुना ॥ ११ ॥

प्रोवाच पार्वतीकान्तं प्रभुः प्रीतः पितामहः । भगवन्सर्वकर्तात्वं सर्वदर्शीसदाशिवः
अजानन्निवत्वं सर्वं मांपृच्छसिसनातन । यत्रकल्पान्तकोपवह्निरधिज्वालःप्रतिष्ठितः

स त्वमेव महाकाल सर्वं चक्षायते त्वया । नार्थाये मानवास्तत्र सदाचारास्त्वपापरे
निवसन्तिननेमर्त्या सुरास्ते न च मानुषा । रमन्तेषवुन स्वर्गं मृताचैकालपर्यये
वर्ततेचपुरीतत्ररम्यहर्म्यासुशोभना । तस्यामान्तिविचित्राणिहर्म्याणिविविधानिच
स्वर्णशृङ्गाश्च प्रासादा विहिता विश्वकर्मणा ।
देवास्तसन्ति सदा यत्र तथान्ये विविधाश्च ॥ १७ ॥
पूर्वकल्पेऽभिधनोऽहञ्च यमस्य चैरावस्तथा । तामेवत्वपुरींद्रष्टु सर्वेलोकाःसपर्तनाम्
तथादेवस्य लिङ्गा यश्चविप्रस्दानया । माजग्मुस्त्वाणुनासार्द्धं वयमा वयोगिभा
तथैवचचरानार्यो देवानामपिवल्लभा । समागेतु महत्प्राणि द्रष्टुमरत्नुतास्तुताम्
आगस्यचतदादेव महद्र्वंमहेश्वर । वीक्षितुमनवीरम्यामदयदाकृतांतथा ॥ २१
प्रासादेऽन्यवणश्रृङ्गाढ्ये मणिरत्नाविभूषिते । विश्वकर्पोहिभगवान्राज्ञाविश्वैवनायक
तत्रान्ते शोभनेदिव्येप्रासादमणिभूषित । सेव्यमानम्तुरे ऋषिसंघैमुनिभिविधाधरोत्तो
ततो महेशश्च शिव महश्च समे च तं विश्वपति ववन्दतु ।
समर्चिमो तौ विधिना नमान्ताम् सहानुगावागमनस्यपूरुषान् । २४ ॥
किमागतौ वै त्रिदिवान्महीतले सहानुगावीशव जेवा कथ्यताम् ।
ततस्तु तावूचतुरुग्रजेश्वरौ भवामहो यत्र च तत्र नौरति ॥ २५ ॥
त्वया विना नैव सुरालये सुखं मही तले चापि रमामहेऽस्मिन् ।
वद्रा त्वया काञ्चनशालगापुरा निर्मिता वेदमयी विचित्रा ॥ २६ ॥
हरिरुवाच
त्वद्दपमरश विशालशालिनी मृत्पदिवे सर्वगुणाकरा मता ।
प्रगच्छ त्यान त्वमिहापयाहि ततो जयाम्यु प्रसन्नमानसः ॥ २७ ॥
ददाश्वमाहं युवयोरिहालयं प्रयात्येनरत्नस्तव निर्मितं ।
महेश्वर त्वं प्रजहिशालयं त्वाजं सुदर्शं युवयो सुशोभनम् ॥ २८ ॥
महाकालोहरोऽभ्यास ममाद त्वमनुन्मदा । सर्वेनेमाधैरनुगः पर्गेश्वर ।
कीर्तिता नगरीमहा सर्वभूतनिषेविता । कथायद्युवयोदत्ता विहायाचलमासन

भवद्भ्यां हेमशृङ्गेति यस्माच्च समुदीरिता ।
पुरी कनकशृङ्गेति लोके ख्याता भविष्यति ॥ ३१ ॥
एवं कनकशृङ्गेति प्रथमन्नाम कथ्यते । जपन्तश्च स्थितायत्र ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ॥
नित्यं रमन्ति भक्तानां सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
कनकशृङ्गाभिधानवृत्तान्तवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कुशस्थलीनामकथाहेतुवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास!यथेयन्तुप्रोच्यते हि कुशस्थली । कल्पेतस्मिन्युगे पूर्वंवेद्रचिद्भिर्मनीषिभिः
वेवसाश्चजितंविश्वं दैत्यदानवराक्षसम् । अन्योन्यमदसंमत्तमन्योन्यद्वेषिणंसदा ॥
देवाश्चदानवास्तत्रचैनित्यंस्पर्द्धासमन्विताः।मनुष्यामनुजैःसार्द्धंसिद्धाविद्याधरैस्सह
चारणाःकिन्नरैस्सार्द्धंवर्तन्तेःद्वेषतत्पराः । युद्धंकुर्वन्तिसततं संचित्यप्रार्थयागिरा
सर्वेचैवंतुबलिनो दुर्बलैर्मनुजैः सह । पशवः पशुभिस्सार्द्धं पक्षिणस्सह पक्षिभिः
एवमन्योन्यमन्यैश्चनिर्मर्यादमिदञ्जगत् । तस्माद्विश्वस्यकर्तारंविष्णुंविश्वेश्वरंपरम्
व्रजामि शरणं देवं शरणार्त्तिहरं हरिम् ।एवं मनसि सन्धाय दध्यौध्यानेन माधवम्
ततो ध्यातोमहायोगी विश्वरूपधरोहरिः । लोहक्षण्डधरःश्रीमानिदमाहपितामहम्
ब्रह्मन्ध्यातस्त्वया सम्यक् ध्यानयोगेन पश्य माम् ।
समायान्तं यथाध्यातं जनतां पातुमुद्यतम् ॥ ९ ॥
ततो धाता निशम्यैतत्त्यक्त्वा ध्यानमवेक्ष्य च ।
समुत्थायैकमनसा नमश्चक्रेऽर्घयन्पुरः ॥ १० ॥

पाद्येनाचमनायेन मधुपर्केण केशवम् । पूजयित्वा पुनर्वाक्यमुवाचाच्युतमब्जज ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव जगन्नाथ ज्ञानरूपमिदं मया । अन्ते यथा हरे विष्णो नैवावस्थातुमर्हति ॥
शान्ता त्वमन्य विश्वस्य विशुद्धस्य च नापर ।
त्वमसोऽन्मीदं जगन्सर्वं तस्मात्त्वमनुशाधय ॥ १३ ॥
देवदानवगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । परस्परविभिन्नान्ति तांश्च परक्षितुमर्ह ॥
त्वामृते पुण्डरीकाक्ष व्यापिता शरविग्रहम् ॥ १४ ॥
त्वमस्य विश्वस्य चराचरस्य नियन्ता प्राणभृद्दानरूपी ।
त्वया धृतं सर्वमिदं जगद्वै यतस्ततोऽसि त्वमुपेन्द्रसंज्ञ ॥ १५ ॥
प्रजाजाताभिविधायकोऽसि त्वमुच्यसे विष्णुरतो मुनीन्द्रैः ।
निवासितं विश्वमिदं त्वयापि तेनैव धातोरिति वासुदेव ॥ १६ ॥
तथानुगं विश्वमिदं विभुस्त्वमतोऽत्र विश्वस्य विभासि राजा ।
सैवानुरूपं जगदेव यस्मात्तत्सूतमन्त्र किल विश्वसत्र ॥ १७ ॥
विलेसतार्थस्य चराचरस्य कृतेऽत्र धातोस्त्वमतोऽसि कृष्ण ।
जितस्त्वयादैवगणस्त्रय यज्ञैश्च धातोस्त्वमतोऽसि जिष्णु ॥ १८ ॥
सन्ना समस्तं ब्रह्मलोकपाठ जगत्तवैतद्भुवसर्वकालम् ।
त्वमस्य सर्वस्य भवादिरात्मा (अस्त) वास्तुमहासनमद्वितीयम् ॥ १९ ॥
प्रदक्षिणावर्तनं अस्ति शङ्खं करस्थितोऽसि पुरुषोत्तमोऽसि ।
सुदर्शनमायतवास्तिचक्रं चक्री ह्यतस्त्वं ह्यपरस्त्वचक्री ॥ २० ॥
ध्वजोऽस्ति देवस्य सुपर्णसेवितस्तथा सुवर्णाङ्गरुतोऽस्ति वाहनम् ।
तुरङ्गमा सन्ति तवातिसद्दास्तथा हरीकेश सुमत्तदन्तिन ॥ २१ ॥
किरीटनिष्काङ्गदकर्णपूरकेयूरहारोत्तमहेममूर्तेः ।
विचित्रवस्त्रोत्तरकमाल्यैर्विभूषितस्त्वं मवर्णामसेन ( ) ॥ २२ ॥
श्रिया कदाचिन्न मुच्यते भवान् भवन्ति ते नित्यमनन्तसम्पदः ।

तवानुगा भक्तिरिहास्तु वै सतांमुकुन्द भक्तोत्त्वमतः प्रसीद ॥ २३ ॥

१ सनत्कुमार उवाच

स एव मुक्तस्तु पुरो दिवौकसां विभुःप्रसन्नस्त्विदमब्रवीद्धरिः ।
विरञ्चि मे दर्शय शुद्धमण्डलं त्वया विमुक्तं च सदाशिवं विभो! ॥ २४ ॥
स्थिरःस्थितोयत्र जगत्करोम्यहं ततो विरञ्चिःकुशमुष्टिमाददे ।
पवित्रदेशस्य निदर्शनाय जगाम पुण्यञ्च (ञ्चय) वनाश्रमं तदा ॥ २५ ॥
संमन्त्र्य देवैःसहितोमुकुन्दस्ततः स्थलीमुच्चतरामवाप्य वै ।
पितामहः केशवमाहचादरात्त्वदुद्भुवा यात्रपवित्रमण्डलम् ॥ २६ ॥
त्वमेवविष्णुर्विबुधार्चितस्सदास्मृतोमुनीन्द्रैःस च विष्टरश्रवाः ।
निषीदविश्वेशकुशैः कुशेश्वर! तदाश्रितो माधव एवमुक्तः ॥ २७ ॥

ततो विधाता भगवान् पुराणःपुरुषोत्तमः ।
कुशस्थली तु तस्यास्तु चक्रतुर्नाम तावुभो ॥ २८ ॥
तत्र विश्वपतिः श्रीमान् विश्वेशो विश्वकृद्विभुः ।
विश्वं शशास विश्वात्मा सर्वविश्वविनायकः ॥ २९ ॥
एवं कुशस्थली ख्याता हेमश्रृङ्गेति या पुरा ।
ख्याता कुशैर्यतो धात्रा कुशस्थली ततः स्मृता ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्येऽवन्त्यभिधानकथामाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पुरा वैशालकल्पे ॥ स्मृताऽवन्ती यथापुरी । तथाऽऽसुरैः सर्वैर्देवसैन्यपराजितैः
आश्रितस्मेदशिखरवनकुञ्जगुहावृतम् । तत्र गत्वाद्विजश्रेष्ठा मन्त्रयन्त समुद्यता ॥
अन्योन्यञ्च समालाप सम्भ्यच्य परस्परम् । जग्मु सर्वेसुरगणा यत्रब्रह्मप्रजापति
वेदयाञ्चक्रिरेसर्वे तथागमनकारणम् । तेषान्तद्वचनं श्रुत्वा देवानां स प्रजेश्वर ॥
जगाम त्रिदशैः सार्कं देवदेव महेश्वरम् ।
स चापि तागमत्तत्र वैकुण्ठे धाम यत्र वै ॥ ५ ॥
ऋद्धिसिद्धिप्रदं नित्यं मुनिचारणसेवितम् । किन्नरर्गीयमानञ्च अप्सरोगणसेवितम्
ऋषिभिर्भार्गवाद्यैश्च देवर्षिनारदादिभिः । सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च कुमारैः सनकादिभि
प्रजापतिगणाकीर्णं मानवैश्चचतुर्दशैः । वसुभिर्विश्वदेवैश्च पितृणामुत्तमैर्गणैः ॥
सदासेव्य सदाधारैः पुण्यवद्भिजनैस्तथा । दिव्यदिव्याद्यमिश्रयं दिव्यपादपशोभितम्
मणिभीरत्नसोपानैः सरोदिव्यैः सुशोभितम् । हंसकारण्डवाकीर्णं यत्रतिष्ठतिभास्वरम्
षड्भिरहितस्थानं निर्वैरपशुपक्षिकम् । तत्र गत्वा सुराः सर्वे वासुदेवदिदृक्षया ॥
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं देवदेवजगत्पते ।

देवा ऊचु

नमोऽनन्ताय बृहते कूर्माय वै नमोनम ॥ १२ ॥
नृसिंहरूपायोग्राय नमोवाराहरूपिणे । राघवायच रामाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ १३
वासुदेवाय शान्ताय प्रद्युम्नापतयेनम । नमोबुद्धायशुद्धाय कल्किरूपेम्लेच्छान्तकारिणे
इति स्तवाभियुक्तानां वागुवाचाशरीरिणा ।
श्रूयताम्भोसुरास्सर्वे सम्भूयैकाग्रमानसा ॥ १५ ॥

महाकालवनंरम्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । तत्रपुण्यापुरीह्येका सर्वकामफलप्रदा ॥१६॥

नाम्ना कुशस्थली रम्या सिद्धगन्धर्वसेविता ।
कल्पादौ कल्पमध्ये वा यत्र सन्निहितो हरः ॥ १७ ॥

कल्पक्षयेक्षयंयान्तिस्थावराणिचराणिच । तीर्थानिचैवसर्वाणिपुण्यान्यायतनानिच
सरितःसागराःसर्वे सरांस्युपवनानिच । औषधीर्वृक्षवल्यश्च यन्त्रमन्त्रशुभाशुभम्
ज्योतींषिचन्द्रसूर्यौच सर्वं विष्णुमयंजगत् । तेषांबीजंचपुण्यश्च जीवकर्माशयंतथा
सर्वमादायभगवाञ्छङ्करस्तत्रतिष्ठति । सर्वतीर्थमयीगङ्गा सर्वदेवमयोहरिः ॥
सर्वयज्ञमयोवेदःसर्वधर्ममयीदया । रेवाचसरितांश्रेष्ठा भुविपुण्यमयाधिका ॥ २२ ॥
तस्माद्धितकरंक्षेत्रं कुरूणांवैसुरोत्तमाः । तस्माद्दशगुणंमन्ये प्रयागंतीर्थमुत्तमम् ॥

तस्माद्दशगुणा काशी काश्या दशगुणा गया ।
ततो दशगुणाप्रोक्ता कुशस्थल्यतिपुण्यदा ॥ २४ ॥
उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानिच ।
अमालक्षं कुशस्थल्याः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २५ ॥

लक्षमिन्दुक्षयेदानं सहस्रंचायनद्वये । व्यतीपातेचकोटिःस्याद्राकायाञ्चह्यनन्तकम् ॥

तस्माद्धितकरी देवाः पुरी ह्येषा कुशस्थली ।
अनन्तानन्तसङ्ख्यातं दानं किञ्चित्कृतंनरैः ॥ २७ ॥

श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठाःसर्वंतच्चाक्षयंभवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यूयंयातहिमाचिरम् ॥
क्षीणपुण्याभवन्तोवैबाधन्तेतेन वःसुराः । महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषाकुशस्थली ॥

तत्र गत्वा भवन्तोवै स्नानदानादिकम्भुवि ।
आचरध्वं सुविधिना पुण्यात्स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः वाण्याश्चाकाशगाहिते ।
प्रणम्य शिरसातस्यै ब्रह्माभवपुरोगमाः ॥ ३१ ॥

पुनर्जग्मुसुरासर्वे यत्रमाहेश्वरंवनम् । पुरीञ्चैवद्विजश्रेष्ठ! सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ३२ ॥
चतुर्वर्णसमाकीर्णामृषिगन्धर्वसेविताम् । पुण्यवद्भिर्जनैः पूर्णां सिद्धचारणसेविताम्

दरिद्रोऽन्धजडो मूर्खो रोगी न च मत्सरी । न व्याधिर्नापकारी च जन कश्चिद्दृश्यते
दान्ता शान्ता सुशीलाश्च जरारोगविवर्जिता ।
स्वधर्मनिरतानि च सदाचारातिथिप्रिया ॥ ३५ ॥
नित्यं शान्तिनरायश्च नार्यश्चैव पतिव्रता । महोत्सवसुगीतानि दृश्यन्ते च गृहे गृहे ॥
इहशाश्च पुरीं दृष्ट्वा देवा हर्षपरं गता । नवतीर्थं समाख्यात नाम्नापैशाचमोचनम् ॥ ३७
पुण्यवद्भि सदा सेव्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ।
तस्मिन्स्नात्वा च जप्त्वा च हुत्वा दत्वा च देवता ॥ ३८ ॥
पुण्य चाप्यक्षय लब्ध्वा पुनर्याता सुरालयम् ।
जित्वा सुरान्महादुष्टान् स्थानं प्राप्ता स्वकं स्वकम् ॥ ३९ ॥
येऽवन्त्यां तु महाभागास्नानदानं तथार्चनम् । हवनं तर्पणं चैव तु सर्वं स्यादनन्तकम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्नात्कार्यं सदा बुधै । देवतार्थोऽपि तीर्थानि भूतानां चैव पालनम्
कल्पे कल्पे च यस्यां वै तेनावन्तापुरी स्मृता । अद्यारभ्य पुरीश्रेष्ठानाम्ना ख्यातिं कुशस्थली
त्वयुक्तया वै तदा देवा स्वधामपरमं गता ।
तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ अवन्ती भुवि विश्रुता ॥ ४२ ॥
यश्चेमां च कथां दिव्यां पुण्यां सर्वपापहारिणाम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्योऽपि सर्वपापै प्रमुच्यते
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । वाजपेयसहस्राणां राजसूयशताधिकम् ।
पुण्यं लब्ध्वा नरो नित्यं शिवलोके महीयते ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
ऽवन्त्यभिधानकथननाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

उज्जयिनीतिप्रथाहेतुवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

एतस्मिन्नन्तरेव्यासयथासोज्जयिनीस्मृता।तथाहंसम्प्रवक्ष्यामिश्रूयतांतत्समाहितः

त्रिपुराख्योमहादैत्यो सर्वदैत्यजनेश्वरः। तपस्तेपेसुदुर्द्धर्षं ब्रह्मणस्तुष्टिकारणात् ॥

आतपे चाग्निसेवी वै प्रावृष्याकाशसुस्थिरः।

दमयित्वा तदात्मानं शीतकाले जलाशये ॥ ३ ॥

शीर्णपत्रजलाहारो वायुभक्षीनिराश्रयः। गायत्रीव्रतमास्थाय त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥

एवंवर्षसहस्रं तु तपस्तत्तंसुदुश्चरम्। पूर्णेवर्षसहस्रे तु ब्रह्माप्रीतमनाब्रवीत् ॥ ५ ॥

व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठवरंमत्तोऽभिकाङ्क्षितम्। तत्सर्वंसाम्प्रतंलोकेवरंतुभ्यंददामिते

एवमुक्तःसविधिना दैत्यस्त्रिपुरसञ्ज्ञितः। उवाचवचनंसद्यो ब्रह्माणंशंसितव्रतम् ॥

त्रिपुर उवाच

यदितुष्टमनाः ब्रह्मन्वरम्मेदातुमिच्छसि। देवदानवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ॥

अवध्योऽहं भवेयं वै वरमेतद्वृणोम्यहम्।

ब्रह्मोवाच

एवं भवतु भोवत्स! विचरस्वाकुतोभयम् (यः)।

इत्युक्त्वासहसाब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत। तदारभ्यमहादैत्यो देवानांकदनंमहत् ॥

चकारकोपपूर्णोवै पूर्ववैरमनुस्मरन्। वासयित्वायतत्र ग्रामाणिनगराणिच ॥

तत्र ये न्यवसन्सर्वे वर्णाश्रमपराजनाः।

तेषां वै कदनञ्चक्रे नानोपायेन पापधीः ॥ १२ ॥

तस्मिन्पुरेदुष्टवासे ब्राह्मणावेदपारगाः। नजुहत्यग्निहोत्रंवै सोमपानंनकर्हिचित् ॥

कुतश्चित्सुकृतंकर्म नैवकुर्वन्तिमैरवाः। स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारविवर्जिताः

मोत्सवो दृश्यते गेहे कस्यचिद् भुवि विस्तृतम् ।
देवतायतनं नास्ति यत्र नो शिवपूजनम् ॥ १७ ॥
नास्ति यज्ञो न दानानि न गोब्राह्मणपूजनम् ।
सदाचारो जनो नास्ति दयादानविवर्जित ॥ १८ ॥
नदानीनोपकारोऽयन पर्वाणि च दृश्यते। एवं व्याप्ते पुरे तस्मिन् नष्टप्रायमिदं जगत् ॥ १९ ॥
प्रजाना ब्राह्मणा मूलं वेदमूला हि ब्राह्मणाः । वेदमूलं च यज्ञाश्च मूलं हि देवताः ॥
तस्माद् व्याप्तं हि सर्वं छलेनैव दुरात्मना । तेनार्द्देवगणाः सर्वे हतप्राया हतौजसः ।
विचरन्ति यथा मर्त्या भुवि तेन पराजिता ।
अन्योन्यं च समन्धाना मन्त्र कृत्वा समाहिताः ॥ २० ॥
आमुग्नेतत्र यथावन्ति प्रजापतिरकल्मष । त्रिदशाः कथयामासुर्दैत्यव्यसनकारणम्
तज्ज्ञात्वा सहसोत्थाय ब्रह्मा लोकपितामह ।
जगाम त्रिदशैः सार्द्धं महाकालवनोत्तमम् ॥ २२ ॥
यत्रास्ते भगवान् देव उमया सहित शिव । यत्राऽवन्तीपुरी दिव्या सर्वतीर्थनिषेविता
तत्रागत्य सुरैः सार्द्धं स्वयम्भूप्रपितामह । स्नानदानं जपहोम कृत्वा ब्रह्म सुरैस्तदा ॥
पूजयित्वा महाकाल ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव भक्तानामभयङ्कर ॥ २४ ॥
श्रूयताम् नो सुरश्रेष्ठ देवकार्यमनुत्तमम् । त्रिपुरो नाम दैत्येन्द्रो देवानां कदनं महत् ॥
करोति सततं दैत्यो वेदब्राह्मणनिन्दक । वासयित्वा पुरं त्वापि विचित्रं व्यभिचरत्यय
तत्र स्थितानि भूतानि नाशं यान्ति दुरात्मना।
एवं कृत्वा प्रजा सर्वा क्षयं नीताश्चराचरा ॥ २८ ॥
उद्वासितानि द्वीपानि ग्रामाणि नगराणि च । ऋषीणामाश्रमा सर्वे यतीनामाश्रमास्तथा
एवं कृत्वा सुरा सर्वे ब्रह्मपत्या· पराजिता· ।
विचरन्ति यथा मर्त्यास्त्रिपुरेण दुरात्मना ॥ ३० ॥

ब्रह्म (मत्तो) लब्धवरो नित्यं व्रजत्येवाकुतोभयम् । (यः)
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणःशंसितात्मनः ।
चिरं ध्यात्वा महादेवो ब्रह्माणं तमुवाचह ॥ ३२ ॥

महादेव उवाच

श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठा ब्रह्मशक्रपुरोगमाः । जयोपायंकरिष्यामिदैत्यस्यास्यदुरात्मनः
तपश्चरतयूयंवै आत्मनोजयकाङ्क्षिणः । अवन्त्यांयद्धुतंदत्तंतत्सर्वंचाक्षयम्भवेत्
इत्युक्त्वासर्वदेवानां तत्रैवान्तर्हितःशिवः । गत्वाश्मशाननिलये भूतप्रेतनिषेविते
जयार्थंतस्यदैत्यस्य त्रिपुरस्यदुरात्मनः । उपासाञ्चक्रिरेतत्र चामुण्डायाःसुरेश्वराः
महिषैश्चमहामेध्यैः पशुपुष्पार्चनर्पणैः । बलिभिर्विविधैर्दानैर्धूपदीपाग्निहोत्रकैः
पूजयित्वातदादेवीं तामीडे वृषभध्वजः । दुर्गांभगवतींभद्रां दुर्गसंसारतारिणीम्
त्रिपुरान्तकरीं (कारिणीं) कृत्यां चण्डमुण्डवधोद्यमाम् ।
दैत्यान्तकां मदोन्मत्तां रक्त ख्यां रक्तदन्तिकाम् ॥ ३९ ॥
रक्ताम्बरधरांवीरांरक्तपुष्पावतंसिनीम् । महिषवाहिनीं श्यामां पद्मासनपरिग्रहाम्
द्वीपिचर्मपरीधानां शुष्कमांसातिभैरवाम् ।
पूजयित्वा प्रसन्नात्मा ध्यानमादाय (मास्थाय) संस्थितः ॥ ४१ ॥
तदा भगवती भद्रा ययेदंधार्यतेजगत् । प्रसन्नवदनाभूत्वा प्रत्यक्षं प्राहचण्डिका ॥

देव्युवाच

व्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ! वरं मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।
ददामि सर्वं त्वयोक्तं जगतामुपकारकम् ॥ ४३ ॥

श्रीहर उवाच

परितुष्टासिचेद्देवि देहिमेवरमुत्तमम् । येनहन्मिमहादैत्यं त्रिपुरं देवकण्टकम् ॥

श्रीदेव्युवाच

जयस्वैनंमहादैत्यं गृहाणपाशुपतंवरम् । मयादत्तंसुरश्रेष्ठदैत्यनाशकरम्परम् ॥ ४५ ॥

महापाशुपतं शस्त्रं करे कृत्वाथ शङ्करः । उज्जहार तदा शम्भुर्दैत्यनाशाय सत्वरम्
महाडम्बरिको भूत्वा सर्वप्राणिभयङ्करः । स्तुतिश्चक्रुस्तदा शर्वं पृष्ठतोऽनुययुः सुराः
शरेणैकेन वै रुद्रो जघान तं महासुरम् । मायिनस्त्रिविधा भित्त्वा मायायुद्धेन शङ्करः ॥
पुनरागात्पुरीमेतामवन्तीं सुरसेविताम् । जयाशिषं प्रयुञ्जाना ऋषयः सिद्धचारणाः
दुन्दुभिध्वनिशब्देन जयशब्देन हर्षिताः । अप्सरसो ननृतुस्तत्र गन्धर्वा ललितं जगुः ॥
ववौ मन्दानुकूलश्च वायुः सुखप्रदो नृणाम् । जयशब्दस्तदा जातः प्राणिनां च गृहे गृहे

उज्ज्वलश्चाग्निः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ।
प्रवर्तन्ते तदा यज्ञा महोत्सवसदक्षिणाः ॥ ५२ ॥
देवाः प्रवेशिताः स्थानं स्वकीयं पुनरावृतम् ।
उद्विग्नो मानवो यस्मात् त्रैलोक्यं स्थापितं यतः ॥ ५३ ॥
तस्मात्सा सुरश्रेष्ठैः ऋषिभिः सनकादिभिः ।
स्थापितं नामधेयं चास्याः शाश्वतं पापनाशनम् ॥ ५४ ॥

सर्वकामपुराख्याता सर्वकामवरप्रदा । ततःप्रभृति पुरी ख्याता उज्जयिनी समाश्रिता ॥

येऽमुष्यां स्नानदानानि भुवि कुर्वन्ति मानवाः ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्देहे तिष्ठति पापजम् ॥ ५६ ॥
विद्यार्थी गिरिश धनार्थी धनेश सुतार्थी सुरेश दिनेश सुखार्थी ।
निर्वाणार्थी गणेश श्रियार्थी वदाप गिरापूर्णकामोऽसमश्चोऽक्षयित्वम् ॥ ५७
य एतस्या माहात्म्यं सदा वसति मानवः ।
भुक्त्वा कामान्मनोभीष्टान्स शिवपुरं व्रजेत् ॥ ५८ ॥
तत्रैव रमते नित्यं कल्पकोटिशताधिकम् ।
येनेयं च कथा पुण्या पठ्यते श्रूयतेऽथवा ॥ ५९ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
उज्जयिन्यभिधानकथनंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पद्मावत्यभिधानहेतुकथनवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अथातःसम्प्रवक्ष्यामि यथापद्मावतीतिसा। श्रूयतामाद्दतोव्यासबहुपुण्यकृतांकथाम्
एकदासर्वरत्नानां हानिर्जातादुरात्मभिः। धर्मग्लानिनिरोधश्चजातस्तैर्दुष्टदानवैः॥
तदासुरासुरैःसर्वैर्मिलित्वामथितोऽर्णवः। मेरुर्वंशोऽर्णवः पात्रं रज्जुर्वासुकिपन्नगः
कूर्मपृष्ठेऽचलंकृत्वारत्नानिदुदुहुस्तदा। आदौलक्ष्मीचिनिर्याताकृष्णायप्रतिपादिता
तेनैवचविवादोऽभूद्देवदानवयोस्तदा। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तोनारदोदेवदर्शनः॥ ५॥
पारितः कलहस्तेन देवदैत्यसमुद्भवः। महाकालवनेतत्र पद्मासिन्धुसमुद्भवा॥ ६॥
सागरान्तेचरत्नानितिष्ठन्तिविविधानिच। तानिसर्वाणिचादाययावत्तुभ्यंददाम्यहम्
मथ्यतामुदधिःशीघ्रं नात्रकार्याविचारणा। पुनस्तेतूद्यमंचक्रूरत्नार्थंवैसुरासुराः॥
मथ्यमानेनिर्धौतेपांमणिःप्राप्तश्चकौस्तुभः। पारिजाततरुःपश्चात्सुराजातातत:परम्
धन्वन्तरिस्थोत्पन्नश्चन्द्रोजातोपिवैततः। कामधेनुःसमाप्राप्तागजरत्नंततः परम्॥
उच्चैःश्रवाहयश्रेष्ठःसुधारम्भाततस्ततः। ततः परं शार्ङ्गं धनुःसर्वास्त्रसम्भवम्॥
पाञ्चजन्यनामाशङ्खः करेतिष्ठन्मुरद्विषः। निधिरेपमहापद्मो विषंहालाहलन्ततः॥
चतुर्द्दशानिरत्नानि प्राप्तानिचिविधानिच। समादायगतास्तत्रयत्रमाहेश्वरंवनम्॥
गत्वातेतुसमासीना मन्त्रंचक्रुःसमुद्यताः। अहंपूर्वमहंपूर्वमितितेसमयन्त्रिताः॥
कोलाहलोह्यथोत्पन्नः पुनर्नारदअभ्यगात्। तेषांकलिमलंदृष्ट्वा विष्णुमाराधयन्ततः॥
मोहिनीरूपमास्थायनारीभूत्वाभ्यगाद्धरिः।अतिरूपवतींतन्वींतामालोक्यमहासुराः
विह्वलाङ्गाः कृताःसर्वे कामबाणवशंगताः। एतस्मिन्नन्तरेतेषां सुरान्दत्वासुरेश्वरः
हस्तलाघवयोगेन देवानाममृतंददौ। एतस्मिन्नन्तरेव्यास! राहुस्तद्रूपधारकः॥
तेषामन्तरतोभूत्वापपौचामृतमुत्तमम्। तज्ज्ञात्वाचद्रुतंविष्णुःशिरश्चक्रेणप्राच्छिनत्

सु गन्धर्वांश्च सङ्घेन समभारा सुरान्तदा । राहु केतुरिति ख्यातौ ग्रहेऽस्मिन्भुवि सत्तम
राहुकायात्समुद्भूतं पद्मपुष्पमयोऽजिनम् । तस्मिन्क्षेत्रे महोत्सवं जाततद्दोषनाशनम्
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा राहोर्दर्शनतत्परः । ततस्तत्रापतत्काचिद्राहुपीडा कदाचन
प्राप्नोति नापमवाप्नोति गोसहस्रफलं लभेत् । तत्स्थानानि रत्नानि महाकालवने शुभा
विमरत्नमालसर्वे तस्योरुमुत्सोऽभवत् । मणिपर्यायतु शङ्खु दर्शनात्तत्र धिष्ण्ये ॥
सूर्याचन्द्रौ यादवं मोहिनीमाविस्सम्भवम् । ऐरावतं गजश्रेष्ठं वासयायसरूपवत्
दिविजन्मार्धधर्मामृत दर्शनं वशमसये । पारिजाततरुश्रेष्ठं रम्भाश्चाप्सरसान्तनाम् ॥
स्नात्वा पाण्डायने रत्नैर्नन्दने ॥ समभवत् । स्वर्गीणाश्च गन्धर्वेषु कामदोग्ध्रीयमसिद्धये
निधिरेषमहापद्म कुबेरस्य धनेगतः । यस्तदा हालाहलयोगं विषके नापिनाहृतम् ॥ २८ ॥
यतोऽयम् प्रमरति प्रस्तर्वाक्तिक्षतम् । दधार तद्विषं शम्भुर्भगवता हितकाम्यया ॥
तत्प्रभृति महद्देवो नीलकण्ठ इति स्मृतः । तत्कुण्डे नरः स्नात्वा नीलमाधवप्रपश्यति
समुक्तः सर्वपापेभ्यो भवेत्सर्वफलभुक् । शतानाममधिकपुण्य लक्ष्याशिवपुरव्रजेत्
सहाराय सुरा सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । स्वयमभूमुखस्तत्र व्यास हृदि मिरमामता
उज्जयिनी समासाद्य आतार्तभुक्तोधयम् । पद्मापाद्य निवासेन यस्मात्सत्य मुखावहा

यस्मात्सर्वेषु कालेषु पद्मा वसति निश्चला ।

तत्प्रभृति पुरश्चेषा पद्मावतीति विस्मृता । यस्यास्त्या महाभागा स्नानदानतथार्चनम्
तर्पणं चैव देवानां पितृणां च विशेषतः । ततस्त्वगृह्ण किञ्चिन्नदारिद्र्य ॥ दुर्गति
शतकुलानि सर्वाणि तारयेन्नरयाणवात् । धनार्थी भार्यापुत्रार्थी विद्यार्थी यदुकामुक

यत्र कुत्र स्थितो भूत्वा पद्मावतीरिति स्मरेत् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति शिव साक्षाद्भवेन्नर ॥ ३७ ॥

एतद्व्यासफलनाम किञ्चिन्मेचनेनवै । ये शृण्वन्ति कथापुण्याय श्रावयन्ति ये यशा
न तस्य पातकं किञ्चिदश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
पद्मावतीकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कुमुद्वतीप्रभाववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वावहितो व्यास कथां पापहरां पराम । एणाकुमुद्वतीजाता यथापद्मावतीपुरा
॥ १ ॥ तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा मे लोमशोऽब्रवीत।

लोमश उवाच

शृणु वत्स! मया दृष्टा बहुपुण्यतमा पुरी ॥

एकदातीर्थयात्रायां गताहंवैकुशस्थलाम् । गुह्याद्गुह्यतमंस्थानं यत्रसन्निहितोहरः
यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोह्यते । यत्रतत्र स्थिताविप्रा ब्रह्मघोषंच कुर्वते
यज्ञांश्चैवतथाविप्रानृत्विजोह्वारकर्मभ्र । ऋषयश्च महाभागाः प्रकुर्वन्ति समाहिताः
ऋषिपत्न्यस्तथा साध्व्यः परिचारं (सदा) प्रकुर्वते ।
दश विष्णवश्च प्रख्यातास्तत्रैव निवसन्ति ते ॥ ७ ॥

रुद्राह्येकादशप्रोक्ता द्वादशार्कास्तथैवच । अष्टौचवसवः ख्याता विश्वेदेवास्त्रयोदश
अष्टौते दिग्गजाश्चैव मनवश्च चतुर्दश । मरुद्गणाश्च ते सर्वे तत्रचेन्द्रपुरोगमाः ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरोरगराक्षसाः ।
सिद्धास्तपस्विनो व्यास! (वत्स!) तत्रव समुपस्थिताः ॥ ८ ॥
अष्टौच भैरवाः ख्याताश्चत्वारः पवनात्मजाः ।
विनायकाः षडेते च ते (?) देव्यश्च चतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥

एतेदेवगणाः प्रोक्ता रौद्राश्चैव तथागणाः । ब्रह्मावेदविदांश्रेष्ठो मरीचिः कश्यपादयः
दक्षः प्रजापतिः श्रेष्ठोऽदितिर्वैदेवमातृकाः ।
श्रुतिभिः सम्मता गावः स्थावराणि चराणि च ॥ ११ ॥

तीर्थानियानिसर्वाणिनद्यःप्रस्रवणानि च । क्षेत्राणिचैवसर्वाणि भुविपुण्यतमानिवै

सप्तपुर्यस्त्रयोग्रामा नवारण्यानिचैवतु । चतुर्दशानिगुह्यानि मुक्तिद्वाराणि भूतले
समुद्राश्चैवचत्वारोरत्नानिविविधानि च । राजवंशोऽमला शान्ता ब्राह्मणावेदपारगा
वेदापुराणस्मृतयोगाथागीति प्रहेलिका । उपामाञ्चक्रिरेतस्यतदानीवाप्युमापते
तस्य दर्शनमात्रेण जातोऽहं विज्वरोऽमल । दीर्घायुर्दीर्घतपसा जरारोगाधिवर्जित
जातोऽहं सर्वतीर्थेषु शुचिर्भूत्वा समाहित । प्रसन्नमानसोजात सर्वपापपराङ्मुख
दृष्ट्वा पद्मावतींशुभ्रां सर्वकामवरप्रदाम् । न यत्र दृश्यते कश्चिच्छोकरोगपरोनर

न दुःखी न च दारिद्रो न मूर्खोनाजितेन्द्रिय .
परस्परं विरोधाश्च (न) नाऽधमाधम (मृतिर्यमुच) दृश्यते ॥ १९ ॥
अन्योन्य सखमित्राणि अन्योन्यंश्चोपकारिण ।
सर्वे दान्ताश्च शान्ताश्च सर्वे विद्योपदर्शिन ॥ २० ॥

उद्यानानिचरम्याणिवनान्युपवनानि च । हर्म्याणिचशुभ्राणि श्वेतिवद्धानिसर्वश
नानारत्नसमाकीर्णैर्हेमकुम्भै सुशोभनैः । चित्राण्यविचित्राणि गातवाद्यमहोत्सवै
सदैवयसते यत्र उमया सह शङ्कर । चन्द्रचूडाङ्गनिर्व्याँस विनामस्माद्गतेपन
चन्द्रज्योत्स्नाकलापूर्णमरात्रि सर्वतोजमी । न यत्रकृष्णपक्षोऽभूत्मामावस्यानचैतम
सदैव पुर्णिमाश्यामा वाल्येरूपवना यथा । हर्म्यपृष्ठे गवाक्षेष्व द्वाराजिरगृहान्तरे
गिरिगह्वरकुञ्जेषु गुहाद्यानान्तरेषु च । आश्रमेषु रम्येषु धर्मेषूपवनेषु ॥ २१

गृहदीर्घिकासु रम्यासु शालामार्गासु सर्वत ।
चन्द्रज्योत्स्ना समापूर्णा दृश्यन्ते चवलादिश ॥ २३ ॥

कुमुद्वतीप्रफुल्लानि तडागानि विरजिरे । ज्योतिर्गणसमाकीर्ण शारदीयनभ स्थलम्

यथ सरांसि सर्वाणि वापीकूपसुपल्वला ।
कुमुद्वत्या समाकीर्णा भासीच्चान्द्रमसी मही ॥ २४ ॥

यस्मात्सर्वेषु कालेषु प्रफुल्लाकुमुद्वती । तस्मात्पद्मावतीहोषा पुरीनाम्ना कुमुद्वती
कुमुद्वत्यां नरा येतु श्राद्धकुर्यु समाहिता । तेनेषा पितर स्वर्गात्न्पवन्तेपैकदाऽन
मसार्पलमते श्राद्ध पितृणादम्मक्षयम् । स्नानदान तपाहोमो देवताराधनं तथा ।

यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्सर्वंचाक्षयंभवेत्। एवंकुमुद्वतीजाता पुरीव्यास सनातनी
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
कुमुद्वतीप्रभावकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अमरावतीनामकथनम्

सनत्कुमार उवाच

अमरावतीयथाजातापुरीह्येषाकुशस्थली। शृणुव्यासमहाप्राज्ञ यथाब्रह्माब्रवीत्सुरान्
तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि विस्तरेणतपोधन। एकदाब्रह्मणादिष्टः प्रजार्थंऋषिसत्तमः
मारीचःकश्यपस्तेपे तपः परमदुष्करम्। महाकालवनेरम्ये देव्यासह महानृषिः
शीर्णपत्राशनस्तेपे वायुभक्षी जितेन्द्रियः। पूर्णेवर्षसहस्रे तु वागुवाचाशरीरिणा
श्रूयतां भोद्विजश्रेष्ठ ममवाक्यमनुत्तमम्। यस्मात्तेऽस्तितपस्तीव्रं फलमुग्रम्यसुव्रत
तस्मात्तेसन्ततिस्तावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ। तावत्तिष्ठतुमेदिन्यांयशसापुत्रपौत्रकैः
अदितिस्ते सतीभार्यात्वयासहाचरत्तपः। तस्मात्सर्वेषुकालेषुछायाभूतायशस्विनी
भविष्यन्ति सुताः सर्वे विष्णुचन्द्रपुरोगमाः।
अमरा निर्जरादेवा दिवि ख्याता भवन्त्विति ॥ ८ ॥
त्वंचापिहिऋषिश्रेष्ठप्रजापतिरकल्मषः। भविष्यसिनसंन्देहो ममवाक्याद्द्विजोत्तम
इत्युक्त्वाच पुनर्देवी तत्रैवान्तर्धीयत। तदारम्यपुरींव्यास कुशस्थलीमनुत्तमाम्
कश्यपःसहदाक्षिण्या साग्निकःसमुपाश्रितः। प्रजापिववृधे तस्मात्सदेवासुरमानुषा
मरीचेःकश्यपोजज्ञे ततःसर्वंप्रतिष्ठितम्। सुधापानकरादेवाव्यासतेनामराः कृताः ॥
नन्दनंप्राप्यतत्रैव महाकालवनोत्तमे। कामधेनुःसमाख्याता मनोरथवरप्रदा ॥ १३ ॥
साप्यत्रैवसदासेवेन्महाकालंमहेश्वरम्। पारिजाततरुश्रेष्ठं तथाह्यम्लानपङ्कजम् ॥

बिन्दुसर समाख्यातमानससरउत्तमम् । हससारससङ्कीर्णं सदासिद्धनिषेवितम्
मुक्तामणिगणासक्तं रत्नसोपानशोभितम् । निधिरेवमहापद्म कल्हारकुमुदोज्वल
यानि यानि च दिव्यानि सन्ति ब्रह्माण्डगोलके ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति महाकालवने शुभे ॥ १७ ॥
तेनतेनात्मयोगेनमानवाश्चात्रसस्थिता । तत्तद्दुहाल्लदाचारास्तद्रूपाहतपराक्रमा
अन्योन्यचसमाकीर्णा सर्वेचामरसन्निभा । विचरन्तियथादेवा पुरीमेताजनामुधि
सुराङ्गनासमामार्थं सदैवस्थिरयौवना । ईदृशींचपुरीदृष्ट्वा मुधिव्याससनातनी
देवदानवगन्धर्वै किन्नरोरगराक्षसै । भुक्तिमुक्तिप्रदानित्या बहुकालफलप्रदा ॥
अमराणा स्थितिर्ह्यत्र तस्माज्ञातामऽमरावती ।
यदतस्या महाभागा प्रसङ्गेन समागता ॥ २२ ॥
स्नानदानादिकहत्वा पश्यन्त्येवमहेश्वरम् । नतेषादुर्लभकिञ्चित् पुत्रतोधनतोपिवा
सर्वभोगानवाप्नोति मृत शिवपुरं व्रजेत् ।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि शतरुद्रीफल लभेत् ॥ २४ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्येऽमरावतीनामकथन नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोध्यायः

विशालाभिधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुव्यासमहाभाग पुरीह्येषामरावती । विशालाचसमाख्याता सर्वलोकेषुगायते
तथाहंसम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाकथितम्पुरा । गुह्याद्गुह्यतरक्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
उमयासहितोदेव वृषभाचरध्वजे । ततोभूतगणा सर्वे पश्चात्सर्वे सुरासुरा ॥ २ ॥

विष्णुर्दशाकृतिर्यत्रदेव्यस्त्रैलोक्यमातरः । विनायकाश्चवैतालाः कूष्माण्डाभैरवादयः

कल्पोद्भेदाश्चलिङ्गाश्च चतुराशीतिज्यौतिषाः (सङ्ख्यकाः)

क्षेत्राणि क्षेत्रपालाश्च ऋद्धिःसिद्धिःस्तथैवच ॥ ५ ॥

पितरो लोकपालाश्च सिद्धाःसिद्धिप्रदाश्च ये ।

ऋषयश्च महाभागा ऋषिपत्न्योऽमलाशयाः ॥ ६ ॥

किन्नरादेवगन्धर्वा अप्सरसोवराङ्गनाः । मरुद्गणाश्चयेसर्वे साध्यानां चगणाश्चये ॥

यक्षागुह्यकसंज्ञाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । स्थावराजङ्गमाःसर्वेध्यानंमानसमाश्रिताः

उपासाञ्चक्रिरेतत्र देवदेवमुमापतिम् । तान्दृष्ट्वासातदादेवी पार्वतीगिरिजातदा ॥

उवाच श्लक्ष्णया वाचा शङ्करं जगदाश्रयम् ।

पार्वत्युवाच

देवदेव!जगन्नाथ!जगद्धार!जगत्प्रभो! ॥ १० ॥

पश्य एतान्महाभागान् ध्यायमानांस्तवाश्रितान् ॥

नतूपेक्ष्यान् पिता त्वञ्च तपमानांस्तपोर्दितान् ॥ ११ ॥

कल्पयत्वंमहाभाग एतेषामात्मनोहितम् । यथायोग्यंवासनार्थं स्थानंपरमशोभनम्

पुरींकल्पयमेनाथ वासार्थंसर्वकामदाम् । एषामेवासनास्वामिन् भवतांयदिरोचते

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्याः परमेश्वरः ।

कल्पयामास च पुरीं रम्यां सर्वमनोरमाम् ॥ १४ ॥

आत्मनोपमितां पुण्यां शम्भुःसर्वात्मना तदा ।

बहुयोजनविस्तीर्णां दिव्यां दिव्यजनप्रियाम् ॥ १५ ॥

दिव्याभिप्रायसंयुक्तां दिव्यस्थानमनोरमाम् ।

दिव्यसर्वगुणोपेतां विशालां विरजां शुभाम् ॥ १६ ॥

क्रयविक्रयसम्पन्नांहट्टाट्टालकचत्वराम् । बहुहर्म्यगृहाकीर्णांसौधपङ्क्तिविराजिताम्

स्फाटिकाभित्तिरचितां वैडूर्यमणिभूमिकाम् ।

प्रवालस्तम्भप्रवरां हेमाभरणसम्भराम् ॥ १८ ॥

मारकतमणिदेहल्यां द्वारशाखाभिमण्डिताम् ।
जाम्बूनदकपाटाढ्यां चन्द्रशालसुसंस्कृताम् ॥ १९ ॥
मणिस्तम्भसमायुक्तविराजितगृहान्तराम् ।
घोरजालानि रम्याणि मुक्तादामविलम्बिनीम् ॥ २० ॥

हेमदण्डमध्यशोभेना पताका गृहेगृहे । कलशाश्च विराजन्ते मणिहेमाविमानगृहे वापीकूपतडागाभिः सराभिर्विविमण्डिता । यत्र किञ्जल्कगन्धाभिराजन्ते नलजन्तुभि

हंसकारण्डवाकीर्णां शिखण्डिगणसेविताम् (शोभिताम्) ।
जलयन्त्रस्रुताधारां गृहवापीषनाकराम् ॥ २३ ॥
क्वचिन्मयूरा नृत्यन्ति क्वचित्कूजन्ति कोकिलाः ।
भ्रमरावलीकपुष्पाढ्यनवकाननराजय ॥ २४ ॥

नरनारीगणाकीर्णां वर्णाश्रमनिषेविताम् । सुरम्यान्तर्गताभार्यां विलोकनपरायभुः चन्द्रशालागृहश्रेणी तोरणानीव शोभते । यथा स्वामपुरी रम्या आत्मयोगेन वासिता यथालकापुरी रम्या कुबेरधनाढ्यिता । धवलागृहजनैः कीर्णा पक्षिभिरुपशोभिता तथा भोगवती दिव्या वरुणाख्यमुत्तमम् । नागकन्याभिरन्याभिर्नागस्त्रीभिश्च संकुला संयमिनीपुरी श्रेष्ठा धर्मराजेन पालिता । अमरावती पूर्णा कृताभूतविराजिते देवतानां पुरी रम्या वासवेनाभिपालिता । पुण्यस्त्रीगणाकीर्णा त्रिदशेन्द्रैर्नरैर्मण्डिता एवंविधानि रम्याणि बहुपुण्यतराणि च । क्वचिद्दम्भावृतद्वारा यथा तूर्यवशाशुभा ॥

क्वचिद्गायन्ति गन्धर्वाः क्वचिन्नृत्यन्ति नर्तकाः ।
क्वचिद् बालाः पठन्ति स्म वेदाध्ययनकाङ्क्षिणः ॥ ३२ ॥
क्वचिद्द्विजाग्र्याः यजन्ति स्म यजमाना सऋत्विजः ।
क्वचिद्बालमृगस्नाने तद्दानानि प्रकुर्वते ॥ ३३ ॥

क्वचिच्चित्रूपनयनं क्वचिद्दाराग्निपरिग्रहम् । क्वचिदारामपूर्तं वै क्वचिद्यात्राविधारणम् वापीकूपतडागानां तथैव विधिपूर्वकम् । क्वचित्कथाप्रसङ्गाश्च वर्णयन्ति वाचकाः क्वचिद्गाथाः प्रकुर्वन्ति कथकाः पुरउत्तमे । क्वचिन्मल्लाविरुध्यन्ति नटानाट्यपराः क्वचित्

तडागाश्च विराजन्ते मणिसोपानपङ्क्तयः ।
चञ्चला चपला बाला श्यामा षोड़शवार्षिकी ॥ ३७ ॥
वारिहारपरातत्र मणिहेमघटोत्कटा । एवंव्यासपुरीरम्या निर्मितायोगमायया ॥
शम्भुना सर्वपापघ्नी प्रियाप्रियचिकीर्षया ।
विशाला बहुविस्तीर्णा पुण्या पुण्यजनाश्रया ॥ ३९ ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषु सर्वलोकेषुगीयते । विशालेतिसमाख्याता पुरीरम्यासनातनी
यत्र कुत्र स्थितोवापि सर्वावस्थाङ्गतोऽपिवा ।
विशालेतिवदन्नित्यं शिवलोके महीयते ॥ ४१ ॥
ईदृशीनपुरीव्यासभुविब्रह्माण्डगोलके । विशालासदृशीचान्याभुक्तिमुक्तिप्रदानृणाम्
पितृनुद्दिश्य कुर्वन्ति श्राद्धकाले नरास्तु यत् ।
तदक्षयं भवेत्तेषां पितृकल्पे च गीयते ॥ ४३ ॥
स्नानदानादिकंयैस्तुविशालायांप्रसङ्गतः । यत्रकुत्रगतास्तेवै मृतायान्तिशिवक्षयम्
धन्याः पुण्यतमा लोके प्रीतिर्येषां सदाचला ।
विशालायाः फलं शश्वच्छेषो वक्तुं न शक्नुयात् ॥ ४५ ॥
कथाश्रवणमात्रेण वाच्यमानेन तत्क्षणात् ।
महापापोद्भवं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥
एवंव्यासपुरीजाता विशालाच कुशस्थली । प्रतिकल्पंयथाजाता तथामेशृणुभावतः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्येविशालाभिधानकथनं नामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

प्रतिकल्पाभिधानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वाथ द्विजोत्तम कथां कल्पप्रमाणम् । ब्रह्मणाममुखात्प्राप्तां कल्पभेदेन यागुणा
शुभाशुभगतिं प्राप्ता देवानां कल्पविभिन्न । आम्निकल्पस्तथा प्रोक्तः शास्त्रानुवादाव
पराशुण्यनमा ध्याम! कथापापनाशनम् । यस्मात् च चतुर्भागे च कल्पभेदेन बाधते
प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मणः पर्वतेषु च । मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च
यावत्सङ्ख्या परिमिता कालना शृणु सत्तम! ।
अहोरात्रं विभजते सूर्यो मानुषदैवतम् (मानुषदैवतम्)॥ ५ ॥
तस्माद्रात्रि गणना शृणु सह्स्रा द्विजोत्तम ।
निमिषैः पञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिंशत् साकला ॥ ६ ॥
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशद्भूर्मुहूर्तानि ।
अहोरात्रमिति प्रामुख्याद्विनिर्ण्ययनितया ॥ ७ ॥
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषामेषु निर्णयः । तदहस्तु मनुष्याणां रात्रिश्चैवतु नाडयी
पक्षामासाश्चतुर्दश्यमयनस्य प्रकीर्तितम् । पितृणाञ्चैव देवानां ब्रह्मणश्च यथातथम्
यावत्सङ्ख्या नराणानां मानुषस्य मानुषा ।
अहोरात्रा पञ्चदशा पक्ष इत्यभिसंज्ञितः ॥ १० ॥
पक्षौ द्वौ तत्रिंशनो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते । अयनं त्रिभिरृतुभिः अयनं द्वे अयनं स्मृतः
दक्षिणं चोत्तरञ्चैव सङ्ख्यानत्त्वविशारदैः । मानेनानेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः
पितृणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः । शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तु शर्वरी
कृष्णपक्षेत्विह श्राद्धं पितृणां वर्तनं ततः । मानुषेणतु मानेन योऽसौ संवत्सरस्स्मृतः
देवानां तदहोरात्रं दिवसश्चोत्तरायणम् ।

दक्षिणायनं स्मृता रात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ १५ ॥

दिव्यमन्हंशतगुणमहोरात्रं मनोःस्मृतम् । अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्षउच्यते ॥

पक्षाद्दशगुणोमासोमासैर्द्वादशभिर्गुणैः । ऋतुर्मनूनांसम्प्रोक्तःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः

षड्भिस्तैर्वर्ष आख्यातस्तेन सङ्ख्या निबध्यते ।
चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥ १८ ॥
तावतीतु भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायाःपरिमाणतः ॥ १९ ॥
तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥ २० ॥
तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
कलिर्वर्षसहस्रन्तु संङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥ २१ ॥
तस्य तावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
एषाद्वादशसाहस्री युगसङ्ख्या प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

दिव्येनानेनमानेन युगसङ्ख्या निबोध मे । ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम्

कृतंत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्युगम् । युगंतदेकसप्तत्या गुणितं द्विजसत्तमम् ॥

मन्वन्तरमितिप्रोक्तंसङ्ख्यानार्थविशारदैः । अयनंचापि तत्प्रोक्तं ह्ययनेदक्षिणोत्तरे

मनुःप्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्ते जगतःप्रभो । ततोपरोमनुःकालमेतावन्तं भवत्युत ॥

समतीतेतुराजेन्द्र! प्रोक्तस्संवत्सरस्सर्वं । तदेवचायनंप्रोक्तं मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥

ब्रह्मणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेति समुच्यते । सहस्रयुगपर्य्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेबुधैः

निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशैलवनकानना । तस्मिन् युगसहस्रेतु पूर्णे भरतसत्तम

ब्राह्मे दिवसपर्यन्तं कल्पो निश्शेष उच्यते ।
युगानि समतीतानि साग्राणि कथितानि ते ॥ ३० ॥

कृतत्रेतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते । चतुर्दशैतेमनवः कथिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥

वेदेषु स पुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः । प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषांप्रकीर्तितम्

मन्वन्तरेषु सहस्रं संहारान्तेषु सम्भवा । नशक्यमन्तस्तेनापि वक्तुवर्षशतैरपि
पिसर्गश्च प्रजानां च महारम्येयं भारत । मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभ ॥ ३९
यत्र तिष्ठन्ति वै देवाः सर्वैमर्त्यर्षिभिस्सह । तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेनच समन्विताः
पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निश्शेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ४० ॥
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजा । प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठ हरिं नारायणं प्रभुम्
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः । अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत्
स एव विद्यते नाम महेशपिषिसंयुतः । महाकालवनेऽस्मिंश्च वासं चक्रे स ईश्वरः
प्रलयोनबाधते व्यासं महाकालवनोत्तमम् । कल्पेकल्पेच वै यस्या पुरी तेषां कुशस्थली
निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ।
मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥ ४१ ॥
अस्मिन्नेव वनेऽस्मिंश्च ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजानां पतयो ये च दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥
मरीचिः कश्यपो रुद्रो येचान्ये मार्कण्डादयः । कल्पादौ संभवन्ते गोकाश्वराघराः प्रयातयाः
पद्ममादौ पुराख्यानं कल्पकल्पा तकसदा । वाराहोयमनोविष्णुः पितॄणां यैतयैवच
कल्पाभद्रा सप्तमाख्याता महाकालवने शुभे । चतुरशीतिकल्पानि सञ्जातानि द्विजोत्तम
सावन्ति ज्योतिर्लिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तम ।
पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥ ४६ ॥
पुनः पुनर्भविष्यन्ति पुराहोऽस्मिन्वनान्मुना । तस्मात्सर्वेषु कालेषु सर्वलोकेषु गीयते
प्रतिकल्पेति सञ्ज्ञा सा भुवि व्यास भविष्यति ।
यस्याञ्च मानवा दान्ताः स्नानदानादिकं तथा ॥ ४८ ॥
जपहोमं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य दीयते । नतेषां पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि
प्रतिकल्पामनुप्राप्य दृष्ट्वा च महेश्वरम् । वैशाखे पौर्णमास्यां वै स्नापयेदेकवासरम्
प्रसङ्गतो रजःक्रान्तो क्षिप्राम्भसि च मानव ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चिद्विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ५१ ॥

मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेनयत्फलम् । तत्फलं प्राप्नुयाज्जन्तुःप्रतिकल्पंक्षणादपि

प्रतिकल्पे च कल्पान्ते सदैवाऽऽसीत्पुरी शुभा ।
तस्मात्सर्वजनैःख्याता प्रतिकल्पा द्विजोत्तम! ॥ ५३ ॥
य एतस्यां महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
न तेषां कल्पभेदोऽयं स्वप्नवज्जायते क्षणात् ॥ ५४ ॥
यः शृणोतिकथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भवां शुभाम् ।
श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्यप्रतिकल्पाभिधानकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

शिप्रामाहात्म्येज्वरानुग्रहवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

एवंव्यासपुरीरम्या नामभूतासनातनी । युगेयुगेयथाजाता तथाख्यातामयानघ ॥

व्यास उवाच

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो वेदविदांवर! ।
शिप्रायाश्च कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ २ ॥
सुन्दरकुण्डं समाख्यातं पिशाचमोचनं तथा ।
नीलगङ्गा इतिप्रोक्ता कर्कराजमतः परम् ॥ ३ ॥

पुष्कराणिचसर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम् । गोमतीकुण्डमाख्यातंनाम्नाधर्मसरस्तथा
ख्यातंसङ्गमजंतीर्थं शनेर्जन्मकथाशुभा । च्यवनाश्रमेचयावार्ता तथानागालयेशुभे ॥
पुरुषोत्तममहिमानंकालेकेनकथंभवेत् । एतद्वेदितुमिच्छामि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाभाग कथां पापहरां पराम् । यस्मिन्काले यथा जाता महाकालवने शुभे

नास्ति धर्मो महीपृष्ठे शिप्राया सदृशी नदी ।

यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेन वै ॥ ८ ॥

वैकुण्ठे जायते शिप्रा स्वर्गे ज्वरघ्नी सुरालये । यमद्वारे पापघ्नी पाताले ऽमृतसम्भवा ॥ ९ ॥

वाराहकल्पे वै प्रोक्ता विष्णुदेहविनिर्गता । शिप्रा यस्या समाख्याता कामधेनुसमुद्भवा

व्यास उवाच

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्मुनिसत्तम ।

वक्तुमर्हसि शिप्राया समासेन कथां शुभाम् ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

ब्रह्मकपालमादाय भिक्षार्थं व्यचरन्महीम् । महादेवो विशुद्धात्मा सर्वलोकेषु सर्वत ॥

न प्राप्ता भिक्षा मे च यदा कुत्र गामहि तु । ततस्त्वातिथ्यवेलायां महादेवो यतस्ततः

लोकनिन्दापरः क्रुद्धः क्षुधितो वसुधातले । भिक्षां देहीति भो ब्रह्मन् क्षुधितोऽहं समागतः

कपालं च करे कृत्वा ह्युवाच पुनः पुनः । शृणु तावत् भिक्षां ते ददामीति हरिस्तदा ॥

इत्युक्त्वा शङ्करमुवाच तत्र चाङ्गुलिमदर्शयत् । तदा रुद्रः समाध्मातः त्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥

तदाङ्गुलिसमुद्भूतं चाङ्गुष्ठाग्रप्रतापितम् । पूर्णं पात्रं च तेनाशु शङ्करस्य करे स्थितम् ॥

तदोऽङ्गुलिनखाग्राद्वै धारा जाता समन्ततः । तत्र स्थाना समुद्भूता शिप्राऽमृतधारसम्भवा

वैकुण्ठधामन सद्यो नदी त्रिलोकपावनी । एव शिप्रा सरिच्छ्रेष्ठा त्रिषु लोकेषु विश्रुता

ज्वरघ्नी च यथा प्रोक्ता तथा व्यास ब्रवीम्यहम् ।

यदा बाणासुरो दैत्यः कृष्णेन सह संयुगे ॥ २० ॥

योधयामास दैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः । सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥ २१

तस्मात्क्रोधो वासुदेवः चक्रमादाय सत्वरः । चिच्छेद दो सहस्रन्तु क्षुरप्रेणाशुमिमाना

स तदा भग्नमङ्गल्पः छिन्नदोर्भ्यः प्रपीडितः । युद्धात्पराङ्मुखो भूत्वा शङ्करं शरणं ययौ

तदागतमहादैत्य समीपे भयविह्वलम् । विलोक्य कृपयाविष्टो गत सङ्ग्राममूर्धनि ॥

छित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे । क्रुद्धः कृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोवली
स्थितोयत्रावलोव्यासगतस्तत्रमहेश्वरः । वारयामासकृष्णंवैशरौघांश्चसमाकिरन्
अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धंकृत्वाथदारुणम् । शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैःसर्वप्राणिभयङ्करैः
वैष्णवास्त्रं तदाकृष्णसन्दधेहरजिघांसया । पाशुपतञ्चनामास्त्रसर्वसंहारकारकम् ॥
सन्दधेचैतदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः । हाहाकारस्तदाजातःसर्वलोकेषुश्रूयते ॥
मोहनास्त्रंपुनःकृष्णोहरोपरिमुमोचह । तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदैवमायया ॥ ३०॥

जृम्भमाणः स्थितः सङ्ख्ये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ।
लब्धसंज्ञःपुनर्जातो यदा रुद्रो महाहवे ॥ ३१ ॥

तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः । ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रोमहाबलः ॥
त्रिनेत्रस्त्रिशिरोहस्वस्त्रिपादोवर्कराकृतिः ।भुद्रोजटिलभस्माङ्गोमहाव्याधिर्दुरत्ययः
कृष्णसेनांसमासाद्य महादेवेनप्रेरितः । प्राणिनांकदनंचक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्गिनाम् ॥

पराङ्मुख पराभग्नाज्वराभिघात पीडिता ।
वभूव सहसा व्यास! सेना कृष्णेनपालिता ॥ ३५ ॥

तथाभूतांसमालोक्यजृम्भमाणांरुजार्दिताम्।स्वसेनांभग्नसङ्कल्पांमाहेशज्वरपीडिताम्
ससर्जवैष्णवंतापं कृष्णः परमकोपनः । तेनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेणच ॥
अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरंघोरतरंमहत् । सङ्ग्रामंवहुलंकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः ॥

सर्वलोकेषु गत्वा वै नशान्ति प्रतिजग्मिवान् ।
महाकालवने रम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥ ३९ ॥

निमग्नश्चैवक्षिप्रायां ततःशान्तिपरांययौ । दृष्ट्वामाहेश्वरंशान्तं ज्वरंपरमकोपनम् ॥

वैष्णवोऽपिसमासाद्य तस्यां मज्जनमाचरत ।
तस्याः प्रभावसन्नष्टौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥ ४१ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी साऽभवत्क्षणात ।
ज्वराभिभूता ह्यासाद्य जनाः परमदुःखिताः ॥ ४२ ॥

निमज्जन्तिचशिप्रायां वसन्तिचसमाहिताः । नतेषांवाधतेपीडाज्वरोद्भूताकदाचन

स यमुक्तवान्नाम ब्रह्महरिहरेण च । येऽशृण्वन्तिकथां दिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः
न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापजं भयम् ।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
क्षिप्रामाहात्म्ये ज्वरानुग्रहोनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

दमननृपतेराख्यानवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पापनाशिनी चिन्त्यतां यथा क्षिप्रा पयस्विना । तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि समासेन परन्तप
पुरा कृतयुगे व्यास दमनो नाम वै नृपः । काकन्देषु समाख्यातो राजा परमकोपनः ॥ २
उग्रपापासव धर्मात्मा गोब्राह्मणविनिन्दकः । सुरापानादमहारी गुरुतल्पगमः सदा ॥
प्रजासु च न्यायहीनाश्च परस्वाभिमर्शकः । धृतकोऽनृतमद्यश्च पिशुनस्तस्करोऽहति ॥
गोगृहपुरभेत्ता च मिथ्याभिन्दनप्रियः । कुत्सितः कोपपूर्णश्च सदाचारविवर्जितः ॥
साधुसङ्गपरित्यागी दुर्गोदुष्टजनप्रियः । कुलाङ्गनापरित्यागी परस्त्रीनृपलम्पटः ॥
धर्मनिन्दां करोति स्म धर्मैरसमन्वितः । अहृत्य ननृपस्यान्ते मधुपाने कथा बुधे ॥ ७
यदायमधिरुढानां पुरदह्य महाद्युतः । तदुष्टेनरोषा नानाभूतानमधिष्यति ॥ ८ ॥
स एकदा वने घोरे मृगयार्थमगान्नरः । इतस्ततो भ्रममाणो व्याधैः परिवृतः सह ॥
न लब्धवान् किञ्चित्क्षुधार्तो दुःखितस्तदा ।
एकाकी सद्गुणितो महाकाननान्तिकः ॥ १० ॥
रात्रिस्समागतातत्र घोरा घोरनिषेविता । कृशनूनमृगयाकृत्य मायनार्थी क्षुधार्दितः ॥
तत्रादय पिटाबध्वा स्वयमयन्यमादत । तद्वृक्षात् वृक्षाद्धे तस्यशाखासु गोदसत्
किमिदं तु समाश्रयं दृष्ट्वा हन्तनशारित । तत दुष्ट वैराश्च दर्पोऽद्रुते वराहिता

दष्टमात्रेतु नृपतिर्व्यथितः क्षितिमागतः । कियत्काले व्यथाविष्टोमुमोहक्षीणमङ्गलः
तत्क्षणात्प्रेतमृतोऽसौघोरेनरकसञ्चये । यमदूतैस्ताड्यमानोविविधास्त्रैःस्वकर्मजैः
हर्षिताश्चगणास्सर्वे यमराजस्य किङ्कराः । दृष्टो बहुतरेकाले पापिष्ठो यममन्दिरे

एतस्मिन्नन्तरे व्यास! क्रव्यादैः खादितं शवम् ।
किञ्चिच्छेषतरं प्राप्तं वायसेनाभिलक्षितम् ॥ १७ ॥

तत्र गत्वानयन्मांसं तुण्डेन विषदुद्गतः । ततोऽन्यैर्वायसैर्भग्नो भ्राम्यमाणइतस्ततः

तत्रागतो हि यत्रास्ते दिव्या क्षिप्रा पयस्विनी ।
किञ्चित्कर्म विपाकेन वायसस्य गतं फलम् ॥ १९ ॥

पतितंवैजलेतस्याःक्षिप्रायातस्यकायजम् । तेनपुण्यप्रभावेणतत्क्षणात्सोभवच्छिवः
त्रिनेत्रश्चजटाजूटी व्याघ्राम्बरपरीवृतः । शूलहस्तोवृषारुढो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥
इत्याश्चर्यमयंरूपं दृष्ट्वा दूताश्चधर्षिताः । तद्गणैस्ताडिताभग्ना धर्मराजाय संसदि ॥
श्रूयतांभो महाराज धर्मराज नमोऽस्तुते । दूतानांयद्वचोरम्यं बह्वाश्चर्यमयम्परम् ॥
कीकटाधिपतिर्मन्दो पापिष्ठोवृषलीपतिः । दमनोनामराजाऽभूत्समस्तेक्षितिमण्डले
यानिकानिच पापानि ब्रह्महत्यासमानिच । तानिसर्वाणितेनापि कृतानिभुविसत्तम
मर्यादाभेदकोमूढो वर्णाश्रमविभेदकः । कुसङ्गीधूर्तकोन्मादी बहुव्यङ्गभर खलः ॥
यमदण्डपरःपापी ह्यस्माकं हर्षवर्द्धनः । स कथं शिवरूपीस्यात् किमाश्चर्यमतःपरम्

यावन्तः पतिताः पूर्वं पापिनः सर्व एव हि ।
कृष्णेन ताडितास्सर्वे ब्रह्मपुत्रार्थिना तदा ॥ २८ ॥

तदाप्रभृतिसर्वाणि कुण्डानिनरकस्यवै । शुष्काणिचैवदृश्यन्ते ग्रीष्मान्तेचैह्रदायथा
नैवार्तानांरवः कश्चिच्छ्रूयते तव मन्दिरे । अस्माकं जीवनंनास्ति कमुपायंवदस्वनः

एक एवागतो लोके वृत्तिदो नो विधेर्बलात् ।
सोऽपिशिवत्वमापन्नः कस्मान्नो जीवितं कथम् ॥ ३१ ॥
धर्मराजस्तदाश्रुत्य किङ्कराणां परं वचः ।
चिरंध्यात्वा स्वकान्प्रोचे देशकालोचितं वचः ॥ ३२ ॥

धर्मराजोवाच

शृण्वन्तु भो गणास्सर्वे भूत्वा चैकाग्रमानसा । येन पुण्यप्रभावेण पापिष्ठ शिवतां गतः
भुवि पुण्यतमे देशे महाकालवने शुभे । शिप्रा नाम सरिच्छ्रेष्ठा सर्वपापहरा परा ॥ ३४ ॥
येषां क्षिप्रोदकस्पर्शो जायते भुवि किङ्कराः । न तेषां पातकं किञ्चिन्मृतस्तु स्वपुरं व्रजेत्
मनसा यत्पुरा यच्च पापानि विविधानि च । तत्क्षणात्प्रलयं यान्ति क्षिप्रासंनिधिमात्रतः
क्षिप्रा क्षिप्रेति यो ब्रूते यत्र कुत्रापि मानवः । स एव शिवतां याति नज्ञानेऽस्नानजं फलम्
यत्र कीटपतङ्गाद्या क्षिप्रावारिसमाश्रये । महापातकिनो ये ते मृताया न्ति शिवालये
माघे मासि समायाते निमज्जन्ति नरोत्तमाः । न तेषां निरयं किञ्चिदमरूपा भवन्ति ते
वायसेनाहृतं मांसं तस्य राज्ञः कृतागसः । क्षिप्रागाधजले क्षिप्तं कातरं परिदेवनात् ॥
वापीकूपतडागादिष्वधिकं यत्फलं स्मृतम् ।
तस्माद्दशगुणं पुण्यं नदीषु ह्युपजायते ॥ ४१ ॥
तस्माद्दशगुणा तापी गोदा पुण्या ततोऽधिका ।
तस्माद्दशगुणा रेवा गङ्गा पुण्या ततोऽधिका ॥ ४२ ॥
तस्माद्दशगुणा क्षिप्रा पवित्रा पापनाशिनी । दमनस्य शरीरस्य मांसं क्षिप्रां समागतम्
तेन पुण्यप्रभावेन शिवरूपधरोऽभवत् । ईदृशीयं नदी रम्या अवन्त्यां भुवि वर्तते
वाञ्छन्ति देवतास्सर्वा दुर्लभं तस्य दर्शनम् ।
धर्मराजवचश्श्रुत्वा गणा विस्मयमागता ॥ ४५ ॥
मनसा च निरातङ्का क्षिप्राशरणमागता ।

सनत्कुमार उवाच

तदा प्रभृति समाख्याता शि (क्षि) प्रेयं पापनाशिनी ॥ ४६ ॥
गीयते च पुराणेषु अस्या माहात्म्यमुत्तमम् । दमनस्य च निर्मुक्तिं क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम्
सर्वादं यमदूतानां श्रुत्वा मुक्तिर्न संशय ॥ ४८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

क्षिप्रायाअमृतोद्भवानामकथनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुव्यासमहाबुद्धे क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् । यथामृतभवाख्याता पातालेनागसम्मते
एकदारुद्रोभिक्षार्थं नागलोकेबुभुक्षितः । करेकपालमादाय भोगवत्यां समागतः
भिक्षांदेहिवचोदीनमित्युवाच गृहेगृहे । भिक्षाकेनापिनोदत्ता क्षुधितस्यचधूर्जटेः
तदाक्रोधाभिरक्ताक्षःशूलपाणिःक्षुधार्दितः । भ्रामयित्वापुरींसर्वांशनैर्बहिर्विनिर्ययौ

एकविंशतिकुण्डानि पीयूषस्य द्विजोत्तम! ।
यत्र तिष्ठन्ति सर्वाणि नागलोकस्य रक्षणे ॥ ५ ॥
तत्र गत्वा स भगवाञ्छम्भुस्सर्वात्मसम्भवः ।
अपिबन्नेत्रमार्गेण तृतीयेन च शङ्करः ॥ ६ ॥
रिक्तान्यमृतकुण्डानि कृत्वा तत्रैव सोत्थितः ।
कम्पितश्च तदा लोकं नागानां सर्वतोमुखम् ॥ ७ ॥
कस्येदं कर्मकिञ्जातं सुधा यस्मादितोगता ।
इत्युक्त्वा च ततस्सर्वे नागावासुकिपुरोगमाः ॥ ८ ॥

महदतिक्रमणेशङ्काः पुरात्तेचबहिर्ययुः । किंकुर्मःक्वचगच्छामः केनेदंहेलनंकृतम् ॥ ६
येनास्माकंप्रकुर्तेन हृतंचामृतमुत्तमम् । अस्माकं जीवनं तस्मात्कथंजीवामपन्नगाः
इत्युक्त्वापन्नगास्सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः । हरिंप्रजग्मुश्शरणं मनसांपरिशङ्किताः
तेषामनुग्रहार्थाय ,वागुवाचाशरीरिणी । श्रूयतांचोरगास्सर्वे युष्माभिर्देवहेलनम्
भिक्षार्थमागतश्शम्भुः क्षुधार्तश्च गृहेगृहे । विदित्वातिथिवेलां स कपालकरभिक्षुकः
सादत्ताहिनकेनापि भोगवत्यांपिनाकिनः । तदाबहिर्गतोनाथः क्षुधितोधर्मविग्रहः
तेननष्टासुधासर्वा कुण्डान्ते पन्नगोत्तमाः । यूयंप्रयातपातालान्महाकालवनोत्तमे ॥

तत्रैकावैसरिच्छ्रेष्ठा क्षिप्रानामेति विश्रुता । त्रैलोक्यपावनीह्येषा सर्वकामफलप्रदा
यस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्। तत्रगत्वाभवद्भिश्च स्नानकार्यं यथाविधि
मज्जन्देवदेवस्य तत पूनामविष्यथ। मज्जनाद्देवदेवस्य शिप्रासलिलमज्जनात् ॥

भविष्यति ततस्सद्यस्तु गतोकेतु घोरगा (पुरेव च) ।
इति सम्भाष्य तान्नागान् तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥
वाणी (र्णी) व्यासांमश्च दिव्या (म्) सहसा लोकसाक्षिणी (म्)
श्रु त्वा देवेरिता वाणीं तयोस्तुपस्या च पन्नगा ॥ २० ॥

सन्निपोथात्तृखाश्च महाकालवनययुः । तत्रगत्वाददृशुस्तेनदीं त्रैलोक्यवन्दिताम् ॥

सर्वत्र कुसुमाकीर्णां तरुच्छायागतश्रमाम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णां मणिमुक्ताप्रवालकाम् ॥ २२ ॥
मणिसोपानरचिता पद्मखण्डैश्च मण्डिताम् ।
सायंप्रात स्थिता विप्राःसन्ध्योपासनतत्परा ॥ २३ ॥

ऋषयश्चमहाभागा भृगुराङ्गिरसादय । सगन्धर्वाश्च तथैव नारदाद्यास्तुरर्षय ॥ २४
वसवश्चतथाविश्वाश्चाश्विनौमरुतस्तथा । रुद्रास्साध्याश्चदेवाश्च पितरोविमलाशया
उपासतेचशिप्रायै सन्ध्याकालेसमाहिता । ऋषिपत्नीमहाभागादेवकन्याप्सरोगणा
पतिव्रतामहाभागास्तत्रैव पतिनासह । उपासन्तेसदाचारा वर्णाश्रमपुरोगमा ॥
राजन्यस्समासीना निर्वाणपदर्थागता । कुर्वन्तेतत्र धर्मांश्च महादानानिसर्वश ॥

सिद्धायोगीश्वराश्शान्तास्तापसास्सश्चिनमता ।
नानादेशोद्भवालोका यात्रिणस्समुपागता ॥ २९ ॥
शिप्राकूले समासीना नरनारीसमन्विता ।
एवंविधां समालोक्य व्यासं त्रैलोक्यवन्दिताम् ॥ ३० ॥

नदींसुधामयींसर्वा नागा परमहर्षिता । स्नानदानादिकं कृत्वा महादेवमुपासिरे ॥
वेदोक्तविधिनासर्वे चक्रु पन्नगसत्तमा । पञ्चाङ्गपूर्वकं स्नानं पङ्कर्दमलेपनम् ॥
अम्लानपङ्कजा माल्य नानापुष्पाक्षतैस्तथा । वासः सगन्धलेपाद्यैश्चन्दनैर्गन्धधूपकै

दीपदानादिनैवेद्यैस्ताम्बूलमथदक्षिणाम् । कर्पूरार्तिकतास्सर्वे महाहर्षमुपागताः ॥
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं सुधाकारास्तथोरगाः ।

सर्पा ऊचुः

नमोऽनन्ताय बृहते सर्वदेव! नमोनमः ॥ ३५ ॥
चन्द्रचूड! (चन्द्रमौले) नमस्तेऽस्तु जटामुकुटधारिणे ।
देवेश! नमस्तेऽस्तु चिताभस्माङ्गधारिणे ॥ ३६ ॥
कृत्तिवासनमस्तेऽस्तुगम्भीरायनमोनमः । त्रिपुरघ्न!नमस्तेऽस्तुस्मरान्तकनमोऽस्तुते
मृगव्याधनमस्तेऽस्तु गिरीशाय नमोनमः । शङ्करात्मन्नमस्तेऽस्तु सर्वकामफलप्रद
सर्वसाक्षिन्नमस्तेऽस्तु सर्वभूताशयाकृते । सर्वाधारनमस्तेऽस्तुसर्वशक्तिधरायच ॥
सर्वभोगनमस्तेऽस्तु सर्वबीजसमुद्भव । दिग्वासा!नमस्तेऽस्तु नमोऽमृतमयायच
काम्यकामनमस्तेऽस्तु सर्वकामवरप्रद । नमश्शिवायशान्ताय पशूनां पतयेनमः ॥
नमोमृडायदान्ताय शान्तरूपायवैनमः । एवंप्रसादितोनागैर्भगवान् वृषभध्वजः ॥
प्रसन्नवदनो भूत्वा प्रत्यक्षं (क्षः) प्राह पन्नगान् ॥ ४२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

श्रूयतामुरगास्सर्वे वचस्तथ्यं वदामि वः ॥ ४३ ॥
एकदानागलोकेतुभिक्षणार्थंगतोऽस्म्यहम् । गृहेगृहेभोगवत्यांविचरन्क्षुधितोभृशम्
कपालं च करे कृत्वा धृत्वा कन्थां सुचीरकाम् ।
अप्राप्तभिक्षो भिक्षार्थी पुनरागां ततो गृहम ॥ ४५ ॥
तेनपापप्रसङ्गेन क्षुधानष्टातदालयात् । किञ्चित्पुण्यप्रसङ्गेन महाकालवनोत्तमे ॥ ४६
यूयं प्राप्ता महाभागा हित्वा नागालयोत्तमम् ।
बालवृद्धैःस्त्रिभिस्साकं दृष्टा शिप्रा सरिद्वरा ॥ ४७ ॥
यस्या दर्शनमात्रेणसुनिष्पापोऽस्म्यहं पुरा ।
शिप्रायाः स्नानजं पुण्यं वक्तुं शक्यं न केनचित् ॥ ४८ ॥
दर्शनाज्जायते शम्भुस्तत्क्षणाद्भुवि पन्नगाः ।

तस्मात्स्नानं कृतं सर्वैः क्षिप्रायां पन्नगोत्तमैः ॥ ४९ ॥
तेनपुण्यप्रभावेण सुधापोऽस्तुगृहेगृहे । नीत्वाक्षिप्रोदकंपुण्यं कुण्डेषुपरिषेचय ॥ ५०
तेनैतानि हि कुण्डानि अमृतेनैकविंशतिः ।
सम्पूर्णानि भविष्यन्ति स्थिरयापि पन्नगोत्तम ! ॥ ५१ ॥
तथेत्युक्त्वाघटैःसर्वैर्धृत्वाक्षिप्रोदकंवरैः । गतास्तेसर्वेस्वकंलोकं नमस्कृत्यमहेश्वरम्
ततः प्रभृतिसाक्षिप्रा जातानागेऽमृतोद्भवा ।
सर्वलोकेषु विख्याता व्यास! क्षिप्रामृतोद्भवा ॥ ५३ ॥
येपतस्यांप्रकुर्वन्तिनरा स्नानादिकंभुवि । नतेषांदुष्कृतं किञ्चिन्नापदोनचदुर्गतिः
नवियोगोभवेत्तेषां पुत्रदारादिकैः सदा । नचमित्राणिदुष्यन्ति नरोगोनदरिद्रता
कथापापहरापुण्या सर्वकामवरप्रदा । पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत् ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
क्षिप्रायाः अमृतोद्भवानामकथनं नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयः शृणुमहाभाग क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् । यस्यश्रवणमात्रेण हयमेधफलंलभेत्
क्षिप्रासर्वत्रपुण्यातिपवित्रापापहारिणी । अवन्त्यांचविशेषेण क्षिप्रावैपापहारिणी
तथापितत्समुत्पत्तिं विस्तरंशृणुसत्तम । यथावाराहतनया विष्णुदेहोद्भवाशिवा ॥
शृणु व्यास!महापुण्यां कथांपौराणिकीं शुभाम् ।
पुरा महासुरो जातो हिरण्याक्षो महाबलः ॥ ४ ॥
सचेमांसकलांपृथ्वीं वशीकृत्यचचारह । राज्यंचसार्वभौमानां दानवैश्चदुरात्मभिः

जित्वा च सकलाँल्लोकान् सुरानिन्द्रपुरोगमान्।
दिक्पालान्वसुपालांश्च तिरस्कृत्याऽसुराधिपः ॥ ६ ॥
सर्वांश्चसर्वकामेभ्यः स्वयमेवाधितिष्ठति। स्वर्गान्निराकृताः सर्वतेनदेवगणाभुवि
विचरन्तियथामर्त्या भ्रष्टराज्याःपराजिताः। अलब्धशरणाःसर्वेब्रह्माणंशरणंययुः ॥
तत्रगत्वानमस्कृत्यादैत्यकृत्यंन्यवेदयन्। भगवन्!किमिदंकार्यंभवतापरमेष्ठिना ॥ ६
येनदेवगणाःसर्वेनष्टप्रायाश्चतत्क्षणात् । हिरण्याक्षेणदैत्येन हृतंस्वर्गमकण्टकम् ॥
यज्ञभागाश्चयेसर्वे उपाश्नातिपृथक्पृथक्। केनोपायेनजीवामः कथंतिष्ठामभूतले ॥
इतिविक्लवितंश्रुत्वा देवानांसपितामहः। उवाचवचनंरम्यं तत्कालेसमयोचितम्

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तुभोसुरश्रेष्ठा!यूयंसर्वेसमाहिताः । पुराऽयंपार्षदश्रेष्ठोद्वारपालः समाहितः ॥
वैकुण्ठभवनेरम्ये विष्णोरतुलतेजसः। जयोनाममहाबाहुर्विजयेन च संयुतः ॥ १४
द्वावेवसचिवौदान्तौ विष्णुवेषधरावुभौ। आत्तशस्त्रौचविक्रान्तौ तिष्ठतोद्वारिसर्वदा
एकदावैमुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोमानसात्मजाः। स्वैरंचरन्तोलोकेषु विष्णोर्भवनमागताः
सनकाद्यो महाभागा विष्णुदर्शनलालसाः।
ताभ्यां निवारिताः सर्वे प्रपेतुर्धरणीतले ॥ १७ ॥
मुमुहुश्चतदाव्यास कुमाराभृशदुःखिताः। ततोऽगात्समहाबाहुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥
ददर्शसहसाविष्णुःकुमारान्भुविदुःखितान्। उत्थाप्यैकंसमारोप्यसुस्वजेमधुसूदनः
मूर्ध्निचाघ्रायबाहुभ्यां परिष्वज्य उवाचह।
कस्माद्वःकश्मलमिदं केनापि दुःखिताभृशम् ॥ २० ॥
सर्वं तत्कारणं बाला ब्रूत नो धर्मवित्तमाः! ।

कुमारा ऊचुः

श्रूयताम्भोमहाराज! अस्माकं दुःखमीदृशम् ॥ २१ ॥
येनप्रासादयंब्रह्मन् दशामेतांःसुसुव्रत । आयाताभ्रातरोह्येते चत्वारोलोकविश्रुताः ॥
दर्शनार्थंरमानाथसाभिलाषाःसुरार्दिताः । निवारिताश्चसहसा द्वारपालैर्बलोत्कटैः

तेन चेयं दशा प्राप्ता मयता परिपालिता ।
अतःप्रभृति स्थानेऽस्मिन् स्थितिर्नास्ति च शाश्वती ॥ २४ ॥
एतस्मादासुरीं योनिं प्राप्नुतां सुसमाहितौ ।
सच शप्तौ तदा व्यासौ आसुरीं योनिमुत्सिताम् ॥ २५ ॥
जयश्चविजयश्चैव कृष्णाय समाश्रितौ । जन्मान्तरसहस्रेण तपोदानसमाधिभि
र्नराणांक्षीणपापानां कृष्णेभक्ति प्रजायते । कृष्णायेनचैवसद्यो जन्मभिर्जायतेत्रिभि
र्भविष्यति [redacted] यां तस्माद्विष्णुभक्ति परा स्मृता ।
जन्मजन्मान्तरे जातौ तामसीं योनिमुद्धतौ ॥ २८ ॥
हिरण्यकशिपुश्चैवहिरण्याक्षोमहाबल । तथैवकुम्भकर्णश्चरावणोलोकरावण ॥
दन्तवक्त्रःशिशुपालश्चजन्मत्रयेस्मृता । योऽसौमहाबलोदैत्योहिरण्याक्षइतिस्मृत
कृष्णायसमापन्नो देवब्राह्मणनिन्दक । जित्वाचसकलान्देवान्स्वयमेवाधितिष्ठति
स्वर्गाभिराहृता सर्वे सुरराज्या पराजिता ।
विचरन्ति यथामर्त्यास्तेन देवगणा भुवि ॥ ३२ ॥
स्वधाकारोवषट्कार स्वाहाकारोनदृश्यते । देवपूजार्चननास्तिब्राह्मणनामविरोधत
नैवतापानिचशान्तपुण्यान्यायतनानिच । आश्रमेषुचसर्वेषु ऋषीणांचमहात्मनाम्
अत्यद्भुतप्रकुर्वन्ति दुर्दैत्या प्रहारिण । वर्णाश्रमवताधर्मा क्षीणाश्चैवसुशीलता
उद्विग्ना हि तदा जाता तस्मिन् राज्ञि दुरात्मनि ।
दुराचारा दुरात्मानो मायिनो बहुमानिन ॥ ३° ॥
पाखण्डिनोविकर्मिण स्वधर्मबहिर्मुखा । पशुधर्मगता ह्येते सर्वत्रलेविशासिन ॥
बहुम्लेच्छा बहुक्लेशा बहुबाधाचनिष्ठता ।
कोवेद कास्मृति पुण्या कोयज्ञ का च दक्षिणा ॥ ३८ ॥
तमोभूतंजगत्सर्वं दृश्यतेवसुधातले । एवव्यासंयदाजात कृष्णसर्वंजगत्त्रयम् ॥ ३९
यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम्
इतिज्ञात्वामहाविष्णुर्वाराहवपुरास्मवान् । दधारलीलयादिव्य श्वेतद्वीपोपमशुभम्

यूपदंष्ट्रो हविर्गन्धो बीजौषधितनूरुहः ।
वेदपादः स्मृतिर्घोणा जिह्वाग्निस्तालु चाहुतिः ॥ ४२ ॥
अन्तरास्यरुचाटोपोयज्ञकायःसुदक्षिणः । उद्गमोघुघुरोनादोविहारोऋत्विजाकृतिः
श्वेतः श्वासपरोदक्षः सदस्यावयवःस्मृतः । पुच्छःकर्मासनोनित्यंयजतांवहुमानदः
वेदापल्वलसंतारो ब्रह्माध्वर्यूर्वनाकरे । लोककल्पोलोकसाक्षी परावरवहः शुचिः
आद्यःपुरुषईशानः पुरुहूतःपुरुष्टुतः । तेनासौनिहतोदैत्यो हिरण्याक्षोदुरासदः ॥
सङ्ग्रामान् सुबहून् कृत्वा बहुकष्टेन विष्णुना ।
दैत्येन पीडिता पृथ्वी रसातलतलं गता ॥ ४७ ॥
उद्धृताचवराहेणदंष्ट्रयाचन्द्ररेखया । हतास्तेदानवाः सर्वेशेषाः पातालमाययुः ॥
ववुः पुण्यास्तदा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥ ४६ ॥
सरितोमार्गवाहिन्यः सागराः प्रकृतिगताः । दृष्ट्वादेवोऽखिलं व्यासप्रसन्नात्माबभूवह
वाराहमूर्त्तिर्भगवान् सर्वकामफलप्रदः । आनन्दनिर्भरोदेवो हतदैत्यो वरप्रदः ॥ ५१
तस्यापि हृदयाज्जातानदीह्येषासनातनी । आनन्दजलसम्पूर्णा सर्वानन्दवरप्रदा ॥
बहुयोजनविस्तारा बहुला कामचारिणी ।
पद्माकरसमाकीर्णा हंसकारण्डवाकुला ॥ ५३ ॥
सरलातरलामाया यक्षगन्धर्वसेविता । किन्नरीभिर्गीयमाना गीयमानाखगालिभिः ॥
नृत्यन्त्यप्सरसो नित्यं स्तूयमाना महर्षिभिः ।
हुताग्निभिर्युता नित्यं राजर्षिभिःसमाश्रिता ॥ ५५ ॥
तुङ्गस्तनभराक्रान्तवरस्त्रीभिः समावृता । क्वचित्करिवरान्दोलै रम्यमाणाविराजिता
वेदविद्भिर्द्विजैःसेव्या ऋषिभिश्शंसितात्मभिः ।
सर्वदा सर्वकाले च ऋद्धिसिद्धिप्रदा नृणाम् ॥ ५७ ॥
महाकालपुरेरम्ये रम्यापद्मावतीपुरी । सुन्दरंकुण्डमपरंव्यास रम्यंप्राचीनकंशुभम्
यत्रस्नात्वानरायान्ति शिवलोकंसनातनम् । तत्रलीनापराव्यास क्षिप्रावैलोकपावनी

धाराहेणहृतंसर्वं दुष्टदैत्यनिबर्हणम् । तेनदेवा निरातङ्का कृता वाराहमूर्तिना ॥
भूत्वाप्राञ्जल्य सर्वे देवाइन्द्रपुरोगमा । स्तुतिं महाविष्णुं सन्नता पुरत स्थिता ॥

देवा ऊचु

देवदेवजगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन। किं दानं किं तप पुण्यं किं तीर्थंकात्र देवता ॥
येन पुण्यप्रभावेन पुन स्वर्गोऽधिवाप्यते । एवनिश्चित्यनोब्रूहि सर्वंगुह्यनर विभो ॥

श्रीवाराह उवाच

श्रूयतांभोसुरा सर्वे युष्माकसिद्धिकारणम् । गुह्याद्गुह्यतरपुण्यमहाकालवनेशुभम्
ममदेहोद्भवाक्षिप्रा यत्रलीना पयस्विनी । नीलगङ्गासरिच्छ्रेष्ठा यत्रप्राची सरस्वती
पुष्करञ्च गयातीर्थं पुरुषोत्तमसर शुभम् । तत्त्वयगच्छतक्षिप्रा पुनर्लोकानवाप्स्यथ
इति श्रुत्वापरवाक्य देवदेवजगद्गुरो । तत्रदेवगणा सर्वे ब्रह्मेन्द्रपुरोगमा ॥
महाकालवनेरम्ये यत्रक्षिप्रासरिद्वरा । स्नानदानादिक कृत्वा श्राद्धकृत्वायथोचितम्

तेन पुण्यप्रभावेण स्वकाँल्लोकान् गता सुरा ।
एव व्यास समाख्याता क्षिप्रा वै लोकपावनी ॥ ६१ ॥

आतसरोवराहस्य विष्णोरतुलतेजस । यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोह्यते ॥
तत्र स्नात्वा पय पीत्वा श्राद्ध कृत्वा यथोचितम् ।
पयस्विनीं च गा दत्वा विष्णुलोके महीयते ॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये क्षिप्रामाहात्म्य नाम त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

सुन्दरकुण्डपिशाचमोचनतीर्थवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सुव्रत! ।
अवन्त्यां सुन्दरे तीर्थे तिष्ठन्ति सर्वदा भुवि ॥ १ ॥

व्यास उवाच

किमिदंसुन्दरंकुण्डंकदाकालेऽभवत्क्षितौ । निर्मितंकेनकोदेवःकिंवातस्यफलंस्मृतम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुपुण्यतमेक्षेत्रे सुन्दराख्यं यथाभवत् । सर्वपापप्रशमनं वाञ्छितार्थफलप्रदम्॥
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोह्यते । अश्वमेधाधिकंपुण्यं वाजपेयशताधिकम्
पुराकल्पक्षये व्यास! नष्टकल्पा च मेदिनी । प्रचण्डवातवर्षाभ्यां घूर्णितोमेरुपर्वतः
तदात्रपतितंव्यास!वैकुण्ठशिखरोत्तमम् । महाकालवने घोरे गुह्येचैवाव्यये भुवे ॥
तत्क्षणात्पतिते शृङ्गे कुण्डं जातं सुनिश्चितम् ।
रत्नसोपानसुस्वच्छं मुक्तासंकनपूरितम् ॥ ७ ॥
जाम्बूनदकृतरोहं हेमपद्मविराजितम् । कल्पद्रुमकृतच्छायं चिन्तामणिसमुच्छ्रितम्
हंसकारण्डवाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् । वीजौषधिगणाकीर्णं सर्वतत्त्वाभिसंयुतम्
कल्पक्षयेनक्षीयन्ते यानितत्त्वानिसर्वदा । तानि तत्र प्रतिष्ठन्ति मूर्त्तिमन्तिपराणिच
वेदशास्त्रपुराणानि गाथा गीत्यक्षराः स्वराः ।
ॐकारश्च वषट्कारः गायत्री त्रिपदीपरा ॥ ११ ॥
कलाकाष्ठामुहूर्तानि लवत्रुटिपलं घटिः । अहर्निशश्चयामाश्चपक्षौमासौऋतुस्तथा
संवत्सरोयुगश्चैवकुण्डेतिष्ठन्तिमूर्तितः । देवायक्षाश्चनागाश्च गुह्यकाःकिन्नरास्तथा
गन्धर्वाप्सरसोयक्षाःसिद्धाःकिंपुरुषास्तथा । उपासाञ्चक्रिरेतस्यकल्पदोषभयातुराः

ब्रह्मा रुद्रश्च कालश्च लोकपाला महौजस ।
केचिद् ध्यानपरा सिद्धास्तापसा शंसितव्रता ॥ १५ ॥
तिष्ठन्तिबहुयुगव्यास यावत्कल्प समाप्यते । सुदर्शनसमाकार पूरितवामृताम्बुभि
दिव्याभिप्रायसयुक्त पारिजातगुणान्वितम् ।
दिव्यस्त्रीस्नानगन्धोद्दैर्वासित तु सदैव हि (वासितोद्गारिसौरभम्)
क्वचिन्मयूरा नृत्यन्ति क्वचित् कूजन्ति कोकिला ।
क्वचिच्च केकाभिरवा क्वचिद्बुधोप समाकुलम् ॥ १८ ॥
सुन्दर सुन्दराकारं सुन्दरं तत्तथोच्यते । यत्पुण्यकर व्यास! सर्वपापहरंपरम् ॥
यत्रसन्निहितोविष्णु शिव शक्तयायुतोवशी । उपास्यात्र मिरेशश्च सर्वकालेषुसर्वदा
क्षणार्द्धंक्षणमेकच सुन्दरकुण्डे नरोवसेत् । वैकुण्ठे नियतवास यावत्कल्पशतभवेत्
पतङ्गा पक्षिण कीटा मृगा यान्ति शिवालयम् ।
किं पुनर्मानवा लोके स्नानपूतास्तु तज्जले ॥ २२ ॥
योदद्यातिलान्धेनु गजवाजिरथावनाम । दासीदासंसुवर्णंच रत्नानिविविधानिच
शय्याद्यानविमानानिदानानिविविधानिच । ततस्यदानजवैविकीद्धव्यासफलभवेत्
भूय शृणुवर व्यास सुन्दरकुण्डफलस्मृतम् । एकदाबहुपापेन पतित पापयोनिषु
पिशाचोमोक्षमापन्न शिवरूपधरोगत । पिशाचमोचनेस्नात्वा दृष्ट्वा देव महेश्वरम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ।

व्यास उवाच

क पिशाच इति ख्यात किं तेन दुष्कृत कृतम् ॥ २३ ॥
येन पापप्रसङ्गेन पिशाचत्व समागत । कथतीर्थे प्रसङ्गोऽस्य जातोवै द्विजसत्तम!
एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदाम्वर! ।

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास! महाख्यान तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥
यस्यश्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् । ब्राह्मणो देवलोनाम दाक्षिणात्योद्विजाधम

सदापापरतोलोभी कूटसाक्षीचलम्पटः। गुरुद्रोहीकितवोधूर्तो भ्रूणहागुरुतल्पगः॥
हेमहारी सुरापीच ब्रह्महास्वामिद्रोहकः। अभक्ष्यभक्षकश्चैव वेदशास्त्रविवर्जितः॥
बहुजन्मार्जितपापी सर्वधर्मबहिष्कृतः। विश्वासघातकोमानी चोरसङ्गरतः खलः॥
देशान्तरगतोमन्दश्चौरकार्यार्थसाधकः। बहवो निहतामार्गे पापचारेण जन्तुना॥
मगधेषु गतो दुष्टः प्रसङ्गात्पापकारिणाम्। तत्रैको ब्राह्मणोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः

साग्निकः शुद्धसत्त्वस्थो ब्रह्मकर्मरतः सदा।
श्वशुरगृहस्थितां भार्यां तामादाय यशस्विनीम्॥ ३६॥

चलितोमार्गमारुद्ध्य तेनपापेनघातितः। तस्यस्त्रीच वरारोहा रूपलावण्यशालिनी
पतिव्रता महाभागा पूतचित्ताशुचिस्मिता। हतेभर्तरिदुःखार्ता पत्युर्विरहकातरा
वनेघोरे परिभ्रष्टा काष्ठमादाय भामिनी। आरुरोहचितांदीप्तां पतिनाशुद्धमानसा
सचदुष्टतरःसर्वं तस्य विप्रस्यजीवनम्। गृहीत्वा चलितोमार्गेगृहीतोराजकिङ्करैः

निगडित्वा तु वित्तेन वेदितो राजसन्निधौ।
घातितो वै गले बद्ध्वा रज्जुना वृक्षकोटरे॥ ४१॥

चाण्डालैर्घृष्टितोभूमावितश्चेतः श्वपाकिभिः। तेनकर्मविपाकेन रौरवंनरकंगतः॥
षष्टिवर्षसहस्राणिविष्ठायांकृमितांगतः। ततो हि नरकं प्राप्तोयमशासनकारकैः॥

कुम्भीपाकगतो रौति वैतरण्यां प्रपीडितः।
एवं बहुविधान्नरकान्भुक्त्वा पापी स दुःखतः (नवान्नवान्)॥ ४४॥

ततःप्रेतत्वमापन्नो युगानांपञ्चसप्ततिम्। सूचीमुखोमहाकायो महारावोमहोदरः॥
क्षुधातृषापराक्रान्तो मरुदेशसमाश्रितः। ततःकष्टतरंप्राप्यपैशाचींतनुमाश्रितः॥
कुटिलोदुष्टभावश्च दुष्टाचारीदिगम्बरः। विष्ठामूत्रकृताहारो पूतिपर्युष्टभोजनः॥
श्मशानेचितिभोजीच कृत्तिवासाविलोचनः। भग्नवाप्यांतडागेच्चशुष्कवृक्षेचनिर्जले
प्राकारपरिखाकारे शून्यागारेनदीतटे। निवासोरोचतेतस्य सर्वदासर्वसन्धिषु॥
एवं बहुयुगे याते महाकालवनेगतः। यत्रमाहेश्वरंलिङ्गंसुन्दरंकुण्डमद्भुतम्॥ ५०
तत्रापिक्षणमात्रेणसिंहेनविनिपातितः। घातयित्वाचतंपापं जलार्थीकुण्डमाविशत्

ब्रह्मा रुद्रश्च कालश्च लोकपाला महौजसः ।
केचिद् ध्यानपराः सिद्धास्तापसाः शंसितव्रताः ॥ १५ ॥
तिष्ठन्ति बहुयुगं व्यास यावत्कल्पः समाप्यते । सुदर्शनसमाकारं पूरितं चामृताम्बुभिः
दिव्याभिप्रायसंयुक्तं पारिजातगुणान्वितम् ।
दिव्यस्त्रीस्नानगन्धोदैर्वासितं तु सदैव हि (वासितोद्गारिसौरभम्)
क्वचिन्मयूरा नृत्यन्ति क्वचित् कूजन्ति कोकिलाः ।
क्वचिच्च केकाभिरवाः क्वचिद्‌घोषं समाकुलम् ॥ १८ ॥
सुन्दरं सुन्दराकारं सुन्दरं तत्तथोच्यते । बहुपुण्यकरं व्यास सर्वपापहरं परम् ॥
यत्र सन्निहितो विष्णुः शिवः शक्रयुतो वशी । उपास्ते ऋषिरेशं भवत्सर्वकालेषु सर्वदा
क्षणार्द्धं क्षणमेकं च सुन्दरकुण्डे नरो वसेत् । वैकुण्ठे नियतं वासं यावत्कल्पशतं भवेत्
पतङ्गाः पक्षिणः कीटा मृता यान्ति शिवालयम् ।
किं पुनर्मानवा लोके स्नानपूतास्तु तज्जले ॥ २२ ॥
योदद्यात्तिलान्धेनुं गजवाजिरथाश्चनीम । वासांसि ग्रामसुवर्णं च रत्नानि विविधानि च
शय्यादानं विमानानि दानानि विविधानि च । तत्सर्वं दानजं तैश्च कोटिगुणं व्यास फलं भवेत्
भूयः शृणु परं व्यास सुन्दरकुण्डफलं स्मृतम् । एकदा बहुपापेन पतितः पापयोनिषु
पिशाचो मोक्षमापन्नः शिवरूपधरो गतः । पिशाचमोचने स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ।

व्यास उवाच

कः पिशाच इति ख्यातः किं तेन दुष्कृतं कृतम् ॥ २३ ॥
येन पापप्रसङ्गेन पिशाचत्वं समागतः । कथं तीर्थे प्रसङ्गोऽस्य जातो वै द्विजसत्तम
एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ।

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महाख्यानं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् । ब्राह्मणो देवलो नाम ऋषिकाले...

[म]त्सत्रेमयितिष्ठेत्सु सर्वेषामपिदेहिनाम्। तेनाहंवैमराक्रान्ता नोशक्ताचलितुंधराम्
[न]ीलवासाविवर्णाच सर्वधर्मबहिर्मुखैः। यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म शुभंवायदिवाशुभम्
[म]यित्यक्त्वापुनर्यान्तिजन्तवःसर्वशोऽमलाः। तिष्ठन्तिपुण्यलोकेषुभुक्तिमुक्तिप्रदेषुच
अस्माकंचमहत्कष्टं जातंधातः परमलम्। नहिशर्मनैवशान्तिर्ननिद्रानचनिर्वृतिः॥
नहिलोकेस्थितिर्मेऽत्र पापिष्ठायामनातनी। दुष्टसङ्गोद्भवैर्दोषैः प्लाविताहंजगद्गुरो
किंकरोमिक्वगच्छामि येनशान्तिर्भवेन्मम। किंतपःकिञ्चदानंमेकिंतीर्थंकिंचसाधनम्
येनाहंपापलिप्ताङ्गी पूर्वप्रकृतिमाप्नुयाम्। एवंज्ञात्वामहायोगिन् यथायोग्यंतथाकुरु

ब्रह्मोवाच

श्रूयताम्भोःसरिच्छ्रेष्ठे! कारणं पापनाशनम्।
महाकालवने रम्ये पुरी लोपाऽमरावती॥ १३॥
तत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा वर्ततेभुविपावनी। तस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत्॥
तत्रगच्छमहाभागे सद्यश्चात्मविशुद्धये। ब्रह्मणेदंसमाख्यातं श्रुत्वागङ्गासरिद्वरा॥
तमभिप्रायसम्प्राप्ता महाकालवनंशुभम्। पुष्करस्याग्रमार्गेच यत्रदेवोमरुत्सुतः॥
विन्ध्यस्य चोत्तरेभागे अञ्जन्याश्रममुत्तमम्।
सा पुत्रेण तपस्तेपे पवित्रा ब्रह्मचारिणी॥ १७॥
पतिव्रताभिः सर्वाभिःपतिभिर्ब्रह्मचारिभिः। देवाङ्गनाभिर्बहुभिःक्रीडद्भिर्बालकुञ्जरैः
सरसीफुल्लकह्लारैर्मत्तालिकुलनादितम्। निर्वैरजन्तुभिःसेव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥
मनआह्लादकंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम्। तत्रप्रवेशमात्रेणनीलवासासरिद्वरा॥ २०॥
शुक्लवासाभवत्सातु नष्टपापमलाशुभा। शरच्चन्द्रनिभाकारा धूतपापायशस्विनी॥
तत्रैवचाश्रमंचक्रेमनसोहर्षकारणम्। ततःप्रभृतिसमाख्यातं सर्वलोकेषुपुण्यदम्॥ २२
नीलगङ्गेति तत्तीर्थं व्यास! किल्बिषनाशनम्।
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा हनुमन्तमथार्चयेत्॥ २३॥
तस्यसिद्धिः करगता भविष्यतिनसंशयः। आश्विनेमासिसंप्राप्तेकृष्णपक्षेसमाहितः
दर्शेपितॄन्समुद्दिश्यश्राद्धंकुर्यान्महालयम्। तारितंतेनस्वकुलंसर्वमेकोत्तरंशतम्॥

दग्धान्तरगतश्चास्थिपतितन्मुखाऽनले । तेनपुण्यप्रभावेणसर्वपापं क्षयं गतम् ।
मृतमात्रे च लिङ्गे तस्मिन्नन्तरगतं तदा । हित्वापैशाचिकंदेहं ज्योतिस्तल्लिङ्गमाविशत्
तदारभ्यवरव्यासतीर्थंपैशाचमोचनम् । पिशाचमोचनेशाख्योभुविविख्यातताङ्गत
तावद् गर्जन्ति पापानि मदोन्मत्ता गजाइव ।
यावन्नायाति शिप्राया तीर्थे पैशाचमोचने ॥ ५१ ॥
पिशाचमोचने स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहित ।
पिशाचमोचनेशस्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ ५६ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा जायतेनात्रसंशय । पिशाचमोचनेव्यास महादानानिकारयेत्
मनस्यपुनरावृत्ति शिवलोकात्कदाचन । पिशाचमोचनकथा पवित्रापापहारिणीम्
पठनाच्छ्रवणाच्चैव हयमेधफलं लभेत् ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽ
वन्तीक्षेत्रमाहात्म्येपुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यनामचतु षष्टितमोऽध्याय ॥६४

पञ्चषष्टितमोऽध्याय

नीलगङ्गामाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

भूयस्तुश्रोतुमिच्छामित्वत्तोब्रह्मविदांवर । नीलगङ्गाकदाब्रह्मन्शिप्राकुण्डेसमागा

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यासमहातीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् । नीलगङ्गानर स्नात्वासङ्गमेश्वरमर्चयेत्
दुष्टसङ्गोद्भवादोषा नभवन्तिकदाचन । एकदाब्रह्मलोकेच गङ्गात्रिपथगानदी ॥ २
गतापुनस्त्रीँल्लोकाञ्जित्वामाशुचार्दिता । भगवन्किमिदञ्जातं पातकमेहतमुर
दुणचारपरामऽत्र येनैवाप्रापिनादृशा । सर्वलोकेपुयत्किञ्चिज्जनानांपातकंभुवि।

आराधनं तदा चक्रे तस्या देव्या वरेप्सया ॥ ४ ॥

ंसविद्रावणकरीमसुराणांक्षयंकरीम् । भारावतारणींपुण्यां बलस्यभगिनींशुभाम्

यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरबलमर्दिनीम् ।

विद्युद्रूपां नभस्थां तु कृष्णां कृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥

जननींदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् । गायत्रींद्विजमुख्यानां बृहतींछन्दसांवराम्

सहस्राक्षीं सुरेन्द्रस्य ऋषेश्चारुन्धतीम्पराम् ।

गवांकामदुघां श्यामां लतां मधुतमप्रियाम् ॥ ८ ॥

अदितिं सर्वमातॄणां पार्वतीं सर्वयोषिताम् ।

ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसीं बालां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ६ ॥

शारदांऋतुवेलायांवृन्दावनचरींवराम् । मायिनांवैष्णवींमायांसर्वदैत्यविमोहिनीम्

महालक्ष्मीं श्रीमभीष्टां यक्षिणीं धनदार्चिताम् ।

महोदधीप्सितां वेलां राज्ञां कायेषु चक्रिणीम् ॥ ११ ॥

वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् । दक्षिणांसर्वदीक्षाणांसर्वकामफलप्रदाम्

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी । प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम्

व्रियताम्भोद्विजश्रेष्ठ! तदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।

यदीप्सितं त्वया वत्स! स्तुतिर्मे सुचिरं कृता ॥ १४ ॥

अगस्तिरुवाच

यदिमातर्वरोदेयोदेवानामुपकारिणि! । रेवेयंवर्द्धितालोके सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥

तयेदंप्लावितंविश्वं तस्यानिग्रहणंकुरु । इतिसाप्रार्थितातेन तदाकालेमहर्षिणा

अगात्साध्वी तदा व्यास! महाकालवनं शुभम् ।

सान्त्वपूर्वं वचः पथ्यमगस्तिमिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥

धारयिष्येपरान्देवींवर्द्धमानांद्रुतंऋषे । तावत्त्वंऋषिभिः सार्कंविन्ध्यस्यचमहागिरेः

परमेत्रिकुटेद्वारे स्थास्यसिऋषिसत्तम! । पुरीह्येषामुनिश्रेष्ठ त्रिपुलोकेषुविश्रुता

अत्रैवसुचिरंकालं मातृभिर्निवसाम्यहम् । तत्रापित्वंसदासिद्धक्षेत्राधिपतिमाप्नुहि

सप्तगोत्रेषुयेजाता पूर्वजा पितरस्तथा। तेसर्वेसद्गतियान्ति तेषांलोकाःसनातनाः
स्नात्वातिलाञ्जलिंदद्यात्पितॄनुद्दिश्यतत्परः । अक्षयाजायतेतृप्तिः स्वर्गलोकेमहीयते
भोजयेद्ब्राह्मणान्सत्र श्राद्धंदत्त्वातुपायसैः । अक्षयलभतेश्राद्धमश्वमेधफलंभवेत् ॥
तीर्थंपुण्यसरव्यास शृणुपुण्यतरस्थलम् । दुग्धकुण्डमितिख्यातं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
सर्वपापहरपुण्यं सर्वकामवरप्रदम् । पुरा दुग्धा धरादेवी पृथुना धर्ममूर्तिना ॥ ३० ॥
दुग्धसर्वंदयिमोध्य सर्वेषांजीवनप्रदम् । दत्तनिधायकुण्डेऽस्मिंस्तेनदुग्धसरःस्मृतम्
कुण्डे स्नात्वा पयः पीत्वा दत्त्वा गाश्च पयस्विनीम् ।
सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ ३२ ॥
जायतेसर्वकालेषु मृतः स्वर्गपुरंव्रजेत् । ततः पुष्करमासाद्य स्नानदानादिकंचरेत् ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा पुष्करस्य फलं लभेत् ॥ ३४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्येनीलगङ्गामाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

विन्ध्यावासिनीनिमलोदतीर्थवर्णनम्

व्यास उवाच

कोऽसौविन्ध्यगिरिर्ब्रह्मन् कदाकालेसमागतः । महाकालवनेरम्ये केनवाप्रेषितः
सनत्कुमार उवाच

पुरादेवाजलैर्व्यास प्लावितैषावसुन्धरा । तदासर्वसुरैरेवमगस्तिर्मुनिसत्तम
आराधितो महाभाग धरणीत्राणकारणात् ।
तदागत्य गिरौ रम्ये विन्ध्ये स मुनिसत्तम ॥ ३ ॥
एकाग्रमानसो भूत्वा भवानीं विन्ध्यवासिनाम् ।

आराधनं तदा चक्रे तस्या देव्या वरेप्सया ॥ ४ ॥

कंसविद्रावणकरीमसुराणांक्षयंकरीम् । भारावतारणींपुण्यां वलस्यभगिनींशुभाम्

यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरवलमर्दिनीम् ।

विद्युद्रूपां नभस्थां तु कृष्णां कृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥

जननींदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् । गायत्रींद्विजमुख्यानां वृहतींछन्दसांवराम्

सहस्राक्षीं सुरेन्द्रस्य ऋषेश्चारुन्धतीम्पराम् ।

गवांकामदुघां श्यामां लतां मधुतमप्रियाम् ॥ ८ ॥

अदितिं सर्वमातॄणां पार्वतीं सर्वयोषिताम् ।

ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसीं वालां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ६ ॥

शारदांक्रतुवेलायांवृन्दावनचरींवराम् । मायिनांवैष्णवींमायांसर्वदैत्यविमोहिनीम्

महालक्ष्मीं श्रीमभीष्टां यक्षिणीं धनदार्चिताम् ।

महोदधीप्सितां वेलां राज्ञां कार्येषु चक्रिणीम् ॥ ११ ॥

वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् । दक्षिणांसर्वदीक्षाणांसर्वकामफलप्रदाम्

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी । प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम्

व्रियताम्भोद्विजश्रेष्ठ! तदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।

यदीप्सितं त्वया वत्स! स्तुतिर्मे सुचिरं कृता ॥ १४ ॥

अगस्तिरुवाच

यदिमातर्वरोदेयोदेवानामुपकारिणि! । रेवेयंवर्द्धितालोके सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥

तयेदंप्लावितंविश्वं तस्यानिग्रहणंकुरु । इतिसाप्रार्थितातेन तदाकालेमहर्षिणा

अगात्साध्वी तदा व्यास! महाकालवनं शुभम् ।

सान्त्वपूर्वं वचः पथ्यमगस्तिमिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥

धारयिष्येपरान्देवींवर्द्धमानांद्रुतंऋषे । तावत्त्वंऋषिभिः साकंविन्ध्यस्यचमहागिरेः

परमेत्रिकुटेद्वारे स्थास्यसिऋषिसत्तम! । पुरीह्येषामुनिश्रेष्ठ त्रिपुलोकेषुविश्रुता

अत्रैवसुचिरंकालं मातृभिर्निवसाम्यहम् । तत्रापित्वंसदासिद्धक्षेत्राधिपतिमाप्नुहि

मत्सरोनिर्मलपुण्यविमलोदन्तुविश्रुतम् । यत्रपुण्यतांवासोदेव्यस्तिष्ठन्तिकोटिश

तस्मिंस्तीर्थे नराः स्नात्वा भूत्वा चैव समाहिताः ।
यजन्ति चैव मां भक्त्या धूपदीपाग्नितर्पणैः ॥ २२ ॥
क्षीरखण्डाज्यभोज्यैश्च भोजयेद्विविधद्विजान् ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २३ ॥
धनधान्यवरैश्वर्यपुत्रदारादिसम्पदः ।
प्राप्नोति विविधान् भोगान् देवानामपि दुर्लभान् ॥ २४ ॥

महानुभोमर्त्यैर्यांस्वयुम्योपानराननं । महारज्ञानन्तीर्थाभावस्वदाविरमभविष्यति

दीर्घायुर्द्धिमांल्लोके ऽपि वा शाश्वती समाः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ २५ ॥
एवं व्यास पुराऽप्राप्य रम्यां चोग्रगिनीं शुभाम् ।
समाश्रिता सदा देवी सततं विन्ध्यवासिनी ॥ २७ ॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
स्त्रियो या रजोवीता वन्ध्या वै काकवन्ध्यकाः ॥ २८ ॥
दुर्भगा हीनदाना च सर्वकामविवर्जिता ।
विमलोदेऽपि सा स्नात्वा दृष्ट्वा वै विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९ ॥

सुवर्णैस्तपरोदैन्तु नात्रकार्याविचारणा । मनुजा प्राप्नुयुः पुत्रानवन्ध्यावीरवनितार प्राप्नोतिसवर्गीभाग्यं सर्वकामफलप्रदम् । विधवापाप्नोतिविप्र क्षांमयोपितवीमवेः वैश्यभपद्लाभाय सुदृम्नुसुखनरत्वं । कथामुण्यवर्णमिमां सर्वकामफलप्रदाम पठनाच्छ्रवणादापि सोमदफलमश्नुते ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
स्थावन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये विन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोध्यायः

क्षातासङ्गममाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

तीर्थमन्यतरंव्यास क्षातासङ्गमसम्भवम् । यत्रतुस्नानमात्रेण महापापैःप्रमुच्यते
अमावैशनिवारेण यदायातिसमाहितः। पितृनुद्दिश्ययः कुर्याच्छ्राद्धंचैवतिलोदकम्
पश्येच्छनैश्चरंदेवंस्थावरंलिङ्गमुत्तमम्। तस्यशानिश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन॥

व्यास उवाच

महातीर्थंसमाख्यातं महाकालवनेशुभे। भूयस्तुश्रोतुमिच्छामिविस्तरेणतपोधन

सनत्कुमार उवाच

श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ!कथापौराणिकीशुभा । यस्याःश्रवणमात्रेणमहापापक्षयोभवेत्
रेवाचर्मण्वती क्षातातिस्रोनद्यः पुरानघ। त्रैलोक्यपावनीर्जाताभुविचामरकण्टकात्
पुण्याःपुण्यजला रम्याः पवित्राः पापहारिणीः (हारकाः)।
पुनन्त्यः सर्वलोकानां पापिनः पापकारिणः (स्नानात्पानात्तथापगाः)
एकदोपवनेरम्ये मान्धातृक्षेत्रउत्तमे। मिथोरमन्तिसंहृष्टाः परस्परजिगीषया॥ ८॥
किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेनमिथोभेदोह्यजायत। रेवासङ्गंपरित्यज्यभित्त्वाविन्ध्यगिरिंचिरम्
महाकालवनेरम्ये समायातासरिद्वरा। यत्रक्षिप्रामहापुण्यापुरीह्यापाऽमरावती॥ १०
सर्वतीर्थवरंश्रेष्ठं नाम्नारुद्रसरः स्मृतम्। भुक्तिमुक्तिप्रदंनित्यं सिद्धर्षिगणसेवितम्
यत्रागत्यपुराक्षाता क्षिप्रासङ्गंसमाश्रिता। तत्रतीर्थंपरंजातं क्षातासङ्गमसंज्ञितम्॥
यत्रधूतरजो (जा) जातः सद्यःप्रोक्तो विभावसुः।

व्यास उवाच

कथं सूर्यस्त्वया प्रोक्तो विरजो ह्यभवत्पुरा॥ १३
एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदाम्वर!।

सनत्कुमार उवाच

पुरा तु सञ्ज्ञा सावित्री त्वष्टा स्वतनयान्ददौ ॥ १४ ॥

पतिधर्मरतानित्य सवितेलोकचक्षुषे। तस्यांवै मिथुनं जज्ञे लोकसाक्षिविभावसो ॥
यमोवैवस्वतोज्ञातोयमुनालोकपावनी ।तत सञ्ज्ञाप्रवीच्छायास्वर्कीयाप्रदर्वाग्रिम
मिथुनंमित्रारोप्यहं धूनमन्त्रविचाल्य । यावत्स्वहमितश्छाये पश्यामिस्वपितुर्गृहे
रविमन्त्रिततासपधर यममयेरमति। नोवाच्यमाहकदाछाये पितुर्वेश्मगतास्वयं ॥
एवमाश्मर्यदृश्या सावित्राहगमत्तदा । पितुर्वेश्मगतायान्तु सवितुर्मयविह्वला ॥
पितृनिवारितामातुवडवारूपधारिणी । विचचार वनेरम्ये पद्मलोदकशाद्वले ॥
एकदावाधिनाम्नेन सा यमेनतुमुमुला। मोदिनर्वततयाद्दत्तं वाचमानायततस्तथाद् ॥
तदाशदाहनातेन छाया स पशाशापह । यस्मात्पादेन मे घातं कृतवान्बाल्मापत ॥
तस्मात्तवैनुपदाज्ञ्यो भविष्यतिनसमशय । एवशापोदजाक्रान्तो विललापभृशार्दित
पतनिवान्तरैव्याम परिभूयपद्युन्धराम् । मायवस्सबलोलोकन्महद्धारीविभावसु
दृष्ट्वा घननयतकृमित्युवाचनरायमम् । किमिदंवत्सतकयतुरा मासत्वयाऽनघ ॥

इति पृष्टा यदा तेन सविता लोकभावन (लोकमात्सवता)

उवाच गद्गदया यम नयमिर्वापति ॥ २६ ॥

प्रातरावाहमेनाथ याचितमातुरन्तिकात् । नोदत्तम्भोजनक्षिप्र बाल्मावेमताडिता
पादेनैगलितोसद्यो मातुःशापनिरस्तहम्। तच्छ्रुत्वामोहमापन्नोरविर्ध्यानिपरायणः

विचिन्त्यमिदमाख्यात मातु शापस्य कारणम् ।

एव ध्यात्वा चिर काल ज्ञानवान् रविरंशुमान् ॥ २६ ॥

मैवसादचिरापाङ्गात्याध्वीलोकस्यपावनी । केयंचाकुतआयाताकास्त्वदशुचिस्मिर

छायोवाच

नसासत्वामहाराज छायातादात्म्यसम्भवा । गतावैसापितुर्गेहे चारिताह तयाऽनघ
सवित्रनैवत्कथ छायेकिञ्चित्कथञ्चन । एषमेसमयोनाथतेनाह मौनमास्थिता॥
तच्छ्रुत्वाभगवान्चण्डु समापत्यमास्थित । अगमत्सहसामातुर्बहुरोषसमन्वित

तंदृष्ट्वासहसोत्थाय त्वष्टालोकपितामहः । पाद्यार्घाचमनीयादिमधुपर्कैरपूजयत्

नत्वा पादौपरिक्रम्यबहुमानपुरःसरम् । ऊचे मधुरयावाचा प्रियन्तेकरवामकिम्

रविरुवाच

कसातुसंज्ञासावित्री ममविप्रियकारिणी। आगता ते गृहं तात!ममर्मार्गानुभेदिनी

त्वष्टोवाच

नहिजानीमहेतात प्रियायास्तेगतागतम्। इत्युक्ते वचनेत्वष्ट्रा रविर्दुःखितमानसः

किंकरोमिक्वगच्छामि क्वचप्रियतरामम। इतिसम्भाषमाणेतुत्वष्टावाक्यमथाब्रवीत्

तवतेजः परिभ्रष्टा भग्नाक्वापिगतावला । यदितेवल्लभाभार्या तेजस्त्वम्परिशामय

सूर्य उवाच

यद्येवंदुःसहंतेजो ममापूर्वंपितामह । यथातेरोचतेसम्यक् तथामेवर्पणंकुरु ॥ ४० ॥

इति सूर्यवचः श्रुत्वा शाणं कृत्वा सुदर्शनम्।

घृष्टितः क्षुरधारेण लवीयान्निर्मलोऽभवत् ॥ ४१ ॥

तस्यवर्पितमात्रेणत्वष्टाचक्रेविवस्वतः। शा (श्रो) णंसुदर्शनंचक्रेसैकतामणिजातयः

तदात्वष्टाऽब्रवीद्वाक्यंमधुरंसूर्यसन्निधौ । महाकालवने रम्ये वडवा रूपधारिणी॥

गृह्यतांभोः सुरश्रेष्ठशीघ्रंगच्छतुशाड्वले। यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठायत्रक्षातासमागता

उभयोः सङ्गमो यत्रतत्रमुक्तिर्नसंशयः । तत्रसासुभगापत्नी प्राप्यते ते नसंशयः॥

इतितस्यवचः श्रुत्वा सवितासर्वतापनः। तत्रागच्छद्वनंयत्र महाकालस्यपावनम्॥

क्षातासङ्गमसंयुक्तायत्रक्षिप्रापयस्विनी । तत्रभुक्तिश्चमुक्तिश्च धनधान्यसमागमः॥

तत्रागत्य प्रियाम्भार्यां वडवारूपधारिणीम्।

ददर्श तामुनःश्यामां हरिरूपधरो हरिः ॥ ४८ ॥

नासिकाघ्राणमात्रेण यौ जातावाश्विनावुभौ।

दर्शनीयौ सुनृम्णाङ्गौ भिषजौ तौ दिवौकसाम् ॥ ४६ ॥

छायायसुपुत्रेतत्र मिथुनंद्विजसत्तम! । तापींशनैश्चरं चैव सर्वलोकप्रतापनम्॥

शनियोगेयदाऽमावै जायतेसर्वकामदा । तदास्नानंतदादानं श्राद्धंचैवतुकारयेत्॥

तस्यहस्तगतालक्ष्मीआयतेसर्वदाभुवि । य श्वातासङ्गमेस्नात्वादानदद्याच्छक्तित

स्थावरेश्वरमभ्यर्च्यतस्यपापक्षयोभवेत् ।

सौरि शनैश्चरोमन्द कृष्णोऽनन्तोऽन्तकोयम ॥ ५३ ॥

पिङ्गरछायासुतोचक्रः स्थावर पिप्पलायन ।

एतानि शनिनामानि प्रात काले पठेन्नर ॥ ५५ ॥

तस्यशनैश्चरीपीडा नभवेत्तकदाचन । धर्मोऽपिसाक्षाद्वैव तपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥

यत्रकुण्डोत्तरेभागे तत्रतिष्ठतिमारुति । धर्मसरइतिख्यातनाम्नातीर्थमनुत्तमम् ॥

यत्र सिद्धिम्परा प्राप्तस्तपसा पवनात्मज ।

तस्मिस्तीर्थे नर स्नात्वा दत्वा वै काम्यभाजनम् ॥ ५७ ॥

सघासो मणिमुक्ताभि काञ्चनालङ्कृतवरम् ।

ब्राह्मणेभ्योऽलङ्कृतेभ्यो वेदविद्भ्यश्च सादरात् (म) ॥ ५८ ॥

मातृलोकमनुप्राप्योब्रह्मलोकेमहीयते । श्रावणेधवलेपक्षेएकादश्यानुयोनर ॥ ५९ ॥

धर्मतीर्थे सदाचारा स्नानदानादिका क्रिया ।

करोति सतत तस्य विष्णुलोक सनातनम् ॥ ६० ॥

च्यवनाश्रमे नर स्नात्वा च्यवनेश विलोकयेत् ।

यत्र सिद्धि गतो पुण्यावाश्विनी भिषजाम्वरौ ॥ ६१ ॥

च्यवनस्यप्रसादेनदेवपङ्क्तिमवापतु । च्यवनेन पुराहृपि प्रासाद्देवभेषजात् ॥ ६२

तस्मिस्तीर्थेद्विजश्रेष्ठाद्वदृष्टिभवेन्नर । अत्रैवप्राप्तवानस्य साग्निहोत्राश्रमम्परम्

सत सहस्रमहाभागा सावित्रालोकविश्रुता । सूर्यलोकसमासाद्यभुञ्जेविपुलाश्रियम्

तस्माद्व्यासापरंतीर्थं क्षातासङ्गमसञ्ज्ञितम् । सर्वपापहरम्पुण्य सर्वकामवरप्रदम् ॥

यएतासुकथाम्पुण्या शृणोतिभुविमानव । पठेद्वाप्रातरुत्थाय तस्यपुण्यफलंशृणु

कपिलागोसहस्रेण फलम्भवतिपर्वणि । तत्फल समवाप्नोति नात्रकार्याविचारणा

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहिताया पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

क्षातासङ्गममाहात्म्य नामसप्तषष्टितमोऽध्याय ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

गयातीर्थमाहात्म्येगयातीर्थप्रशंसनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास!प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ॥ १ ॥

तीर्थानामुत्तमंतीर्थं गयानामेतिनामतः । यत्रस्नात्वानरोनित्यंमुच्यतेचऋणत्रयात्

देवान् पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकं स गच्छति ।

व्यास उवाच

कीकटेषुगयापुण्या नदीपुण्या पुना पुनः(पुनःपुना) ॥ ३ ॥

तीर्थानामुत्तमंतीर्थंपुण्योराजगिरिस्तथा(च्यवनस्याश्रमःपुण्यःपुण्योराजगिरिस्तथा)

सकथंविदितोदेशे महाकालवनेशुभे । एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन! ।

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास!कथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५ ॥

यस्याः श्रवणमात्रेण पितरोयान्तिसद्गतिम् । पुराकृतयुगेपुण्ये युगादिदेवनामतः ॥

राजासीत्सतुधर्मात्मापुण्यश्रवणकीर्तनः । तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवौरसान्

बभूवुःसर्वसम्पन्ना वर्द्धमानाःसमन्ततः । धर्मश्चतुष्पदोनित्यं यस्मिन्राज्ञिप्रशासति

कालेवर्षी च पर्जन्यो ऋतवः स्वाङ्गधारिणः ।

बहुसस्यफला पृथ्वी गावश्च बहुदुग्धदाः ॥ ८ ॥

वेदवादरताविप्राः क्षत्रियाबाहुशालिनः । वैश्याधनपरा नित्यं शूद्राःशुश्रूषणेरताः ॥

वर्णाश्रमरताःसर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः । श्रुतिस्मृतिपरोधर्मोहृष्टपुष्टजनाकरः ॥ ११ ॥

नाधिव्याध्यभिसम्भूता लक्ष्यन्ते केऽपि मानवाः ।

दुःशीला दुर्भगा नार्या विधवा नो तथैवच ॥ १२

बहुपुत्राल्पपुत्राश्च मृतपुत्रानवन्ध्यकाः । रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥

सुमार्गंकरसङ्कीर्णा दस्युदोषविवर्जिता । इयताऽभुज्यताशस्त्रद्वीपताश्च गृहे गृहे ॥
जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापरा । जना सर्वत्र दृश्यन्ते सर्वधर्मपरायणा ॥ १५ ॥
चतुष्पदधरो धर्मो ह्यधर्मे पादविग्रह । एव राजा सधर्मात्मा युगादिदेवसंज्ञित
येनैव पालिता पृथ्वी धर्मेण वर्द्धिता प्रजा । अवन्त्यां च पुराध्यास्य वह्नकोटिसमावह

तस्मिन्कालेऽतिविक्रान्तस्तुहु (ह) ण्डो नामदानव ।
तेन सर्वं वशो नीतं चराचरमिदं जगत् ॥ १८ ॥

घोरं तप्त्वा तप पुण्य ब्रह्मलब्धवर खल । नैवदेवा न यज्ञाश्च वेदमार्गविवर्जिता ॥१९
देवतापूजन नास्ति स्वधास्वाहा न दृश्यते । उत्सन्नो धर्ममार्गोऽयं शास्ताभतो दैत्य दुरात्मव
नरमाया सुरास्तेन हता, सर्वोत्तमोत्तमा । ब्रह्माणं शरणं जग्मु विष्णुं सह साधुभि

किं कुर्म क व गच्छामस्तुहु (ह) ण्डेन पराजिता ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामह ॥ २२ ॥

समुत्थाय ततः सर्वैर्विष्णुलोकं जगाम ह । तत्र गत्वा समाराध्य विष्णुर्देवगणैः सह
स्तुतिपुरःसरैर्विष्णोरतुलतेजस । प्रसन्नस्तु सर्वं ततेऽहमस्कोऽभ्युदयाय च ॥ २४

तदा नदी समुत्पन्ना वैष्णवी या (पापनाशा) सरित्तमा ।
धूतपाप्मा सुश्रेष्ठा भवतां श्रेय उत्तमम् ॥ २१ ॥

पूर्वं पातयित्रीशिवे महाकालवन प्रति । गुह्याद्गुह्यतरं पुण्य पवित्रं पापनाशनम्
लोकत्रयपवित्राया प्रकाशपतिभूतले । सर्वतीर्थमयं तीर्थं कोटितीर्थं परात्परम् ॥ २३
यत्र शिप्रासरिच्छ्रेष्ठा नवकामस्वरा । देव्यास्मनादिनी दिव्या महाकाली तु भैरवी
कोटिकोटिगणाकीर्णा मातृकाभिर्विवर्द्धना । गयापत्रमहापुण्या फल्गुध्येय महानदी
पुरुषोत्तमगिरि श्रेष्ठो यत्र पुरुषपापमृता । तथैव च गयाख्याता त्रिपुरे वै सुविश्रुता
विष्णोर्वाऽपि सर्वदा तीर्थं गङ्गावर्तविनिर्मितम् । सर्वपापहरा पुण्या यत्रार्षीसरस्वती
महापुरन्दरीशोला पञ्चतितक्तिपुण्यदा । न्यग्रोधश्चाशापोऽमित्र पुण्योऽत्र महर्षिणा
तथैव शालिग्रामोक्ता मनमोहनदशुभा । तथैवोपवनं सर्वं देवता विष्णुरूपमा ॥
सर्वोत्तमपोद्भूता सर्वदेवमयोदधि । सर्वतीर्थमयाद्देवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

श्रीपर्वतस्तथा चैव पश्चिमे सिद्धिवर्धनम् । गयाशिरश्चावास्पद पितरो नित्यदेवताः ॥
ते सर्वे स्वर्गमायान्ति प्रसादाय मानवैः ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां षष्ठे नागरखण्डे
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये गयामाहात्म्ये श्राद्धविधिवर्णनं
नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

गयामाहात्म्ये श्राद्धविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

विचित्रमिदमाख्यातं गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
भगवन्! भवता सर्वं विदितं विश्वमूर्तिना ॥ १ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् । दीयमानमिदं श्राद्धं पितृभ्यस्तृप्तिकारकम्
कियन्तः पितरो नित्यं तृप्तिमायान्ति मानवात् । केषां केषां पितरः प्रोक्ताः केन मार्गेण पुत्रक

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्य ते नैष्ठिकी मतिः ।
तथापि श्रूयतां वत्स! श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ॥ ४ ॥

श्राद्धे प्रकल्पिता लोकाः श्राद्धे धर्मः प्रतिष्ठितः ।
श्राद्धे यज्ञा हि तिष्ठन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥ ५ ॥

श्राद्धैर्यद्दीयते किञ्चित्तद्वै पितृप्रतर्पणम् । श्राद्धेन किं विजानीयात्पुत्रप्रोक्तं महर्षिणा
मनुष्यास्तपसः सर्वे सुरसिद्धाश्च मानवाः । गन्धर्वाः किन्नरा नागा यक्षदानवराक्षसाः

त्रींस्त्रीन् पिण्डान् समुद्दिश्य श्राद्धं दत्त्वा समाहिताः ।
प्राप्नुवन्त्यखिलान् कामान् सर्वान् व्यास! मनोगतान् ॥ ८ ॥

एवपरापरञ्चमार्गं प्रवर्त्तन्तेसनातनम् । तथापिपितरोह्येते समाख्यातास्त्वपश्चिमि
तञ्सर्वंसम्प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतंतथाशृणु । यथैतपितरो देवा देवाश्चपितरस्तथा १०
अन्योन्यपितरोह्येते देवाः पितृगणो सह । मार्कण्डेनपुरापृष्टं प्रश्नमेतद्विजोत्तम ॥ ११

निबोधयामि ते व्यास' निखिलं यथमादितः ।

यावन्तस्ते पितृगणास्तस्मिँल्लोके च से गताः ॥ १२ ॥

सनत्कुमार उवाच

सप्तैतेयजतांश्रेष्ठाः सर्वेपितृगणाःस्मृताः । चत्वारोमूर्तिमन्तोवै त्रयस्तेषाममूर्तय
तेषांल्लोकविसर्गंश्चकीर्तयिष्यामितच्छृणु । प्रभावरचमद्दश्चैव पितरस्तेतपोधन ॥
धर्ममूर्तिधरास्तत्रा त्रयोयेपरमागताः । सर्वानामानिलोकांश्चकीर्तयिष्यामितच्छृणु

लोकाः सनातनानाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ।

अमूर्तय पितृणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः ॥ १६ ॥

विराजस्यद्विजश्रेष्ठ वैराजाइतिन श्रुतम् । यजन्तैतान् देवगणा विधिदृष्टेनकर्मणा
एतेवै योगविभ्रष्टा लोकान्प्राप्यसनातनान् । पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्त ब्रह्मवादिनः

ते प्राप्य तां स्मृतिंभूय साङ्ख्ययोगमनुत्तमम् ।

यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाम् १९ ॥

एतेस्तु पितरस्तात योगिनायोगवर्द्धना । आप्याययन्तियेपूर्वं सोमयोगबलेनवै

तस्माच्छ्राद्धानि दीयन्ते योगिना द्विजसत्तमा ।

एत वै प्रथम कल्प सोपानमिति विश्रुतम् ॥ २१ ॥

एतषा मानसी कन्या मेनानाममहागिरेः । पत्नीहिमवतः श्रेष्ठा यस्यामैनाकउच्यते

मैनाकस्य सुत श्रीमान् क्रौञ्चो नाम महागिरिः ।

अग्निष्वात्ता पितृगणास्तत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ॥ २३ ॥

याम्या वह्निवदाभासन् यमाद्याश्चैव पश्चिमाम् ।

सोमपाश्चोत्तरामाशा दिशं धनदपालिताम् ॥ २४ ॥

अमूर्तिमन्तावाकाशे कव्यवाडनलौ क्षितौ ॥ २५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचाश्च यजन्ते भावितात्मनः ।
साध्या देवान्यजन्तिस्म विश्वेदेवा ऋषींस्तथा ॥ २६ ॥
मानवाः श्राद्धदेवं च ऋषयो ब्रह्म सनातनम् । एवं परम्पराप्राप्तः श्राद्धधर्मः सनातनः
देवकार्यात्परं कार्यं पितृकार्यं विशिष्यते । भरद्वाजात्मजाः सप्त श्राद्धधर्मपरायणाः
जातिस्मरत्वमापन्ना निर्वाणपदवीं गताः ।
गुरोश्च दोग्ध्रीं गां हत्वा मन्त्रैर्वै द्विजाधमाः ॥ २६ ॥
पितॄनुद्दिश्य ते सर्वे भक्षयन्तः क्षुधार्दिताः । तेन पुण्यप्रभावेण योगभ्रष्टा दिवंगताः
सप्त जातिस्मरास्ते वै योगयुक्ता बभूविरे ।
तस्माच्छ्राद्धं परं प्रोक्तं सूरिभिः परमात्मभिः ॥ ३१ ॥
श्राद्धे प्रतिष्ठिता लोकाः श्राद्धे योगः परन्तप! ।
एवं ते पितरः प्रोक्ताः श्राद्धस्य च विधिं शृणु ॥ ३२ ॥
ब्रह्मचर्यरतो दान्तो नक्रोधी न चमत्सरी । शौचाचारपरोधीरःशास्त्रदृष्टिर्जितेन्द्रियः
एवं यः कुरुते श्राद्धंतीर्थे चैवविशेषतः । ततोऽधिकतराप्रोक्ता तृप्तिर्व्यास क्षयेऽहनि
वृद्धिश्राद्धे तथा प्रोक्ता महालयेशताधिका । ततो दशगुणाप्रोक्ताप्रयागे द्विजसत्तम
प्रयागाद्दशगुणा तृप्तिः कुरुक्षेत्रे च सत्तम ।
कुरुक्षेत्रात्ततो व्यास दशाधिका गया स्मृता ॥ ३६ ॥
ततो दशाधिका व्यासमहाकालवने शुभे । अवन्त्यामर्चनःपुण्यं गयातीर्थे चसर्वदा
येषां निरयमापन्नाः पितरो जन्मजन्मनि । तेषामुद्धरणार्थाय तीर्थमेतत्सुदुर्लभम्
सकृत्स्मरणमात्रेण पितॄणां दत्तमक्षयम् । ये नरा रणमध्यस्थाः पितृवंशविवर्जिताः
गर्भपाते मृता ये च नामगोत्रच्युतास्तथा । स्वगोत्रे परगोत्रे वा आत्मघातमृताःपरे
तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयताम् । उद्बन्धनमृता येच विषशस्त्रैर्मृताश्चये
दंष्ट्रिभिर्भक्षितो वापि दौर्ब्राह्मण्ये मृताश्च ये । तेषामुद्धरणार्थाय अत्रश्राद्धं विधीयते
अग्निदग्धाश्च ये जीवा नाग्निदग्धास्तथा परे ॥ ४३ ॥
विद्युद्घातेन ये केचित्मुद्गराभिहताः परे । तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयते

तृषार्ताः क्षुधिताश्चैवहापिताश्चैवयेमृताः। प्रेतयोनिं गताश्चैव म्लेच्छयोनिंगताश्चये
तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयते ॥ ५८ ॥
एवं श्राद्धविधिं व्यास! तस्मिंस्तीर्थे समाचरेत्।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो वाञ्छितार्थं लभेत सः।
गयायां च समासाद्य सुरा इन्द्रपुरोगमाः।
चक्रुश्च विधिवत्सर्वे यदुक्तं देवभाषया ॥ ५९ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये गयामाहात्म्ये श्राद्धविधिवर्णनं
नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

गयातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

ततः सुरगणाः सर्वे धूतपापाः समाहिताः। पुनर्योगबलं प्राप्य स्वाधिकारंययुः पुरा
एवं व्यास गयातीर्थं कुमुद्वत्यां सुनिश्चितम्।
गयायां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ २ ॥
तत्तीर्थेषु नरः स्नात्वा तत्तत्तीर्थफलं भवेत्। तथैव च गयाक्षेत्रं गयाश्राद्धफलप्रदम्
फल्गुश्च सरितां श्रेष्ठातथैवफलदायिनी। आदिगयावृद्धगया तथाविष्णुपदीस्मृता
गयाकोष्ठस्तथा प्रोक्तोगदाधरपदानि च। वेदिका षोडशी प्रोक्ता तथैवचाक्षयोवटः
प्रेतमुक्तिकरी नित्यं शिला चोक्ता तथैव च।
अच्छोदा निम्नगा प्रोक्ता पितॄणां चाश्रमोत्तमः ॥ ६ ॥
देवानां दानवानां च यक्षकिन्नररक्षसाम्। पन्नगानां च सर्वेषां तथैवाश्रम उत्तमः

एतत्स्थानेषु सर्वेषु स्नानदानादिकाः क्रियाः ।
श्राद्धं च विधिवत्कृत्वा तत्तत्तीर्थफलं लभेत् ॥ ८ ॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्
एवं व्यास! गयातीर्थं पुरावन्त्यां प्रतिष्ठितम् ।
पश्चात्तु कीकटे जातं यत्रसंनिहितोऽसुरः ॥ १० ॥
तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ गया तत्र प्रतिष्ठिता । गदाधरपदाघातैर्महासुरो निपातित
तत्पदे च महिमानं जनार्दनसमर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । यत्र तत्र करिष्यामि पितृणां दत्तमक्षय
सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धं विधीयते ॥ १३ ॥
सम्वत्सरे परं व्यास! दिनमेकं प्रतिष्ठितम् । कन्यास्थे च दिवानाथे हस्तनक्षत्रसु
महालयेति तत्प्रोक्तं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ १४ ॥
सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धं विधीयते ॥ १५ ॥
सम्वत्सरे परं व्यास दिनमेकं प्रतिष्ठितम् । अन्वष्टकायां कुर्वन्ति मातृणां श्राद्धमुत्तमं
अक्षया जायते तृप्तिः पितॄणां कल्पसङ्ख्यया ।
एवं व्यास! पुरी रम्या स्नानदानादिकर्मसु ॥ १७ ॥
भूयस्तु सम्प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ।
तदङ्कुत्य मयाख्यातं पवित्रं पापनाशनम् ॥ १८ ॥
सप्तर्षीणां च या भार्या ऋषिपत्न्यः पतिव्रताः ।
स्वाहादोषपरिम्लाना दूषिताः पावकेन च ॥ १९ ॥
ऋषिभिश्च परित्यक्ता यमुना च वनादनम् । एवं बहुतिथे काले नारदो देवदर्शन
तासां च प्रियमन्विच्छन्समायातो वनान्तरे ।
ताभिश्च सत्कृतो नित्यं समासीनो धृतव्रतः ॥ २१ ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देशकालोचितं वचः । किमिदं विश्वजातमपतीनापराभवः
कस्माच्च ऋषिभिस्त्यक्ता लोकमातरः पतिव्रताः ॥ २३ ॥

ऋषिपत्न्य ऊचुः

न जानीमो वयंतातयेनदोषेणतापसैः । विमुक्ताः साग्निकैःक्षिप्रं कार्तिकेयप्रसङ्गतः
लोकापवादजं किञ्चिज्जातंदिष्टवशाद्वयम् । किं कुर्मोवाक्वगच्छामःकितपःकाचदेवता
यस्याराधनपुण्येन पतिसान्निध्यमाप्नुयुः । एतन्निश्चित्य भोब्रह्मन्ब्रूहित्वंवेदतत्त्वतः
इति पृष्टस्तदा ताभिर्ऋषिपत्नीभिर्नारदः । उवाच सुचिरंध्यात्वातासांसशर्महेतवे

नारद उवाच

श्रूयतां भोस्तपःश्रेष्ठाभवतीनां च कारणम् । महाकालवने रम्येगयातीर्थमनुत्तमम्
तत्रैव चाक्षयो नाम न्यग्रोधः शाखिनां वरः । तत्रागमनमात्रेण धूतदोषाभविष्यथ
सर्वदोषहरं तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् । सर्वसौख्यकरं पुण्यं तत्र गच्छत माचिरम्

नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिपत्न्यः सुचोदिताः ।
महाकालवने व्यास! इच्छन्त्यः प्रियमात्मनः ॥ ३१ ॥

आजग्मुस्तद्वनं तत्र यत्रतीर्थंगयाभिधम् । तत्रगत्वाशुचीभूयस्नानदानादिकाःक्रियाः

कृतास्ताभिश्च पुण्याभिर्नभस्यस्यासितेतरे ।
पञ्चम्यामृषिसञ्ज्ञायां ताभिः सुचरितं व्रतम् ॥ ३३ ॥

उपोष्य चैकरात्रं तु जागरं चैव योगतः । कृतमात्रे व्रते व्यास धूतपापावभुःक्षणात्
भर्तृकोपपरिभ्रष्टाः सद्यः प्राप्ता गृहाश्रमम् । ऋषिभिःसाग्निकं दत्तं पूर्ववदृषिसत्तम

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्पञ्चमी ऋषिसञ्ज्ञिता ।
ये नराश्चाथ नार्यो यास्तां कुर्वन्ति तु भक्तितः ॥ ३६ ॥
नीवाराहारकं कृत्वा शुचीभूय समाहिताः ॥ ३७ ॥

नतेषांजायतेकिञ्चिदापद्दुःखं कदाचन । दुर्भगत्वंचनारीणां न वियोगश्चमातृभिः

पुत्रतो धनतो वापि कदाचित्सम्भविष्यति ।
एवं व्यास! समाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥ ३९ ॥

अवंत्यामीदृशं तीर्थं वर्तते भुविसत्तम । तादृशं पुण्यदं किञ्चिन्नास्तिब्रह्मांडगोलके

अस्मिंस्तीर्थे नरः कश्चिन्महादानानि चेच्चरेत् ।

अक्षयाणि भवन्त्यस्य विष्णुलोके महीयते ॥ ४१ ॥
यो वै नियमवान्भूत्वा कथामेतां शृणोति वा ।
पठेच्च सततं व्यासाद्धयमेधफलं लभेत् ॥ ४२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये गयातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

पुरुषोत्तम परं तीर्थं त्वयाप्रोक्तं पुरातनं । माहात्म्यं तस्य तीर्थस्य विस्तराद्वदमेप्रभो
एतत्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्व भो द्विजश्रेष्ठ कथां पापहरां पराम् ॥ २ ॥
यस्याः श्रवणमात्रेण महापातकभी भवेत् । पुराकल्पेषु वै ब्रह्मन्वैकुण्ठे विमले शुभे
समासीनो रमानाथो पार्षदैः सनकादिभिः ।
महर्षिभिः सदाचारैः पितामहपुरोगमैः ॥ ४ ॥
ऋद्धिसिद्धिगुणोपेतैस्तथैस्तैर्मुद्दादिभिः ।
गणगन्धर्वसङ्घैश्च सेव्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥
किन्नरोद्गानसन्मार्गैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः । चिंतामणिगृहोद्भारलक्षिताङ्गणभूमिषु
कल्पद्रुमस्तच्छाये आसीने हि सुरद्विषि ।
धर्मवादरताः सर्वे ब्रह्ममार्गसुनिश्चिताः ॥ ७ ॥
तेषां मध्ये परा माया ह्यपृच्छत्कमलापतिम् ॥ ८ ॥

लक्ष्मीरुवाच

पुण्यकानां विधिं नाथ! श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ! वाच्यतां यदि रोचते ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

दानं स्नानं तपः श्राद्धं सदा शस्तं हि शोभने! ।
तथापि विधिना प्राप्तं तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥ १० ॥
देशे काले पर्वणि च तीर्थे चायतनेपदे । दानंस्नानंतपःश्राद्धं मुनिभिःपरिकीर्तितम्
पूर्णमास्याममावास्यांसङ्क्रान्तौग्रहणेतथा । वैधृतौचव्यतीपातेदानवृद्धिःपरास्मृता
गङ्गायां भास्करक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे च पुष्करे । गोदावर्यां गयायांच तीर्थे चामरकण्टके
अवन्त्यां च हुतंदत्तं तत्सर्वं चाक्षयंभवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पर्वे तीर्थं समाचरेत्
कुचैलो दुर्भगो मूर्खो जडो रोग समन्वितः ।
तीर्थपर्वपरिभ्रष्टो नरो भवति निश्चितम् ॥ १५ ॥
के योगाः सुकृतानां च कर्तव्याश्च विशेषतः ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टः प्रिये!प्रश्नःपुण्यकानांत्वयाऽनघे । मलमासेसमायाते ये नरा व्रतवर्जिताः
जन्मजन्मनि दारिद्र्यं तेषां भवति शोभने! ॥ १७ ॥

श्रीरुक्मिण्युवाच

कीदृशो हिमलोमासःकेनयोगेन जायते । कदा काले समायातिपतन्नोवदविस्तरात्

श्रीकृष्ण उवाच

युक्तमुक्तं त्वयादेवि प्रश्नः कालोयमीदृशः । देवतापितृकार्याणिविधिनाहिमलिम्लुचे
क्षौरं मौंजी विवाहश्चव्रतोपवासकंतथा । विशेषेण गृहस्थानां वर्ज्यं मुनिवरोत्तमैः
सम्वत्सरत्रयान्तेच मासोयमधिगच्छति । असंक्रमे रवेरस्मिस्तस्मादधिकमासकः
अधिमासाधिपत्योऽहं सदैव पुरुषोत्तमः । ममाभिधानं तीर्थं च महाकालवने शुभम्
पुरुषोत्तमाख्यं मे धाम सदैवात्र प्रतिष्ठति । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यंहित्वयासह

महाकालवनेऽत्र यत्र तीर्थं ममाभिधम् । प्राणिनो ये समायान्ति मज्जनार्थं प्रिये द्रुतम्
तेषामिह ममादृश्यं न कदापि भविष्यति । धनधान्यकलत्रादि पुत्रसौख्यं सदैव हि

यस्तदङ्क्रान्तेऽपि सम्प्राप्ते मामुद्दिश्य व्रतं चरेत् ।
अधिमासाधिपस्योऽहं सदा वै पुरुषोत्तम ॥ २६ ॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
देवतार्चां च मध्याह्ने ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ २७ ॥

अक्षयं च भवेत्सर्वं तेषां वै कमले ध्रुवम् । मलमासो गतः पुण्यो येषां देवि विमनाग्व
दारिद्र्यं च सदा तेषां शोकरोगादिबन्धनम् । अधिमासे समायाते अपमृत्युभयं भवेत्

तथा ददात्यहं प्राप्त्या स्वामेव च न संशयः ।
स्वल्पं दानमपि कार्यं यत्किञ्चिदिह यत्कृतम् ।
तत्सर्वं मत्प्रसादेन ह्यनन्तं प्रियदर्शने ॥ ३० ॥

श्रीदेव्युवाच

ईदृशो हि त्वया प्रोक्तो ह्यधिमासस्य सुव्रत ॥ ३१ ॥

महिमा ह्यपि लोकेऽस्मिन् सर्वकामप्रदायकः । अधिमासव्रतं पुण्यं कथयस्व प्रसादतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनन्तभाग्योदयनाम प्राप्यते मासके प्रिये । संकल्पकदाचार्यं मासमेकं दिनक्रमात्
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां नवम्यां वा सुरेश्वरि । अष्टम्यां चापि कर्तव्यं व्रतं शोकविनाशनम्

यथालाभोपचारेण मासं चापि मलिम्लुचे ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ ३२ ॥

गृहीत्वा नियमं पश्चाद्गणेशं हृदि स्मरन् । उपवासं च नक्तं च एकभुक्तं च मानिनि

एकस्य त्रितयं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ।
सपत्नीकान्सदाचारान्कुर्यात्स्नानसमन्वितान् ॥ ३३ ॥

ततो मध्याह्नसमये स्वकर्मानुगमनादिकम् । स्थापयेत्कलशे शुभ्रे वेदमन्त्रैर्द्विजातिभिः
पूजयेन्मण्डलं तत्र गोभिर्वि सहितामहम् । गन्धतोयेन संस्थाप्य पञ्चामृतैस्तदैव च

मिष्टान्नैर्नवभिश्चैव नैवेद्यैर्धूपदीपकैः। आच्छादनैश्च वस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा
घण्टामृदङ्गनिह्रादैर्वीणाध्वनिसमन्वितैः। आरार्तिकं व्रती कुर्यात्कर्पूरागरुचन्दनैः॥
अलाभे तूलमुकैश्चापि फलस्यानन्त्यहेतवे। ताम्रपात्रस्थिते तोयेचन्दनाक्षतपुष्पकैः

अर्घ्यं दद्यात्सपत्नीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
पञ्चरत्नैः समायुक्तैर्जानुर्नीकृत्य भूतले॥
समादाय च पाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वितः॥ ४३॥

अर्घ्यमन्त्रः

कृपावन्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारक! । गृहाणार्घ्यमिमं देवसम्पूर्णफलदो भव॥

प्रार्थनामन्त्रः

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे। नमोऽस्तु ते श्रियानन्दब्रह्मानन्द कृपाकर

एवं सम्प्रार्थ्य गोविन्दं पूजयेद् ब्राह्मान्स्वयम्।
सपत्नीकाञ्छुचीन्स्नाताल्लँक्ष्मीनारायणौ स्मरन्॥ ४६॥
पूजयित्वा विधानेन भोजयेद्घृतपायसैः॥ ४७॥
भोजयित्वा विधानेन सपत्नीकं यथोचितम्।
विद्याविनयसम्पन्नं तथा पत्न्या समन्वितम्॥ ४८॥
पूजयित्वा यथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः।
गोस्तन्याम्रकपित्थैश्चखर्जूरैः कदलीफलैः॥ ४९॥

पनसैर्नारिकेलैश्च नारङ्गैर्दाडिमैस्तथा। घृतपक्वान्नगोधूमैः शुभैः सोमालिकैर्वटैः॥
शर्करावृतपूरैश्च कर्णिकैः खण्डमण्डकैः। उर्वारुकर्कटीशाकैः शृङ्गवेरैः समूलकैः॥

अन्यैश्च विविधैः शाकैरात्रैः पक्वैःपृथक् पृथक्।
भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयकन्दकानि विशेषतः॥ ५२॥

सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदु ब्रुवन्। इदं स्वादुरसंभोज्यं भवदर्थेप्रकल्पितम्
याच्यतांरोचतेयच्चयन्मयापाचितंप्रभो।धन्योऽस्म्यनुगृहीतोस्मिकृतंसार्थंचमन्दिरम्
विसर्जयेत्ततो विप्रान्दत्त्वा ताम्बूलदक्षिणाः। चतुर्भिर्मिलितैर्दैर्घितारवलंम्ब्य ...

महाकालवनेऽत्र यत्र तीर्थं ममाभिधम् । प्राणिनो ये समायान्ति मज्जनार्थं प्रिये ध्रुवम्
तेषामिह ममाद्वेयं न कदापि भविष्यति । धनधान्यकलत्रादि पुत्रसौख्यं सदैव हि

यमदूतान्तेऽपि सम्प्राप्ते मामुद्दिश्य व्रतं चरेत् ।
अधिमासाधिपत्योऽहं सदा वै पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
देवतार्चा च मध्याह्ने ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ २७ ॥

अक्षयं च भवेत्सर्वं तेषां वै कमले ध्रुवम् । मलमासो गतः कृष्णो येषां ईदृग्विधमादृतः
दारिद्र्यं वसहानिश्च शोकरोगविवर्धनम् । अधिमासे समायाते भवन्त्यव्रतमाचरेत्

तेषां ददाम्यहं प्रीत्या स्वधामं च न संशयः ।
स्वल्पं दानमल्पं कार्यं यत्किञ्चिदिह यत्कृतम् ।
तत्सर्वं मत्प्रसादेन ह्यनन्तं प्रियदर्शने ॥ ३० ॥

श्रीरुवाच

ईदृशो हि त्वया प्रोक्तो ह्यधिमासस्य सुव्रत ॥ ३१ ॥

महिमा ह्यपि लोकानां सर्वकामप्रदः परः । अधिमासव्रतं पुण्यं कथयस्व प्रसादतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनन्तफलदोपवासान्तश्चाग्न्येमावैर्विधैः। नक्तैकभक्तैर्दानैश्च पंमासमनोहितमाह्निकैः
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां अष्टम्यां वा सुरेश्वरि । अयाच्यां चाप्यवर्तयं प्रशंसाकविनाशनम्

यथाशक्त्योपवासेन मासे चापि मलिम्लुचे ।
पुरुषोत्तमप्रीत्यर्थं कृत्वा पौर्णिमादिकौ प्रियाम् ॥ ३२ ॥

गृहीत्वा नियमं प्रभाते पुरुषं हृदि स्मरन् । उपवासं च नक्तं च एकभुक्तं च भामिनि

एकान्नं नियमं कृत्वा ततो विप्रान् प्रभोजयेत् ।
सपत्नीकान् सदाचारान् पुत्रपौत्रसमन्वितान् ॥ ३३ ॥

ततो मध्याह्नसमये स्वर्णप्रतिमां जनार्दनम् । स्थापयेत्कलशे कुम्भे वेदमन्त्रैर्द्विजातिभिः
पूजयेत्स्नानमम्भोभिर्विधिना सविस्तरम् । गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैर्धूपदीपैश्च

मिष्टान्नैर्नवभिश्चैव नैवेद्यैर्धूपदीपकैः। आच्छादनैश्च वस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा
घण्टामृदङ्गनिह्रादैर्घोषध्वनिसमन्वितैः। आरार्तिकं व्रती कुर्यात्कर्पूरागरुचन्दनैः॥
अलाभे तूल्मुकैश्चापि फलस्यानन्त्यहेतवे। ताम्रपात्रस्थिते तोयेचन्दनाक्षतपुष्पकैः

अर्घ्यं दद्यात्सपत्नीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
पञ्चरत्नैः समायुक्तैर्जानुर्नीकृत्य भूतले॥
समादाय च पाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वितः॥ ४३॥

अर्घ्यमन्त्रः

कृपावन्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारक! । गृहाणार्घ्यमिमं देवसम्पूर्णफलदो भव॥

प्रार्थनामन्त्रः

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे। नमोऽस्तु ते श्रियानन्दब्रह्मानन्द कृपाकर

एवं सम्प्रार्थ्य गोविन्दं पूजयेद् ब्राह्मान्स्वयम्।
सपत्नीकाञ्छुचीन्स्नाताल्लँक्ष्मीनारायणौ स्मरन्॥ ४६॥
पूजयित्वा विधानेन भोजयेद्घृतपायसैः॥ ४७॥
भोजयित्वा विधानेन सपत्नीकं यथोचितम्।
विद्याविनयसम्पन्नं तथा पत्न्या समन्वितम्॥ ४८॥
पूजयित्वा यथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः।
गोस्तन्याम्रकपित्थैश्चखर्जूरैः कदलीफलैः॥ ४९॥

पनसैर्नारिकेलैश्च नारङ्गैर्दाडिमैस्तथा। घृतपक्वान्नगोधूमैः शुभैः सोमालिकैर्वरैः॥
शर्कराघृतपूरैश्च कर्णिकैः खण्डमण्डकैः। उर्वारुकर्कटीशाकैः शृङ्गवेरैः समूलकैः॥

अन्यैश्च विविधैः शाकैराम्रैः पक्वैःपृथक् पृथक्।
भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयकन्दकानि विशेषतः॥ ५२॥

सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदु ब्रुवन्। इदं स्वादुरसंभोज्यं भवदर्थेप्रकल्पितम्
याच्यतांरोचतेयच्चयन्मयापाचितंप्रभो। धन्योऽस्म्यनुगृहीतोस्मिकृतंसार्थंचमन्दिरम्
विसर्जयेत्ततो विप्रान्दत्त्वा ताम्बूलदक्षिणाः। चतुर्भिर्मिलितैर्देवताम्बूलंमम वल्लभम

यो ददाति द्विजश्रेष्ठे स भवे सुभगो नरः । सुभगा च सदाचारा वल्लभा स्वजनेस
पुत्रसौभाग्ययुक्ता च ताम्बूलैर्जायते प्रिये ।
पत्रैस्तु केशवः प्रीत पूगैराश सहोमया ॥ ५७ ॥
चणकेनानल प्रीत खदिरेणतुमन्मथ । चतुर्भिर्विश्वरूपोऽसौ य पुष्णातिजगत्त्रयम्
परितोष्य सपत्नीकान्हस्ते दत्वा च मोदकान् ।
आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीत सह बन्धुभि ॥ ५९ ॥
अलङ्कारान्त व्रतं नारी या करोतीह सुप्रिये ।
दारिद्र्य पुत्रशोक च वैधव्य नाप्नुयात्कचित् ॥ ६० ॥
नरो वा यदि वा नारी य कुर्याच्च मलिम्लुचे ।
स नवसुखभोक्ता च भवेन्नात्र्यत्र संशय ॥ ६१ ॥
मलिम्लुचे प्राप्य न पूजितो यैर्नारायणोऽत्र परयैव भक्त्या ।
कथ भवेयु सुखपुत्रसम्प सुहृत् सुभार्या सुगुणैरुपेता ॥ ६२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे ऽवन्तीखण्डे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये पुरुषोत्तममाहात्म्ये दानादिमाहात्म्यवर्णनं नामैक सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्याय.

अधिमासस्नानदानादिमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अधिमास समासाद्ययोऽन्यत्रस्थितिमान्मन । कतोतिसनरोमूर्खो महाकालवनाद्बहि
अधिमासे नरो स्नात्वा तीर्थे पुरुषोत्तमाभिधे ।
स्नात्वा दत्त्वा च दानानि तेषां लोका सनातनाः ॥ २ ॥

पुरुषोत्तमं समभ्यर्च्य रमालालितपादकम् । तथैवच उमां देवीं शङ्करेण च पूजयेत्
वाञ्छितार्थशतं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ।
भाद्रपदे सिते पक्षे एकादश्यां समाहितः ॥
उपोष्य विधिवद्व्यास! रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ४ ॥
विष्णोश्च पूजनं कार्यं जलयात्रातथैवच । पुरुषोत्तमसरेनित्यं तस्यपुण्यफलंश्रृणु
पुत्रदारधनं सम्यगायुरोग्यसम्पदः । न तेषां दुर्लभंकिञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥
तस्य पूर्वतरे भागे जटेश्वरमहेश्वरः । तिष्ठति तापसस्तीरे यत्र राजा भगीरथः ॥
तपस्तप्त्वा परं लेभे पुण्यं पुण्यवतांवरः । गङ्गां भूतलमानीय सर्वलोकसुखाय वै
तस्य तीर्थे नरः स्नात्वा तिलधेनुं प्रदापयेत् ।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य पुत्रवाञ्जायते नरः ॥ ६ ॥
तस्येशानतरे भागे रामो भार्गवसत्तमः । तपस्तेपे सुधर्मात्मा आत्मकायविशुद्धये
कौशिकी च सरिच्छ्रेष्ठा सर्वतीर्थवरप्रदा ।
तत्र स्नात्वा नरो जातिहत्यादोषविवर्जितः ॥ ११ ॥
रामेश्वरं समालोक्य धूतपापो भवेन्नरः ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये पुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्येऽधिमासस्नानदानादिमाहात्म्यवर्णनंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

गोमतीतीर्थकुण्डमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

गोमतीकुण्डं त्वया प्रोक्तं पुरा ब्रह्मन्सनातनम् ।
कस्मिन्काले कदा जातं तन्मे वद सुविस्तरात् ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वमोमहाप्राज्ञकथापापहरापरम् । गोमतीकुण्डोद्भवापुण्यापुराक्रमेणमान्दितम्
नैमिषे च समासीनास्तपय शौनकादय । कथयन्तिकथापुण्यासर्वतीर्थोद्भवाशुभाम्
तस्मिन्नवसरे पुण्ये काशीमाहात्म्यमुत्तमम् । कथित नारदेनैव पवित्र पापहारकम्
ऊचर पुण्यपापानाधम्यावाराणसीपुरी । प्राप्य लभन्ते मोक्षश्च स्म चण्डालपण्डिता
धसीयदणयोमध्येपञ्चक्रोशी महाफलम् । अमरा मरणमिच्छन्तिकाकथाइतरजना
इति स्मृत्वा तदा व्यासं स्वयम्भू प्रत्यभाषत ।
शृण्वतां सर्वदेवानामृषीणां च परन्तप ॥ ७ ॥
नदी न गोमतीतुल्या कृष्णतुल्या न देवता । सर्वपातालभूमध्ये ■ द्वारकासमापुरी
इतितेनिश्चयमास्थायमुनय शौनकादय । यत्रतत्रस्थिता सर्वे प्रात सन्ध्यामुपासितुम्
तत्रैवगोमतीतीरेचकुस्नेवै धृतव्रता । सान्दीपनोऽपिऽतत्रैवप्रात सन्ध्यांसमाचरत्
एव बहुतिथे काले चरतस्तस्य वै व्रतम् ।
सान्दीपनस्य वै व्यास ह्यवन्तीपुरवासिन ॥ ११ ॥
तस्यैव कामपूर्त्यर्थं विद्यार्थिनौ रामजनार्दनौ ।
समायातौ सुकुमाराङ्गौ सतत ब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥
निवास चक्रतुस्तस्य गुरोर्गेहे परन्तप । तस्य पाठयत सम्यग्विद्यां सर्वश्रुती परम्
दपस्युपसि तत्रैव दृश्यते ■ तदा गुरु । विद्योपदेशकालेऽय क गतो नौ गुरुर्वर

इति पृष्टे तयोरेवं गुरुपत्नी ह्युवाच ह । मद्य [illegible]
तत्रैव याति वै नित्यं गुरुस्ते [illegible] ।
गोमती वै सरिच्छ्रेष्ठा द्वारकायां च [illegible] ॥ १६ ॥
इति श्रुत्वा तदा कृष्णो रामेण सह [illegible] ।
किं कर्तव्यमिहास्माभिरात्मनो हितमुत्तमम् ॥ १७ ॥
गुरोरागमनं काङ्क्षे अत्रैव स्थितिकाङ्क्षया ।
एतस्मिन्नेव काले तु सान्दीपनिरगाद् गृहम् ॥ १८ ॥
तत उत्थाय तौ वीरौ गुरोरावन्दनं ततः । [illegible]
श्रूयतांभोमहायोगिन्नस्माकंवासकारणम् । [illegible]
प्रातःकाले च ते ब्रह्मन्समयो नास्ति नौ प्रभो! ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णस्य च [illegible] ॥ २१ ॥
उवाच भगवान्व्यास! आत्मनो व्रतकारणम् ।
अस्माकं परमं वत्स! व्रतं वै शाश्वतं मतम् ॥ २२ ॥
गोमतीस्नानं कर्तव्यं प्रातःकाले सदा बुधैः ।
तत्रैवोपासनं पुण्यं सन्ध्याया इति निश्चितम् ॥ २३ ॥
इति निश्चित्य युष्माभिर्यद्योग्यं क्रियतां तथा ।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्मायामानुषरूपवान् ॥ २४ ॥
गोमत्याराधनं चक्रे कुशस्थल्यां द्विजोत्तम । यत्र शिवेश्वरो देवो [illegible]
कन्थडेश्वरस्योत्तरेभागेगोमतीसा समागता । पातालतलमावेश्य [illegible]
प्रातरुत्थाय ते सर्वे गोमतीं सरितां वराम् ।
ददृशुः सुचिरापाङ्गीं व्यास! स्वाश्रमगामिनीम् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अत्रैव चागता ब्रह्मन्गोमती सरितांवरा । स्नानदानादिकं सर्वमत्रैव
गोमत्यत्रसमालीनायज्ञकुण्डेसरस्वती । तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिन्गोमती

त्रिसप्ततितमोऽध्याय.

गोमतीतीर्थकुण्डमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

गोमतीकुण्डं त्वया प्रोक्तं पुरा सनत्सनातनम् ।
कस्मिन्काले कदा जातं तन्मे वद सुविस्तरात् ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्वमोमहाप्राज्ञ कथांपापहरांपराम् । गोमतीकुण्डोद्भवापुण्यापुराब्रह्मेणभाषिताम्
नैमिषे च समासीनाश्रुत्वाशौनकादय । कथयन्तिकथापुण्यासर्वतीर्थोद्भवाशुभाम्
तस्मिन्नवसरे पुण्ये काशीमाहात्म्यमुत्तमम् । कथित नारदेनैव पवित्र पापहारकम्
ऊचर पुण्यपापानाधन्यवाराणसीपुरी । यत्र लभन्ते मोक्षञ्च सम चण्डालपण्डिता
असीवरणयोमध्येपञ्चक्रोशी महाफलम् । अमरा मरणमिच्छन्तिकाकथाइतरेजना

इति स्तुत्वा तदा व्यास स्वयम्भू प्रत्यभाषत ।
शृण्वता सपद्मानामृषीणा च परन्तप ॥ ७ ॥

नदी न गोमतीतुल्या कृष्णतुल्यो न देवता । सप्तपातालभूमध्ये न द्वारकासमापुरी
इतितेनिश्चयमाश्रुत्वाश्चर्य शौनकादय । यत्रतत्रस्थिता सर्वे प्रात सन्ध्यामुपासितुम्
तत्रैवगोमतीतीरेचकुर्वन्तैवे धृतव्रता । सान्दीपनोऽपिऽत्रैवप्रात सन्ध्यासमाचरत्

एवं बहुतिथे काले चरतस्तस्य वै व्रतम् ।
सान्दीपनस्य वै व्यास! ह्यवन्तीपुरवासिन ॥ ११ ॥
तस्यैव कामपूर्त्यर्थं विद्यार्थिनौ रामजनार्दनौ ।
समायातौ सुकुमाराङ्गौ सतत ब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥

निवास चक्रतुस्तस्य गुरोर्गेहे परन्तप । तस्य पाठयत सम्यग्विद्या सर्वश्रुती पराम्
तपस्युपसि तत्रैव दृश्यते न तदा गुरु । विद्योपदेशकालेऽद्य क गतो नो गुरुर्वर

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कन्थडेश्वर इति ख्यातं तत्र तीर्थमनुत्तमम् । तत्रतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शुचिः प्रयतमानसः । विमानशतसंयुक्तः शिवलोके महीयते
भुवि पुण्यतमंतीर्थं सर्वपापहरं परम् । खगर्तासङ्गमो यत्र गङ्गेश्वरसमीपतः ॥ ३ ॥
महापापहरं पुण्यं महापुण्यफलप्रदम् । आकाशात्पतिता यत्र गङ्गा त्रैलोक्यपावनी
विधृता शिरसि सद्यो महादेवेन शम्भुना ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गङ्गेशमवलोकयेत ॥ ५ ॥
गङ्गास्नानफलं प्राप्यविष्णुलोकेमहीयते । वीरेश्वरमनुप्राप्य तस्मिंस्तीर्थेनरोवसेत्
सर्वपापविशुद्धात्मा वीरलोकमवाप्नुयात ।
तीर्थमन्यन्महापुण्यं भुवि ख्यातं महर्षिभिः ॥ ७ ॥
वामनकुण्डेतिविख्यातंत्रिपुलोकेषु विश्रुतम । यस्यदर्शनमात्रेणब्रह्महत्यांव्यपोहति
मनोरथशतं प्राप्य पश्चाद्विष्णुपुरं व्रजेत् ।

व्यास उवाच

कदा काले समुत्पन्नं वामनाख्यं पुराऽनघ! ॥ ६ ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर! ।

सनत्कुमार उवाच

शृणुष्व भो द्विजश्रेष्ठ! कथां पापहरां पराम ॥ १० ॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ।दैत्येन्द्रस्तु पुराप्रोक्तो विष्णुभक्तिपरायणः
प्रह्लाद इति विख्यातः सर्वधर्मभृतां वरः । आचारविजितोधर्मः सत्येन विजितात्मा
धैर्येण च धृता लोकाः क्षमया विधृता मही ।

तत्सभायां समासीनो रराज बलिराट् तथा ॥ ३० ॥

मरुद्भिरिव संवीतो वासवो दिवि दैवतैः । एकदा च सभामध्ये नारदो देवदर्शनः
आगतस्तेषु सर्वेषु दानवेषु स्थितेषु च । दृष्ट्वा तमागतं सर्वे ह्युत्तस्थुर्दितिनन्दनाः
ववन्दिरे सर्वशस्तु बलिना किंनरोत्तमम्। सत्कृत्य चासनं दत्त्वा पप्रच्छकुशलंनृपः

कृत्वाऽऽतिथ्यं समासीनो नारदः प्राह सत्तमः ।
मेघगम्भीरया वाचा बलिं प्राहर्षिसत्तमः ॥ ३४ ॥

नारद उवाच

श्रूयतां दितिजश्रेष्ठ गतोऽहं वृषमंदिरे । तत्र देवसभा रम्या दिव्याऽभिप्रायसंयुता
तत्र देवाः सगन्धर्वाः पुरन्दरपुरोगमाः ॥ ३५ ॥

समासीनाः कथांपुण्यांकथयन्तिपरस्परम् । तत्रदैत्यकथांशुभ्रांमयाख्यातांनसेहिरे
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः पुराऽऽसीच्च प्रजापतिः । त्रैलोक्यविजयी नेतायेनेयंवसुधाजिता
सर्वलोकं वशीकृत्य बुभुजे च वसुन्धराम् । अतीवतेजः संपन्नो महाबलपराक्रमः
वशी सर्वत्रगः कामी नृसिंहेन निपातितः ।बलिं कियद्बलं लोके नारदत्वंप्रशंससि
इतिमांधर्षयित्वाचबिडौजा लोकसङ्ग्रही । बहुधा वादयन्वादान्कटुकान्दानवोत्तम
तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठपितृपर्यागतांमहीम् । विजित्यसार्वभौमत्वं लभस्ववसुधाधिप
कियद्बलधृता नूनं देवाश्च दनुजोत्तम! । पलायनपरादान्ताःसदैवरणभीरवः ॥ ४२ ॥
मम वाक्यपरो भूत्वात्रैलोक्याधिपतिर्भव । नारदस्यवचःश्रुत्वा बलिर्वैरोचनिस्तदा
चकार कोपमतुलं त्रैलोक्यविजये द्विज । मंत्रयित्वाऽसुरान्सर्वान्सर्वदैत्यजनेश्वरः
सङ्ग्राममकरोत्तीव्रंवासवेनबलीयसा । जित्वा च सकलान्देवान्वशीचक्रेसवासवान्
सर्वलोकेश्वरो जातोबलिर्वैरोचनोऽसुरः । हृताधिकारास्त्रिदशाभ्रष्टराज्याःपराजिताः
विचरन्ति यथा मर्त्यास्तेन देवगणाभुवि । किञ्चित्कालंसमासाद्यब्रह्माणंशरणंययुः
भो ब्रह्मन्बलिना भ्रष्टा देवलोकात्परन्तप । किं कुर्मःक्वगच्छामः कमुपायं चरामहे

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां भोः सुरश्रेष्ठायुष्माकं साधनंपरम् । यूयं यात पुरींरम्यांपद्मावतीममरोत्तमाः

तत्र तीर्थवरं श्रेष्ठं नाम्ना चोत्तरमानसम् ।
यत्राऽष्टसिद्धिदा ख्याता महासिद्धिप्रदा नृणाम् ॥ ५० ॥
निधयश्च नवैवापि तत्र तिष्ठन्तिमत्तमा । तस्यैव दक्षिणे भागे विष्णुतीर्थमनुत्तमम्
तत्र स्नात्वा नरः पश्येत्सिद्धेश्वरीं सुसिद्धिदाम् ।
ऋद्धिसिद्धिपरो भूत्वा विष्णुलोके महीयते ॥ ५२ ॥
आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां दिवसे तथा ।
अष्टसिद्धिशमीदेशे गणेश्वरं प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥
विजया सर्वलोकेषु जायतेनाऽत्र संशय । शमीमूलस्थितं नित्यमृद्धिसिद्धिवरप्रदम्
पूजयेद्वै नरो नित्यं गणेशं सर्वकामदम् । सर्वकामवरं लब्ध्वा पुत्रपौत्रधनधान्यभवेत्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनं व्रजेत् । यत्रविष्णुसरस्तीर्थं तत्र गच्छतमाचिरम्
उपासनात्सुरश्रेष्ठाविष्णोरतुलतेजस । कुरुध्व सर्वभीतिभ्यस्त्रातातस्मात्सुरोत्तमा
इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मण शंसितात्मन ।
महाकालवने प्राप्ता देवास्ते कार्यसाधका ॥ ५८ ॥
अथाऽऽगत्य शुचीभूय स्नानदानादिकर्मभि ।
उपासाञ्चक्रिरे सिद्धा विष्णुभक्तिपरायणा ॥ ५९ ॥
ब्रह्माणमथ ते सर्वे पप्रच्छुर्विधिमादरात् । उपासनाया देवस्य देवा शक्रपुरोगमा

देवा ऊचु

ब्रह्मन्केनप्रकारेण विष्णुभक्तिं परामवेत् । तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामस्त्वत्तोब्रह्मविदांवर

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां भो सुरश्रेष्ठा विष्णुभक्तिमनुत्तमाम् ।
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ॥ ६२ ॥
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये । लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजय
येषामिन्दीवरश्यामोहृदयस्थो जनार्दन । अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूज्यते य सुरैरपि
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नम । कल्पादौ सृष्टिकामेन प्रेरितोऽदंच शौरिणा

न शक्तो वै प्रजाः कर्तुं विष्णुध्यानपरायणः ।
एतस्मिन्नन्तरे सद्यो मार्कण्डेयो महाऋषिः ॥ ६६ ॥
सर्वसिद्धेश्वरोदान्तोदीर्घायुर्विजितेन्द्रियः ।
मयाद्दृष्टोऽथगत्वातं तदाहं समुपस्थितः ॥
ततः प्रफुल्लनयनौ सत्कृत्य चेतरेतरम् ॥ ६७ ॥
पृच्छमानौ परं स्वास्थ्यं सुखासीनौ सुरोत्तमाः ।
तदा मया स पृष्टो वै मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ ६८ ॥
भगवन्केन प्रकारेण प्रजा मेऽनामया भवेत् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भगवन्मुनिवन्दित! ॥ ६९ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

विष्णुभक्तिः परा नित्या सर्वार्तिदुःखनाशिनी ।
सर्वपापहरा पुण्या सर्वसुखप्रदायिनी ॥ ७० ॥
एषा ब्राह्मी महाविद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
कृतघ्नाय ह्यशिष्याय नास्तिकायानृताय च ॥ ७१ ॥
ईर्ष्यकाय च रूक्षाय कामिकाय कदाचन । तद्व्रतं सर्वं विघ्नन्तियस्तद्धर्मंसनातनम्
एतद्गुह्यतमं शास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् । पवित्रं च पवित्राणां पावनानां च पावनम्
विष्णोर्नामसहस्रं च विष्णुभक्तिकरं शुभम् ।
सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ ७४ ॥
ॐ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः ।
विष्णुर्देवताअनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थे जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानम्

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं करतलधृतशैलं वेणुवाद्ये रसालम् ।
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं तरुणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम् ।
ॐ विश्वं विष्णुर्हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वभावनः ।

सर्वगः शर्वरीनाथो भूतग्रामाऽऽशयाशयः ॥ ७७ ॥
अनादिनिधनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः । सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः
जगद्दाता जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः ।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः ॥ ७८ ॥
सर्वाऽऽकृतिधरः सर्वविश्वरूपी जनार्दनः ।
अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विभुः प्रभुः ॥ ७९ ॥
बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधराहरः । कालाग्निप्रभवो वायुः प्रलयान्तकरोऽक्षयः ॥ ८० ॥
महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ।
सम्भवो विभवो भव्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिलः ॥ ८१ ॥
अनन्तो वासुकिः शेषो वराहो धरणीधरः । पयःक्षारविवेकाढ्यो हंसो हैमगिरिस्थितः
हयग्रीवो विशालाक्षो हयकर्णो हयाकृतिः । मन्थनो रत्नहारी च कूर्मो धरणिधारकः
विनिद्रो निद्रितो नन्दी सुनन्दो नन्दनप्रियः । नाभिनालमृणालश्च स्वयम्भूश्चतुराननः
प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ता प्रभाकरः । मरीचिः कश्यपो दक्षः सुरासुरगुरुः कविः
वामनो वाममार्गी च वामकर्मा बृहद्वपुः । त्रैलोक्यक्रमणो दान्तो बलिपक्षविनाशनः
यज्ञहर्ता यज्ञकर्ता यज्ञेशो यज्ञभुग्विभुः ।
सहस्रांशुर्भगो भानुर्विवस्वान्रविरंशुमान् ॥ ८३ ॥
तिग्मतेजाश्चादित्यजः कर्मसाक्षी मनुर्यमः । देवराजः सुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः
अग्निर्वायुर्मरुद्वह्निर्वरुणो यादसांपतिः । नैर्ऋतो मादनोऽनादी रक्षयक्षो धनाधिपः
कुबेरो वित्तवान्वेगो वसुपालो विलासकृत् । अमृतस्रवणः सोमः सोमपानकरः सुधीः
सर्वौषधिकरः श्रीमान्निशाकरदिवाकरः । विषारिर्विषहर्ता च विषकण्ठधरो गिरिः
नीलकण्ठो वृषी रुद्रो भालचन्द्रो उमापतिः ।
शिवः शान्तो वशी वीरो ध्यानी मानी च मानदः ॥ ९२ ॥
कृमिकीटो मृगव्याधो मृगहा मृगलाञ्छनः ।
बटुको भैरवो बालः कपाली दण्डविग्रहः ॥ ९३ ॥

श्मशानवासी मांसाशी दुष्टनाशी वरान्तकृत् ।
योगिनीत्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानवासनः ॥ ९४ ॥

सेनानीः सेनदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः । आदिदेवो गणपतिर्विघ्नहा विघ्ननाशनः
ऋद्धिसिद्धिप्रदो दन्ती भालचन्द्रो गजाननः । नृसिंह उग्रदंष्ट्रश्च नखी दानवनाशकृत्
प्रह्लादपोषकर्ता च सर्वदैत्यजनेश्वरः । शलभः सागरः साक्षी कल्पद्रुमविकल्पकः
हेमदो हेमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः । भूधरो भूमिदो मेरुः कैलासशिखरो गिरिः

लोकालोकान्तरो लोकी विलोकी भुवनेश्वरः ।
दिक्पालो दिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायो जितेन्द्रियः ॥ ९९ ॥

विरूपो रूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः । हाहा हूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारदः सखा

विश्वेदेवाः साध्यदेवा धृताशीश्च चलोऽचलः ।
कपिलो जल्पको वादी दत्तो हैहय सङ्घराट् ॥ १०१ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः । जामदग्न्यो महावीरः क्षत्रियान्तकरो ऋषिः
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो हरप्रियः । अगस्तिः पुलहो दक्षः पौलस्त्यो रावणो घटः
देवारिस्तापसस्तापी विभीषणहरिप्रियः । तेजस्वी तेजदस्तेजी ईशो राजपतिः प्रभुः
दासरथी राघवो रामो रघुवंशविवर्धनः । सीतापतिः पतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः

सन्नद्धः कवची खड्गी चीरवासा दिगम्बरः ।
किरीटी कुण्डली चापी शङ्खचक्री गदाधरः ॥ १०६ ॥

कौशल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गुहप्रियः ।
सौमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥ १०७ ॥

लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः । हनुमानृक्षराजश्च सुग्रीवो वालिनाशनः
दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतां वरः । वनध्वंसी वनी वेगो वानरध्वजलाङ्गुली
रविदंष्ट्री च लङ्काहा हाहाकारो वरप्रदः । भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतू रमेश्वरः ॥ ११० ॥

जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी ।
पुण्डरीकविशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥ १११ ॥

पञ्चलक्षणस्त्र कामी वामो वामाङ्गवत्सरः ।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः ॥ ११२ ॥
जितवैरी जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
शान्तो दान्तो दयारामो लोकस्थापनधारकः ॥ ११३ ॥
सात्त्विकः सत्त्वसम्पन्नो मन्युहा क्रोधहा खरः ।
चतुराश्रमसर्यातः सर्वराक्षसनाशनः ॥ ११४ ॥
राघवारी रणधुरन्धरसमस्तकण्ठेन्कः । राज्यकारी यज्ञकारी दाता भोक्ता तपोधनः
अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ।
सत्यव्रतो व्रती शूरस्तपी सत्यफलप्रदः ॥ ११६ ॥
सर्वसाक्षी सर्वगश्च सर्वप्राणहरोऽव्ययः ।
प्राणश्चापानश्च व्यानोदानः समानकः (स ' ॥ ११७ ॥
नागः कृकलः कूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जयः । सर्वप्राणविन्नो व्यापी योगधारकधारकः
तत्त्ववित्तत्त्वदस्तत्त्वः सर्वतत्त्वविशारदः ।
ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगवित्तमः ॥ ११९ ॥
ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदो ब्रह्मज्ञानाच्च ब्रह्मानन्दमयः । अध्यात्मविद्विदो दीपो ज्योतिरूपो निरञ्जनः
ज्ञानदोऽज्ञानहा ज्ञाता गुरुः शिष्योपदेशकः ।
सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारदः ॥ १२१ ॥
मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः ।
सन्मन्त्रो मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः १२२ ॥
मारणो मोहनो मोही स्तम्भोच्चाटनकः खलः ।
बहुमायो विमायश्च महामायाविमोहकः ॥ १२३ ॥
मोक्षदो बन्धको बन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः ।
ह्रींकारो बीजरूपी च क्लींकारः कीलकाधिपः ॥ १२४ ॥
सौंकारः शक्तियाच्छक्तिः सर्वशक्तिधरोधरः ।

अकारोकार ओंकारश्छन्दोगायत्रसम्भवः ॥ १२५ ॥

वेदोवेदविदोवेदीवेदाध्यायी सदाशिवः । ऋग्यजुःसामाथर्वेशःसामगानकरोऽकरी
त्रिपदो बहुपादीच शतपथः सर्वतोमुखः । प्राकृतःसंस्कृतोयोगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः

सगुणो विगुणश्छन्दो निःसङ्गो विगुणो गुणी ।
निर्गुणो गुणवान्सङ्गी कर्मा धर्मो च कर्मदः ॥ १२८ ॥
निष्कर्मा कामकामी च निःसङ्गः सङ्गवर्जितः ।
निर्लोभो निरहंकारी निष्किञ्चनजनप्रियः ॥ १२६ ॥

सर्वसङ्गकरो रागी सर्वत्यागी बहिश्चरः । एकपादो द्विपादश्च बहुपादोऽल्पपादकः
द्विपदस्त्रिपदोऽपादी विपादी पदसंग्रहः । खेचरो भूचरो भ्रामी भृङ्गकीटमधुप्रियः
ऋतुः संवत्सरोमासो गणितार्कोह्यहर्निशः । कृतं त्रेता कलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः
दिवाकालकरःकालःकुलधर्मःसनातनः । कलाकाष्ठाकलानाड्योयामःपक्षःसितासितः
युगो युगन्धरोयोग्यो युगधर्मप्रवर्तकः । कुलाचारः कुलकरः कुलदैवकरः कुली ॥

चतुराश्रमचारी च गृहस्थो ह्यतिथिप्रियः ।
वनस्थो वनचारी च वानप्रस्थाश्रमोऽश्रमी ॥ १३५ ॥

बटुकोब्रह्मचारीचशिखासूत्रीकमण्डली । त्रिजटीध्यानवान्ध्यानीबद्रिकाश्रमवासकृत्
हेमाद्रिप्रभवोहैमो हेमराशिर्हिमाकरः । महाप्रस्थानको विप्रो विरागी रागवान्गृही
नरनारायणोऽनागो केदारोदारविग्रहः । गङ्गाद्वारतपःसारस्तपोवनतपोनिधिः ॥
निधिरेव महापद्मः पद्माकरश्रियालयः । पद्मनाभः परीतात्मा परिव्राट्पुरुषोत्तमः ॥
परानन्दः पुराणश्चसम्राड्राज विराजकः । चक्रस्थश्चकपालस्थश्चक्रवर्ती नराधिपः

आयुर्वेदविदो वैद्यो धन्वन्तरिश्च रोगहा ।
औषधीबीजसम्भूतो रोगी रोगविनाशकृत् ॥ १४१ ॥
चेतनश्चेतकोऽचिंत्यश्चित्तचिन्ताविनाशकृत् ।
अतीन्द्रियः सुखस्पर्शश्चरचारी विहङ्गमः ॥ १४२ ॥

गरुडः पक्षिराजश्च चाक्षुषो विनतात्मजः । विष्णुयानविमानस्थो मनोमयतुरंगमः

वसुवृष्टिकरो वर्षी ऐरावणधिरावण । उच्चैःश्रवाऽश्वो गामी हरिदश्वो हरिप्रिय
प्रावृषो मेघमाली च गजरत्नपुरन्दर । वसुदो वसुधारश्च निद्रालु पन्नगाशन ॥१४७
नागशायी जलेशायी व्यास सत्यवतीसुत ।
वेदव्यासकरो वाग्मी वदुशाखाविकल्पक ॥ १४८ ॥
स्मृति पुराणधर्मार्थोपरावरविचक्षण । सहस्रशीर्षो सहस्राक्ष सहस्रवदनोज्ज्वल
सहस्रबाहु सहस्रांशु सहस्रकिरणोनर । बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिराविशिरा शिखी
जटिलो भस्मरागी च दिव्याम्बरधर शुचि ।
अणुरूपो बृहद्रूपो विरूपो विकराकृति ॥ १४९ ॥
समुद्रमापको माथा मधरत्नहरोहरि । वज्रवैडूर्यका वज्रा चिन्तामणिमहामणि
अनिर्मूल्यो महामूल्यो निर्मूल्य सुरभि सुखा ।
पिता माता शिशुर्बन्धुर्धाता त्वष्टार्यमा यम ॥ १५१ ॥
अन्त स्थोबाह्यकाराश्च बहिस्थोवैबहिश्चर । पावन पावकापाकीसर्वभक्षाहुताशन
भगवान्भगहा भागा भवभञ्जो भयङ्कर । कायस्थ कायकारी च कायकर्ता करप्रद
एकधमा द्विधमा च सुखी दूत्योपजीवक ।
बालकस्तारकस्त्राता कालो मूषकभक्षक ॥ १५४ ॥
सञ्जीवनोजीवकर्तासजायोनीवसम्भव । षड्विंशकोमहाविष्णु सर्वव्यापीमहेश्वर
दिव्याङ्गदोमुक्तमाल्यश्रीवत्सोमकरध्वज । श्याममूर्तिर्घनश्याम पीतवासा शुभानन
चारवासा विवासाश्च भूतदानववल्लभ । अमृतोऽमृतभागवौच मोहिनीरूपधारक
दिव्यदृष्टि समदृष्टिर्देवदानववञ्चक । कथन्ध वेनुकारी च स्वर्भानुश्चन्द्रतापन ॥
ग्रहराजो ग्रही ग्राह सर्वग्रहविमोचक ।
दानमानजपो होम सानुकूल शुभग्रह ॥ १५६ ॥
विघ्नकताऽपहताच विघ्ननाशो विनायक । अपकारोपकारी च सर्वसिद्धिफलप्रद
सेवक सामदानी च भेदी दण्डीचमत्सरी । दयावान्दानशीलश्चदानीयज्वाप्रतिग्रही
हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्चानिलो यम ।

होतोद्गाता शुचिः कुण्डःसामगो वैकृतिः सवः ॥ १६२ ॥
द्रव्यंपात्राणिसङ्कल्पो मुशलोह्यरणिःकुशः । दीक्षितोमण्डपोवेदिर्यजमानःपशुः क्रतुः
दक्षिणा स्वस्तिमान्स्वस्ति ह्याशीर्वादः शुभप्रदः ।
आदिवृक्षो महावृक्षो देववृक्षो वनस्पतिः ॥ १६४ ॥
प्रयागो वेणुमान्वेणी न्यग्रोधश्चाऽक्षयो वटः ।
सुतीर्थस्तीर्थकारी च तीर्थराजो व्रती व्रतः ॥ १६५ ॥
वृत्तिदाता पृथःपुत्रोदोग्धागौर्वत्सएव च । क्षीरंक्षीरवहःक्षीरीक्षीरभागविभागवित्
राज्यभागविद्रोभागी सर्वभागविकल्पकः । वाहनो वाहको वेगी पदचारी तपश्चरः
गोपनो गोपको गोपी गोपकन्याविहारकृत् ।
वासुदेवो विशालाक्षः कृष्णोगोपीजनप्रियः ॥ १६८ ॥
देवकीनन्दनो नन्दी नन्दगोपगृहाऽऽश्रमी । यशोदानन्दनो दामी दामोदर उलूखली
पूतनारिः पदाकारी लीलाशकटभञ्जकः । नवनीतप्रियो वाग्मी वत्सपालकबालकः
वत्सरूपधरो वत्सी वत्सहा धेनुकान्तकृत् ।
बकारिर्वनवासी च वनक्रीडाविशारदः ॥ १७१ ॥
कृष्णवर्णाकृतिः कान्तो वेणुवेत्रविधारकः ।
गोपमोक्षकरो मोक्षो यमुनापुलिनेचरः ॥ १७२ ॥
मायावत्सकरो मायी ब्रह्ममायापमोहकः । आत्मसारविहारज्ञो गोपदारकदारकः ॥
गोचारी गोपतिर्गोपो गोवर्धनधरोबली । इन्द्रधुम्नोमखध्वंसीवृष्टिहा गोपरक्षकः
सुरभित्राणकर्ता च दावपानकरः कली ।
कालीयमर्दनः काली यमुनाह्रदविहारकः ॥ १७५ ॥
सङ्कर्षणो बलश्लाघ्यो बलदेवो हलायुधः ।
लाङ्गली मुसली चक्री रामो रोहिणिनन्दनः ॥ १७६ ॥
यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासा हलो हली ।
रेवतीरमणो लोलो बहुमानकरः परः ॥ १७७ ॥

बौद्धारिर्बाधको बाधोजगन्नाथो जगत्पतिः ॥ १९७ ॥
भक्तिर्भागवतोभागी विभक्तोभगवत्प्रियः। त्रिग्रामोऽथनचारण्योगुह्योपनिषदासनः
शालिग्रामःशिलायुक्तोविशालोगंडकाश्रयः। श्रुतदेवः श्रुतःश्रावीश्रुतबोधःश्रुतश्रवाः
कल्किः कालकलः कल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत्।
कुङ्कुमी धवलो धारः क्षमाकरो वृषाकपिः ॥ १९८ ॥
किङ्करः किन्नरः कण्वः केकीकिम्पुरुषाधिपः। एकरोमाविरोमाचबहुरोमावृहत्कविः
वज्रप्रहरणोवज्रीवृत्रघ्नोवासवानुजः। बहुतीर्थकरस्तीर्थःसर्वतीर्थजनेश्वरः ॥ २०० ॥
व्यतीपातोपरागश्च दानवृद्धिकरः शुभः। असंख्येयोऽप्रमेयश्चसंख्याकारोविसंख्यकः
मिहिकोत्तारकस्तारो बालचन्द्रः सुधाकरः।
किस्वर्णः कीदृशः किञ्चित्किस्वभावः किमाश्रयः॥ २०२ ॥
निर्लोकश्च निराकारी बह्वाकारैककारकः। दौहित्रः पुत्रिकः पौत्रो नप्तावंशधरोधरः
द्रवीभूतो दयालुश्च सर्वसिद्धिप्रदो मणिः ॥ २०४ ॥
आधारोऽपि विधारश्च धरासूनुः सुमङ्गलः। मङ्गलो मङ्गलाकारो माङ्गल्यःसर्वमङ्गलः
नाम्नां सहस्रंनामेदं विष्णोरतुलतेजसः। सर्वसिद्धिकरं काम्यंपुण्यंहरिहरात्मकम्
यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः।
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥ २०७ ॥
त्रिसन्ध्यं श्रद्धया युक्तं सर्वपापैः प्रमुच्यते । नन्दते पुत्रपौत्रैश्च दारैर्भृत्यैश्चपूजितः
प्राप्नुते विपुलां लक्ष्मींमुच्यतेसर्वसंकटात्। सर्वान्कामानवाप्नोतिलभतेविपुलंयशः
विद्यावाञ्जायते विप्रः क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यश्च धनलाभाढ्यः शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ २१० ॥
रणेघोरे विवादे च व्यापारे पारतन्त्रके। विजयी जयमाप्नोति सर्वदा सर्वकर्मसु ॥
एकधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा।
पठते हि नरो नित्यं तथैव फलमश्नुते ॥ २१२ ॥
पुत्रार्थी प्राप्नुते पुत्रान्धनार्थीधनमव्ययम्।

मोक्षार्थी प्राप्नुते मोक्षं धर्मार्थी धर्मसञ्चयम् ॥ २१३ ॥
कन्यार्थी प्राप्नुते कन्यां दुर्लभां यत्सुरैरपि ।
ज्ञानार्थी जायते ज्ञानी योगी योगेषु युज्यते ॥ २१४ ॥
महोत्पातेषु घोरेषु दुर्भिक्षे राजविग्रहे । महामारीसमुद्भूत दारिद्र्ये तु सपीडिते
अरण्ये प्रान्तरे वाऽपिदावाग्निपरिवारिते । सिंहव्याघ्राभिभूतेऽपिघनेहस्तिसमाकुले
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्ते दस्युभिः सह सङ्गमे ।
विद्युत्पातेषु घोरेषु स्मर्तव्यं हि सदा नरैः ॥ २१७ ॥
ग्रहपीडासु घोरासु वधबन्धगतावपि । महार्णवे महानद्यां पोतस्थेषु न चापदः
रोगग्रस्तो विषार्णश्च गतश्रेयसकस्तथा । पड्भ्रष्टब्रह्मपदादपि दिव्यकायाभयन्नितं
तुलसीवनसंस्थाने सरोद्वीपे सुरालये । बदरिकाश्रमे शुभे देशे गङ्गाद्वारे तपोवने
मधुवने प्रयागे च द्वारकायां समाहितः । महाकालवनेसिद्धनियता सर्वकामिकाः
ये पठन्ति शतावर्तं भक्तिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
ते सिद्धाः सिद्धिदा लोके विचरन्ति महीतले ॥ २२२ ॥
अन्योन्यभेदभेदानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ।
मोहनं मोहनानां च पवित्रं पापनाशनम् ॥ २२३ ॥
वालग्रहविनाशाय शान्तीकरणमुत्तमम् । दुर्वृत्तानां च पापानां बुद्धिनाशकरं परम्
पतद्गर्भा च वन्ध्या च स्राविणी काकवन्ध्यका ।
अनायासेन सततं पुत्रमेव प्रसूयते ॥ २२५ ॥
यः पुष्कलदायाधोवहुधान्यफला कृषिः । स्वामिधर्मपराभृत्यानारीपतिव्रतामवेत्
अकालमृत्युनाशाय तथादुःस्वप्नदर्शने । शान्तिकर्मणि सर्वत्र स्मर्तव्यं च सदानरैः
यः पठत्यन्वहं मर्त्यः शुचिष्मान्विष्णुसन्निधौ ।
एकाकी च जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ २२८ ॥
गरुडारोहसपन्नः पीतवासाश्चतुर्भुजः ।
वाञ्छितं प्राप्य लोकेऽस्मिन्विष्णुलोके स गच्छति ॥ २२९ ॥

एकतः सकला विद्या एकतःसकलं तपः । एकतःसकलोधर्मोनामविष्णोस्तथैकतः
यो (मां) हि नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति वै द्विजः ।
सोऽय (ऽह) मेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥ २३१ ॥
सहस्राक्षः सहस्रपात्सहस्रवदनोज्ज्वलः । सहस्रनामानन्ताक्षःसहस्रबाहुर्नमोऽस्तुते
विष्णोर्नामसहस्रं वै पुराणं वेदसम्मतम् । पठितव्यं सदा भक्तैः सर्वमङ्गलमङ्गलम्
इति स्तवाभियुक्तानां देवानांतत्र वैद्विज । प्रत्यक्षंप्राह भगवान्वरदो वरदार्चितः

श्रीभगवानुवाच

व्रियतां भोः सुराः! सर्वैर्वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः।
तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥ २३५ ॥

देवा ऊचुः

वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व नः । अदितेर्गर्भसंभूतःशक्रस्याऽप्यनुजोभव
इति संप्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः । तथेत्युक्त्वा च भगवांस्तत्रैचान्तरधीयत
ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः । विष्णुरूपधरोऽनन्तोवामनत्वाच्चवामनः
बलिर्वैरोचनो व्यास वाजिमेधशतेन च । ईजे द्विजवरश्रेष्ठ!इन्द्रराज्यजिहीर्षया ।
ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं भृगुसत्तमम् । ब्रह्मा तत्राभवच्चैवस्वयमेवपितामहः
अध्वर्युर्भगवानत्रिर्बभूव मुनिसत्तमः । उद्गाता नारदश्चैव वसिष्ठश्च सभासदः
ये यत्र विहिताःसर्वेतत्रतत्रमुनीश्वराः । बलिस्तत्राऽभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तम
एवं प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम! । हूयतां भुज्यतां चैव दीयतां धीयतां तथ
इति वाचः शुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम! ।
तस्मिन्काले सुचित्रेषु वामनोऽगाच्छुचिस्मितः ॥ २४४ ॥
पठमानो मुखाग्रेण चातुर्वेदिकमन्त्रकान् । द्वारे तिष्ठति राजेन्द्र वामनो द्विजसत्तम
प्रतिहारेण वै व्यास!सर्वं राज्ञेनिवेदितम् । उत्थाय च महाराजोबलिवरोचनिस्तत
अर्घ्यमादाय तत्सर्वं जगाम स्वैः सभासदैः ।
पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोकभावनम् ॥ २४७ ॥

आनयित्वा सभामध्ये दत्त्वाऽऽसनपरिग्रहम् ।
कुतस्त्वागमनं ब्रह्मन्किन्तेऽभीष्टं ददामि वै ॥ २४८ ॥

वामन उवाच

राजराजाखिला सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । ततोऽहमागतो भूमन्यज्ञं चैव दिदृक्षया वरुणस्य च यज्ञो वै दृष्टो मे वै पुराऽनघ । यज्ञाधिपतिनेन्द्रेण च यज्ञो वै दृष्टवानहम् धर्मस्यापि च यज्ञो मे प्रजापतेश्च सत्तम । वायोर्यज्ञो महाराज दृष्टो मे विधिपूर्वकः राजर्षीणां च ये यज्ञा दृष्टास्तेऽपि महाव्रत । यादृशो वै महाराज यज्ञस्ते दृष्टवानहम् ईदृशो राजराजेन्द्र न भूतो न भविष्यति । तस्मादिहागतो राजन्!याचनार्थं तवाऽनघ

बलिरुवाच

याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ किं तेऽभीष्टं ददाम्यहम् ॥ २५४ ॥

वामन उवाच

देहि मे राजराजेन्द्र पदानि त्रीणि मेदिनीम् ।
पादार्थं रोचते तेऽद्य यदि पार्थिवसत्तम ॥ २५५ ॥

बलिरुवाच

किमिदं याचितं विप्र स्वल्पं ते नहि तेऽपरम् ।
गजवाजिरथा क्षोणी ग्रामाणि विविधानि च ॥ २५६ ॥
दासदासीर्धरारोहा स्त्रियोनानाविभूषिताः । द्रव्याणिवाससीशुभ्रे याचस्वत्वं द्विजोत्तम
पात्रोऽसि त्वमनन्योऽसि वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २५८ ॥

वामन उवाच

न मे किञ्चित्स्पृहा राजन्विद्यते भुवि मानद! ।
देहि त्वं त्रिपदां भूमिं यदि श्रद्धाऽस्ति तेऽधुना ॥ २५९ ॥

इत्युक्ते वामनेनाथ बलिर्वचनमब्रवीत् । गृहाण त्रिपदां भूमिं वासस्यार्थं हि मानद इत्युक्त्वा मनवराजर्षिर्ददौ भूमिं द्विजाय वै । वारितोऽपि न दाव्यासभृगुणा दैवनोदित दत्तमात्रे ततः सद्यो ब्रह्माण्डं वामनमद्भुतं । सार्धंपादद्वयं जाता सशैलवनकानना

वसुधेयं तदा व्यास!बलिना चार्पितं वसु ।
जित्वाऽसुरगणान्सर्वान्राज्यं दत्त्वा शतक्रतोः ॥ २६३ ॥
पश्चात्कुमुद्वतीं प्राप्तो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ २६४ ॥
ऋद्धिसिद्ध्याश्रमे पुण्ये तीर्थं कृत्वाऽऽत्मसंभवम् ।
निवासमकरोद्व्यास तत्रैव स सुरोत्तमः ॥ २६५ ॥
वामनेन कृतं तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते । भाद्रेमासिसितेपक्षेद्वादशी श्रवणान्विता
वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ।
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा ह्युपोष्यैकादशीं यदा ॥ २६७ ॥
रात्रौ जागरणं कुर्याद्ब्रह्मभूयाय कल्पते । द्वादश्यां वै विशेषेण महादानानिकुर्वते
नतेषांदुर्लभं किञ्चित्त्रिदुलोकेषु विद्यते । एवं वै वामनं तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् । प्राप्यंते तेन सर्वं हि नाऽत्र कार्याविचारणा
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये वामनकुण्डमहिमविष्णुसहस्रनाम कथनंनामचतुःसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

कालभैरवतीर्थयात्रावर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वीरेश्वरमथो शृणु ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वीरलोकमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
नागानां प्रवरं तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् । कालभैरवमित्याख्यं तच्च तीर्थंपरंस्मृतम्
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

कस्मिन्काले हि विख्यातं कालभैरवमञ्जितम् ।
तीर्थं मुनिवरश्रेष्ठ एतद्विस्तरतो वद ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच

पुराऽयं भैरवो योगी योगिनीत्रासकारकः ।
कालचक्रहताः कृत्या योगिनीनां गणास्तदा ॥ ५ ॥
तासां कालीति विख्याता योगिनी परमोत्तमा ।
तयाऽयं पालितो नित्यं पुत्रवद् भैरवोऽमरः ॥ ६ ॥
तेनैते च विनिर्धूता रोगोत्पाताश्च सत्तम ।
त्रिविधा भुवि विख्याता सर्वविघ्नकराः पराः ॥ ७ ॥
कालकृत्यास्तदा तेन प्रशिताः परमात्मना ।
महामारी पूतना कृत्या शाकुनी रेवती खरा ॥ ८ ॥

कोटरी तामसी माया नवैता मातृका स्मृता । कुन्दोपमहाकुण्ड सर्वप्राणिभयङ्कर वशीचक्रे स धर्मात्मा सर्वकामवरप्रदः । शिप्रातीरे स्थितो नित्यं कूलेश्वोत्तरतः शुभे ऊर्ध्वरूपं परे पूर्वे सोऽपि तिष्ठति सर्वदा । आषाढस्य सिते पक्षे रविवारे समाहित नवमींवाऽष्टमींप्राप्य चतुर्दश्यां विशेषतः । पूजां कुर्वन्ति ये केचिन्नरा निश्चलमानसाः विवाहे पुत्रजनने माङ्गल्ये च शुभे परम् । पत्रपुष्पार्घगन्धैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ ताम्बूल्याद्यगन्धाद्यैः पूजयेद्वरदरूपिणम् । विप्राणां भोजनैर्होमैस्तर्पयेत्सततं विभुम् एतत्परमकल्याणमेतत्परममङ्गलम् । नत्वा स्तुत्वा च तं देवं सर्वकामार्थसिद्धये ॥

सकलकलुषहारी धूतदुष्टान्तकारी सुचिरचरितचारी मुण्डमौञ्जीप्रचारी ।
करकलितकपाली कुण्डली दण्डपाणि स भवतु सुखकारी भैरवो भावहारी ॥
विविधरासविलासविलासितं नववधूरवधूतपराक्रमम् ।
मदविघूर्णितगोष्पदगोष्पदं भवपदं सततं सततं स्मरे ॥ १७ ॥
अमलकमलनेत्रं चारुचन्द्रावतंसं सकलगुणगरिष्ठं कामिनीकामरूपम् ।

परिहृतपरितापं डाकिनीनाशहेतुं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ १८ ॥
सबलबलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकटिकरालं ह्यट्टहासं विशालम्
करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ १९ ॥
भवभयपरिहारं योगिनीत्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम् ।
मुकुटरुचिरभालं मुक्तमालं विशालं भज जन शिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ २० ॥
चतुर्भुजं शङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं शीलप्रदं शङ्कररक्षणं भजे ॥ २१ ॥
लोकाभिरामं भुवनाभिरामं प्रियाभिरामं यशसाभिरामम् ।
कीर्त्याभिरामं तपसाऽभिरामं तं भूतनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥
आद्यं ब्रह्मसनातनं शुचिपरं सिद्धिप्रदं कामदं
सेव्यं भक्तिसमन्वितं हरिहरैः स्रष्ट्या सहं साधुभिः ।
योग्यं योगविचारितं युगधरं योग्याननं योगिनं
वन्देऽहं सकलं कलङ्करहितं सत्सेवितं भैरवम् ॥ २३ ॥
भैरवाष्टकमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेन्नरः ।
दुःस्वप्ननाशनं तस्य वाञ्छितर्थफलं भवेत् ॥ २४ ॥
राजद्वारे विवादे च सङ्ग्रामे सङ्कटेततथा । राज्ञा क्रुद्धेन चाऽऽज्ञप्ते शत्रुबन्धगतेतथ
दारिद्र्यदुःखनाशाय पठितव्यं समाहितैः ।
न तेषां जायते किञ्चिद् दुर्लभं भुवि वाञ्छितम् ॥ २६ ॥
इति भैरवाष्टकम्
अस्मिन्तीर्थे प्रकर्तव्यं स्नानदानादिकं नरैः । संसारभयभीतैश्च पूजितो भैरवो वर
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं तीर्थमुत्तमम् ॥ २७ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये कालभैरवतीर्थयात्रावर्णनं नाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

तीर्थयात्रायांनागतीर्थमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

नागतीर्थं त्वया ब्रह्मन्पुराप्रोक्तं यशस्विना । तस्यतीर्थवरस्याऽपिमहिमानञ्चसत्तम
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ।
किंपरकाले ममाख्याहिमेनविस्तरतो वद ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामितवाग्रेनागतीर्थजाम् । कथांपुण्यसमांतुभ्यंभुविपापहरांपराम्
यस्याः श्रवणमात्रेण शापमुक्तो भवेन्नर । पुरा नागा परिभ्रष्टा मातुः शापात्परन्तप
जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्तिकेन च ।
पप्रच्छुस्ते द्विजश्रेष्ठ जरत्कारात्मजं तदा ॥ १ ॥

नागा ऊचुः

ब्रह्मंस्तवप्रसादेनमोक्षितामहतोभयात् । जनमेजयस्ययज्ञेऽस्मिन्देवराजस्यसंनिधौ
अस्माकं मूर्तिमिच्छन्वासस्यार्थं परंतप ।
यस्मिन्स्थाने सदा ब्रह्मन्निवासो जायतेऽनघ ॥ ३ ॥

आस्तीक उवाच

श्रूयतामातुलश्रेष्ठा युष्माकंहितमुत्तमम् । महाकालवने रम्ये या वै कुशस्थलीस्मृता
तस्या हि दक्षिणे भागे पूर्वंतीर्थं सनातनम् ।
नागालयं पुरा प्रोक्तं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ ६ ॥
योगनिद्रासमासाद्य शेते ब्रह्म सनातनम् । शेषशायीतिविख्यात सर्वलोकेषुगीयते
कल्पदोषो न तत्रैव बाधते सर्वदेहिनाम् । वक्रदाल्भ्य ऋषिस्तत्र तपस्तेपे धृतव्रत
लोमशश्च महातेजास्तत्रैव प्रतितिष्ठति । दीर्घायुश्च समाप्तोमार्कण्डेयो महामुनि

न वर्तते कालचक्रं महाकालप्रतापतः। कपिलः सिद्धिमापन्नो यत्र तीर्थवरोत्तमे ॥
हरिश्चन्द्रो विमुक्तोऽभूद्दुर्लभचण्डालयोनितः। सप्तर्षिप्रवरा येते निर्वाणपदवीं गताः

एतस्मात्कारणात्सर्वैस्तत्र विश्रम्यतां सदा।
मातुः शापोद्भवो दोषो युष्माकं नैव बाधते ॥ १५ ॥

एतत्तेवचनं श्रुत्वामहर्षेरास्तिकस्यच। आगच्छंस्तत्र ते शीघ्रं वासार्थंपन्नगोत्तमाः
एलापत्रः कम्बलश्च कर्कोटकधनञ्जयौ। वासुकिःपन्नगश्रेष्ठस्तक्षको नील एव च ॥

पद्मकश्चार्बुदश्चैव नागास्ते सर्व एव हि।
अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ॥ १८ ॥

तत्ररम्याणितीर्थानिजातानिपरमाणि च। नवानि चक्रुःकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम
महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणि च। यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः संशितव्रताः

अप्सरोगणसङ्घैश्च सेव्यन्ते च सदा वरैः।
यत्र शेषो महानागः पुरा प्रोक्तो महर्षिणा ॥ २१ ॥

शेषशायी ह्यलं विष्णुर्भगवान्कमलेक्षणः। तत्र सर्वाणितीर्थानितिष्ठन्तिभुविसर्वदा

श्वेतद्वीपेति विख्याता मणिविक्रान्तभूमिका।
यत्र पुण्याश्च वै वृक्षाः पुष्पिताश्चैव सर्वशः ॥ २३ ॥
हंसकारण्डकाकादिपिककोकिलसारसाः।
पद्मखण्डगणास्तत्र नृत्यन्ति च शिखण्डिनः ॥ २४ ॥

निधिरेषमहापद्मो नीलोत्पलसुगन्धिना। वासितो वायुना शुभ्रः किन्नरोद्गारनादितः

यत्र सुसंस्कृता नार्यो विहरन्ति सुराङ्गनाः।
नागकन्याभो रम्याभिर्मण्डितं परमाद्भुतम् ॥ २६ ॥

यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुण्ठंधामशोभनम्। शेषशायी हरिर्यत्र शेते हि च रमापतिः
तत्र रमासरोनाम तीर्थं परमशोभनम्। यत्रस्नात्वानरोनित्यं श्रीमान्भवति नाऽन्यथा
एवं व्यास! परं स्थानं सर्वपापहरं परम्। अत्रैव च परं तीर्थं बलेराश्रमद्भुतम् ॥
अत्रस्नानादिकंकार्यं यत्रसंनिहितोहरिः। सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवति तत्क्षणात्

कियत्प्रमाणमात्रां च ये ददति वसुन्धराम् ।
तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालमुदूष्यया ॥ ३१ ॥
अक्षय्या लभ्यते वृद्धिस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
श्रावणे मासि दर्शे च पञ्चम्यां सोमवासरे ॥ ३२ ॥
नागानां पूजनं कार्यं श्राद्धं दर्शे विधीयते ।
अक्षयं जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थं मनोगतम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये तीर्थयात्रायां नागतीर्थमहिमवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नृसिंहतीर्थमहत्त्ववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयः शृणु परं व्यास तीर्थानामुत्तमं परम् । तत्तीर्थं सर्वपापघ्नं नृसिंहस्य महात्मनः
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापं समुत्तरेत् । दैत्यराजः सम्राल्यातो हिरण्यकशिपुः पुरा
तेनैव वसुधा सर्वा सम्भग्ना च दुरात्मना ।
दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता क्षुधार्दिता ॥ ३ ॥
गौर्भूत्वाऽश्रुमुखाद्येव ह्यागशरणार्थिनी । भाराक्रान्तां धरां दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः
उवाच श्लक्ष्णया वाचा तस्याश्चर्यं व्यपोहितुम् ।
श्रूयतां मोऽवने (*) पुण्ये मयत्या उपकारकम् ॥ ५ ॥
यथो वदामि त तथ्यं दशकालेऽविमतया । पुराऽनेन तपश्चीर्णं दुष्करं सर्वदेहिनाम्
गायत्र्युपासना तत्र कृता सुनियतात्मना । मयाधास्य वरो दत्तः प्रीतियुक्तेन चेतसा

न दिवा न तथा रात्रौ नान्तरिक्षे न भूतले ।
नातिशुष्केण चार्द्रेण न चास्त्रशस्त्रघातनैः ॥ ८ ॥
न देवासुरगन्धर्वैर्न यक्षोरगकिन्नरैः । पिशाचैर्गुह्यकाद्यैश्च राक्षसैर्न कदाचन ॥
मानवैःपक्षिजातैश्च न मे मृत्युर्भवेदिति । एककरतलाघातैः सकुलबलवाहनम् ॥ १०
मारयिष्यतिमांवीरःसमेमृत्युर्भविष्यति । तथेत्युक्त्वाऽतिहृष्टात्मा तमहंचतदाऽवने
आगमंचैव लोकं स्वं स दैत्योघोरशासनः । बभूवसर्वलोकानांशास्ताचातुलविक्रमः
तस्यैवाऽधिकृतालोके बभूवुर्विगतज्वराः । त्रैलोक्यं बुभुजे नित्यं सर्वदैत्यजनेश्वरः
तस्माद्यूयं वनं यात महाकालं महेशितुः । तत्र तीर्थं महच्चासीत्सर्वतीर्थवरोत्तमम्
सङ्गमेश्वरस्य दक्षिणे कर्कराजोत्तरे तथा । शिप्रातीरे शुभे देशे पूर्वं वैकुण्ठसन्निभम्
नृसिंहाख्यं परं धाम तस्य तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठाः! स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ १६ ॥
कुरुत सत्वरं सर्वं पुनर्लोकानवाप्स्यथ । ते तस्य वचनं श्रुत्वा देवाइन्द्रपुरोगमाः
महाकालवनंप्राप्तायत्र शिप्रापयस्विनी । नृसिंहतीर्थोपकूले उषित्वा शाश्वतीःसमाः
स्नानदानादिकं कृत्वा नृसिंहस्याऽर्चनं तथा ।
एवं कृत्वा विधानेन परां सिद्धिमितो गताः ॥ १९ ॥
नृसिंहस्यस्वरूपेण हतोदानवपुङ्गवः । सभामध्ये तदा व्यास हरिणाऽमितवाजिना
करेणैकप्रहारेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः सुरगणाः सर्वे स्वाधिकारान्ययुस्तदा
तदास्य सुराःसर्वे मध्याह्नोपासनं सदा । प्रकुर्वन्ति च तत्रैव यत्र तीर्थे हरिः परम्
एवं तीर्थं परं व्यास! अवन्त्यां विद्यते भुवि ।
अस्मिंस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठ! स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥
ये कुर्वन्ति नराः पुण्यास्ते यान्ति परमां गतिम् ।
सर्वदा सर्वकालेषु पुण्यदं तीर्थमुत्तमम ॥ २४ ॥
कदाचिन्नृसिंहतिथिं प्राप्य चैव चतुर्दशीम् ।
स्नानं कृत्वाऽर्चनं तस्य नृसिंहस्य च धीमतः ॥ २५ ॥

कियत्प्रमाणमात्रा च यै ददाति वसुन्धराम् ।
तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालसुहृत्स्यया ॥ ३१ ॥
अक्षय्या लभ्यते वृद्धिस्तथा लोका सनातना ।
श्रावणे मासि दर्शे च पञ्चम्यां सोमवासरे ॥ ३२ ॥
नागानां पूजनं कार्यं श्राद्धं दर्शे विधीयते ।
अक्षयं जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थं भवेत्सतः ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये तीर्थयात्रायां नागतीर्थमहिमवर्णनं नाम
षट सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नृसिंहतीर्थमहत्त्ववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयः शृणुष्व व्यास तीर्थानामुत्तमं परम् । तत्तीर्थं सर्वपापघ्नं नृसिंहस्यमहात्म
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । दैत्यराजः समाख्यातो हिरण्यकशिपुः पु
तेनैव वसुधा सर्वा सम्प्राप्ता च दुरात्मना ।
सुरदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता क्षुधार्दिता । ३ ।
गौर्भूत्वाऽश्रुमुखीदीनैव त्राणशरणार्थिनी । भाराक्रान्ताधराद्दृष्ट्वा ब्रह्मालोकपितामह
उवाच श्लक्ष्णया वाचा तस्याश्रमं व्यपोहितुम् ।
श्रूयतां भोऽवने (?) पुण्ये मयत्या उपकारकम् ॥ ५ ॥
वचो वदामि ॥ तथ्यं देशकालोचितंतथा । पुराऽनेन तपश्चीर्णं दुष्करं सर्वदेहिना
गाय-युपासना तेन कृता सुनियतात्मना । मयाचास्य वरोदत्तः प्रीतियुक्तेनचेत

न दिवा न तथा रात्रौ नान्तरिक्षे न भूतले ।
नातिशुष्केण चार्द्रेण न चास्त्रशस्त्रघातनैः ॥ ८ ॥
न देवासुरगन्धर्वैर्न यक्षोरगकिन्नरैः । पिशाचैर्गुह्यकाद्यैश्च राक्षसैर्न कदाचन ॥
मानवैःपक्षिजातैश्च न मे मृत्युर्भवेदिति । एककरतलाघातैः सकुलबलवाहनम् ॥ १०
मारयिष्यतिमांवीरःसमेमृत्युर्भविष्यति । तथेत्युक्त्वाऽतिहृष्टात्मा तमहंचतदाऽवने
आगमंचैव लोकं स्वं स दैत्योघोरशासनः । बभूवसर्वलोकानांशास्ताचातुलविक्रमः
तस्यैवाऽधिकृतालोके बभूवुर्विगतज्वराः । त्रैलोक्यं बुभुजे नित्यं सर्वदैत्यजनेश्वरः
तस्माद्यूयं वनं यात महाकालं महेशितुः । तत्र तीर्थं महच्चासीत्सर्वतीर्थवरोत्तमम्
सङ्गमेश्वरस्य दक्षिणे कर्कराजोत्तरे तथा । शिप्रातीरे शुभे देशे पूर्वं वैकुण्ठसन्निभम्
नृसिंहाख्यं परं धाम तस्य तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठाः! स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ १६ ॥
कुरुत सत्वरं सर्वं पुनर्लोकानवाप्स्यथ । ते तस्य वचनं श्रुत्वा देवाइन्द्रपुरोगमाः
महाकालवनंप्राप्तायत्र शिप्रापयस्विनी । नृसिंहतीर्थोपकूले उषित्वा शाश्वतीःसमाः
स्नानदानादिकं कृत्वा नृसिंहस्याऽर्चनं तथा ।
एवं कृत्वा विधानेन परां सिद्धिमितो गताः ॥ १६ ॥
नृसिंहस्यस्वरूपेण हतोदानवपुङ्गवः । सभामध्ये तदा व्यास हरिणाऽमित्रघातिना
करेणैकप्रहारेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः सुरगणाः सर्वे स्वाधिकारान्ययुस्तदा
तदारभ्य सुराःसर्वे मध्याह्नोपासनं सदा । प्रकुर्वन्ति च तत्रैव यत्र तीर्थे हरिः परम्
एवं तीर्थं परं व्यास! अवन्त्यां विद्यते भुवि ।
अस्मिंस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठ! स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥
ये कुर्वन्ति नराः पुण्यास्ते यान्ति परमां गतिम् ।
सर्वदा सर्वकालेषु पुण्यदं तीर्थमुत्तमम् ॥ २४ ॥
कदाचिन्नृसिंहतिथिं प्राप्य चैव चतुर्दशीम् ।
स्नानं कृत्वाऽर्चनं तस्य नृसिंहस्य च धीमतः ॥ २५ ॥

नृसिंहेश्वरदेवेशं पूजयेच्च समाहितः । तस्य हस्तगता लक्ष्मीर्भविष्यति न संशयः

ततोऽगस्त्येश्वरं देवं च पश्येत्सुसमाहितः ।

तस्य ध्यासं क्षितौ किञ्चिद् दुर्लभं नैव दृश्यते ॥ ३० ॥

यत्रसिद्धिं परां प्राप्तो हनुमान्पवनात्मजः । ब्रह्मचारी सदाचारो यतिः सर्वार्थसाधकः

तिष्ठति परदैवत्र सर्वकामार्थसिद्धये । यस्मिन्वटे पुरा तप्तं तपः परमदुश्चरम् ॥ ३१

विश्वापठणपुत्रेण सिद्धिहेतोस्तपस्विना । योऽयं न्यग्रोध इत्याख्योऽगस्तिवटस्तथैव च

नरो नारीसमायुक्तः सावित्रीव्रतमाचरेत् । सौभाग्यं लभते नित्यं सावित्र्याश्च परंतप

यस्मिन्नार्थे नरः स्नात्वा दत्त्वा दानं च सौभगम् ।

अपर्सीमाग्यसम्पूर्णं ध्रुवपात्रं सवासकम् ॥ ३२ ॥

सनधान्यसमोपेतपञ्चरत्नपरिष्कृतम् । सौगन्ध्यादीनि माल्यानि मौलिसूत्रसमायुतम्

सावित्री द्वादशीं कृत्वा यथाशक्ति परंतप ।

यो वै ददाति विप्राय वेदवेदाङ्गधीमते ॥ ३४ ॥

लभते विपुलां लक्ष्मीं बहुभोगकरीं शुभाम् ।

भुक्त्वा वै विविधान्भोगान्पुनः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

सावित्रीलग्नहस्ता जायते पतिवल्लभा ।

पतिव्रता महाभागा विधवा न कदाचन ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये नृसिंहतीर्थमहिमवर्णनं नाम
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यकथनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणुव्यासपरंतीर्थंभुविविख्यातमुत्तमम्। कुटुम्बेश्वरेतिविख्यातो नाम्नाथवमहेश्वरः
तस्यतीर्थवरंतीर्थंसर्वतीर्थफलप्रदम्। यस्मिस्तीर्थेनरःस्नात्वा कुटुम्बीजायतेध्रुवम्
कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दक्षः प्रजापतिः। नारदेन पुरा व्यास पुत्रपष्टिर्विवासिता
प्रजाकामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत्।
सपत्नीको महातेजा निराहारो जितेन्द्रियः॥ ४॥
अस्मिंस्तीर्थे शुचिः स्नातो जपन्ब्रह्म सनातनम्।
वर्षाणामयुतं व्यास! तपस्तेपे सुदारुणम्॥ ५॥
तेन तीर्थप्रसादेन लभेत्स बहुलांप्रजाम्। प्रजापतिरितिख्यातोजातोदक्षःप्रतापवान्
ब्रह्माऽपि तत्र वै पश्चात्तपः कृत्वा सुदुष्करम्।
निष्कलं कमलं रूपं प्राप्तवांस्तत्क्षणाद्विधिः॥ ७॥
महादेवोऽपि तत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणः पदम्। चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यतेऽद्यापिसत्तम
भद्रपीठधरा देवी भद्रकालीति विश्रुता। तत्रैव च सदा व्यास क्रीडतिस्म धृतव्रता
द्वारे तिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः। पादेन खञ्जतांयातः पुरा दैत्यवरार्दितः॥
पुत्रवत्पालितो देव्या सदा तिष्ठति तत्स्थले।
ये ते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रतिष्ठिताः॥ ११॥
ऋषयोऽपि महाभागाः सदा पर्वणिपर्वणि। आयान्ति सैव सन्ध्यार्थंबहुपुत्रप्रदेसरे
अस्मिंस्तीर्थेसदाचाराःस्नानंकुर्वन्ति येनराः। नतेषांदुर्लभं किञ्चिज्जायतेजन्मजन्मनि
महाबाधासु घोरासु महामारीषु तत्परैः। हवनं क्रियते नित्यं सर्षपै राजिकैर्यवैः
पायसैर्विविधैर्भोगैस्तेषां दोषो न जायते। दुर्भिक्षे राज्यभ्रंशे च संग्रामे भृशदारुणे

पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदि समाहितः । सर्वदुःखविनिर्मुक्तो यातितेनाऽत्रसंशयः

स्नात्वा कुटुम्बके तीर्थे पूजयित्वा महेश्वरम् ।

दानं कुष्माण्डकं दद्याद् ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ १७ ॥

सौवर्णमणिमुक्ताभिप्राप्तोऽलङ्कारसंयुतम् । धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बी जायते नरः

फाल्गुनेच सिते पक्षे या वै चतुर्दशी भवेत् ।

त्रयोदशीयुता व्यास शिवरात्रिस्तथोच्यते ॥ १९ ॥

तद्दिने च नरः स्नात्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ।

बिल्वोदकेन गन्धेन बहुपुष्पफलैस्तथा ॥ २० ॥

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वासोऽलङ्कारकादिभिः । पूजयेज्जागरे भक्त्या गिरीशं सगणं परम्

तस्य पापं क्षयं याति शिवलोके महीयते । द्वादशाब्दस्य पुण्यं लभते भुवि मानवः

अश्वमेधफलं लभ्यजागरे च क्षणेक्षणे । ततस्तु प्रातरुत्थाय स्नानदानादिकाः क्रियाः

कृत्वा तु विधिवद्व्यास शिवपूजां तथा ।

विप्रांश्च भोजयेत्तत्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥

कपिलानां सवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।

वाजपेयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अखण्डेश्वरमहिमवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास महापुण्यंतीर्थं परमशोभनम् । देवप्रयागमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
देवानां च परं स्थानं यत्र तीर्थं परंतप । सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्यच दक्षिणे॥
शि(क्षि) प्रायाः पूर्वभागे च तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा पश्येच्चैव सुरोत्तमम् ॥ ३ ॥
देवं माधवमित्याख्यं भुविसर्वफलप्रदम् । ददातितस्यदेवेन्द्रोवान्छितार्थंजगत्पतिः
आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५॥
न तस्य जायते व्यास!यातनाभैरवीकदा । स्वर्गद्वारे सदाव्यासजायतेनिर्भयःपुमान्
ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गरानन्देव्यतीपातेकन्याचन्द्रेवृषेरवौ
दशाला जायते वत्स! गङ्गाजन्म परं शुचि ॥ ७ ॥
तद्दिने च नरः स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ।
अखण्डं च परं तीर्थं शृणु व्यास! ह्यतः परम् ॥ ८ ॥
यस्य श्रवणमात्रेण व्रतभङ्गो न जायते । एक एव पुरा ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः
धर्मशर्मेतिविख्यातः सदाचाररतःशुचिः । बहुव्रतधरो दान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतपूर्तिर्न चाभवत् । एवं बहुतिथे काले नारदो देवदर्शनः ॥
तस्य गेहागतो ब्रह्मन्नातिथ्यार्थं महातपाः ।
तदोत्थाय द्विजो नित्यं बहुमानपुरःसरम् ॥ १२ ॥
सत्कृत्य नारदं भूमन्विधिदृष्टेन कर्मणा । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठः पप्रच्छ मुनिसत्तम
भगवन्भवता सर्वं विदितं ज्ञानचक्षुषा । अस्माकं च परं दोषःकिञ्चिज्जातः पुराऽनघ
येन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोऽभवद्ध्रुवम् । कारणं ब्रूहि मे नाथ किं दोषोऽत्र तु गण्यते

नारद उवाच

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ भवद्भिश्च पुरातनम् ।

महाराष्ट्रे सुविख्यातो ब्राह्मणो धनसञ्ज्ञकः ॥ १६ ॥

प्रमत्तोऽसौ विप्रो वेदब्राह्मणनिन्दकः । धनलोभी पराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः

नास्तिको देवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ।

परस्त्रीषु रतो नित्यं द्यूतवादी च तस्करः ॥ १८ ॥

एवमायुः परिक्षीणो धनहीनोऽभवत्तदा । इतस्ततोऽभ्रमद्भ्रष्टो नदीतीरे सुविह्वलः

गतश्चौर्यप्रसङ्गेन यात्रिकैः सह सङ्गतः ।

किञ्चित्कालेषु तु शीघ्रं मृतिम्प्राप्तो रुजार्दितः ॥ २० ॥

नीतः संयमिनीं विप्रस्तत्काल यमकिङ्करैः ।

यमराजपुरं प्राप्तो बहुपापकरो द्विजः ॥ २१ ॥

दृष्टोऽसौ धर्मराजेन तदा पापपरायणः । निरीक्ष्य सहसोवाच धर्मपूर्वमिदं वचः

शृणुध्वं किङ्कराः सर्वे यूयमेकाग्रमानसाः । अनेनाचरितं सर्वं दुष्कर्मं सर्वं किल्बिषम्

गोदातीरे मृतः पापी तत्र न कारणं नहि ।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च यानि तीर्थान्यहर्निशम् ॥ २४ ॥

आयान्ति गौतमीतीरे सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ।

तैरा वायुसंस्पर्शो जातोऽस्यान्ते (न्त) कलेवरे ॥ २५ ॥

तेन पुण्यप्रभावेण नोऽस्माकं कारणं क्वचित् । ब्राह्मोभवद्भिर्नैवायं मुच्यतां भो पुरा सदा

एव तेषां विरो विर पुनश्च प्राप्तिं गतः । तेन पापप्रसङ्गेन ब्रतभङ्गी गतो भुवि

ब्राह्मण उवाच

अनन्तेन प्रकारेण भवतां भयो भवत् । किं तप किं च दानं च किं तीर्थव्रतसेवनम्

येन पुण्यप्रभावेण व्रतभङ्गो न जायते ॥ २६ ॥

नारद उवाच

शृणु द्विजवर श्रेष्ठ महाकालवनं स्मृतम् ।

यत्र रुद्रसरः प्रोक्तमृषिणा तत्त्वदर्शिना ॥ ३० ॥
कोटिकोटिसुतीर्थानि वर्तन्ते द्विजसत्तम! ।
कोटितीर्थेतिविख्यातं तस्माद्धि द्विज! सनातनम् ॥ ३१ ॥
तत्तीर्थस्योत्तरेभागेसुतीर्थंसर्वकामदम् । नाम्नाऽखण्डसरःख्यातमखण्डेश्वरसन्निधौ
यस्यदर्शनमात्रेणसर्वयज्ञफलं लभेत् । तस्माद्धि सर्वथा वत्सगच्छत्वंतत्रमाचिरम्
इति तस्य वचः श्रुत्वा सद्विजोऽगात्कुमुद्वतीम् ।
स्नात्वाऽखण्डसरे व्यास दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ ३४ ॥
सद्यः पुण्यवतां लोकान्प्राप्तो वै द्विजसत्तमः ।
एवं व्यास! महातीर्थमखण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्येऽखण्डेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

कर्कराजतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

भूयः शृणु परं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् । कीर्तितं ब्रह्मणापूर्वं मार्कण्डेयस्य पृच्छतः
शृणु वत्स महीपृष्ठे शिप्राद्दिव्यतरानदी । तस्यास्तीरेवरं तीर्थंकर्कराजेतिविश्रुतम्
यस्य दर्शनमात्रेण महापापक्षयो भवेत् । विकारा मानसाः सर्वे चन्द्रोमानससम्भवः
तस्य स्थानेगतोभानुर्याम्यायनकरः परः । ऋतुत्रयंसमाख्यातंविधूम्रार्चिस्तदुच्यते
तत्र मृताः प्रवर्तन्ते योगिनोऽपिपरन्तप । चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते ये नरा व्रतवर्जिताः
न तेषां सद्गतिर्वत्स सत्यमेव ब्रवीमि ते ।
चातुर्मास्ये मृता ये च ये मृता दक्षिणायने ॥ ६ ॥

तेषामुद्धरणार्थायतीर्थमेतद्विनिर्मितम् । कर्कराजइतिख्यातंसर्वलोकेषुगीयते ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्भवता सर्वं निर्मितं विश्वमूर्तिना । चराचरमिदं विश्वं जगत्सर्वं जगत्पते ॥
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते धर्माऽऽचारविधिं स्मृतम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदाम्वर ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स परं पुण्यं चातुर्मास्यफलं शुभम् ।
यच्छ्रुत्वा भारते खण्डे नृणां मुक्तिर्न दुर्लभा ॥ १० ॥
मुक्तिप्रदोऽयं भगवान्संसारोत्तारकारणं । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्,
मानुष्यदुर्लभंलोकेनात्राऽपि च दुर्लभता । तत्राऽपिसत्यमित्थंचतत्र सत्सङ्गमःशुभ
सत्सङ्गमो न यत्राऽस्ति विष्णुभक्तिप्रतानि न ।
चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरं शुभं ॥ १३ ॥
चातुर्मास्ये ऽव्रता यस्तु तस्य पुण्यं निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ १४ ॥
विष्णुमाश्रित्य तिष्ठन्ति चातुर्मास्ये समागते ।
स विष्णुराश्रितो नित्यं कर्कराजं सुतीर्थकम् ॥ १५ ॥
सुपुष्टेन च देहेन जीवितं तस्य शोभनम् । चातुर्मास्येसमायातेहरिर्येनाऽर्चितस्तदा
कृतार्थास्तस्य विबुधा यावज्जीवं वरप्रदा । सम्प्राप्यमानुषंदेहं चातुर्मास्येपराङ्मुखः
तस्य पापशतान्याहुर्देहस्थानि न संशयः । मानुष्यं दुर्लभं लोके हरिभक्तिश्चदुर्लभा
चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने । चातुर्मास्ये नरः स्नात्वाकर्कराजेद्विजोत्तम
सर्वत्रतुफलं प्राप्य देववद्दिवि मोदते । विशेषेण तु तत्स्नानंकर्कस्थेऽपिदिवाकरे
दुर्लभं सर्वजन्तूनां ससुरासुरमानुषम् ।
देहशुद्धिं विधायाऽऽदौ मुक्तिमार्गमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥
तत्राऽपि निर्भरकूपेतडागेवाम्भस्यपि । तस्मात्तदधिकपुण्यसमाख्यातसुरासुरे

तेषु यः स्नाति वै नित्यं तस्य पापक्षयो भवेत् ॥ २२ ॥
तस्मान्नद्यधिका पुण्या समाख्याता सुरासुरः ।
पुष्करे च प्रयागे च यत्र क्वाऽपि महाजले ॥ २३ ॥
चातुर्मास्ये तु यः स्नाति पुण्यसङ्ख्या ततोऽधिका ।
रेवायां भास्करे क्षेत्रे प्राच्यां सागरसङ्गमे ॥ २४ ॥
एकाहमपियःस्नातिचातुर्मास्ये न दुःखभाक् । दिनत्रयंचयःस्नातिनर्मदायांसमाहितः
सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रधा । पक्षमेकं तुयःस्नाति गोदावर्यांदिनोदये
स भित्वा कर्मजं देहं याति विष्णोः सलोकताम् ।
अवन्त्यां कर्कराजे तु साक्षाद्विष्णुर्भवेन्नरः ॥ २६ ॥
क्षणमेकं क्षणार्धं वा चातुर्मास्येऽतिलङ्घयेत् ॥ २७ ॥
तिलोदकेनामलसंयुतेन विल्वोदकेनापि च मज्जयेद्यः ।
न तस्य जानामि फलाधिकं वै किन्तस्य कीदृङ्मुनिभिः प्रणीतम् ॥ २८ ॥
गङ्गां स्मरति यो नित्यमुदपानसमीपतः । तद्गाङ्गेयजलं जातं तेन स्नानंसमाचरेत्
गङ्गाऽपि देवदेवस्य चरणाङ्गुष्ठवाहिनी । पापहासासदाप्रोक्ताचातुर्मास्येविशेषतः
चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ।
सर्वतीर्थाऽधिकं स्नानं विष्णुतेजोंऽशसङ्गतम ॥ ३१ ॥
स्नानं दशविधं कार्यं विष्णुनाम्ना महाफलम् ।
सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
विनास्नानंतुयत्कर्मपुण्यकार्यमयंशुभम् । क्रियतेविफलंब्रह्मंस्तद्गृह्णन्तिहिराक्षसाः
स्नानेन सत्यमाप्नोति सत्ये धर्मः सनातनः ।
धर्मान्मोक्षपथं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति ॥ ३४ ॥
ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदान्तपारगाः ।
सर्वदानप्रदाने च तेषां स्नानेन शुध्यन्ति ॥ ३५ ॥
कृतस्नानस्य हि हरिर्देहमाश्रित्य तिष्ठति । सर्वक्रियाफलं येषु सम्पूर्णफलदं भवेत्

सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च । चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम् ॥
निशायां चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणं विना । उष्णोदकेन न स्नायाद्रात्रौ शुद्धिर्न जायते

भानुसंदर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकर्मसु ।
चातुर्मास्ये विशेषेण जलशुद्धिस्तु भाविनी ॥ ३६ ॥

अशक्तस्य तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति । मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र विष्णुपादोदकेन वा
नारायणाग्रत स्नानं क्षेत्रे तीर्थे नदीषु च । विशेषतोऽपि शिप्रायां तीर्थे कर्कामिधे वरे

यत्र स्नाति नरो नित्यं स याति वैष्णवं पदम् ।
तस्मात्त्वं भार्गवश्रेष्ठ तत्र गच्छस्व मा चिरम् ॥ ४२ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति कर्कराजजले सदा ॥ ४३ ॥

कर्कस्थे च दिवानाथे स्नानं कुर्वन्ति ये नरा । न तेषां पुनरावृत्ति कल्पकोटिशतैरपि
चातुर्मास्यं समासाद्य तत्रैव निवसाम्यहम् । नास्ति रेवासमा पुण्या नदी ब्रह्माण्डभूतले
महेशात्मापरो देवो मुक्तिदो न जगद्गताम् । उज्जयिनीसमा नास्ति पुरी कामवरप्रदा
कर्कराजसमं तीर्थं नास्ति वत्स महीतले । यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिभागी भवेन्नरः
एवं व्यास समाख्यात ब्रह्मणा भार्गवाय च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनं व्रज

अन्नमाक्ष चाऽपि तत्रैव स्थान परमशोभनम् ।
चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते यावद्यावत्प्रबोधिनी ॥ ४६ ॥

तावत्काल हि तत्र मुक्तिरेव न संशय । चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते अहातिघोरकलेवरम्
यमलोके चिरं वासो जायते नात्र संशय । यस्मात्तुलसिकाभावे शालिग्रामे सुरालये
आत्मानं हि पणीकृ धनं वस्त्रं नियोजयेत् । यावत्प्रबोधिनी चेति द्वादशी द्विजसत्तम

पश्चाद्धि पुनः सुवर्णेन मोचयित्वा स्वकं नयेत् ।
चातुर्मास्योद्भव दोषं बाधते न च मानवम् ॥ ५३ ॥

यस्य शिप्रोदकेस्नान कर्कराजेऽनुजायते । एष व्यास वरं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम्
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरित सागराश्रये । ते सर्वे च समायान्ति चातुर्मास्ये द्विजोत्तम

तस्माच्च तद्वरं तीर्थं कर्कराज इति स्मृतम् ॥ ५६ ॥
य एतां वै कथां पुण्यां शृण्वन्ति श्रावयन्ति च ।
न तेषां जायते दोषश्चातुर्मास्योद्भवः कदा ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये कर्कराजतीर्थमहिमवर्णनंनामा-शीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

देवतीर्थयात्रामहिमवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

मेरोश्च दक्षिणे भागे दुग्धकुण्डोत्तरे तथा । ऋषभः पर्वतश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः ॥
यत्र देवाङ्गनारम्याः क्रीडन्ति सततं द्विज! । तत्र रम्यसरोनाम तिष्ठते सर्वकामदम्
तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा सुभगो जायते ध्रुवम् ।
देवैश्च क्रीडते नित्यं भुवि विख्यातकः परम् ॥ ३ ॥
भाद्रपदसिताष्टमीमैत्रर्क्षेणसमन्विता । तद्दिनेऽत्र समागम्य स्नानदानादिकाःक्रियाः
करोतिसततं व्यास तेषां लोकाः सनातनाः । मेरोश्चेशानकेतीर्थं दिव्यंपरमशोभनम्
विन्दुसरेतिविख्यातं सर्वकामवरप्रदम् । गङ्गा सरस्वती पुण्या सरयूश्च पयस्विनी
एताःसरिद्वरायातास्तत्रसत्यवतीसुत । येसिद्धा ये च साध्याश्चतपस्विनोधृतव्रताः
उपासाञ्चक्रिरे तत्र तस्य तीर्थस्य सर्वदा ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वार्थान्प्राप्नुते ध्रुवम् ॥ ८ ॥
भाद्रपदे च शुक्ला वै चतुर्थी या प्रकीर्तिता ।
सिद्धा सा सर्वदा प्रोक्ता यत्र जातो गणाधिपः ॥ ६ ॥

ततः कामेश्वरं स्थाप्य सर्वकामफलप्रदम् । तस्य तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गणेश्वरम्

मनोरथशतं प्राप्य कामचारी भवेन्नरः ॥ १० ॥

व्यास उवाच

अस्मिन्क्षेत्रे शुभे ब्रह्मन्महाकालवनोत्तमे ॥ ११ ॥

तीर्थानि कतिसङ्ख्यानि देवतायतनानि च ।

यानि कानि च ख्यातानि तानि मे वद विस्तरात् ॥ १२ ॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम् । अवन्त्यां यानि तीर्थानि लिङ्गानि च महामुने

तानि वर्णयितुं शक्तः स्वयम्भूश्चतुराननः । वर्षाणामयुतैर्बहुभिर्न च वक्तुं कथञ्चन

यावन्तो मेघमालाना बिन्दवो हि पतन्ति च ।

धरित्र्यां तृणसङ्ख्या वै पृथिव्यां सिकतास्तथा ॥ १५ ॥

नभसो ज्योतिषां सङ्ख्या वक्तुं कोऽपि न शक्नुते ।

न हि तीर्थलिङ्गसङ्ख्या सम्यग्वक्तुं तपोधन ॥ १६ ॥

मन्तरिक्षे च भूमौ च दिव्या तीर्थभूता पुरी स्थिरम् । वापीकूपतडागादि प्रस्रवोद्धरणानि च

नद्यः सरांसि जालानि तीर्थभूतं हि सर्वशः । तथापि देवयात्राया प्रसङ्गेन निबोध मे

यानि कानि च मुख्यानि तानि तुभ्यं वदाम्यहम् ।

यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसे नित्यं पूर्वाऽऽचीर्णशुभाशुभे ॥ १९ ॥

प्रातरुत्थाय यो नित्यं शुचिः प्रयतमानसः ।

विष्णुस्मरणसम्पन्नः सर्वकामक्रियान्वितम् ॥ २० ॥

कृत्वा वै सवगन्धादितिलाक्षतसमन्वितं । स्नात्वा रुद्रसरे तात तथैव व्रतमाचरेत्

उज्जमाधवयोश्चैव वैशाखाऽऽषाढयोस्तथा ।

शिवरात्र्यां विशेषेण देवयात्रा प्रशस्यते ॥ २२ ॥

यस्य देवस्य यत्तीर्थं यस्य देवस्य सन्निधौ । तत्राभिषेकं कार्यं वै देवतायाश्च पूजनम्

विधिनाचरेद्यस्तु स सर्वं फलमश्नुते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवयात्रां समाचरेत्

व्यास उवाच

ब्रह्मन्केन प्रकारेण देवयात्रां चरेन्नरः । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन

सनत्कुमार उवाच

शृणु व्यास परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम् । उमामहेश्वरसम्वादं देवयात्रादिकर्मसु

उमोवाच

प्रभावः कथ्यतां देव! क्षेत्रस्याऽस्य महेश्वर! ।
यानि तीर्थानि विद्यन्ते यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥
तान्यादितो मे भूमंस्त्वं वदस्व वदताम्वर ॥ २७ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् ॥ २८ ॥
क्षेत्रमाद्यं महादेवि! ममातीव प्रियं सदा ।
यत्र शिप्रा महापुण्या दिव्या नवनदी प्रिया ॥ २९ ॥
नीलगङ्गा सङ्गमं च तथा गन्धवती नदी ।
चतस्रो मे प्रिया नद्यः कुमुद्वत्यां हि सुव्रते ॥ ३० ॥

ईश्वराश्चतुराशीतिस्तथाऽष्टौसन्तिभैरवाः । एकादशतथारुद्राआदित्याद्वादशस्मृताः

षड्वै विनायकाश्चाऽत्र देव्यश्च चतुर्विंशतिः ।
यऽत्रोहमागतो भद्रे! महाकालवनोत्तमे ॥ ३२ ॥

विष्णुब्रह्मादयः सर्वे ह्यत्रैव निहिताःशुभे । देवैर्व्याप्तमिदं क्षेत्रं देवि योजनमायतम्

दशविष्णुः समाख्यातास्तेषां नामानि मे शृणु ।
वासुदेवो ह्यनन्तश्च बलरामो जनार्दनः ॥ ३४ ॥

नारायणो हृषीकेशो वाराहो धरणीधरः । विष्णुर्वामनरूपेण शेषशायी श्रियालयः

दशैते वैष्णवा प्रोक्ताः सर्वपापहराः पराः ॥ ३६ ॥

उमोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देवानामनुपूर्वतः । महाकालवनेरम्ये ये वसन्ति सुरेश्वराः

विनायका भैरवा देव्यो ये सन्ति पवनात्मज ।
रुद्रादित्यास्तथा चान्ये तेषां नामानि मे वद ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

ऋद्धिः सिद्धिर्गणाध्यक्षो महोत्कटो गणाधिप । विघ्नहर्ता प्रमोदश्च चतुर्थीव्रतकप्रिय
पञ्चैते वै समाख्याता विघ्ननाशकरा परा । उमा चण्डी च गौरी च ऋद्धिसिद्धिप्रदायिनाम्
पद्मपत्रिणी धीरमहालयेताश्चाष्टमानर । महामाया समाख्याता चर्पटमातृका तथा
अम्बिका शीतला चैव पञ्चानना च सिद्धिदा ॥ ४२ ॥
ब्रह्माणी पार्वती चैव योगिनी योगशालिनी । कौमारी भगवती चैव रुद्रसिकान्तथैव च
चर्चिकामातृका ख्याता वटमातरमेव च । सरस्वती तथा ख्याता महालक्ष्मीश्च वै स्मृता
योगिनीमातृका ख्याता चतुःषष्टिस्तत स्मृता ।
कालिका च महाकाली चामुण्डा मन्त्रधारिणी ॥ ४५ ॥
वैष्णवी च समाख्याता वाराही विन्ध्यवासिनी ।
भद्रा भद्रालिका चैव चतुर्विंशतिका परा ॥ ४६ ॥
हनूमान्ब्रह्मचारी च कुमारश्च महाबला । चत्वारो वै समाख्याता मयाते पवनात्मज
दण्डपाणिश्च विभ्रान्तो महाभैरवसिताऽसिता ।
बटुको चान्को नन्दी चतुष्पञ्चाशतिकोऽपर ॥ ४८ ॥
कालभैरवश्च विख्यात क्षेत्रपालस्तथाष्टम । अष्टैव भैरवा ख्याता महापापहरा परा
कपर्दी च कपाली च कलानाथो वृषासन । त्र्यम्बक शूलपाणिश्च वीरपाक्षा दिगम्बर
गिरीश कामचारी च सव सर्वाङ्गभूषण । रुद्राश्चैकादश प्रोक्ता शत्रुपक्षविनाशना
अरुण सूर्यो वेदाङ्गो भानुरिन्द्रो रविरंशुमान ॥ ५१ ॥
सुवर्णरेताऽह कर्ता मित्रो विष्णु सनातन । इत्येते द्वादशाऽऽदित्या सर्वरोगहरा परा
अगस्त्येश्वरमुख्याना लिङ्गानां चतुराशिनाम् । हिमाचलसुते नित्यनामानि गदत शृणु
अगस्त्येश्वर आख्यातो गुहेश्वरस्तत परम ।
दुण्ढेश्वरस्तत प्रोक्तो डमरुकेश्वरश्च भामिनि ॥ ५४ ॥

अनादिकल्पेश्वरः शम्भुः स्वर्णजालेश्वरःपरः । त्रिविष्टपेश्वरोदेवः कपालेश्वरसञ्ज्ञकः
कर्कोटकेश्वरः शम्भुः सिद्धेश्वरस्ततःपरम् । स्वर्गद्वारेश्वरोरुद्रो लोकपालेश्वरोऽपरः
कामेश्वरइतिख्यातःकुटुम्बेश्वरस्ततःपरम् । इन्द्रद्युम्नेश्वरःख्यातः, ईशानेशस्ततःपरम्
अप्सरेश्वरइतिख्यातः कलकलेश्वर एवच । नागचण्डेश्वरो देवो दिवापापहरोऽपरः
प्रतिहारेश्वरश्चैव कुक्कुटेशस्ततः परम् । मेघनादेश्वरः पुण्यो महाकालेश्वरः परः ॥

मुक्तेश्वरः समाख्यातः सोमेश्वरस्ततः परम् ।
अनरकेश्वरो देवो जटेश्वरस्ततः परम् ॥ ६० ॥

रामेश्वरो महादेवश्च्यवनेशस्ततः परम् । अखण्डेशःसमाख्यातः पत्तनेशस्ततःस्मृतः
आनन्देशस्ततःप्रोक्तःकन्थडेशस्ततःपरम् । इन्द्रेश्वरइतिख्यातो मार्कण्डेशस्ततःपरम्
शिवेश्वर इतिप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् । अक्रूरेश इतिख्यातः कुण्डेश्वरस्ततः परम्
लुम्पेश्वरःसमाख्यातोगङ्गेश्वरस्ततपरम् । शूलेश्वरेतिविख्यातःओङ्कारेशस्ततस्मृतः
कण्टकेशो महारुद्रः सिंहेश्वरस्ततःपरम । रेवन्तेश्वरः परो देवो घण्टेश्वरपुरःसरः

प्रयागेश्वरो महादेवः सिद्धेश्वरस्ततः परम् ।
मातंगेश्वरः परो देवः सौभाग्येशस्ततो वरः ॥ ६६ ॥

रूपेश्वरेति विख्यातो ब्रह्मेश्वरस्ततः परम् । जल्पेश्वरस्ततो देवः केदारेश्वर एव च
पिशाचेश्वरशम्भुश्च सङ्गमेशस्ततः परः । दुर्धर्षेशश्च विख्यातश्चण्डादित्येश्वरस्ततः

करभेश्वरः परः प्रोक्तो राजस्थलेश्वरः शिवः ।
वडलेश्वरस्ततः प्रोक्तो ह्यरुणेशस्ततः स्मृतः ॥ ६६ ॥

पुष्पदन्तेश्वरो देवो ह्यविमुक्तेश्वरस्ततः । हनुमन्तेश्वरो देवो विश्वेश्वरस्ततः परम्

स्वप्नेश्वर इति ख्यातः सिद्धेश्वरस्ततः परः ।
नीलकण्ठेश्वरो देवः स्थावरेशस्ततः परम् ॥ ७१ ॥

कामेश्वर इति प्रोक्तः प्रतिहारेश्वरस्ततः । पशुपतीश्वरः प्रोक्तो विश्वेश्वरस्ततः परः

स्वर्णजालेश्वरः प्रोक्तो मनःकामेश्वरस्ततः ॥ ७२ ॥

दुर्वासेश्वरनामासौ नागचण्डेश्वरस्ततः । खर्परेशश्च विख्यातो ब्रह्मेश्वरस्ततः परम्

पातालेश्वर आख्यातो गुप्तेश्वरस्ततः परः । कपिलेश्वर इत्याख्यो योगयोगेश्वरप
भीमेश्वरेति विख्यातो धनुःसहस्रामिधः परः ।
मर्गेश्वरः परः प्रोक्तो दुग्धेश्वरस्ततः परः ॥ ७५ ॥
द्वादशार्कः समाख्यातोऽश्वमेधिकेश्वरः । गङ्गाधरेश्वरः ख्यातो वैजनाथेति शम्भुस
सोमनाथेश्वरः ख्यातो घुश्मेश्वरस्ततः परः ।
भीमशङ्कर इत्याख्यो घण्टेश्वरस्ततः परः ॥ ७७ ॥
ऊर्ध्वेश्वरस्तथा चन्द्रादित्येश्वरः परः । केशवार्कः समाख्यातः शक्तिभेदेश्वरः परः ।
रामेश्वरः परो देवो वाल्मीकेश्वरशङ्करः ।
ज्वालेश्वरः शिवः प्रोक्तो ह्यभयेशस्ततः परः ॥ ७९ ॥
विघ्नहस्तेश्वरः प्रोक्तश्चलेशस्ततः परः ।
पुरुषोत्तमेति विख्यातो धीरेश्वरस्ततः परः ॥ ८० ॥
कर्णेश्वरश्च विख्यातः पृथुकेशस्ततः परम् । आनन्देशश्च विख्यातः कोटेश्वरस्तथापरः
अविमुक्तेश्वरः प्रोक्तो हनुमत्केश्वरः परः । विमलेश्वरेति विख्यातश्चन्द्रेश्वरस्ततः पर
बिन्दुकेशश्च विख्यातो वालुकेश्वरसञ्ज्ञकः । बृहस्पतीश्वरो देवो ह्यनङ्गख्यातेश्वरस्तत
यानि कानि च तीर्थानि तानि लिङ्गानि सत्तम ।
तिष्ठन्ति तत्र पुण्यानि तानि वन्द्यानि सर्वशः ॥ ८४ ॥
चत्वारो विदिता सर्वे द्वारपाला महात्मभिः ।
पिङ्गलेश्वरेति च ख्यातः पूर्वद्वारे द्विजोत्तम ॥ ८५ ॥
दक्षिणे चैव द्वारे कायावरोहणेश्वरः । बिल्वकेश्वर निविख्यातः पश्चिमद्वारमाश्रितः
दुर्दुरेश्वरस्ततः प्रोक्तो द्वारे चोत्तरसञ्ज्ञके ।
एवं चाऽन्ये च बहवो लिङ्गास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ८७ ॥
महाकालवने रम्ये समाख्याता हि पावना ।
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ ८८ ॥
महाकालवने व्यास लिङ्गसङ्ख्यानविद्यते । तथाऽपिच प्राधान्येन मयाऽत्र परिकीर्तिता

यस्य देवस्य यत्तीर्थं तन्नाम्ना परिकीर्तितम् ।
स्नात्वा दत्वाच तद्दानं तत्तीर्थस्य फलं लभेत् ॥ ९० ॥
तथा नवग्रहाः पुण्याः समाख्याताः पुराऽनघ! ।
तेषां नामानि पुण्यानि तीर्थानि च तथा शृणु ॥ ९१ ॥
नरादित्यइति ख्यातः सोमेश्वरस्ततः परः ।
मङ्गलेश्वरः समाख्यातो बुधेश्वरस्ततः परम् ९२ ॥
बृहस्पतीश्वरःप्रोक्तस्तथाशुक्रेश्वरःशिवः । स्थावरेश्वरोमहादेवःसमाख्यातोमुनीश्वरैः
राहुकेतू समाख्यातौतेषां तीर्थानि सत्तम । तत्तीर्थेपुनरः स्नात्वासर्वपापैःप्रमुच्यते
ग्रहा राज्यंप्रयच्छन्तिग्रहा राज्यंहरन्ति च । ग्रहैस्तुव्यापितंसर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम्
ग्रहतीर्थे नरः स्नात्वा ग्रहाणामर्चनं चरेत् । नतस्य ग्रहपीडा वै बाधते हि कदाचन
एवं व्यास! समाख्याता मया देवाश्च तीर्थकाः ।
यात्रा पुण्यतरा श्रेष्ठा पवित्रा पापनाशिनी ॥ ९७
ग्रहपीडासु चोग्रासु दारिद्र्ये घोरसङ्कटे । तेषामुद्धरणार्थाय देवयात्रा प्रकीर्तिता ॥
क्षेत्रस्यान्तर्गृहीं नित्यं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९९ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रंनिर्धनोधनमाप्नुयात् । विद्यावाञ्जायते विप्रःक्षत्रियोविजयीभवेत्
अक्षया सन्ततिस्तस्य शिवलोके महीयते ॥ १०१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये देवयात्रान्तर्गृहीसर्वतीर्थयात्राऽनुक्रमणिकादिकथनं
नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

———

द्व्यशीतितमोऽध्याय

अवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

भगवन् भवता सर्वं कथितं देवमूर्तिना । अवन्तीतीर्थमाहात्म्यं पवित्रं वेदसम्मितम्

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ।

महाकालवने रम्ये अवन्त्यां भुवि सत्तम ।

तीर्थानि कति सङ्ख्यानि विद्यन्ते ह्यत्र सुव्रत ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥

उमामहेश्वरसंवादं नारदस्य च धीमतः । नारदेन पुरा पृष्टं प्रसन्नेन द्विजोत्तम

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि महाकालवने शुभे ।

तीर्थानि यानि सन्ति तानि मे वद विस्तरात् ॥ ६ ॥

इति पृष्टस्तदा विप्र नारदेन पुराऽनघ । उवाच श्लक्ष्णया वाचा उमया सहितो हरः

श्रीमहादेव उवाच

शृणुष्व मां प्रविश्य महाकालवने शुभे । तीर्थानि यानि तिष्ठन्ति तानि वदामि सुव्रत

पुष्करादीनि तीर्थानि यानि कानि महीतले ।

तानि सर्वाणि वर्तन्ते महाकालवनोत्तमे ॥ ८ ॥

अनङ्गस्थानमहात्म्यानि कोटिकोटिगानि सत्तम । रुद्रसरसि मज्जन्ति कोटितीर्थं तथोच्यते

नाहारकर्णिकाख्येऽपि गिरौ वसन्ति किन्नराः । हेमन्त चर दृश्यन्ते तार्क्ष्यैः शापमोचने

न हि सङ्ख्या विज्ञानामि तीर्थानां भुवि सत्तम ।

कियन्ति सन्ति तीर्थानि लिङ्गानि च तथैव च ॥ ११ ॥

तथाऽपि च प्राधान्येन कथयिष्यामि सत्तम! ।
सम्वत्सरस्य यावन्ति अहानि च-द्विजोत्तम! ॥ १२ ॥
तावन्ति प्रापणीयानि प्रसिद्धानिपरन्तप । वत्सरेपरिपूर्णे च जायतेऽवन्तियात्रिका
विधिवत्कुरुते यस्तुसाक्षाच्छम्भुर्भवेच्चसः । मन्वन्तरसहस्रेषुकाशीवासेचयत्फलम्
तत्फलं जायतेऽवन्त्यां वैशाखेपञ्चभिर्दिनैः । अवन्तीयात्राकर्तव्याप्रयत्नेन मुमुक्षुणा
माधवेऽपि विशेषेण ह्यवन्तीस्नानमाचरेत् ।
यो हि वैशाखमासाद्य अवन्त्यां व्यास! मानवः ॥ १६ ॥
सम्वत्सरव्रती स्नातस्तीर्थेतीर्थे यथाविधि ।
दत्त्वा दानानि सर्वाणि समूलं (सकलं) फलमश्नुते ॥ १७ ॥
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाञ्छिवलोके महीयते ॥ १८ ॥
त्यत्र कुत्रापि यो नित्यं नरोनिश्चलमानसः ॥
शृणोत्येकमनाः पुण्यां पूजयित्वा च वाचकम् ।
सत्कृत्य विधिवद्दत्त वासोऽलङ्कारभूषणैः ॥ १६ ॥
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण च । न तस्यदुर्लभं किञ्चिद्विद्यतेभुविसत्तम ॥
एवं व्यास! पुराशम्भुर्नारदाय सुधीमते । उवाच परमाख्यानमवन्तीव्रतमुत्तमम् ॥
तेन प्रख्यापितं पुण्यं सर्वलोकेषुनत्तम । एतत्ते सर्वमाख्यातं मयासत्यवतीसुत ॥
अवन्तीतीर्थयात्रायाः कथाख्यानंसनातनम् । भूयःकिंश्रोतुमिच्छासेवर्ततेद्विजसत्तम
माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धनं यशस्करं पुण्यविवर्द्धनं च ।
यः श्रावयेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या कुलं समुद्धृत्य हरेः पदं व्रजेत् ॥ १६ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्ये व्याससनत्कुमारसम्वादे ऽवन्तीक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं
नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अवन्तीमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोमहाविद्याधर । अवन्त्याश्चपरपुण्यं महिमानश्रुतमया
त्वया महाविदा प्रोक्त वत्सरवनपारणम् ।
तीर्थन्यास्य सुविस्ताराल्स्नातकानां द्विजोत्तमं ॥ २ ॥
अचिरेणतुकालेन तीर्थस्यफलमश्नुते । सिद्धोभूत्वा नरोयाति तद्वदस्यद्विजोत्तम ॥

सनत्कुमार उवाच

गुह्याद्गुह्यतर वत्स पृच्छसित्वममानघ । तत्तेहसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वत्व समाहित
महाकालमनोगच्छेम्रियतोनियतात्मना । कोटितीर्थेनरस्स्नात्वा पुनर्जन्मनविद्यते
नास्तिवत्समहीपृष्ठेक्षिप्राया.सदृशीनदी । यस्यानिरीक्षणान्मुक्ति किञ्चिरत्सेवनेमये
माघेमासियोदेव पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । मोचनेमुच्यतेनित्यं तपणादेकवासरात् ॥
अवन्त्यामङ्कपाताख्य ये पश्यन्ति जनार्दनम् ।
न तेषा पुनरावृत्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥
इतिव्यासवचस्नर्वेवदन्तिनियतात्मन । वाराहमत्स्यकल्पाद्या लोमशश्चमहामुनि·
विधिस्तथापितीर्थस्यशृणुपुण्यसमम्पुन । यौर्वस्यल्पेनपुण्येनतीर्थस्यफलमिच्छति
तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिशृणुष्वेद तपोधन । सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचि प्रयतमानस
अवगाहनतीर्थानि तीर्थानिचाष्टविंशति । ऊर्जेमाघेतथाषाढे वैशाखेचविशेषत ॥
यदाकदापुरीं प्राप्य कर्तव्यतीर्थमज्जनम् । सर्वतीर्थफल प्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥

सनत्कुमार उवाच

क्षिप्रातीरेहिवर्तन्तेपुराख्यातानिसूरिमि । पुण्यानितार्थमुख्यानितानिमेगदत शृणु
पापार्दित शुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन् ।

आदाय नियमं सर्वं स्नातकानाञ्च सत्तम! ॥ १५ ॥
स्नात्वा रुद्रसरे नित्यं कृत्वा श्राद्धादिकं तथा ।
यथाशक्ति परां वत्स! गां दत्त्वा चैव काञ्चनीम् ॥ १६ ॥

तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थावगाहने । अनुज्ञांदेहिमेनित्यं करिष्यामितवार्चनम्

इति प्रार्थनामन्त्रः

ततः प्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिधं सरः । तत्र स्नानादिकं कृत्वा घृतपात्रंप्रदापयेत्
नृसिंहाख्यंपरंतीर्थं तत्रस्नायाद्द्विजोत्तम! । कृष्णाजिनंततोदद्यादात्मकार्यविशुद्धये
सङ्गमो नीलगङ्गायाःक्षिप्रायाश्चैवसत्तम । तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वाद्दृष्ट्वाचसङ्गमेश्वरम्

वाहनञ्च ततो देयं द्विजातिभ्यःस्वलङ्कृतम् ।
भूषणानि च देयानि यानानि विविधानि च ॥ २१ ॥
ततः प्रायाद् व्रती सम्यक् तीर्थं पैशाच्यमोचनम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिवदाह्निकादि च कारयेत् ॥ २२ ॥

गांसवत्सां ततो दद्याद्वेदवेदाङ्गपारिणे । सीदत्कुटुम्बिने नित्यं द्विजाय मुनिसत्तम
महादानानिसर्वाणि तत्रदेयानिसत्तम । पिशाचेशं ततो दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

गन्धर्वतीर्थं गच्छेच्च नियमी व्रतकारकः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा श्राद्ध कुर्यात्समाहितः ॥ २५ ॥

पशुजलपेश्वरंदेवं पूजयेद्विधिवद्विज । ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्गेहदानादिकं परम् ॥
दासीदासंततोदेयं सर्वकार्यार्थसिद्धये । धनवान्पुत्रवाँल्लोके मृतो मोक्षमवाप्नुयात्
ततो गच्छेद्व्रतीविप्रकेदारं तीर्थमुत्तमम् । तत्रस्नात्वामहादानंब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत्
शुभंगोमिथुनं दत्त्वा विधिवत्तत्रकारयेत् । कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम॥
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोके महीयते । चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत्
शङ्खशस्त्रविमानानि तत्रदेयानि सत्तम । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते

सोमतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ।
निर्मलाङ्गोनरो भाति कुष्ठरोगो न बाधते ॥ ३२ ॥

इक्षुधेन्वाग्निकदानं तत्रदेयं द्विजातये। देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ॥३
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवमाधवमर्चयेत्। गुडधेनुं प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा
सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोके महीयते। प्रयागे परमं व्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम्
तत्र स्नानञ्चकरव्यं तिलामलकसंयुतम्। प्रयागेशमथाभ्यर्च्य सकलं फलमश्नुते
तिलधेनुं प्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे। सर्वकामवरप्राप्य विष्णुलोके समोदते

ततो गच्छेद् व्रती भूयो योगतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥ ३८ ॥

जलधेनुं ततो दद्याद्यायुष्यं सुखमिच्छन्। कपिलाश्रमपरतीर्थंमरोगच्छेत्तत परम्

स्नानदानादिकं कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोके स गच्छति ॥ ४० ॥

घृतकुल्यापरंतीर्थं क्षिप्राकूलेच पश्चिमे। तत्र स्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्वरंशिवम्
पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुं समर्पयेत्। प्राप्यपुण्यकृतांल्लोकान् सर्वपापैः प्रमुच्यते
मधुकुल्यानरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्। मधुदानं प्रकुर्वीत इक्षुधेनुं ततः परम्
ऊषरं परमं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम्। तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ॥

फलमूलादिकं देयं प्राप्यते मोक्ष उत्तमं।
नरादित्यः स्थितो यत्र तत्र तीर्थं परं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

तत्र स्नात्वा नरः पश्येत् क्षेत्रादित्येश्वरंपरम्। स्वर्णदानंततोदत्त्वा नरलोकेसगच्छति
केशार्कोपरोदेवस्तत्रस्यतीर्थंपरंस्मृतम्। तत्र स्नानं विधेयञ्च केशार्कसमर्चनम्
अन्नं बहुविधंदेयं तत्र तीर्थेद्विजोत्तम। कालभैरव आख्यातस्तत्रतीर्थे महाप्रभो
तत्रस्नात्वानरोनित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्तकम्। दद्यात्पूर्णंमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥

द्वादशार्केति विख्यातं क्षिप्राकूले च दक्षिणे।
तीर्थञ्च सर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ५० ॥

तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा द्वादशार्कंसमर्चयेत्। अजादानञ्चदेयंवैवासोऽलङ्कारसंयुतम्
आरोग्यं सर्वदादद्देतस्यभक्तपदेपदे। तत्रापि ऋषयोदेवाः सन्ध्योपासनतत्पराः ॥

उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातःकालेसदैवहि । तत्रतीर्थे नरःस्नात्वाशुचिर्भूत्वासमाहितः
एकानंशेति विख्याता भवानी पापनाशिनी । तामर्चयेद्द्विजश्रेष्ठदशाश्वमेधपंशिवम्
तत्र देयं महादानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् । विप्रायवेदविदुषे विधिवद्द्विपसत्तम! ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
योऽसावङ्गारको देवो विख्यातो वै धरात्मजः ॥ ५६ ॥
तस्य तीर्थं परं व्यास सर्वतीर्थफलप्रदम् । तत्र तीर्थेनरः स्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत्
गुडान्नं वृषभं रक्तं सवासः समलङ्कृतम् ।
स्वलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो यो ददाति समाहितः ॥ ५८ ॥
तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्रदारादिसम्पदः । खगङ्गासङ्गमंतीर्थंगङ्गोद्भेदसमन्वितम्
तत्र तीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरं शिवम् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते
तिलपात्रं प्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् । सर्वसौख्यकरंदानं सर्वपापहरं परम्
ऋणमोचनकं तीर्थं सर्वपापहरं स्मृतम् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ऋणतेश्वरमर्चयेत्
घृतश्राद्धं प्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णञ्च शक्तितः । ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते
ततो गच्छेन्नरो नित्यं शक्तिभेदमकल्मषम् ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमं पापनाशनम् ॥ ६४ ॥
तत्र स्नात्वानरोव्यास शुचिः प्रयतमानसः । मातृकाणाञ्चसर्वेषांदर्शनंकारयेद्बुधः
कौमारीकार्त्तिकीमाता चर्पटाचरमातरः । तथा भगवतीं देवीं स्कन्दञ्चैवसमर्चयेत्
तत्र श्राद्धानि देयानि विधिवद् द्विजसत्तम! ।
दत्त्वा शय्यादिकं दानं कांस्यधेनुं तथेतरद् ॥ ६७ ॥
मातुर्ऋणंसमुत्तीर्य सायुज्यं लभतेनरः । यत्तत्तीर्थवरंश्रेष्ठं पापमोचनसञ्ज्ञकम् ॥६८
तत्र स्नात्वानरैर्देयं छायादानञ्च सत्तम । सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः ॥
ततःपरंपरंव्यास तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् । प्रेतशिलेतिविख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥
तत्र स्नात्वानरोदद्याच्छ्राद्धंद्विजसमाहितः । तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्गतिम्
घटदानंततोदेयं छत्रोपानत्समन्वितम् । महिषीञ्चततोदद्याद्वासांसि विविधानिच

मन्त्रदानं ततो देयं दक्षिणासमन्वितम्। यमेश्वरं समभ्यर्च्य निरयेनाधिगच्छति॥
पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
पितृदोषा न बाधन्ते तेषां च द्विजसत्तम॥ ७५॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं भुवि त्रैलोक्यवन्दितम्। नवनदीसङ्गमो यत्र तत्र तिष्ठति पार्वती।
तत्र स्नात्वा नरो नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः।
पूजयेज्जगतीं मातां पार्वतीं विधिवत्ततः॥ ७८॥
महादानानि दद्यांश्च दक्षिणाश्च धान्यतिलान्। सुवर्णं दुग्धसहितां दद्याद् द्विजपतये
सर्वपापविशुद्धात्मा महाकालस्य भुवनेश्वरः। मन्दाकिनीं ततो गच्छेदात्मकार्यविशुद्ध
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेच्च सदाशिवम्।
दत्त्वा शक्तिमथाद्य तिलद्रोणं प्रदापयेत॥ ७९॥
सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमो भवेत्। ततो गच्छेद्युवता पित्र तीर्थं पैतामहपरम्
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत्।
दत्त्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशारद॥ ८१॥
यथाशक्ति प्रदद्यात्तु ब्राह्मणाय सुदक्षिणम्। विप्रान् सम्भोजयेत्तस्मिन् विधिवत्सु विदाक्षये
ततस्तु पुनरागत्य रुद्रसरमनुत्तमम्। तस्मिन् स्नात्वा च नरो वा दृष्ट्वा देवमहेश्वरम्।
पूजयित्वा यथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम्। तुलसीबिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः
धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः। पूजयित्वा महादेव यात्रेश्वरमुमापतिम्॥ ८५
प्रार्थयेत्तु देवदेवेश प्रसन्नः पूर्णहेतवे। यात्रेश्वर नमस्तुभ्यमुमानाथ जगत्पते॥ ८६॥
त्वत्प्रसादादियं यात्रा सफला कुरु मे प्रभो॥ ८७॥

सनत्कुमार उवाच

एवं यः कुरुते यात्रामवन्त्यां द्विजोत्तम। अवन्तीवासजं पुण्यं प्राप्यते नात्र संशय
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान् धनदादिसम्पदम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत्॥ ८८॥
ये शृण्वन्ति कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम्।

न तेषां दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥ ६० ॥

माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धनं यशस्करं पुण्यविवर्धनञ्च ।

यः श्रावयेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या कुलं समुद्धृत्य हरेः पदं व्रजेत् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
तीर्थमहिमनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ *

इत्यवन्तीक्षेत्रमाहात्म्यंसमाप्तम्

——:※:——

अथचतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्यारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

उमोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्याश्च सरितस्तथा ।
कथ्यतां तानि यत्नेन श्राद्धं येषु प्रदीयते ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

अस्ति लोकेषु विख्याता गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
सेविता देवगन्धर्वैर्मुनिभिश्च निषेविता ॥ २ ॥

तपनस्य सुता देवी यमुना लोकपावनी । पितृणां वल्लभा देवि महापातकहारिणी

---

* एषोऽन्तिमोऽध्यायो मोहमयीस्थवेङ्कटेश्वरप्रकाशितपुस्तके नास्ति लक्ष्मणपुर (लखनऊ) प्रकाशित पुस्तकादुद्धृतोऽयमिति ।

चन्द्रभागा वितस्ता च नर्मदाऽमरकण्टके । कुरुक्षेत्रं गया देवि प्रभासं नैमिषं तथा
केदारं पुष्करं चैव तथा कायावरोहणम् । तथा पुण्यतमं देवि महाकालवनं शुभम्
यत्रास्ते श्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः । क्षेत्रं योजनपर्यंतं ब्रह्महत्याविनाशनम्
भुक्तिदं मुक्तिदं क्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् । प्रलयेऽप्यक्षयं देवि दुष्प्राप्यं त्रिदशैरपि

उमोवाच

प्रमाणं कथ्यतां देव क्षेत्रस्यास्य महेश्वर ।
यानि तीर्थानि धन्यानि यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥ ८ ॥
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रयत्नेन प्रमाणं पापनाशनम् । क्षेत्रमाद्यं महादेवि ममातीव प्रियं सदा
यत्रास्ति च महापुण्या सर्वपापहरा परा । तथा गन्धवती पुण्या दिव्यानघनदीप्रिया
नीलगङ्गा चतुर्थी तु श्रेष्ठा मया प्रकीर्तिता ।
आसां तु सङ्गमे स्नात्वा श्राद्धं यः कुरुते नरः ॥ १२ ॥
गङ्गायास्त्रिगुणं देवि चतुर्वर्गफलप्रदम् । क्षेत्रं योजनपर्यन्तमवन्त्यां विद्धि सुव्रते
सिद्धलिङ्गानि तिष्ठन्ति भुक्तिमुक्तिकराणि च ।
ईश्वराश्चतुराशीतिस्तथाष्टौ सन्ति भैरवाः ॥ १४ ॥
एकादश तथा रुद्रा आदित्या द्वादशस्मृताः । षट्चैवविनायकाश्चात्र चतुर्विंशतिमातरः
यदाहं गतवानत्र महाकालवने शुभे । ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे तत्राजग्मुर्मुदान्विताः
एभिर्व्याप्तं क्षेत्रमिदं द्वियोजनमायतम् । नृत्यन्यालयतो विष्णुः सर्वपापप्रणाशनः
एतन्नामानि योऽर्थात्प्रभाते भक्तिमान् पुमान् । विमुक्तः सर्वपापैस्तु रुद्रलोकसगच्छति

उमोवाच

चतुराशीतिलिङ्गानि त्वयोक्तानीह यानि तु । तानिविस्तरतोब्रूहिसर्वपापहराणितु ॥

हर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तेषां नामानि यानि च ।

ख्यातं पृथिव्यां प्रथममगस्त्येश्वरमुत्तमम् । यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरो भवेत्

उमोवाच

अगस्त्येश्वरनामेह कथं लब्धमनेन वै । कस्मिन्स्थाने कथं जातंविस्तराद्वक्तुमर्हसि

हर उवाच

शृणु देवि! महाभागे कथामस्य पुरातनीम् । सर्वपापप्रशमनीं सर्वाहितफलप्रदाम्

पुरासुरैर्जिता देवानिरुत्साहाश्च ते ततः । भागाश्चैषांहृताःसर्वे निराशाःपितरःकृताः

भ्रष्टैश्वर्यास्तदा देवि!चेरुर्देवा महीतले ॥ २३ ॥

ततः कदाचित्ते दीना दीप्तमादित्यवर्चसम् । ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यंविपुलव्रतम्

अभिवाद्य ततो देवा दृष्ट्वा तं तेजसावृतम् । इदमूचुर्महात्मानमगस्त्यंलोकविश्रुतम्

दानवैर्निर्जितायुद्धेसर्वेस्वर्गाच्चपातिताः । ततस्त्वं नोभयात्तीव्रात्त्रायस्वमुनिपुङ्गव!

इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत ।

प्रजज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव सङ्क्षये ॥ २७ ॥

तदा दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तथा । अन्तरिक्षान्महादेवि पतिताश्च सहस्रशः

दह्यमानास्ततो दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा ।

अपेश्च दानवाः सर्वे पातालं वव्रजुर्भयात ॥ २८ ॥

ततोऽगस्त्यो महात्मा वै तान्हत्वा शोकमूर्छितः ।

बभूवातिशयं स्वामी चिन्तयोद्विग्नमानसः ॥ ३० ॥

कृतं घोरं महत्पापं हता यद्दानवा मया । अहिंसा परमो धर्मो मनुना कथ्यते यतः

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शुध्येय चाप्यहम ॥ ३१ ॥

एवं चिन्तयतस्तस्य समागच्छत्पितामहः ।

प्रोवाच स मुनिं तत्र कस्मात्त्वं शोकविह्वलः ॥ ३२ ॥

लक्ष्यसे मुनिशार्दूलकारणंकथ्यतांत्वरम् । सब्रह्माणंनमस्कृत्य कथयामासपृच्छतः

देवदेव जगन्नाथ दाहोऽन्तर्मानसं मम । ब्रह्महत्या समायाता यन्मया दानवा हताः

ममोपायं समाचक्ष्व प्रमादात्सुरसत्तम । बहुकालार्जितं देव गतं मे संक्षयं तपः

प्रोवाचेदं सुरश्रेष्ठ शृणु त्वं वचनं परम् । उपायं सर्वपापस्य क्षयो येनभवेद्ध्रुवम्
महाकालवने दिव्ये यक्षगन्धर्वसेविते । उत्तरे घटयक्षिण्या यत्तल्लिङ्गमनुत्तमम् ॥
पिशाचस्यापि तीर्थस्य मार्गे दक्षिणतः स्थितम् ।
तं समाराध्यतः सर्वं पापं नाशमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
आराधय शुभं लिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम् । बाढं प्रोवाच धर्मात्मा महाकालवनं ययौ
तस्मिंस्तल्लिङ्गे देवेशि समाराधनतत्परः । वर्षाणामयुतं भक्त्या तद्ध्यानैकरतो मुनिः
ततः तुष्टस्तदा देवि मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥
प्रोक्तं मया महाभाग मुने शृणु समाहितः । वरं वरय विप्रेन्द्र यत्ते मनसि वर्तते ॥
तुष्टोऽहमनया भक्त्या तपसा दुष्करेण तु ।
लिङ्गस्यास्य प्रसादेन जातस्त्वं निर्मलोऽधुना ॥ ४३ ॥
प्रणम्य ब्रह्महत्या मे शमयोत्था मुनीश्वरः । मदीयं वचनं श्रुत्वा तेनोक्तं वरवर्णिनि
यदि देव प्रसन्नस्त्वं शरणागतवत्सल । त्वदङ्घ्रियुगले भूयान्मम भक्तिर्महेश्वर ॥
तथेत्युक्तं तथा धर्मे स च विप्रो भवेदिति । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुम्भयोनेर्महात्मनः
मया प्रोक्तं विशालाक्षि मुनेः एवं भविष्यति ॥ ४६ ॥
यस्त्वया पूजितो देवो ब्रह्महत्याविनाशनः ।
त्वन्नाम्ना त्रिषु लोकेषु सोऽयं ख्यातो भविष्यति ॥ ४७ ॥
अगस्त्येश्वरदेवोऽपि विख्यातो भुवनत्रये । एवमुक्तो मया देवि स विप्रस्तत्र संस्थितः
कृपया तस्य लिङ्गस्य पञ्चमुद्राविभूषितः ॥ ४८ ॥
ये नरास्तन्महालिङ्गं निरीक्षिष्यन्ति भक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वकामैरलङ्कृताः ॥ ४९ ॥
भविष्यन्ति महात्मानः पुत्रश्रियसमन्विताः ।
अन्तकाले च ते यान्ति विमाने सर्वकामदे ॥ ५० ॥
स्तुता गन्धर्वमुख्यैश्च रुद्रलोके च शाश्वते । येऽर्चयन्ति सदा देवमगस्त्येश्वरसंज्ञकम्
कृतपुण्या नरास्ते यान्ति परमं पदम् । संस्मृते देवदेवेशे नराणां कोटिजन्मजम्

अशुभं क्षयमाप्नोति कस्तं न प्रणमेच्छिवम् ।
यः प्रणम्य नरो भक्त्या देवं तं च निषेवते ॥ ५३ ॥
मुच्यते ब्रह्महत्यादिपातकैर्नरकप्रदैः ॥ ५४ ॥
राजसूयशतेनैव यत्पुण्यं च भविष्यति । तत्पुण्यमधिकं देवि दर्शनाच्च भविष्यति
किं तीर्थैर्विविधैः स्नानैः किं दानैर्विविधैः कृतैः ।
ते प्राप्स्यन्ति फलं सर्वं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ५६ ॥
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांदिनेसोमस्यशक्तितः। यःकरिष्यतिलिङ्गस्यपूजांभक्तिसमन्वितः
कुलानां तारयत्येव मातृकं पितृकं शतम् ॥ ५७ ॥
ये च पश्यन्ति पुरुषा भावहीनाः प्रसङ्गतः । नते पश्यन्ति संसारे नरकं वै कदाचन
एतत्ते कथितं देवि लिङ्गमाहात्म्यमुत्तमम् । प्रथमं कथितं लोके द्वितीयं शृणुयत्नतः
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

गुहेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

शृणु गुहेश्वरं लिङ्गं द्वितीयं पापनाशनम् । यस्य दर्शनमात्रेण जायतेसिद्धिरुत्तमा
पुरा रथन्तरे कल्पे देवदारुवने शुभे । ऋषिर्मङ्कणकोनाम वेदवेदाङ्गपारगः ।
योगाभ्यासरतो नित्यं शान्तिदान्तिसमास्थितिः ॥ २ ॥
सिद्धिकामस्तपस्तेपे कथं सिद्धो भवाम्यहम् ।
रक्तमयविकारोऽयं कथं यास्यति सङ्क्षयम् ॥ ३ ॥
इति सञ्चिन्त्य हृदये प्रारब्धं तप उत्तमम् । बहून्यब्दसहस्राणि तस्यातीतानिपार्वति

कस्मिंश्चिदथ काले तु विचरन्पर्वताग्रतः । कराग्रं च करस्योऽजान कुशाग्रेण तदैव हि
स च दृष्ट्वा तदाश्चर्यं विस्मयं परमं गतः । मेने सिद्धिं परां प्राप्तां सगर्वोऽप्यभवत्
अहो तपःप्रभावोऽयं मत्तो सिद्धिर्मयाप्त वै ।
मत्तुल्यो नास्ति वै विप्रो येन सिद्धिः समागता ॥ ७ ॥
शरीरं कुत्सितं घोरं मत्कृतेन संयुतम् । अस्थिस्नायुवसामज्जमांसशोणितपूरितम्
रसेन महता युक्तं न नतं द्विजन्मना ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नृत्यति विप्रे जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
मनःप्रह्लादसंयुक्तं प्रमाणात्तस्य वै मुने ॥ ९ ॥
न स्वाध्यायो वषट्कारः कर्मकाण्डो न च क्वचित् ॥ १० ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । आगतुर्विस्मिताः सर्वे नाथ नृत्यततांतु
श्रुत्वा मङ्कणके देव नृत्यति नृत्यति सर्वतः । सदेवासुरमानुष्यं सर्वं लोकत्रयं विभ
चलिताः पर्वताः व्यासाः क्षुभिता मेघसङ्कुलाः ।
शिखराणि विशीर्यन्ते धरणी पीडिता भृशम् ॥ १३ ॥
स्रोतोमार्गा महानद्यो महा उन्मार्गात स्थिताः ॥ १४ ॥
त्रैलोक्यं व्याकुलीभूतं यावद्यायाति सङ्क्षयम् ।
तावन्निवारयस्वैनं नान्यः शक्तो विना त्वया ॥ १५ ॥
देवानां वचनं श्रुत्वा त्रिदशानां यशस्विनि । प्रतिज्ञातमथात्यर्थं गत्वा तस्य समीपत
द्विजरूपं समास्थाय मया पृष्टो द्विजोत्तम ।
किमर्थं नृत्यसि ब्रह्मन्कस्मात्ते हर्ष आगत ॥ १७ ॥
विदन्नपि विधमाना कामरागेण लालनम् । गानं च नर्तनं चैव युवतीजनवल्लभम् ।
ब्राह्मणस्य तपोभ्रंशः सदाधारान्विसत्तम । इति मत्वा द्विजश्रेष्ठ किमर्थं नृत्यसे भृशम्

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि भो ब्रह्मन्कराच्छाकरसं च्युतम् ।
अत एव हि भो नृत्य सिद्धोऽहं नात्र संशय ॥ २० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वाहासोऽतीवमयाकृतः ।अङ्गुष्ठताडितःस्वीयोऽङ्गुल्यग्रेणचपार्वति
ततो विनिर्गतं भस्म तत्क्षणाद्धिमपाण्डुरम् ।
हासेनोक्तो विशालाक्षि! सगर्वो ब्राह्मणो मया ॥ २२ ॥
पश्य मेऽङ्गुष्ठतोब्रह्मन्भूरि भस्मविनिर्गतम् । न नृत्येऽहं न मे हर्षस्तथापिमुनिसत्तम
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं लज्जितो द्विजसत्तमः । धैर्यञ्च तादृशं दृष्ट्वा विस्मयं परमंगतः ॥
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा विस्मितेनान्तरात्मना ।
नान्यं देवमहं मन्ये त्वां मुक्त्वा वृषभध्वजम् ॥ २५ ॥
नान्यस्य विद्यते शक्तिरीदृशी भुवनत्रये । तस्मात्क्षमस्वदेवेशमयाज्ञानादनुष्ठितम्
तपःक्षयकरं कर्म विरुद्धं तत्तनं सताम् । बहुकालार्जितं पुण्यं तपसा दुष्करेण तु ॥
तद्गतं सहसा देव! मदीयं नर्त्तनेन तु ॥ २७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मयोक्तो द्विजसत्तमः । वरं वरय भद्रं ते तुष्टोऽहं द्विजसत्तम
ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्र!कं ते कामं करोम्यहम् ॥ २६ ॥

ऋषिरुवाच

यदिदेवप्रसन्नस्त्वंशरणागतवत्सल । यथा न स्यात्तपोहानिस्तथानीतिर्विधीयताम्
मया प्रोक्तं प्रसन्नेन तस्य विप्रस्य पार्वति! ।
तपस्ते वर्द्धतां विप्र! महाकालवनं व्रज ॥ ३१ ॥
तत्रास्ते सर्वदा पुण्या सप्तकल्पोद्भवागुहा । पिशाचेश्वरदेवस्य उत्तरेणव्यवस्थिता
तत्र द्रक्ष्यसि यल्लिङ्गं सप्तकल्पोद्भवंशुभम् । तस्य दर्शनमात्रेण तपस्ते वृद्धिमेष्यति
कामक्रोधोद्भवंपापंलोभमोहसमन्वितम् । ईर्ष्यामत्सरजंचैवनाशं यातिचकिल्बिषम्
मदीयंवचनं श्रुत्वा स विप्रो वेदपारगः । श्रुत्वा च नियमं देवि मदुक्तं स ततोद्विजः
निस्सृतो नियतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
आजगाम गुहा यत्र महाकालवनोत्तमे ॥ ३६ ॥
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं तपसो वर्द्धनं परम् । द्वादशादित्यसङ्काशो जातो वै लिङ्गदर्शनात्
एतस्मिन्नन्तरे देवि देवैरुक्तं नभस्तले । गोप्यं लिङ्गं गुहोत्थं तु द्रष्टं मङ्कणकेन तु

सिद्धिः प्राप्ता द्विजेनैव दर्शनेन सुदुर्लभा । तस्माद्गुहेश्वरो देवि प्रसिद्धिं यास्यति महीतले
भक्त्या परमयोपेता ये द्रक्ष्यन्ति गुहेश्वरम् ।
न तेषां जायते विघ्नो धर्मस्य तपसस्तथा ॥ ४० ॥
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां दर्शनं यः करिष्यति । ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति पितरस्तस्य देहिनः
अत्रागत्य प्रयत्नेन दर्शनं यः करिष्यति । उद्धरिष्यति चात्मानं पुरुषानेकविंशतिम्
कृत्वा पापसहस्राणि दर्शनं यः करिष्यति ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ ४२ ॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वं यास्यति संक्षयं
यत्किञ्चिदशुभं कर्म जन्मकोटिशतार्जितम् ।
क्षयं यास्यति तत्सर्वं स्पर्शमात्रेण नान्यथा ॥ ४१ ॥
महापातकयुक्ता हि देहिनो ये महीतले । तेऽपि लिङ्गं समासाद्य मुच्यन्ते सर्वपातकैः
इत्युक्त्वा स द्विजो देवि! दिव्यो मङ्कणको मुनिः ।
कृत्वाश्रमपदं पुण्यं तत्रैव तपसि स्थितः ॥ ४७ ॥
एष वै कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्य
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये गुहेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोध्यायः

ढुण्ढेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

ढुण्ढेश्वरं तृतीयं तु सुखस्वर्गफलप्रदम् । सर्वपापहरं लिङ्गं नृणां दुष्कृतनाशनम्
ढुण्ढश्चासीत्पुरा देवि कैलासेगणनायकः । स च कामीदुराचारोव्यसनोपहतेन्द्रियः
गतोऽसौ शक्रलोकं तु कौतुकार्थं यदृच्छया ।
यत्र नृत्यति सा रम्भा शक्रस्याग्रे विवृण्वती ॥ ३ ॥
भावान्बहुविधान्रम्यान्दृष्टिहस्तादिकाञ्छुभान् ।
सूचीविद्धादिकरणान्पताकादिकहस्तकान् ॥
नृत्यं हस्तादिसंयुक्तं लयतालानुगं तथा ॥ ४ ॥
शक्रोऽपि त्रिदशैः सार्द्धं तन्मुखासक्तलोचनः । बभूव हृष्टचेतावै हर्षिताङ्गरुहाननः
एतस्मिन्नन्तरे देवि! ढुण्ढस्तल्ललितेन तु । कामरागवशेनैव भावयर्थेन च मोहितः
तेन रङ्गरता रम्भा पुष्पगुच्छेन ताडिता । स शप्तोवासवेनैव दृष्ट्वाऽन्यायं गणस्य तु
पत त्वं मानुषंलोकं रङ्गभङ्गस्त्वया कृतः । इति शप्तो गणो देवि शक्रेणामिततेजसा
पतितो मानुषे लोके विसञ्ज्ञो विह्वलेन्द्रियः ।
शोकादिग्भूतो हतोत्साहो विललाप पुनः पुनः ॥ ६ ॥
अहोऽन्यायफलं प्राप्तंमयामोहादनुष्ठितम् । तस्मान्नीतिर्विधातव्या पुरुषेणविजानता
न्यायमार्गं समाश्रित्य येन सिद्धिर्भवेन्मम ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा स तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे । श्रीशैले मलये विन्ध्ये पारियात्रेयमालये
नो सिद्धोऽसौ यदा देवि! तदा गङ्गामहत्तरम् ।
यमुनां चन्द्रभागां च वितस्तां नर्मदां नदीम् ॥ १३ ॥
गोदावरीं भीमरथीं कौशिकीं शारदां शिवाम् ।

धर्मध्वजौ समासाद्य ख्यातो स्वतन्त्रियोऽभवत् ॥ १४ ॥
तीर्थं व्यर्थं तपो व्यर्थं तीर्थयात्राफल यत । न प्राप्तश्च यथार्थाऽस्मिता धर्मभूमिषु
एतस्मिन्नन्तरे देवि वागुवाचाशरीरिणी । आश्वासयन्ती गणपं महाकालवने प्रज
प्रयागाद्यानि तीर्थानि पृथिव्यां यानि सन्ति वै ।
सदा सिद्धिपरं नैवा महाकाले विशिष्यते ॥ १७ ॥
तस्मिन्ने सुमहापुण्य लिङ्गं सर्वार्थसाधकम् ।
पिशाचेश्वरसान्निध्ये तमाराधय सत्वरम् ॥ १८ ॥
प्रसादात्तस्य लिङ्गस्य पुनर्गास्यसि शङ्करम् ।
लोक तेजस्विनां गम्यं दुर्लभ पापिनां सदा ॥ १९ ॥
इति श्रुत्वा ततो वाणीमाकाशस्थां गणस्तदा ।
आजगाम मुदा युक्तो महाकालवनोत्तमे ॥ २० ॥
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं सर्वसत्त्व करं शुभम् । पूजयामास देवेशं भक्त्या परमया युत
लिङ्गमध्यात्ततो वाणी निःसृता पवतारमजे ।
अहं तुष्टोऽस्मि ते वत्स किकार्यं प्रददाम्यहम् ॥ २२ ॥

ढुण्ढ उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेशं शरणागतवत्सल । त्वत्पादपङ्कजे भूयाद्भक्तिर्मेऽविचला सदा
धर्मेण प्रवन्द्याऽऽशु यदि तुष्टो महेश्वर ॥ २४ ॥
ये च त्वां मानवा देव पश्यन्तिपरमेश्वर । पापात्सद्योविनिर्मुक्तास्ते भवन्तुमहीतले
ढुण्ढस्य भाषितं श्रुत्वा लिङ्गनोक्तं यशस्विनि ।
ये च मां पूजयिष्यन्ति श्रद्धया परया पुन ॥
ते भविष्यन्ति सतत सदा पातकवर्जिता ॥ २६ ॥
लप्स्यन्ति ते परान्कामान्भविष्यन्ति गणोत्तमा ।
पूज्या सर्वेषु लोकेषु सर्वालङ्कारभूषिता ॥ २७ ॥
एव लब्धवरो ढुण्ढः प्राञ्जलि पुनरब्रवीत् । मन्नाम्नाप्रथितलिङ्गं सम्भूयाद्भुवनेसदा

एवमस्त्विति लिङ्गेनप्रोक्तं तुष्टेन पार्वति! । तदाप्रभृतिविख्यातोदेवो ढुण्ढेश्वरःपरः
यस्य दर्शनमात्रेण सदा सिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ३० ॥
भक्त्यायेपूजयिष्यन्तिदेवंढुण्ढेश्वरंपरम् । आजन्मप्रभवंपापं तेषांयास्यतितत्क्षणात्
स एव सुकृती लोके स एव ममवल्लभः । यःपश्यतिनरोभक्त्यालिङ्गंढुण्ढेश्वरंपरम्
राजसूयशतेनैवयत्पुण्यं च भविष्यति । ततोभविष्यत्यधिकं ढुण्ढेश्वरनिरीक्षणात्
मानसं वाचिकं वापि कायिकं गुह्यसम्भवम् ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं च प्रसङ्गादपि यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं यास्यति क्षिप्रं ढुण्ढेश्वरस्य दर्शनात् ॥ ३४ ॥
इत्युक्तस्तुमया देविसढुण्ढोगणनायकः । कृतो लिङ्गस्य माहात्म्याद्गतोलोकेमदीयके
रेजे च गणपैः श्रार्द्धं ममाभीष्टतरोऽभवत् ॥ ३५ ॥
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । श्रवणात्कीर्त्तनाद्वापि ममलोके महीयते
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये ढुण्ढेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

डमरुकेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

ख्यातोऽवन्त्यां चतुर्थोऽसौ देवो डमरुकेश्वरः ।
दृष्टे यस्मिञ्जगन्नाथे याति पाप च सङ्क्षयम् ॥ १ ॥
पुरा वैवस्वते कल्पे रुरुर्नाममहासुरः । तस्य पुत्रो महाबाहुर्वज्रोनाम महाबलः ॥
बभूव स महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयङ्करः ॥ २ ॥

तत देवा स्वाधिकाराच्च्यावितास्त्रिदशालयात् ॥ ३ ॥
ततो नीतं धन तथा ग्रत्नानि न ततोऽयु । ग्रत्नापिमथमभिप्रोथभूयानुलितन्द्रिय
भ्राचापध्यसुरे सार्धं सर्वे लोऽथ महाबल । तपुनरेवुयेविप्रायज्वालोऽयनपस्विन
संश्रुयान स दुर्गाकमा ये चान्य धर्मचारिण ॥ ५ ॥
नि स्वाध्यायवषट्कार तदासाद्धरणानलम् । मण्यक्षोत्सव देवि हाहाभूतमचेतनम्
तत प्रव्यथिता देवास्तथा सर्वे महर्षय । नमस्यामन्त्रयन्मन्त्रयधार्थं तस्य दुर्मत
तत कायाऽमय सद्य सर्वेषा पुरतस्तदा । तत्रापि नयताद्वपि तत्र दृष्ट्वैवचानृत
तस्मात्तेभ्या समुत्पन्ना दिव्या कमललोचना ।
द्योतयन्ती दिशा सर्वा स्वतेजोभि समन्तत ॥ ६ ॥
साऽब्रवीत्त्रिदशा सर्वान्कस्मात्स्तुथ हाह सुरा ? ।
यत्कार्य मया कर्म तदद्याद्य निवेद्यताम् ॥ १० ॥
ततस्तु त्रिदशा सर्वे श्रुत्वा तस्या शुभा गिर ।
आचख्यु सकल तस्यै तदा वज्रस्य चेष्टितम् ॥ ११ ॥
श्रु वाऽहहासमसाद्देवा साट्टहास मुहुर्मुहु । तस्याट्टहसत्यानि सत्वकन्या कमललोचना
पाशाङ्कुशधरा रौद्रा ज्वालामालाकुलानना । फट्कारेणच्चसनादेश्चाल्पस्यञ्चरावरम्
तता सर्वामहाद्रयि यत्र वज्रो महासुर । युद्ध तु तुमुल जात ताभिस्तस्य भयावहम्
शस्त्रास्त्रवृष्टिधाराभिर्न व्याप्तं च दिगन्तरम् । समन्तात्सिल्लसम्यात्त युयुधु समरे भृशम्
सत प्रववृत युद्ध तया देव्या सुदारुणम् । ततो मातृगणक्रुद्ध मर्दयन्त महासुरान् ॥
पराङ्मुख बल दृष्ट्वा वज्रो मायामयासृजत् ॥ १६ ॥
तामसीं नाम तु साध्वी यया मुह्यन्ति कन्यका ॥ १७ ॥
तमोभूतततस्तस्मिन्सा देवी भयविह्वला । ताभि सार्द्धं समायाता महाकालवनोत्तमम्
कपालवान्हरो यत्र लिङ्गाकारेण संस्थित । ज्ञात्वा मातृगणान्नष्ट ततो मायाप्रभावत
वज्रोऽपि त्रिदशाञ्ज्ञात्वा देव्या सार्द्धमयोषितान् ।
आजगाम तमुद्दिश्य स्वसैन्यपरिवारित ॥ २० ॥

महाकालवने दिव्ये रथकोटिशतैर्वृतः । समन्ताच्च वनं देवि! तत्क्रुद्धो वाक्यमब्रवीत्
अद्य देवान्हनिष्यामि, तया साकं सुदुष्टया । कन्याभिःसह या नष्टा तमोमायाबलेन तु
एतस्मिन्नन्तरेकाले नारदोमुनिसत्तमः । सोत्सुकस्तु समायातो मन्दरे चारुकन्दरे

कथयामास देवानां वज्राद्देवपराभवम् ॥ २४ ॥

महाकालवने देव ताडितास्त्रिदशाः प्रभो! । वज्रेण रुरुपुत्रेण तस्मादायाहि महेश्वर ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा ततोऽहं परमेश्वरि । मन्दरादागतस्तूर्णं कृत्वा रूपं सुभैरवम्
सर्पैर्लसद्भिरत्युग्रैर्भीषणैर्गणसंवृतः । अग्रे दृष्टं महत्सैन्यं दानवानां भयावहम् ॥
महाकालवनं रुद्ध समन्तादसुरेण तु । वज्रेण रुरुपुत्रेण दुःसहेन यशस्विनि ॥ २८॥

तदागत्य मया ताड्य रौद्रं डमरुकं तथा ।

मोहित सहसा सैन्यं वज्रस्यैव दुरात्मनः ॥ २६ ॥

डमरुकस्य नादेन ह्युत्थितं लिङ्गमुत्तमम । विदार्यवसुधांदेवि ज्वालामालाकुलंतदा

तस्य लिङ्गस्य च तदा महाज्वाला विनिर्गता ।

एकदेशाद्वरारोहे ब्रह्माण्डव्यापिनी तथा ॥ ३१ ॥

लिङ्गस्यान्यप्रदेशात्तु वायुः समभवन्महान् ॥ ३२ ॥

तेजोज्वालासमूहेन वातेन प्रेरितेनच । सहचक्रेण तत्सैन्यं दग्धं भस्मत्वमागतम् ॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । नमश्चक्रुर्हते तस्मिन्रुरुपुत्रे महाबले ॥ ३४॥
अस्य देवस्य माहात्म्याद्दग्धोवज्रो महाबलः । ससैन्योऽभूत्ततस्तस्मादेषडमरुकेश्वरः

ख्यातिं यास्यति लोकेऽस्मिन्सर्वकामफलप्रदः ॥ ३५ ॥

डमरुकस्य तु नादेन जातोयस्मान्महीतले । अतःपूज्यवरोदेवो भविष्यतिनसंशयः
दृष्ट्वाये पूजयिष्यन्ति;देवं डमरुकेश्वरम् । ते सर्वेदुःखनिर्मुक्ता भविष्यन्तिगतज्वराः

चान्द्रायणानां विधिवच्छतानामथ यत्फलम् ।

तत्फलं समवाप्नोति डमरुकेश्वरपूजनात् ॥ ३८ ॥

अस्मिन्स्थाने स्थितं लिङ्गं भक्त्या डमरुकेश्वरम् ।

प्रसङ्गादपि पश्यन्ति ह्यपि पापपरा नराः ॥ ३६ ॥

तेऽप्यक्षयं [illegible] यास्यन्ति रुद्रलोकं सनातनम् ।
भक्त्या स्तोष्यन्ति ये लिङ्गं ख्यातं डमरुकेश्वरम् ॥ ४० ॥
मानसैः पातकैर्मुक्ता यास्यन्ति परमं पदम् । अश्वमेधसहस्रं तु वाजपेयशतं भवेत्
गोसहस्रफलं चात्र दृष्ट्वा प्राप्स्यन्ति मानवाः ॥ ४१ ॥
यो याति मङ्गले धीरो दृष्ट्वा डमरुकेश्वरम् । जयेद्रिपूनथान्ते स रुद्रलोके महीयते
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । स्तुतस्तु कीर्तितश्चैव सर्वाभीष्टफलप्रदः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये डमरुकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अनादिकल्पेश्वरमहिमवर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

अनादिकल्पेश्वरं देवं पञ्चमं विद्धि पार्वति । सर्वपापहरं नित्यमनादिर्गीयते सदा
कल्परूपा शौपुरादेषि लिङ्गमेतद्विनिर्गतम् । यदा नाग्निर्न चादित्यो न भूमिर्न दिशो न खम्
न वायुर्न जलं चैव न धीर्नेन्दुर्ग्रहा न च । न देवासुरगन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः
ततो लिङ्गात्समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
कालेन च लयं याति लिङ्गेऽस्मिन्पर्वतात्मजे ॥ ५ ॥
तस्माल्लिङ्गात्समुद्भूता ब्रह्माद्या देवर्षिपितृकाः । मन्वन्तराणि चैवास्मिन्वंश्यानुचरितं च यत्
यावत्तत्र सृष्टयश्चैव यावन्त प्रलयास्तथा । समुद्राः पर्वताश्चैव निम्नगाः काननानि च
भूर्लोकाद्याश्च ये लोकाः पातालाः सप्त ये स्मृताः ।
गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥ ७ ॥
दृश्यादृश्यं च तत्सर्वमतो लिङ्गाद्वरानने । अनादिकारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महत्पदम् ॥

यदाहुः पुरुषं सूक्ष्मं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ ८ ॥
ध्रुवमक्षयमजरममेयं नान्यसंश्रयम् । गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥ ६ ॥
अनाद्यन्तं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभवाव्ययम् । असाद्दृश्यमविज्ञेयं लिङ्गं प्रोक्तं महर्षिभिः
प्रलयस्यान्ते तेनेदं दिव्यमासीदशेषतः ॥ ११ ॥
अहमुष्यां प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान् । सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परःकोऽप्यपरक्रियः
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रदर्श्याशु जगत्पतिः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥
यथा संनिधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते । मनसो नोपकर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः
अनादिः कथ्यते देवो जगत्कारणतत्परम ॥ १४ ॥
प्रधानं क्षोभ्यमाणं तु तेन लिङ्गेन पार्वति । जायतेभुवनाधारोब्रह्माण्डइति विश्रुतः
यस्मिन्नण्डे जगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् । उत्पन्नंचविलीनंचयस्यान्तोऽपिनलभ्यते
स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः पृथिवीपतिः ।
स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वे व्यवस्थितः ॥ १७ ॥
उत्पन्नः स जगन्नाथो निर्गुणोऽपि रजोगुणः ।
भुञ्जन्प्रवर्तते सर्गं ब्रह्मत्वं समुपागतः ॥ १८ ॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकांस्ततःसत्त्वातिरेकतः । विष्णुत्वमेत्यधर्मेणाकरोतिपरिपालनम्
ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेनाखिलंजगत् । उपसंहृत्यवैशेतेत्रैलोक्यंत्रिगुणोऽगुणः
यथा प्राग्वापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा ।
स संज्ञा याति तद्वच्च ब्रह्मविष्णुत्वरुद्रताः ॥ २१ ॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्रुद्रत्वे संहरत्यपि ।
विष्णुत्वे पाति तान्सर्वांस्त्रिस्रोऽवस्थाः स्मृताः सदा ॥ २२ ॥
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रः सत्त्वं विष्णुर्जगत्पतिः ।
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयो नराः ॥ २३ ॥
कल्पे कल्पे ह्यनादिस्तु गीयते त्रिदशैः सदा ।
पितृभिश्च गणैः सिद्धैरतोऽनादिकल्पेश्वरः ॥ २४ ॥

नाम यान विशालाक्षि महाकालवने सदा । यदाऽऽजातो विवादस्तु ब्रह्मणः केशवस्य च
अहं ज्यायानहं ज्यायानित्युभौ सृष्टिकारणात् ।
दिव्या समुत्थिता वाणी निरालम्बा तदाम्बरात् ॥ २६ ॥
महाकालवने लिङ्गं कल्पेश्वरेतिसंज्ञकम् । तस्यादिमथवान्तं वा यः पश्यति स वै प्रभुः
भविष्यति न सन्देहो स याद' क्रियतामिति ॥ २७ ॥
ततो देवि गतो ब्रह्मा ऊर्ध्वलोकमनन्तकम् ।
अधोलोकं गतो विष्णुस्तेन वाक्येन सत्वरम् ॥ २८ ॥
नादिर्दृष्टो न चान्तश्च ब्रह्मणा केशवेन तु । तत्र तौ विस्मयापन्नौ तुष्टुवाते परस्परम्
येनैव मूर्तं विविधैरभिन्नवपुरे स्थितौ । नादिरस्मिन्न चान्तश्च न कल्पोऽत्र दृश्यते
तस्मादनादिकल्पोऽयमद्यप्रभृति मूर्तये ।
ख्यातिं यास्यति नाम्नाऽथ महाकालवने शुभे ॥ ३१ ॥
पञ्चपातकसंयुक्तो योऽमर्त्यो दुष्टमानसः ।
सोऽपि गच्छेच्छिवं दृष्ट्वाऽनादिकल्पेश्वरं शिवम् ॥ ३२ ॥
शिवमन्तु सदा सेवा देवा इव ययान गत । तेऽपि यान्तु दैवैस्तैस्तैश्च शरणमागताः
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः । तत्सर्वमधिकं देव दृश्यते तस्य दर्शनात्
तावत्पतन्ति संसारे दुःखदुःखसमाकुले । तावन्न दृश्यते देव संसारार्णवतारकः ॥
यदा पापक्षयः पुंसां तदा त्वद्दर्शनं भवेत् ॥ ३६ ॥
ब्रह्महा वा सुरापो वा स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
तत्संसर्गी नरो यस्तु महाकिल्बिषकारकः ।
सोऽपि याति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३७ ॥
यत्फलं चाश्वमेधेन राजसूयेन यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति तव देवसमर्चनात्
ते नराः पशवो लोके, तथा जन्म निरर्थकम् ।
येन दृष्टो महादेवोऽनादिकल्पेश्वरः शिवः ॥ ३८ ॥
इत्युक्त्वा भगवान् देवो महादेवो वनान्ते । वामे दक्षिणभागे च तस्य लिङ्गस्य सन्निधौ

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । यस्य श्रवणमात्रेण लभ्यते परमं पदम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽनादिकल्पेश्वरमाहात्म्यवर्णनं-
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५

षष्ठोऽध्यायः

स्वर्णजालेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

स्वर्णज्वालेश्वरं षष्ठं विद्धि चात्र यशस्विनि! ।
यस्य दर्शनमात्रेण धनवानिह जायते ॥ १ ॥
पुरा सार्द्धं त्वया देवि! क्रीडतो मम मन्दिरे । जातं वर्षशतं दिव्यं सुरतैकरसस्य च
देवैः सर्वैस्ततो वह्निः प्रेरितो मम सन्निधौ ।
ततो वह्निः समायातस्त्रैलोक्यार्थे यशस्विनि! ॥ ३ ॥
ततो वह्निमुखे क्षिप्तं वीर्यं स्वं क्रीडतामया । दह्यमानस्तदा तेन गङ्गां वह्निर्जगाम ह
तत्र गत्वा प्रचिक्षेप वीर्यमग्निः सुदुर्द्धरम् । तथापि दह्यते वह्निर्वीर्यशेषेण पार्वति ॥
जातं रम्यं ततो दिव्यं वीर्यशेषेण काञ्चनम् । ज्वलन्तं चातितापेन दुःसहं दुर्द्धरं प्रिये
अग्नेरपत्यं प्रथमं दृष्ट्वोत्पन्नं तु पार्वति! । लोभाभिभूता असुराः सुरा गन्धर्वकिन्नराः
यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च मनुष्या राक्षसाः खगाः ।
अभ्यधावन्सुसंरब्धास्ते सुवर्णजिघृक्षवः ॥ ८ ॥
सुवर्णार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम् । अज्ञानात्सङ्गरश्चैव सञ्जातः प्राणहारकः
अथावरणमुख्यानि नानाप्रहरणानि च । प्रगृह्याभ्यनदन्नादैर्देवैः सार्द्धं यशस्विनि ॥
असुरा असुरैः सार्द्धं मनुष्या मानुषैःसह ।

नाम प्राप्तं विशालाक्षि महाकालवने सदा । यदाजातो विवादस्तु ब्रह्मण केशवस्य च
अहं ज्यायानहं ज्यायानन्योन्यं सृष्टिकारणात् ।
दिव्या समुत्थिता वाणी निरालम्बा तदाम्बरात् ॥ २६ ॥
महाकालवने लिङ्गं कल्पेश्वरेतिसंज्ञकम् । तस्यादिमथवान्तं च यः पश्यतिसवप्रभुः
भविष्यति न संदेहो न वादः क्रियतामिति ॥ २७ ॥
ततो देवि गतो ब्रह्मा ऊर्ध्वलोकमनन्तकम् ।
अधोलोकं गतो विष्णुर्नैव चावैक्ष स परम् ॥ २८ ॥
नादिष्टं प्राप्तं चान्तश्च ब्रह्मणा केशवेन तु । तदा तौ विस्मयाविष्टौ तुष्टुवाते परस्परम्
वेदोक्तसूक्तैर्विविधैरमितद्युतिं स्थितौ । नाविरस्थितं चान्तश्च न चकल्पोऽनदृश्यते
तस्मादनादिकल्पोऽयमद्यप्रभृति भूतले ।
ख्यातिमाप्स्यतिनाम्ना च महाकालवने सदा ॥ ३१ ॥
पञ्चपातकसंयुक्तो योमर्त्यो दुष्टमानसः ।
सोऽपि मुच्छेद्द्दष्ट्वा ऽनादिकल्पेश्वरं शिवम् ॥ ३२ ॥
शिवमन्तु सदा सेवा येन तस्य दर्शनं गतः । तेषां या मानुषलोके दिव्या शरणमागता
सप्ततीर्थाभिषेकस्तु यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः । तं सर्वमखिलं देवं लभ्यते तस्य दर्शनात्
तावत्पतन्ति संसारे सुदुःखं सप्तधातुके । यावन्न दृश्यते देव संसारार्णवतारकः ॥
यदा पापक्षयः पुंसां तदा त्वद्दर्शनं भवेत् ॥ ३६ ॥
ब्रह्महा वा सुरापो वा स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
तत्संसर्गी नरो यस्तु महाकिल्बिषकारकः ।
सोऽपि याति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३७ ॥
यत्फलं चाश्वमेधेन राजसूयेन यत्फलम् । तं फलं समवाप्नोति तस्य देवसमर्चनात्
ते नराः पशवो लोके तथा जन्म निरर्थकम् ।
यैन दृष्टो महादेवोऽनादिकल्पेश्वरः शिवः ॥ ३९ ॥
इत्युक्त्वा केशवो देवो ब्रह्माचैववरानने । वामेदक्षिणभागेचतस्य लिङ्गस्यसंस्थितौ

पीडितं च जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा मया ज्ञातंवरानने । तस्यार्थेकलहोघोरः सञ्जातोहिपरस्परम्
लोकत्रयविनाशश्च सहसा येन वै कृतः । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्
ब्रह्महा वह्निपुत्रस्तु यमुद्दिश्य मृतो जनः । शरीरं शबलं चैव सविकारं भविष्यति
धातवो हि भविष्यन्तितस्य देहेनसंशयः । लप्स्यते दुःखमतुलं छेददाहादिवर्षणम्
एतस्मिन्नन्तरे वह्निर्दृष्ट्वापुत्रस्यचेष्टितम् । ज्ञात्वाक्रोधंमदीयन्तुभीतोवैपुत्रकारणात्
आजगाम सुवर्णेन सार्द्धं देवि ममान्तिकम् । प्रसादितोऽहं पुत्रार्थे वह्निनाहिवरानने
रक्षणीयस्त्वया देव पुत्रोऽयं तव शङ्कर । भाण्डागारे स्वकीये तु क्रियतां परमेश्वर

त्वयि तुष्टे महादेव! प्राप्योऽयं नात्र संशयः ।
इच्छया दीयतां देवि!यस्य कस्य जनस्य च ॥ ३८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वापितृदेवमुखस्य च । तथेति चप्रतिज्ञातंमयालोभाद्यशस्विनि
स्नेहान्मया वह्निपुत्रउत्सङ्गे च कृतस्तदा । स्नेहाद्वैचुम्बितोमूर्ध्निपरिष्वक्तःपुनःपुनः
ददामि ते महाभाग वरं वरय शोभनम् । परितुष्टोऽस्मि वै कामं यथेष्टंसमवाप्नुहि
अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि । ममाभीष्टकरं स्थानं विद्यतेपृथिवीतले
अक्षयं प्रलये पुत्र महाकालवनंशुभम् । तत्रैव विद्यते लिङ्गं कर्कोटकस्य दक्षिणे ॥
महापापहरं पुत्र दर्शनाद्धासिदायकम् । तस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो भविष्यसि ॥
पुण्यश्चैव पवित्रेण दुर्लभश्च भविष्यति । अकुलीनः कुलीनस्तु समलोनिर्मलोनरः
विरूपो रूपवांश्चैवत्वत्प्रसादाद्भविष्यति । दानानिपरिपूर्णानिव्रतानि नियमास्तथा

यज्ञाश्चैवोपवासाश्च तीर्थं पिण्डादिकं त्वया ।
सुसम्पूर्णा भविष्यन्ति तव दानेन सुव्रत! ॥ ४७ ॥

सर्वेषांचैवरत्नानामाधिपत्यंकरिष्यसि । प्रियाभाष्टोहिदेवानांलोकानांचभविष्यसि
इत्युक्तोऽसौ महादेवि दिव्यरूपोवरानने! । ज्वालामालावृतःपुण्योनिर्मलोहिबभूवह

लिङ्गेनोक्तः सुवर्णस्तु दिष्ट्यादिष्ट्येति काञ्चनम् ।
अद्यप्रभृति नाम्ना वै ख्यातिं यास्यसि भूतले ॥ ५० ॥

गन्धर्वा सह गन्धर्वैः किन्नरैः सह किन्नराः ॥ ११ ॥
भूतैः सार्धं च भूतानि राक्षसैः सह राक्षसाः ।
वेतालैः सह वेताला युद्धे मग्नाः सुरासुराः ॥ १२

पुत्रस्तु पितरं द्वेष्टि पिता पुत्रं तथैव च । हन्तिभार्यांस्वभर्तारं भर्तापत्नीं प्रियां तथा
मातरं स्वसुतो हन्ति माता पुत्रं हिनस्ति च । एवं वैरविनिर्बन्धः सञ्जातः स्वर्णकारणम्
सुराणामसुराणां च सर्वघोरतरं महत् । प्रासाश्च विपुलास्तीक्ष्णाः पट्टिशाश्च गदास्तथा

तोमराश्च सुतीक्ष्णाग्रा शस्त्राणि विविधानि च ॥ १५ ॥
सुवर्णार्थे महादेवि वमन्तो रुधिरं बहु ॥ १६ ॥

असिशक्तिगदाहस्ता निपेतुर्धरणीतले । छिन्नाभिन्नद्विशीर्षैव शिरांसि युधि दारुणे
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च परस्परम् । अद्रीणामिव कूटानि धातुयुक्तानि शेरते
हाहाकारः समभवद्भुवनस्य सदारुणः । अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैः सुवर्णस्य च कारणात्
परिघैरायसैः पाशैः सचक्रैश्च भुशुण्डिभिः । निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत्
छिन्धि भिन्धि प्रहारैश्च पातयाधि मारयेति च । अभूत्तममहाघोरा शब्दास्तत्र समन्ततः
एवं तु सुमहे युद्धे वर्तमाने महाभये । कम्पिता धरणी देवि देवाक्रान्ता सदासुरा
क्षुभ्यन्ति स्म समुद्राश्च चेलुश्च धरणीधराः । तच्चार्थैर्वाञ्छितं सर्वं सदेवासुरमानुषम्
ऋषयो वालखिल्याद्या देवाः शक्रपुरोगमाः । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य ब्रह्मलोकं गता प्रिये

लोकक्षयास्ते कथयामासुर्जर्जरीकृतमस्तकाः ।
वृत्तान्तं विस्तरात्सर्वं लोकक्षयविनाशनम् ॥ २५ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चिन्तयित्वा च तैः सार्द्धमाजगाम ममान्तिकम् ॥ २६ ॥

मया पृष्टास्तु ते सर्वे केनैते जर्जरीकृताः । शस्त्रास्त्रैः पीडिताः केन कस्माद्भीमभयमागतम्
कश्चासौ दानवो दुष्टो येन वः पीडिता भृशम् । तत्सर्वं कथितं देवि मयाग्रे भयविह्वलैः

ते मामूचुस्तदा देवा ब्रह्माद्या भयकारणम् ॥ २८ ॥
लोभात्सर्वे विनष्टाः स्म सुवर्णस्य च कारणात् ।

सप्तमोऽध्यायः

त्रिविष्टपेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

त्रिविष्टपेश्वरं देवि! सप्तमं पर्वतात्मजे । यस्य दर्शनमात्रेण लभ्यते तत्त्रिविष्टपम् ॥
पुरा वाराहकल्पे तु देवर्षिर्नारदोऽमलः । त्रिविष्टपं गतो देवि द्रष्टुकामः शतक्रतुम्
तत्रोद्यानवने रम्ये कल्पवृक्षैर्विराजिते । सर्वत्र कुसुमामोदसुखस्पर्शानिलाकुले ॥३॥
वीणावेणुरवैर्घुष्टे देवगन्धर्वसेविते । वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यचन्द्रकान्तादिदीपिते ॥ ४ ॥
ब्रह्मलोकादिभिर्लोकैरनौपम्यगुणे शुभे । ददर्श तत्र देवेशमुपविष्टं शतक्रतुम् ॥
स्तूयमानं मुदा देवैः सिद्धचारणकिन्नरैः ॥ ५ ॥
पृष्टस्तु नारदो देवि वासवेन महामुनिः । कथयामास माहात्म्यं महाकालवनस्य च
महाकालवनं रम्यं सदानन्दकरं शुभम् । सेव्यं पुण्यं पवित्रं च तीर्थानामुत्तमोत्तमम्
पुण्यं पश्यन्ति ये लोका महाकालवनं शुभम् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषां नश्यति निश्चितम ॥ ८ ॥
स्वयं तिष्ठति देवोऽत्र सर्वभूतगणैर्वृतः । तस्मात्तत्तीर्थमुख्यानांप्रवरं कथ्यते बुधैः
पृथिव्यां नैमिषं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ॥ १० ॥
ततो दशगुणं प्रोक्तं प्रयागंसर्वकामिकम् । तस्माद्दशगुणं प्रोक्तंविख्यातममरेश्वरम्
प्राची सरस्वती पुण्या तस्माद्दशगुणा स्मृता ।
तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं गयाकूपं विशिष्यते ॥ १२ ॥
तस्माद्दशगुणं देवि! कुरुक्षेत्रं विशिष्यते । कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्या वाराणसी तथा
तस्या दशगुणं श्रेष्ठं महाकालं विशिष्यते । महाकालवनंशक्र! किल त्रैलोक्यभूषणम्
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।

सप्तमोऽध्यायः

त्रिविष्टपेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

त्रिविष्टपेश्वरं देवि' सप्तमं पर्वतात्मजे । यस्य दर्शनमात्रेण लभ्यते तत्त्रिविष्टपम् ॥

पुरा वाराहकल्पे तु देवर्षिर्नारदोऽमलः । त्रिविष्टपं गतो देवि द्रष्टुकामः शतक्रतुम्

तत्रोद्यानवने रम्ये कल्पवृक्षैर्विराजिते । सर्वत्र कुसुमामोदसुखस्पर्शानिलाकुले ॥३॥

वीणावेणुरवैर्जुष्टे देवगन्धर्वसेविते । वज्रेन्द्रनीलवैदूर्यचन्द्रकान्तादिदीपिते ॥ ४ ॥

ब्रह्मलोकादिभिर्लोकैरनौपम्यगुणे शुभे । ददर्श तत्र देवेशमुपविष्टं शतक्रतुम् ॥

स्तूयमानं मुदा देवैः सिद्धचारणकिन्नरैः ॥ ५ ॥

पृष्टस्तु नारदो देवि वासवेन महामुनिः । कथयामास माहात्म्यं महाकालवनस्यच

महाकालवनं रम्यं सदानन्दकरं शुभम् । सेव्यं पुण्यं पवित्रं च तीर्थनामुत्तमोत्तमम्

पुण्यं पश्यन्ति ये लोका महाकालवनं शुभम् ।

ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषां नश्यति निश्चितम ॥ ८ ॥

स्वयं तिष्ठति देवोऽत्र सर्वभूतगणैर्वृतः । तस्मात्तत्तीर्थमुख्यानांप्रवरं कथ्यते बुधैः

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।

तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं पुष्करं तीर्थमुत्तमम् ॥ १० ॥

ततो दशगुणं प्रोक्तं प्रयागंसर्वकामिकम् । तस्माद्दशगुणं प्रोक्तंविख्यातममरेश्वरम्

प्राची सरस्वती पुण्या तस्माद्दशगुणा स्मृता ।

तस्माद्दशगुणंप्रोक्तं गयाकूपं विशिष्यते ॥ १२ ॥

तस्माद्दशगुणं देवि! कुरुक्षेत्रं विशिष्यते । कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्या वाराणसी तथा

तस्या दशगुणं श्रेष्ठं महाकालं विशिष्यते । महाकालवनंशक! किल त्रैलोक्यभूषणम्

षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।

लिङ्गानि यत्र तिष्ठन्ति मुक्तिमुक्तिकराणि च ॥ १५ ॥
शक्तयो नवकोट्यस्तु तस्मिन्क्षेत्रे वसन्ति हि ॥ १६ ॥
कृमिकीटपतङ्गाश्च मृता यत्र तत क्तौ । यान्ति दिव्यैर्विमानैश्च रुद्रलोकं सनातनम्
माहात्म्यमद्भुतं श्रुत्वा नारदात्सुरसत्तम ॥ १७ ॥
सर्वदेवगणै सार्द्धमाजगाम त्वरान्वित । वासव श्रीमहाकालवनं हर्षसमन्वित ॥
दृष्ट्वा तथाविध रम्य महाकालवनशुभम् । त्रिविष्टपादभ्यधिक प्रलयेऽप्यक्षयममृतम्
विचित्राणि च हर्म्याणि काञ्चनानि शुभानि च ।
प्रासादा शतशो भौममणिविद्रुमभूषिता ॥ २० ॥
वज्रेन्द्रनीलखचिता शुद्धस्फटिकसन्निभा ।
तोरणानि विचित्राणि माणिक्यखचितानि च ॥
दृष्ट्वा तथाविध रम्य महाकालवनोत्तमम् ॥ २१ ॥
नारद प्रशशंसुस्त सर्वे देवा मुदान्विता । देवर्षीणां महाप्राज्ञो येनेयं कथिताकथा
न कैलासं गमिष्यामो न च मेरु तथाविधम् ।
न मन्दरं गमिष्यामो न यास्यामस्त्रिविष्टपम् ॥ २३ ॥
यथामरावतीश्रेष्ठा श्रुत्वा भोगवती शुभा । यथ वैनामहोल्लोको विष्णुलोकस्तथैव च
एतस्मिन्नन्तरे दिग्भ्रान्तं जातं त्रिविष्टपम् । ज्ञात्वा शून्यमथात्मान चिन्तयित्वा पुन पुन
गमनाय मति चक्रे कृत्वा दृढमथात्मन ॥ २५ ॥
त्यक्त्वा मा त्रिदशा सर्वे महाकालवन गता ।
अह तत्रैव यास्यामि यत्र ते त्रिदशा गता ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा तत्क्षणप्राप्तो महाकालवनोत्तमे । कौतुकात्सोऽप्यवैश्रेष्ठनीयं तत्रापि भूतले
ददर्श रमणाय तैर्देवै परिवृत तदा ॥ २७ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ।
भौमोऽस्त्रिविष्टपात्रैव स्वनाम्ना स्थापयन्व माम् ॥
कर्कोटकस्य पूर्वे तु महामायाश्च दक्षिणे ॥ २८ ॥

इत्युक्तो देवदेवेन हृष्टस्तद्गतचेतसा । स्वनाम्ना स्थापयामास देवं त्रिविष्टपेश्वरम् ॥
पूजयित्वा शुभैःपुष्पैरुवाचेदं वरानने! । अद्यप्रभृति भूर्लोको नाम्ना ख्यातिं गमिष्यति

ये त्वां पश्यन्ति यत्नेन अपिदुष्कृतकारिणः ।
ते यास्यन्ति परं स्थानं दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥ ३१ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ वा विशेषतः ।यःकरिष्यति पूजां च भक्तियुक्तो हि मानवः
विमानवरमास्थाय कामगं रत्नभूषितम् । उदितादित्यसङ्काशं मत्समीपे वसिष्यति
किं दानैर्विविधैर्दत्तैः किं यज्ञैर्विविधैः कृतैः ।ते प्राप्स्यन्ति फलं सर्वं ये त्वां द्रक्ष्यन्ति भक्तितः

यं यं काममभिध्याय पूजयिष्यन्ति मानवाः ।
तत्तन्मनोरथप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ ३५ ॥

त्रिदशैश्च पुनः प्रोक्तं दृष्ट्वा मल्लिङ्गमुत्तमम् । त्रिविष्टपेन धन्येन स्थापितं देवमीश्वरम्

पूजयिष्यन्ति ये धन्या देवं त्रिविष्टपेश्वरम् ।
तेषां वासोऽक्षयो दिव्यो भविष्यति त्रिविष्टपे ॥ ३७ ॥
इत्युक्त्वा पूजयामास भूयो लिङ्गं त्रिविष्टपम् ।
सार्द्धं त्रिविष्टपेनैव पुनःस्थानं स्वकं गतः ॥ ३८ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।
श्रवणात्कीर्त्तनाद्वापि स्वर्गलोकोऽक्षयो भवेत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये त्रिविष्टपेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ७॥

अष्टमोऽध्यायः

कपालिसमागमदर्शनम्

धीरद उवाच

कर्पूरिकामदयं न स्वयं विद्धि वत्सलि । नरन दर्शनमन्वेन अन्नस्या प्रभावेण पुरा वेदनवेन क्ली वैनाको रमा मने । प्रदानान्तमने दिन्ने मम ममानहे विधि । अरविन्दु विन्दु हृदयमे दृष्टमाने । येन कापालिकं दृष्ट्वा मनोऽद्य मम मनसि ।

आरवन्धाहुनो देवि सुरसा सरवन्नुभवम ।
निमरात्मविमिश्रहो विहनो विहमालम ॥
कपालं च करे दृष्ट्वा कलमहमभूत्न ॥ १७ ॥

॥ प्रश्न मदत् वदात् मा मत्स्यकन्निम् । कपालप दिवं सर्वविभवरर्धभवन्दि अनुहमानाप इति नदातपत विरहिता । कर्मवदालिकाके प्राप्ते कापालिकेषु अवतालानि शीत दि दति देवम् तमि । यस्य देव मदुर्हे न मनुष्यानिलावामवे

यथा प्रामारम् न विना भवतां विश्वमनाः ।
तथा कापालिका मम दर्शनेन तु विना ॥ १८ ॥

कलसता च यथा सद्धि तवदा मवहृदिमाय । सर्वेशानव अल्पना विद्यमानवस्यवने अर्थ कापालिको विद्योमवसमृधितविमह । कापालनमवारधाय यतानिमुधिर्यनमे आरोधयानि मनने मनहयं अनन्मनिम् । मनहमा यमशाय मम हारसायविस्य

मनम नियमं प्राय मनस्वं हि यथा विना ।
पापविमननिमिनं तु गुरो मान्यापि मनुतिम् ॥ १९ ॥

मर्यादं चरनं धुत्वा मे प्रोक्तं दिव्यजनर्म । अनीय पापिष्ठनरो यो देवमाचरतेऽधर्मं कपालभृ विनो विरपो विरावेण तु विग्रहः । आकाशितो महादेवो दत्तवनमदीरसवे

धनिमयो समायाता मारिया धनवन्तया ।

विश्वेदेवाश्च मरुतो गन्धर्वाःकिन्नरास्तथा ॥ १५ ॥
ब्रह्मा विष्णुः सहस्राक्षो वरुणो वायुरेव च । धनदःसागरा नद्यःसरांसिसकलानि च
सुपर्णा गिरयोनागाःसर्वेचाकारिताःकृतौ । सानुगास्तेसभार्याश्चब्राह्मणावेदपारगाः
ब्रह्मर्षयो महाभागास्तथा देवर्षयोऽमलाः ।
एवमुक्त्वा महादेवं मानुषास्थिविभूषितम् ॥ १८ ॥
अपवित्रमिति ज्ञात्वा कथंत्वं वक्तुमर्हसि । प्रवेशो दीयतांमह्यं विप्रेणासिब्रह्महा
इत्युक्तोऽहं यदा विप्रैर्मया प्रोक्तं वचस्तदा ।
प्रतीक्ष्यतां मुहूर्तं तु भुक्त्वा यास्याम्यहं पुनः ॥ २० ॥
इत्युक्ते वचने देवि! ताडितोऽहं भृशं तदा । लोष्टैर्लगुडकैः पादैर्मुष्टिभिश्च पुनः पुनः
अथ प्रहस्य तत्क्षिप्त्वा तां वेदिं दर्भसंस्तृताम् ।
कपालदीपवन्नष्टो न ज्ञातोऽहं द्विजोत्तमैः ॥ २२ ॥
मयि नष्टे कपालं तत्क्षिप्तं मण्डपाद्बहिः । अथान्यत्तत्र संजातं तादृग्रूपं यशस्विनि
एवं शतसहस्राणिप्रयुतान्यर्बुदानि च । तत्रक्षिप्तानिजातानितनस्तेविस्मयान्विताः
अथाहुर्ज्ञानिनः सर्वे नेदमन्यस्य चेष्टितम् । ऋते देवान्महादेवाद्गङ्गाचन्द्रार्द्धशेखरात्
ततोऽहं विविधैः स्तोत्रैः स्तुतो विप्रैः पृथक्पृथक् ।
होमं चक्रुश्च ते वह्नौ मन्त्रैश्च शतरुद्रियैः ॥ २६ ॥
अहं तुष्टस्तदा देवि द्विजानामनुकम्पया । व्रियतांब्राह्मणाः सर्वे वरंयन्मनसेप्सितम्
तदा ते ब्राह्मणाः प्रोचुर्यदज्ञानाद्वधस्तव । कृतस्तेन कृतास्माभिर्ब्रह्महत्या जगत्प्रभो
ब्रह्महत्याविनाशाय प्रसादं कुरु नः प्रभो । वरयामो वरं ह्येनं नान्यंवरमभीप्सितम्
द्विजानां च तदा तेषामग्रेकथितवानिदम् । यत्रराशिःकपालानां भवद्भिर्विहितोभुवि
अनादिलिङ्गंतत्रासीच्छन्नंकालविपर्यये । पश्यन्तुविप्रास्तल्लिङ्गंब्रह्महत्याविमोचनम्
कृता मयापिविप्रेन्द्रा ब्रह्महत्यास्वयं पुरा । छिन्दताब्रह्मणःशीर्षंपञ्चमंतेजसोत्कटम्
ब्रह्महत्या ततो जाता ममातीव सुदुःसहा । कपालंचकरे लग्नंतथाचातीवदुःसहम्
दह्यमानस्ततश्चाहं व्याप्तो वै ब्रह्महत्यया । नाशाय सत्वरंतस्याःस्वार्थयात्रामहंगतः

गत सर्वेषु तीर्थेषु नैव मुक्तम्तु हत्यया । ततोऽहं श्री सुमन्तात्तोनैवलेभेसुखकचित्
एतस्मिन्नन्तरे देवी वागुवाचाशरीरिणी ।
गच्छाधन्तीं त्वय नाथ किमर्थं खिद्यते वृथा ॥ ३६ ॥
महाकालवन पुण्यं त्वया नाथ विनिर्मितम् । कपालकरसंस्थान हद्रमद्भुतदर्शनम्
न जानासि कथं क्षेत्र महापातकनाशनम् ॥ ३७ ॥
तस्मिन्क्षेत्रे महल्लिङ्गं गजरूपस्य सन्निधौ । विद्यते यस्य देवेश ब्रह्महत्या प्रणश्यति
ततोऽहमागतस्तूर्णं वाक्य श्रुत्वा तदोत्तमम् ।
महालिङ्ग मया दृष्ट कपालकरसंस्थितम् ॥ ३८ ॥
मम हस्तात्तदा विप्रा कपालमपतद्भुवि । कपालेश्वरदेवोऽयमिति नाममयाकृतम्
पश्यन्तु विप्रास्त देवकपालेश्वरसञ्ज्ञकम् । यस्य दर्शनमात्रेणनिष्कलङ्काभविष्यथ
लिङ्ग दृष्टं तदा तस्तु कपालैर्मुभिवृंतम् ।
कृतार्थास्ते तदा जातास्तस्य लिङ्गस्य दर्शनात् ॥ ४२ ॥
अतोऽसौ भुवि विख्यात कपालेश्वरसञ्ज्ञक ।
येऽर्चयन्ति महादेवि कपालेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ ४३ ॥
कृतपुण्या नरा देवि तेयान्ति परम पदम् । कृत्वाऽपि पातक घोरं ब्रह्महत्यादिकनर
तत्पाप विलय याति लिङ्गस्यास्य च दर्शनात् ।
कर्मणा मनसा वाचा यत्पाप समुपार्जितम् ।
तत्क्षपयति देवोऽय चतुर्दश्या समर्चित ॥ ४५ ॥
प्रसङ्गादपि ये पूजा करिष्यन्ति वरानने ।
तेऽपि कामानवाप्स्यन्ति यांश्च कांश्चित्सुदुर्लभान् ।
ऐश्वर्यं धर्ममतुल दीर्घमायुररोगताम् ॥ ४६ ॥
नि सपत्नत्वमतुल यश्चा॰यत्तदवाप्नुयात् । अतीव पापिनो ये च क्रूरकर्मरतानरा
विपाप्मानो भविष्यन्ति गणेशाश्चममप्रिये । नियमेन प्रपश्यन्ति ये देव वत्सरप्रिये
॥ पश्यन्ति तनु त्यक्त्वा मदीय भवन प्रियम् ॥ ४८ ॥

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । कपालेश्वरदेवस्य स्वर्गद्वारेश्वरं शृणु ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कपालेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

स्वर्गद्वारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीरुद्र उवाच

स्वर्गद्वारेश्वरं लिङ्गं नवमं विद्धि पार्वति! । सर्वपापहरं देवि! स्वर्गमोक्षफलप्रदम्
यदा देवि समायाताः कैलासे पर्वतोत्तमे ।
अश्विन्याद्या भगिन्यस्तास्त्वां दृष्ट्वा विस्मयान्विताः ॥ २ ॥
निमन्त्रिता वयं यज्ञे सकान्ताः सपरिग्रहाः । स्नेहेनदेवि तातेन बहुमानपुरःसरम्
कच्चित्स्मृता विशालाक्षि! किं वा तातस्य विस्मृतिः ।
कारणं किं समुद्दिश्य तातेन न निमन्त्रिता ॥ ४ ॥
तासां तद्वचनं श्रुत्वा अवमानात्तदा त्वया । प्राणामुक्तास्तुयोगेनपुरतस्तासुपार्वति
अथ ताः शोकसंतप्तागतायत्रप्रजापतिः । आचख्युःसकलं वृत्तं दक्षस्याग्रे यथातथम्
तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं दक्षो नोवाच किञ्चन ॥ ७ ॥
मया दृष्ट्वा यदादेवि भूमौ पञ्चत्वमागता । यज्ञप्रध्वंसनार्थाय तदा वै प्रेरिता गणाः
ते गत्वाऽथगणारौद्राःशतशोऽथसहस्रशः । विरूपा भीषणारौद्रानानाशस्त्रामहाबलाः
मुमुचुः शरवर्षाणि कुर्वन्तो भैरवान् रवान् ॥ ९ ॥
ततो देवगणाःसर्वेवसवःसहभास्करैः । विश्वेदेवाश्चसाध्याश्चधनुर्हस्तामहाबलाः
युद्धाय च विनिष्क्रान्ता मुमुचुः सायकान्सितान् ।
ते समेत्याथ युयुधुः प्रमथा विबुधैः सह । मुमुचुः शरवर्षाणि वारिधारा यथाघनाः

गत सर्वेषु तीर्थेषु नैव मुक्तस्तु हत्यया । ततोदु खी सुसन्तप्तो नैव लेभे सुखं क्वचित्
एतस्मिन्नन्तरे देवी वागुवाचाशरीरिणी ।
गच्छायन्तीं स्वयं नाथ किमर्थं खिद्यते वृथा ॥ ३६ ॥
महाकालवन पुण्य त्वया नाथ विनिर्मितम् । कपालकरसंस्थान रुद्रमद्भुतदर्शनम्
न जानासि कथं क्षेत्र महापातकनाशनम् ॥ ३७ ॥
तस्मिन्क्षेत्रे महल्लिङ्ग गजरूपस्य सन्निधौ । विद्यते पश्य देवेश ब्रह्महत्या प्रणश्यति
ततोऽहमागतस्तूर्णं वाक्यं श्रुत्वा तदोत्तमम् ।
महालिङ्ग मया दृष्ट कपालकरसंस्थितम् ॥ ३९ ॥
मम हस्तात्तदा विप्रा कपालमपतद्भुवि । कपालेश्वरदेवोऽयमिति नाममयाकृतम्
पश्यन्तु विप्रास्त देवकपालेश्वरसञ्ज्ञकम् । यस्य दर्शनमात्रेणमिथ्यकल्कामविषयथ
लिङ्ग दृष्ट तदा तत्तु कपालेयंदुभिवृ्'सम् ।
कृतार्थास्ते तदा जातास्तस्य लिङ्गस्य दर्शनात् ॥ ४२ ॥
अतोऽसौ भुवि विख्यात कपालेश्वरसञ्ज्ञक ।
येऽर्चयन्ति महादेवि कपालेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ ४३ ॥
कृतपुण्या नरा देवि तेयान्ति परम पदम् । कृत्वाऽपि पातक घोरं ब्रह्महत्यादिकनर
त पाप विलय याति लिङ्गस्यास्य च दर्शनात् ।
कर्मणा मनसा वाचा यत्पाप समुपार्जितम् ।
तत्क्षपयति देवोऽय चतुर्दश्या समर्चित ॥ ४५ ॥
प्रसङ्गादपि ये पूजा करिष्यन्ति धरातले ।
तेऽपि कामानवाप्स्यन्ति यांश्च कांश्चित्सुदुर्लभान् ।
ऐश्वर्यं धर्ममतुल दीर्घमायुररोगताम् ॥ ४६ ॥
नि सपत्नत्वमतुल यच्चान्यत्तदवाप्नुयात् । अतीव पापिनो ये च क्रूरकर्मरतानरा
विपाप्मानो भविष्यन्ति गणेशाश्चममप्रिये । नियमेन प्रपश्यन्ति ये देव वत्सरंप्रिये
॥ पश्यन्ति तनु त्यक्त्वा मदीय भवन प्रियम् ॥ ४८ ॥

गोप्तास्रष्टा समर्थश्च स चास्माकं परा गतिः । सएवाराधनीयस्तुसचपूज्यतमो मतः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गम्यतां शरणं शिवः । उपायंकथयिष्यामिश्रूयतांसावधानतः
त्रिदशैः सहितः शक्र! तूर्णंगच्छममाज्ञया । महाकालवने रम्ये कपालेश्वरपूर्वतः ॥
स्वर्गद्वारपरं लिङ्गं विद्यते तत्तु वासव! । लोकानामनुकम्पार्थं महादेवेन निर्मितम्
तमाराधयत क्षिप्रं स वः कामं प्रदास्यति ॥ ३६

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा त्रिदशा मुदिता भृशम् । समायाता महादेवि महाकालवनंतदा
स्वर्गद्वारप्रदं पुण्यं ददृशुर्लिङ्गमुत्तमम् । तस्य दर्शनमात्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
स्वर्गलोकं गताः सर्वे यथापूर्वंयशस्विनि। निःशङ्कांस्त्रिदशान्दृष्ट्वाविज्ञप्तोऽहंगणैस्तदा
मयाज्ञप्ताश्च ते सर्वे निवर्त्तध्वं गणोत्तमाः । स्वयमेवप्रतिज्ञातं कथंमिथ्याभविष्यति
स्वर्गद्वारप्रदो देवो दृष्टो देवैर्न संशयः । महाकालवने रम्ये कथितो हि विरञ्चिना

स्वर्गद्वारं गताः सद्यः शक्राद्यास्त्रिदशा गणाः ।
अतःप्रभृति विख्यातः स्वर्गद्वारेश्वरः शिवः ॥ ४२ ॥
ख्यातिं यास्यति भूलोके स्वर्गलोकप्रदायकः ॥ ४३ ॥

येपश्यन्तिनरालोकेस्वर्गद्वारेश्वरंशिवम् । तेयान्तिस्वर्गलोकंहिस्वर्गद्वारेश्वरार्चनात्
स्वर्गद्वारेश्वरं देवं ये पश्यन्ति प्रसङ्गतः । न तेषां भयमस्तीति कल्पकोटिशतैरपि
अश्वमेधसहस्रेण यत्पुण्यं समुदाहृतम् । तत्पुण्यमधिकं देवि!स्वर्गद्वारेश्वरार्चनात्

जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
य (त) त्पापं विलयं यान्ति (ति) लिङ्गस्यास्य च कीर्त्तनात् ॥ ४७ ॥

अष्टम्यां वाचतुर्दश्यामथवाचन्द्रवासरे । ये पश्यन्तिनराभक्त्यास्वर्गद्वारेश्वरंशिवम्
ते देवि! मे शरीरं तु प्रविष्टास्त्वपुनर्भवाः ॥ ४८ ॥
दशकोटिसहस्राणितस्मिँल्लिङ्गे तु पूजिते ।
पूजितानि भवन्तीह लिङ्गान्यन्तःस्थितानि तु ॥ ४९ ॥
स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य कीर्त्तनाद्यजनात्तथा ।
सुखेन स्वर्गमायान्ति यथा कामानवाप्नुयात् ॥ ५० ॥

तेषां मध्ये गणो नाम वीरभद्रो महाबलः । स शक्रं ताडयामास शूलेन हृदये तथा
स तु तेन प्रहारेण विसंज्ञो निपपात ह । अथ मुष्ट्या हतं कुम्भे नागमैरावतं तथा
स हतः सहसा तेन गजेन्द्रो भैरवान्रवान् । विनदन्भयमास्थाय पश्चाद्धुपाद्रवत्
पतन्निमग्नन्तरे देवाः कृतास्तेन पराङ्मुखाः । ततस्ते शरणं जग्मुर्विष्णुं विश्वैकनायकम्

ततः कोपसमाविष्टो विष्णुर्दृष्ट्वा दिवालयान् ।
गणैर्विद्रावितान्सर्वान्मुमोचाशु सुदर्शनम् ॥ १९ ॥

तदापतन्तं वेगेन चक्रं विष्णोः सुदर्शनम् । प्रसार्य वक्त्रं सहसा ग्रस्तं चकार ह
तस्मिन्क्षणे तदा प्रहृत्य मोचे दैत्यसूदनः । क्रुद्धो नारायणो देवि वीरभद्रमुपाद्रवत्
गृहीत्वा पादयोर्भूमौ निनधानातिदूरतः । हन्यमानस्तथा भूमौ गदया चक्रसुदर्शनम्
रुधिरोद्गारसंयुक्तं चक्रमास्याद्विनिर्गतम् । मत्तो लब्धवरो देवि वीरभद्रो गणोत्तमः

न तु पञ्चत्वमापन्नो गदया ताडितोऽपि सः ॥ २० ॥

ततस्तु प्रमथाः सर्वे विष्णुना चक्रशार्ङ्गिणा । इत्यद्भुतं सहसा प्राप्ताय बाहुर्विसर्जित

तं दृष्ट्वा शूलहस्तं तु विष्णुरन्तर्धीयत ।
इन्द्रोऽपि त्रिदशैः सार्द्धं पितृभिर्ब्राह्मणैः सह ॥ २२ ॥

भयत्रासपरात्मा ततश्चान्तर्हितो गतः । एवं विध्वंसिते यज्ञे नष्टो देवगणो यदा ॥
मया निरूपितो देवि स्वर्गद्वारे गणस्तदा । प्रवेशो नैव दातव्यस्त्रिदशानां गणेश्वर
द्वारपालो ह कर्तव्यो यत्नतः शासनान्मम । य कोऽपि दृश्यते देव सहसा यो न संशयः

उद्गमश्च नरो जातः स्वर्गो वृथा विनिर्मिता ॥ २६ ॥

स्वर्गद्वारे निरुद्धे तु शक्राद्या मघवाद्धताः । ब्रह्मलोकं गता देवा मन्त्रयित्वा पुनः पुनः
तस्यागम्य कथितं सर्वं स्वर्गद्वारावरोधनम् । महेश्वरगणेनाग्रे स्वर्गद्वारं पितामह
प्रयत्नो दुर्लभो जातः इन्द्रादीनां विरोधने । केनोपायेन यास्यामः स्वर्गलोकं तपोधिपम्

नास्माकं जायते प्रीतिर्विना स्वर्गं पितामह ॥ ३० ॥

इति मत्वा ततः श्रुत्वा सुरज्येष्ठः तदा । आगत्य शङ्करो देवो महादेवो जगत्पतिः
स्तुत्वा प्रसन्नस्त्वां वै गृहीत्वा दारकारक । तुष्टं मन्त्रमुपा स्वर्गो विना तस्य प्रसादतः

गोप्तास्त्रष्टा समर्थश्च स चास्माकं परा गतिः । सएवाराधनीयस्तुसचपूज्यतमो मतः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गम्यतां शरणं शिवः । उपायंकथयिष्यामिश्रूयतांसावधानतः
त्रिदशैः सहितः शक्र! तूर्णंगच्छममाज्ञया । महाकालवने रम्ये कपालेश्वरपूर्वतः ॥
स्वर्गद्वारपरं लिङ्गं विद्यते तत्तु वासव! । लोकानामनुकम्पार्थं महादेवेन निर्मितम्
तमाराधयत क्षिप्रं स वः कामं प्रदास्यति ॥ ३६
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा त्रिदशा मुदिता भृशम् । समायाता महादेवि महाकालवनंतदा
स्वर्गद्वारप्रदं पुण्यं ददृशुर्लिङ्गमुत्तमम् । तस्य दर्शनमात्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
स्वर्गलोकं गताः सर्वे यथापूर्वंयशस्विनि। निःशङ्कांस्त्रिदशान्दृष्ट्वाविज्ञतोऽहंगणांस्तदा
मयाज्ञताश्च ते सर्वे निवर्त्तध्वं गणोत्तमाः । स्वयमेवप्रतिज्ञातं कथंमिथ्याभविष्यति
स्वर्गद्वारप्रदो देवो दृष्टो देवैर्न संशयः । महाकालवने रम्ये कथितो हि विरञ्चिना
स्वर्गद्वारं गताः सद्यः शक्राद्यास्त्रिदशा गणाः ।
अतःप्रभृति विख्यातः स्वर्गद्वारेश्वरः शिवः ॥ ४२ ॥
ख्यातिं यास्यति भूलोके स्वर्गलोकप्रदायकः ॥ ४३ ॥
येपश्यन्तिनरालोकेस्वर्गद्वारेश्वरंशिवम् । तेयान्तिस्वर्गलोकंहिस्वर्गद्वारेश्वरार्चनात्
स्वर्गद्वारेश्वरं देवं ये पश्यन्ति प्रसङ्गतः । न तेषां भयमस्तीति कल्पकोटिशतैरपि
अश्वमेधसहस्रेण यत्पुण्यं समुदाहृतम् । तत्पुण्यमधिकं देवि!स्वर्गद्वारेश्वरार्चनात्
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
य (त) त्पापं विलयं यान्ति (ति) लिङ्गस्यास्य च कीर्त्तनात् ॥ ४७ ॥
अष्टम्यां वाचतुर्दश्यामथवाचन्द्रवासरे । ये पश्यन्तिनराभक्त्यास्वर्गद्वारेश्वरंशिवम्
ते देवि! मे शरीरं तु प्रविष्टास्त्वपुनर्भवाः ॥ ४८ ॥
दशकोटिसहस्राणितस्मिँल्लिङ्गे तु पूजिते ।
पूजितानि भवन्तीह लिङ्गान्यन्तःस्थितानि तु ॥ ४९ ॥
स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य कीर्त्तनाद्यजनात्तथा ।
सुखेन स्वर्गमायान्ति यथा कामानवाप्नुयात ॥ ५० ॥

अकामा वा सकामा वा ये पश्यन्ति दिने दिने ।
तेऽपि पुण्या महाभागा स्वर्गलोकं प्रयान्ति वै ॥ ५१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये स्वर्गद्वारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

कर्कोटकेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

कर्कोटेश्वरसंज्ञं च दशमं विद्धि पार्वति । यस्य दर्शनमात्रेण विषैर्नैवाभिभूयते ॥ १
मात्रा च भुजगाः शप्ता स्ववचोभङ्गकारणात् । मद्वचनान्यथस्माद्धक्षि पापकर्मणि
यज्ञे हि धक्ष्यत्यस्मान्नजनमेजयस्य हि । श्रुत्वा शापं ततो मां मृत्युर्भीताश्च पन्नगा
गता सर्वे यथास्थानं जीवनार्थं यशस्विनि । हिमशैलं गतः शेषस्तपश्चर्तुं तत्र प्रिये
तपश्च कम्बलो नाम लोकं पैतामहं गतः । शङ्खचूडोऽथ नागेन्द्रो मणिपूरं गतस्ततः
यमुनाम्भसि सल्लीनं कालियो भयविह्वलः ॥ ६ ॥
एवं ते सर्पराजानो नागाः सुस्मितशोभने । कुरुक्षेत्रे गता सर्वे तपश्चर्तुं यशस्विनि
धृतराष्ट्रस्तथा नागः प्रयागमगमत् प्रिये ॥ ७ ॥
एलापत्रस्तु नागेन्द्रो ब्रह्मलोकं जगाम ह । प्रणम्य तमथोवाच मातुरुत्सङ्गसंस्थितः
मात्रा शप्ता वयं देव क्रुद्धया तव सन्निधौ । सा कथं शापकाले तु भवतापि निवारिता

ब्रह्मोवाच

निषिद्धा नैव तं मातामाविक्रमचलन्मम । सर्पसत्रो हि भविता राज्ञो जनमेजयस्य च
त्वं तत्र सममाद्य महाकालवनं व्रज । शान्त्यर्थं सर्वनागानामव्यया युक्तस्तु सत्वरम्

एकादशोऽध्यायः

सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

लिङ्गमेकादशं विद्धि देवि सिद्धेश्वरं शुभम् । वीरभद्रसमीपे तु सर्वसिद्धिप्रदायकम्
देवदारुवने पूर्वं विप्रायोगसमन्विता । स्पर्द्धया सिद्धिलब्ध्यर्थं तपोऽकुर्वंस्तपस्यता
शाकाहारा निराहारा पर्णाहारास्तथापरे । दन्तोलूखलिनः केचिदश्मकुट्टास्तथापरे
केचिद्वीरासनरता धूम्रपानरता परे । पादैरूर्ध्वैरधोवक्त्रैः केचिदम्बुवकाशिका ॥

इच्छ्रचान्द्रायणादीनि कुर्वन्त्यन्ये समाहिता ।
न क्वापि परमा प्राप्ता सिद्धिर्वर्षशतैरपि ॥ ५ ॥
दु खार्ताश्चिन्तयामासु कथं सिद्धिर्भविष्यति ।
तपसा दुष्करेणेव सिद्धिर्नैवात्र लभ्यते ॥ ६ ॥

व्यर्थाश्रुतिस्तथा जाता या गीतामुनिभि पुरा । तपसालभ्यतेसर्वंतपोमूलमिदञ्जगत्
अञ्जन गुटिकाचैवपादुकागमन तथा । खड्गसिद्धिर्विलेपाश्चिन्तामणिरपेक्षितम्
एवतेऽचिन्तयन्सिद्धा परमामर्षपूरिता । उत्सार्यंतत्तपोधर्मं नास्तिक्य भावमागता

एतस्मिन्नेव काले तु वागुवाचाशरीरिणी ।
आश्वासयन्ती तान्सिद्धान्माता पुत्रमिवौरसम् ॥ १० ॥

माऽधर्मन्यथमार्या हि श्रुतिर्व्यर्थामहीतले । तपोमनिन्द्यधर्मोयंश्रूयतामत्रकारणम्
भविता भवता सिद्धिरत्र नैव तपोधना । स्पर्द्धयासिद्धिकामैश्च तपस्तप्तन्तुवृथा
कामाच्च तपसोहानिरहङ्काराच्चविस्मय । क्रोधाल्लोभात्तथा मोहाज्जायतेनात्रसशय

स्पर्द्धया रहितो यस्तु कामक्रोधविवर्जितः ।
करोति कर्म भावेन स तप फलमश्नुते ॥ १४ ॥

वासनावासितो यस्तु एकचित्त समाहित । आस्तिक श्रद्दधानश्चसतप फलमश्नुते

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणिलोष्ठवत् । यः पश्यति नरोनित्यं स तपः फलमश्नुते
ईदृशे पुरुषे विप्रास्तपःसिद्धिश्च दृश्यते । भवन्तः स्पर्द्धया चैव कृतवन्तश्च दुष्करम्

तस्माद्वर्षसहस्रेण नैव सिद्धिर्भविष्यति ।
यदि मद्वचनं कार्यं निर्विकल्पेन चेतसा ॥ १८ ॥

महाकालवनं गत्वा यूयं सर्वे समाहिताः । आराधयध्वं देवेशं सदासिद्धिप्रदायकम्
दर्शनात्तस्यदेवस्यलभ्यते सिद्धिरुत्तमा । सनकाद्योऽपि ये देवमासाद्ययोगतत्पराः

पूजयित्वाऽपि भावेन संसिद्धिं परमां गताः ॥ २० ॥

राज्ञा वसुमता पूर्वं खड्गसिद्धिःसुदुर्लभा । प्राप्ता दर्शनमात्रेण लिङ्गस्यास्य प्रभावतः
पादुकागमनं लब्धं हैहयेन महात्मना । कृतवीरात्मजेनैव बाहूनां च सहस्रकम् ॥
अदृश्यकरणं चैव प्राप्तं चानूरुणा पुरा । स्वर्णसिद्धिश्च सिद्धेन पादलेपो रसायनम्

अञ्जनश्च तथा लब्धं लिङ्गस्यास्य च दर्शनात् ॥ २३ ॥

आकाशवचनं श्रुत्वा ते सिद्धा विस्मयान्विताः ।
समायाता मुदा युक्ता महाकालवनोत्तमे ॥ २४ ॥

सर्वसिद्धिप्रदं चैव ददृशुर्लिंगमुत्तमम् । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य संसिद्धिं परमांगताः

ततः प्रभृति विख्यातो देवैः सिद्धेश्वरः परः ।
ये पश्यन्ति नरा देवि! देवं सिद्धेश्वरं परम् ।
न तेषां दुर्लभा सिद्धिर्भविष्यति महीतले ॥ २६ ॥
सिद्धेश्वरं गमिष्यन्ति भावहीनाः प्रसङ्गतः ।
संसिद्धास्ते भविष्यन्ति नियता नात्र संशयः ॥ २७ ॥

महापातकसंयुक्तो यस्तु सिद्धेश्वरंस्मरेत् । संसिद्धस्तुभवेन्नूनंज्ञानैश्वर्यसमन्वितः
नियमेन तुयःपश्येद्देवंसिद्धेश्वरंपरम् । षण्मासाज्जायतेसिद्धिर्वाञ्छितायाभवेद्धृदि
अष्टम्यां च चतुर्दश्यांकृष्णपक्षेविशेषतः । सिद्धेश्वरंतुयःपश्येत्सपश्येन्ममन्दिरम्
अपुत्रो लभते पुत्रंनिर्धनस्तु धनं लभेत् । विद्यार्थीलभतेविद्यांभार्यार्थीलभतेस्त्रियम्

सङ्क्रान्तौ सोमवारे च ग्रहणे चैव योऽर्चयेत् ।

कुलानां शतमुद्धृत्य पैतृकं स्थापितं दिवि । मोदते समलोकेन यावदिन्द्राश्चतुर्दश
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । सिन्धुरेश्वरस्य देवस्य लोकानन्दकरः प्रभुः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सिन्धुरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

लोकपालेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

द्वादशं विद्धि देवेशि लोकपालेश्वरं शिवम् । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते
पुरा दैत्यगणा देवि! प्रादुर्भूता महाबलाः । हिरण्यकशिपोर्वंशे स्वबलादतिगर्विताः
तैरियं वसुधा व्याप्ता सर्वोल्लङ्घनकामना ।
विध्वस्ता ह्याश्रमाः सर्वे यज्ञा विध्वंसितास्तथा ॥ ३ ॥
ब्राह्मणा भक्षितास्तैश्च वेदवेदाङ्गपारगाः । दूषितान्यग्निकुण्डानि पांसुना मधुना तथा
विध्वस्ताः कलशाः सर्वे यज्ञपात्रादि च धर्षितम् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारा स्वधास्वाहाविवर्जिता ॥ ५ ॥
कृता च धरणी देवि तस्यजोस्मवायमयत् । लोकपालास्ततो भीता माधवं शरणं गताः
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे क्षुधार्ता दुःखिता वयम् । धर्मध्यानविगता देव यज्ञभागविनाकृताः
वयं त्रातास्त्वया पूर्वं नमुचेर्वधपर्वणि । हिरण्यकशिपो रौद्रात्तारकाच्च सुरोत्तम
तथा वत्स सुरश्रेष्ठ भयं न समुपस्थितम् ॥ ९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा शङ्खचक्रगदाधरः । जगाम स ततो दैत्याः प्रविष्टा वरुणालयम्
ते निष्क्रम्य ततो रात्रौ निघ्नन्ति द्विजसत्तमान् ।
तापसान्दीक्षितान्देवि धर्मव्रतपरायणान् ॥ ११ ॥

त्वमग्रणीः प्रजासर्गेत्वदधीनमिदं जगत् । कुरु सृष्टिं विचित्रांचकंदर्प मम शासनात्
इत्युक्तो ब्रह्मणादेवि जगामादर्शनं स्मरः । क्रुद्धेनब्रह्मणाशप्तोविनाशं यास्यसिध्रुवम्
मद्वचो न कृतं यस्माद्भवनेत्रोद्भवाग्निना । तच्छ्रुत्वा दारुणं शापं कन्दर्पो भयविह्वलः
ब्रह्माणं प्रणतो भूत्वा प्रह्वः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ९ ॥
प्रसीद देवदेवेश अनन्यगतिके मयि । नहि निर्भरतां यान्ति प्रभूणामाश्रिते रुषः

ब्रह्मोवाच

यस्मात्ते भक्तिरतुलाममोपरिमहामते । तस्मात्स्थानानिदत्तानितवद्वादशसङ्ख्यया
कामिनीनां कटाक्षेषु केशपाशेषु चैव हि । जघनस्तननाभौ तु दोर्मूलेऽधरपल्लवे
वसन्ते कोकिलालापे ज्योत्स्नायां जलदागमे ।
कामार्थे च मया दत्तौ सबलौ मधुमाधवौ ॥ १३ ॥
स्त्रियोऽमृतमया धन्याः संसारे सारकारणम् ।
रत्नैश्चैव निधानानि सन्तानार्थं विनिर्मिताः ॥ १४ ॥
एताभिर्वरनारीभिर्जगदेवं वशीकृतम् । स्त्रीभिरासक्तमनसः कुतः पुंसो मनस्विता
कुतश्चापि स्ववशता स्त्रीगौरवगतस्य च । स्त्रिय एव विनाशाय पूर्वेषाममरद्विषाम्
स्त्रिय एव हि देवानामिन्द्रादीनां भयाश्रयाः । नारीभिर्लब्धवृत्तश्चपुरुषस्यापिसर्वतः
पराभवः प्रभवति विवशत्वं च भीषणम् । स्त्रीभिराजितचित्तस्यसुलभोविपदोदयः
इत्युक्तोमन्मथोभद्रे ब्रह्मणा च विसर्जितः । दत्त्वा वै पुष्पकं चापं तथावैबाणपञ्चकम्
रतिप्रीतिसमायुक्तो झषकेतुर्मनोभवः । विडम्बयति लोकांस्त्रीन्ससहायो धनुर्धरः
पण्डितांस्तापसान्वीरान्सुधियश्च जितेन्द्रियान् ।
काले कुशलभावज्ञान्देवान्पितृगणांस्तथा ॥ २१ ॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरान् । कृमिकीटपतङ्गांश्च भूतग्रामं चतुर्विधम्
ममार्थे च कृतो यत्नश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः । दुःसाध्यः शङ्करो देवः श्रूयते भुवनत्रये
तस्य देवस्य कः शक्तः क्षोभणार्थं मया विना ॥ २३ ॥
इत्युक्त्वा तु समायावो यत्राऽहं तपसि स्थितः ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य गमस्य विधस्य यत्फलम् । तत्फलमनेदेवि लोकपालेश्वराचनात्
प्रसङ्गेनापि य पश्येल्लोकपालेश्वरं शिवम् । मोदते स्वर्गलोकेसलोकपालै समसदा
सह कान्तो सोमवारे च चतुर्दश्यां विशेषत । येपश्यन्तितवाभक्त्याह्यष्टम्यामयनद्वये
ते दुर्दर्शा भवन्तीह शत्रूणां सङ्गरे तथा । भूना यान्ति विमानेन शक्रलोकसुदुर्लभम्
क्रमेण वारुण लोके धनदस्य यथासुखम् । पुन पैतामहं यान्ति लोक देवि सुदुर्लभम्
एव ते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन । द्वुलभ परमो गुह्य कामेश्वरमथो शृणु

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये लोकपालेश्वरमाहात्म्यवर्णन नामद्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्याय

कामेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

हर उवाच

विद्धि कामेश्वरं देवि तत्र लिङ्ग त्रयोदशम् । यस्य दर्शनमात्रेण सौभाग्य जायते शुभम्
ब्रह्मणोऽध्यायमानस्य प्रजाकामस्य पार्वति । उत्पन्नोऽकस्माकारो लावण्यनिधयो महान्

अलङ्काराश्रित कान्तो दिव्यमण्डनमण्डित ॥ २ ॥
तं दृष्ट्वा परम दिव्य कान्त सौभाग्यशोभितम् ।
अप्रतक्यमविज्ञाय ब्रह्मा प्रोवाच त तदा ॥ ३ ॥

कोऽसवान्किनिमित्त तु इह वा किमुपागत । यद् त्व मन्मथाकार कन्दर्प इव लक्ष्यसे
ब्रह्मणो वचन श्रुत्वा प्रोक्त तनैव सादरम् ।
अहते सृष्टिकामस्य भावेन विहितोऽधक । प्रजापते महाभाग किं करोमि दिशस्वमाम्

ब्रह्मोवाच

मया तु सृष्टिकामेन ये प्रजापतय कृता । न त शक्ता प्रजा स्रष्टु कामैतेसुखमाप्नुयु

त्वमग्रणीः प्रजासर्गेत्वदधीनमिदं जगत् । कुरु सृष्टिं विचित्रांचकंदर्प मम शासनात्
इत्युक्तो ब्रह्मणादेवि जगामादर्शनं स्मरः । क्रुद्धेनब्रह्मणाशप्तो विनाशं यास्यसिध्रुवम्
मद्वचो न कृतं यस्माद्भवनेत्रोद्भवाग्निना । तच्छ्रुत्वा दारुणं शापं कन्दर्पो भयविह्वलः
ब्रह्माणं प्रणतो भूत्वा प्रह्वः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ६ ॥
प्रसीद देवदेवेश अनन्यगतिके मयि । नहि निर्भरतां यान्ति प्रभूणामाश्रिते रुषः

ब्रह्मोवाच

यस्मात्ते भक्तिरतुलाममोपरिमहामते । तस्मात्स्थानानिदत्तानितवद्वादशसङ्ख्यया
कामिनीनां कटाक्षेषु केशपाशेषु चैव हि । जघनस्तननाभौ तु दोर्मूलेऽधरपल्लवे
वसन्ते कोकिलालापे ज्योत्स्नायां जलदागमे ।
कामार्थे च मया दत्तौ सबलौ मधुमाधवौ ॥ १३ ॥
स्त्रियोऽमृतमया धन्याः संसारे सारकारणम् ।
रत्नैश्चैव निधानानि सन्तानार्थं विनिर्मिताः ॥ १४ ॥
एताभिर्वरनारीभिर्जगदेवं वशीकृतम् । स्त्रीभिरासक्तमनसः कुतः पुंसो मनस्विता
कुतश्चापि स्ववशता स्त्रीगौरवगतस्य च । स्त्रिय एव विनाशाय पूर्वेषाममरद्विषाम्
स्त्रिय एव हि देवानामिन्द्रादीनां भयाश्रयाः । नारीभिर्लब्धवृत्तश्च पुरुषस्यापिसर्वतः
पराभवः प्रभवति विवशत्वं च भीषणम् । स्त्रीभिराजितचित्तस्यसुलभोविपदोदयः
इत्युक्तोमन्मथोभद्रे ब्रह्मणाच विसर्जितः । दत्वा वै पुष्पकं चापं तथावैबाणपञ्चकम्
रतिप्रीतिसमायुक्तो झषकेतुर्मनोभवः । विडम्बयति लोकांस्त्रीन्ससहायो धनुर्धरः
पण्डितांस्तापसान्वीरान्सुधियश्च जितेन्द्रियान् ।
काले कुशलभावज्ञान्देवान्पितृगणांस्तथा ॥ २१ ॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरान् । कृमिकीटपतङ्गांश्च भूतग्रामं चतुर्विधम्
ममार्थे च कृतो यत्नश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः । दुःसाध्यः शङ्करो देवः श्रूयते भुवनत्रये
तस्य देवस्य कः शक्तः क्षोभणार्थं मया विना ॥ २३ ॥
इत्युक्त्वा तु समायातो यत्राऽहं तपसि स्थितः ।

रत्यायुतः स गर्वेण सम्प्राप्य मधुनाश्रितः ॥ २५ ॥
दृष्टवान्सा तदा कामः पिङ्गकूटजटाधरम् ।
किञ्चिन्निमीलितोऽनिद्र योगानन्दकृतभूषणम् ॥ २६ ॥

प्रेक्षमाणमृजुस्थान नासावंशाग्रलोचनम् । ततोऽवमरकाकारमालं व्याश्रयमाश्रकम्
प्रविष्ट करन्ध्रेण मदनो हृदये मम । स्वधर्मे कामतसेन सम्मृता भवती मया ॥ २७
समाधिमावना दिव्या लक्ष्यमरयश्रुरूपिणी । गता मम विमलता तत्क्षणादेवपावति
उन्मत्तता गतोऽहं वै विहर्तिमदनारिमकाम् । निराकृत मयादेवि धैर्यमालम्ब्यपलत
हृष्टे मयास्मद्धृदये मन्मथोऽपथ्यकारक । देहस्य निर्दहिष्यामि प्र याहारप्रयोगत
समानुधीनमेयोनियोगिम प्रविशेचदि । वाह्यार्थधारणाहृत्वा देहसस्थे विनिर्दहेत्

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि सन्तप्तो मदनो भृशम् ।
इक्षुशरासो दुर्ज्ञेयो नि वृत्तो व्यसनात्मक ॥ ३२ ॥

सहकारमतोम्र्ले भूत्वा मधुमनस्ततः । मुमोच मोहननाम मार्गणं मकरध्वज ॥
स चापि हृदयेप्राप्तो मदीयेलील्याधार । ततोऽङ्कुशितो देवि नेत्र हृत्याप्तृतीयकम्
तन्नेत्रवह्निस्फुलिङ्गेन क्रोधाताभाकचासिताम् । गमिताभस्मसात्तूर्णं कदर्प कामिदर्पक
तस्मिन्दग्धेतत कामे रति शोकपरायणा । विललाप सुदुःखार्त्तापतिभक्तिपरायणा

हा नाथ हा मम प्राण हा स्वामिन्कि जहासि माम ।
पतिव्रता पतिप्राणा कस्मान्मा त्यजसि प्रभो ॥ ३३ ॥

एवं च विलपती ता वागुवाचाशरीरिणी । मा रुद रह विशालाक्षिपुनरेव पतिस्तव
प्रसादाद्देवदेवस्य उत्थास्यति शिवस्य च ॥ ३४ ॥

प्रार्थितोऽहं ततो देवि तस्मिन्नवसरे प्रिये । एव कामस्त्वया दग्ध क्रोधेन परमेश्वर
येनानेन प्रभो नश सृष्टिवै धरणातले । कृपा विधेहि देवेश दीनाये देहि मे पतिम्
ततोऽहमब्रुव देवि ता रति दीनभाषिणाम् । अनेन मदनेनाद्य हृत तरलितं मन ॥
ततो दग्ध मयाम्याङ्ग जीवये त्वत्प्रसादत । अङ्ग दग्धमयास्याद्य तृतीयनेत्रवह्निना
तस्मादनगएवैष प्रजासुविचरिष्यति । अनङ्गोऽपि यदावस्या लिङ्ग सलीवयिष्यति

देवानामनुकम्पार्थमनङ्गोऽसौ कृतो मया। त्रिदशैश्चसमादिष्टःकामोऽवन्त्यांजगामह
तत्र गत्वा ह्यनङ्गोऽपि भक्तिभावसमन्वितः। ददर्श परमं लिङ्गं समीहितफलप्रदम्

प्रोक्तं तुष्टेन लिङ्गेन काम काममवाप्स्यसि।
अनङ्गोऽपि समर्थस्त्वं भविष्यसि न संशयः॥ ४६॥
जन्म प्राप्स्यति रुक्मिण्या गर्भे कृष्णस्य सङ्गमात्।
भविता विश्रुतो लोके नाम्ना शम्बरसूदनः॥ ४७॥
अनङ्गेन त्वया यस्मान्मनसा तोषितोऽपि सन्।
तस्मात्ख्याति गमिष्यामि त्वन्नाम्ना कामःसर्वदा॥ ४८॥

ये त्वांपश्यन्तिकन्दर्पंभक्त्यापरमयायुताः।प्राप्नुवन्तिगतिंनित्यांतेसदानन्ददायिकाम्
दीर्घायुषो भविष्यन्तिरूपं तेषांभविष्यति। कुलंचनिर्मलंतेषांये त्वांपश्यंतिमन्मथ

ऐश्वर्यं परमान्भोगान्स्त्रियो दिव्यकलान्विताः
अरोगा सन्ततिस्तेषां भविष्यति न संशयः॥ ५१॥

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां येमां पश्यन्तिभक्तितः। देवलोकंसमासाद्यमोदिष्यन्तिहितेनराः

यक्षा गणेश्वराः सिद्धाः सिद्धगन्धर्वसेविताः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति विमानैः सर्वकामिकैः॥ ५२॥

इत्युक्तःकामदेवोऽपि लिङ्गेन परमेश्वरि!। तत्राश्रमपदं चक्रेतस्य लिङ्गस्य सन्निधौ
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः। कामेश्वरस्य शृणवग्रे कुटुम्बेश्वरवैभवम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कामेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

कुटुम्बेश्वरसञ्ज्ञं तु देवं विद्धि चतुर्दशम् । यस्य दर्शनमात्रेण गोत्रवृद्धिश्च जायते ॥
यदा देवासुरैः पूर्वं मथितः क्षीरसागरः । तदा च निर्गतं देवि दुर्धरं तु महद्विषम्
कालकूटमथ रौद्रविषं ज्वालाविमारणम् । दहते च भगवन् सदेवासुरमानुषम् ॥
ततो देवगणाः सर्वे सासुराः यक्षराक्षसाः । विषज्वालाविनिर्भीताश्च मामेव शरणं गताः
स्तुतोऽहं विविधैः स्तोत्रैर्विमुक्त वरानने । अमृतार्थे कृतो यत्नः सम्प्राप्तं मरणं विभो
अन्यथा चिन्तितं कार्यं दैवेन कृतमन्यथा । प्रतिमथितुमारब्धस्माभिर्वै क्षीरसागरम्
उत्पन्नं कालकूटं तु येन दग्धं चराचरम् । ततोऽस्माकं भयं जातं कालकूटोद्भवं प्रभो
रक्षां कुरु जगन्नाथ शरणागतवत्सल । हितार्थं सर्वलोकानां यथा न प्रलयो भवेत्

मया तेषां वचः श्रुत्वा त्रिदशानां यशस्विनि ।
मायूरं रूपमास्थाय देवानामनुकम्पया ।
कण्ठे धृतं महारौद्रं कालकूटाह्वयं तदा ॥ ६ ॥

रूपमानं सहस्राणां कण्ठस्थातुमामकम् । विषवृक्षमसेव्यं तु ततोऽहं तु खिन्नोऽभवम्
नदीसप्तसमायुक्ता गङ्गा दृष्टा च पार्श्वतः । सा च प्रोक्ता मया देवि सादरं स्तुतिपूर्वकम्
कालकूटविषं गङ्गे वर्गमाश्रय महोदधिम् । गत्वा शक्ता समानेतुं त्वां विना लोकपावनि

गङ्गोवाच

नास्ति मे भगवञ्छक्तिर्विषोद्धरणे जगत्पते । रौद्ररूपी स्म दुःसेव्यो दहत्येव न संशय

शतद्रुस्तु यमुना प्रोक्ता न समर्था सरस्वती ।
अन्याश्च विविधा नद्यो मयाहूता पृथक्पृथक् ॥ १४ ॥

अशक्तास्ताः समानेतुं कालकूटाह्वयं विषम् । तदाहूता मया देवि शिप्राब्रह्मसमुद्भवा

शिप्रे पुत्रि ममादेशान्महाकालवनं व्रज । गृहीत्वा कालकूटं तु पुरः कामेश्वरस्य हि
विद्यते परमं लिङ्गं तस्मिंल्लिङ्गे नियोजय । मयाप्रोक्ता तदाप्राहब्रह्मणः परमा कला ।
एषास्मिप्रस्थितादेवतववाक्यादसंशयम् । दुःस्पर्शःकालकूटोऽयंनूनंमांभक्षयिष्यति
भस्मीभूताहं भविष्यामिदुष्टसंपर्कयोगतः । ततो मया पुनःप्रोक्ताशिप्रापातकनाशिनी

यानि तीर्थानि भूलोके पाताले यानि सन्ति वै ।
स्वर्गलोके ह्यन्तरिक्षे पुण्यानि चारुहासिनि! ॥ २० ॥

तानि सर्वाणिसेवार्थमागत्यममवाक्यतः । आज्ञांतवकरिष्यन्तिगच्छपुत्रिममाज्ञया
एवमुक्ता तदा शिप्रा गृहीत्वा कालकूटकम् । समायाता वरारोहे यत्रलिङ्गमनुत्तमम्
तद्विषं कालकूटाह्वं निक्षिप्तंलिङ्गमूर्द्धनि। विषलिङ्गस्ततोजातोदृष्टोमृत्युप्रदायकः

पशुः पक्षी नरो वापि यो हि पश्यति तं शिवम् ।
म्रियते स तदा देवि! तस्य देवस्य दर्शनात् ॥ २४ ॥

तीर्थयात्रां ततः कर्तुं तत्रायातास्तपोधनाः । तंचदेवंततोदृष्ट्वामृताःसर्वेंचतत्क्षणात्
ततो हाहाकृतं देवि त्रैलोक्यं सचराचरम् । हाहाकारं महच्छ्रुत्वामयातेद्विजसत्तमाः

सञ्जीविताश्च वै सर्वे दृष्टिपातेन पार्वति ! ॥ २६ ॥

तुष्टुवुः प्रणता विप्रामामतोविविधैःस्तवैः । मयाप्रोक्तास्तुतेविप्रावृणुध्वंवरमुत्तमम्
तैरुक्तं प्रणतैर्देवि लोकानां च हितार्थतः । संम्रियन्ते प्रजा देवा लिङ्गेनानेन शङ्कर
ताः संरक्ष जगन्नाथ ह्येषोऽस्माकं वरः प्रभो । प्रतिज्ञातं मयादेविलोकानामनुकंपया
क्षेमारोग्यकरं लिङ्गंभविष्यतिनसंशयः । कायावरोहणाद्विप्राःस्वयमत्रागमिष्यति

लकुलीशस्तदा चायं देवः स्पृश्यो भविष्यति ।
वृद्धिकारी कुटुम्बस्य भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥
कुटुम्बेश्वर इति नाम्ना लोके ख्यातिं गमिष्यति ।
इत्युक्तास्ते मया विप्रास्तत्रैव तपसि स्थिताः ॥ ३२ ॥

लकुलीशोऽथ तल्लिङ्गमारुरोह ममाज्ञया । जनयन्विस्मयं लोकेकीर्तिं जनपदे तथा
कुटुम्बेश्वरसञ्ज्ञं तु येपश्यन्तियशस्विनि । तेषांकुलेतुवृद्धिःस्यात्कुटुम्बस्यनसंशयः

आश्विनासितपञ्चम्यां दर्शनं यः करिष्यति । बहुपुत्रो बहुधनो भविष्यति न संशयः
महतीं श्रियमाप्नोति रोगेभ्योऽपि प्रमुच्यते । सर्वकामसमृद्धोऽसौ मम लोके प्रमोदते
दर्शनं ये करिष्यन्ति स्पर्शनं यजनं तथा । ते सर्वकामसम्पूर्णा प्रयान्ति मम मन्दिरम्
समीपे तु सरिच्छ्रेष्ठा वापीकूपेन संयुता । यस्या दर्शनमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते
सोमवारेऽर्कवारे च स्नात्वा तस्यां समाहितः ।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां यः पश्येत्कुटुम्बेश्वरम् ॥ ३६ ॥
राजसूयसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । फलं स लभते देवि ! सत्यमेतन्मयोदितम्
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः । कुटुम्बेश्वरदेवस्य त्विन्द्रद्युम्नेश्वरं शृणु

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

इन्द्रद्युम्नेश्वरं विद्धि शिवं पञ्चदशं प्रिये । यस्य दर्शनमात्रेण यशः कीर्तिश्च जायते
आसीद्राजा पुरा देवि इन्द्रद्युम्नो महीपतिः । येनेयं रक्षिता पृथ्वी पितापुत्रमिवौरसम्
इष्ट्वा सोऽथ बहून्यज्ञान्भूमौ प्रचुरदक्षिणान् । गतः स्वर्गं महात्मा वै सर्वकामफलप्रदम्
स चापि प्रच्युतः स्वर्गात्क्षणात्कीर्तिर्यदा क्षिता । पपात भूमौ सहसा गतपुण्यो नराधिप
पतितश्चिन्तयामास भृशं शोकपरिप्लुतः ॥ ४ ॥
कृतस्य कर्मणस्त्वत्र भुज्यते यत्फलं दिवि । न चान्यत्क्रियते तत्र यद्भूतलं स्थेन भुज्यते
सोऽत्र दोषो मतस्तस्यामतस्तत्पतनं यत् । पतनात्तु महद्दुःखं परितापश्च जायते
स्वर्गभाजो भवन्त्यादद्यावत्कीर्तिश्च जायते । दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्यस्य कर्मणः

तस्मिन्काले च कालज्ञो नारदोऽथ महामुनिः ।
आजगाम महातेजा भ्रममाणश्च मन्त्रिभिः ॥ ९ ॥

देवैर्नमस्कृतस्तोऽथ पूजितश्च यथाविधि । निवेदितं यथावृत्तं तुहुण्डस्य विचेष्टितम्
पप्रच्छुरथ ते सर्वं नारदं मुनिसत्तमम् । कथयस्व महाबुद्धे सर्वं जानासि सर्वतः
ईदृक्काले समायाते किं कर्त्तव्यं महामुने । नाज्ञातं त्रिषु लोकेषु किञ्चिद्देवर्षिसत्तम

मुहूर्तं ध्यानमालम्ब्य किञ्चिन्मील्य च लोचने ।
उपायं कथयामास सर्वदुःखविनाशनम् ॥ १० ॥
महाकालवने रम्ये शीघ्रं गच्छन्तु विह्वलाः ।
इन्द्रद्युम्नेश्वरस्यैव पश्चाद् भागे व्यवस्थिताः ॥
सेव्यध्वं परमं लिङ्गमीशानेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ ११ ॥

पुरा चेशानकल्पे तु ईशानेन च्युतेन हि । मुनिना श्रोत्रियेणैव वेदाभ्यासरतेन वै ॥
उत्तमाङ्गपदं लब्धं शङ्करस्य च मूर्द्धनि ॥ १२ ॥
तस्याराधनमात्रेण मनोऽभीष्टं हि लभ्यते ॥ १३ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा देवा मुदितमानसाः । जग्मुर्यत्र महालिङ्गं स्तुतिसर्वेऽप्यकुर्वत
ईशानेशान! ईशान! तत्पुरुष नमोऽस्तुते । नमो वाम! महाघोर! सद्योमुख नमोनमः
त्र्यक्ष! भर्ग महादेव! उमाकान्त!नमोनमः । नमः शिव नमोभीम! नमः सर्व नमोनमः
नमः शम्भो!नमो रुद्र! विरूपाक्ष! नमोनमः । त्वया देव!प्रजाः सर्वाःसदेवासुरमानुषाः
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि चराणि च। ब्रह्मवेदाश्च वेदार्थस्त्वया सृष्टं महेश्वर
शिरस्ते गगनंदेवा नेत्रेशशिदिवाकरौ । निःश्वासःपवनश्चापितेजोऽग्निश्चतथाच्युतः

बाहवस्ते दिशः सर्वाः कुक्षिश्चैव महार्णवः ।
ऊरू ते पर्वता देव चरणौ पृथिवी मता ॥ २० ॥

इन्द्रसोमाग्निवरुणा देवासुरमहोरगाः । प्रह्वास्त्वामनुतिष्ठन्तिस्तुवन्तोविविधैःस्तवैः
त्वया व्याप्तानि भूतानि सर्वाणि भुवनेश्वर !॥ त्वयितुष्टे जगत्तुष्टं त्वयिक्रुद्धेमहद्भयम्
भयानामपनेतासि त्वमेकः शत्रुसूदनः । असुराणां समर्थानां विनाशश्च त्वया कृतः

अद्यप्रभृति राजेन्द्र! लिङ्गं त्वन्नामनामतः ।
ख्यातिं यास्यति लोकेऽस्मिन्निन्द्रद्युम्नेति निश्चितम् ॥ २२ ॥
इन्द्रद्युम्नेश्वरं देवं पूजयिष्यन्ति ये नराः । सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानैः सर्वकामिकैः
स्वर्गं यास्यन्ति ते हृष्टाः स्तूयमानाः सुरर्षिभिः । किञ्चिन्न दुर्लभं लोके तेषां नैव भविष्यति
दर्शनं ये करिष्यन्ति लोभाद्वापि प्रसङ्गतः । तेषां कीर्तिर्यशः पुण्यं धर्मश्चैव भविष्यति
न स्वर्गात्पतनं तेषां यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ये च पूजां करिष्यन्ति चतुर्दश्यां विशेषतः
ते कुलं तारयिष्यन्ति मातृकं पैतृकं सदा ॥ २६,॥
इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे लिङ्गं सम्पूज्य यत्नतः ।
इन्द्रद्युम्नेन सहिताः पुनः स्वर्गं गताः प्रिये ॥ २७ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । इन्द्रद्युम्नेशदेवस्य श्रूयतामपरं प्रिये ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये इन्द्रद्युम्नेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

ईशानेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

ईशानेश्वरसञ्ज्ञं तु षोडशं विद्धि पार्वति । यस्य दर्शनमात्रेण ऐश्वर्यं जायते नृणाम्
तुहुण्डेन पुरा देवि सर्वे शस्त्रजिता सुराः । ऋषयश्च महाभागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥
नन्दनाख्यं वनं सर्वं तदुद्यानमभूत्किल । ऐरावणं द्विपेन्द्रं च जित्वा द्वारि समादधत्
उच्चैःश्रवससञ्ज्ञं तु हृतवान्दानवेश्वरः । देवाङ्गनानां सर्वासां विध्वंसं कर्तुमुद्यतः
स्वर्गमार्गं खिलीभूतस्तद्भयेन ह्यभूत्सति । हृताधिकारा देवाश्च मन्त्रं समुपचक्रमुः

सप्तदशोऽध्यायः

अप्सरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

देवं सप्तदशं विद्धि विख्यातमप्सरेश्वरम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण लोकोऽभीष्टानवाप्नुयात् ॥ १ ॥
नन्दनाख्ये वने देवि सर्वकामसमन्विते । सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोद्गीतनादिते ॥ २ ॥
शुककोकिलचक्राह्वचकोरकुररावृते । दिव्यलोकोपमस्थाने त्रिविष्टपविभूषणे ॥
तत्रोपविष्टो वृत्रारिःसुरज्येष्ठैश्च सेवितः । ननर्त रम्भा तस्याग्रे नृत्यभावान्विवृण्वती
ततोऽन्यचित्ता सञ्जाता किञ्चित्स्मृत्वा प्रमादतः ।
लयतालविहीना च दृष्टा वै वासवेन सा ॥ ५ ॥
चुकोप च सुरश्रेष्ठस्तस्याःशापं ददौ किल । विस्मृतिर्मानुषं कर्म न दिव्यं कापि दृश्यते
तस्मात्तु मानुषे लोके गच्छ त्वं निष्प्रभा सती ॥ ६ ॥
अथेन्द्रकोपसङ्क्षोभात्पतिता भुवि साप्सराः । निश्चेष्टा विकलीभूता रुदती विस्वरं बहु
करुणं विलपन्ती च किं मया दुष्कृतं कृतम् । निर्मलं न तपस्तप्तं कथं नाराधितः सुरः
अथाप्सरोगणः सर्वः सखीगणसमन्वितः । रम्भा यत्रैव पतिता समायातो वरानने
तस्याः शोकाग्निदाहेन सन्तप्तोऽप्सरसां गणः ॥ ६ ॥
सुसुमा पद्मिनी साभ्रे यथा नैव विराजते । तथा शापेन विध्वस्ता रम्भा नो राजते सदा
सखीगणैः परिवृता रम्भा दृष्टा वरानने ॥ देवर्षिणा नारदेन विस्मितेनान्तरात्मना ॥
कस्मादप्सरसः सद्यो दृश्यन्ते शोकविह्वलाः ।
कस्माच्च करुणं रम्भा रोदित्येषा मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥
पप्रच्छ च समागत्य कस्मादप्सरसो वराः । विषण्णवदना दीनाः कथ्यतां मम सादरम्
वृत्तान्तं कथयामासुस्ताश्च तस्मै पुरातनम् ।

न च विस्मयतेऽद्यैव निर्वाणगणमव्ययम् । एवं हि वर्णा विरूपाक्ष भूतानामिदमव्ययं
भाराधरिष्या सर्वे ते समन्विता च सर्वशः ।
एतस्मिन्नन्तरे देवि लिङ्गमत्राप्यनुत्थितम् ॥ २६ ॥
धूमाकारो महाज्वालो यथा दृश्यः स दानवः । तुतुषुश्चाप्युतश्च तुरङ्गमेण वैन्यपरिचारिणः
स्त्रियाश्रियाश्च सत्त्वात्तु लिङ्गस्यास्य प्रभावतः ।
सुरधामगता समादिष्टा लिङ्गस्यास्यैव दर्शनैः ॥ २७ ॥
तिष्ठथं शीलमत्यासीन्नित्यमक्षं च चिरस्थितम् ।
ईशान इति विख्यातस्त्रैलोक्ये च भविष्यति ॥ २८ ॥
ईशानेश्वरमत्र तु ये समाराधयन्ति च । कीर्तिलं धर्माद्धु धनेन सिद्धिः प्रीतिर्भविष्यति
पूज्यमानं सदा देवं संश्रयांश्चैव मानवाः । स्वर्गलोकं गमिष्यन्ति विमानैः सर्वतोऽमुदा
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्त्रियः कुमारिकाः ।
यथाभिलषितान्कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ ३१ ॥
यः करोति नरः स्नानं दर्शनं नियमस्थितः । न तु शक्नुवन्ति स्यात्सायुज्यमनवद्यमेव
सर्वदा सर्वकार्येषु ते समस्तं प्राप्नुवन्ति ॥ ईशानेश्वरसञ्ज्ञं तु ये पश्यन्ति दिने दिने
एवं ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । ईशानेश्वरदेवस्य श्रूयतामपरेश्वरः ॥ ३४
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये ईशानेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

अप्सरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

देवं सप्तदशं विद्धि विख्यातमप्सरेश्वरम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण लोकोऽभीष्टानवाप्नुयात् ॥ १ ॥
नन्दनाख्ये वने देवि सर्वकामसमन्विते । सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोद्गीतनादिते ॥ २ ॥
शुककोकिलचक्राह्वचकोरकुररावृते । दिव्यलोकोपमस्थाने त्रिविष्टपविभूषणे ॥
तत्रोपविष्टो वृत्रारिःसुरश्रेष्ठैश्च सेवितः । ननर्त्त रम्भा तस्याग्रे नृत्यभावान्विवृण्वती
ततोऽन्यचित्ता सञ्जाता किञ्चित्स्मृत्वा प्रमादतः ।
लयतालविहीना च दृष्टा ये वासवेन सा ॥ ५ ॥
चुकोप च सुरश्रेष्ठस्तस्याःशापंददौ किल । विस्मृतिर्मानुषंकर्मन दिव्यंक्वापिदृश्यते
तस्मात्तु मानुषे लोके गच्छ त्वं निष्प्रभा सती ॥ ६ ॥
अथेन्द्रकोपसङ्क्षोभात्पतिताभुवि साप्सराः । निश्चेष्टाविकलीभूतारुदतीविस्वरंबहु
करुणं विलपन्ती च किं मया दुष्कृतं कृतम् । निर्मलं न तपस्तप्तंकथंनाराधितःसुरः
अथाप्सरोगणः सर्वः सखीगणसमन्वितः । रम्भा यत्रैव पतिता समायातो वरानने
तस्याः शोकाग्निदाहेन सन्तप्तोऽप्सरसां गणः ॥ ६ ॥
सुसुमा पद्मिनी साभ्रे यथा नैवविराजते । तथाशापेनविध्वस्ता रम्भानोराजतेसदा
सखीगणैः परिवृता रम्भा दृष्टा वरानने ॥ देवर्षिणानारदेन विस्मितेनान्तरात्मना॥
कस्मादप्सरसः सद्यो दृश्यन्ते शोकविह्वलाः ।
कस्माच्च करुणं रम्भा रोदित्येषा मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥
पप्रच्छ चसम गत्यकस्मादप्सरसो वराः । विषण्णवदना दीनाःकथ्यतांममसादरम्
वृत्तान्तं कथयामासुस्ताश्च तस्मै पुरातनम् ।

श्रुत्वा च नारदस्तत्र ध्यानासक्तोऽभवन्मुनिः ॥ १४ ॥
उपायं कथयामास हितं तासामयत्नतः । गच्छन्त्वप्सरसः सर्वा महाकालवनोत्तमे
आराधयध्वं देवेशं लिङ्गं सर्वार्थसाधकम् । पृच्छा देव्यास्तु पुरतः पुराकल्पे प्रपूजितम्
उर्वश्या ममवाक्येन भर्त्ता प्राप्तः पुरूरवाः । नारदस्य वचः श्रुत्वा समाजग्मुर्गणास्तथा
महाकालवने रम्ये लिङ्गाराधनकाम्यया । ततस्तुष्टः स्वयं रुद्रस्तासां भक्त्या वरं ददौ
रम्भे प्राप्स्यसि सौभाग्यं स्वर्गलोके यशस्विनि ।
भविष्यसि महाभागे जिष्णोस्त्वं वल्लभा ध्रुवम् ॥ १९ ॥
तस्मात्त्रिविष्टपं गच्छ मद्वचेनानेन पूजिता ।
आराधितोऽप्सरोभिश्च पुरा स्वर्गार्थकाम्यया ।
अतोऽप्सरेश्वरः ख्यातो यास्ति ख्यातिं जगत्त्रये ॥ २० ॥
येऽस्माराधयिष्यन्ति भक्त्या वा सरसेश्वरम् । न सर्वकामसम्पूर्णा भविष्यन्ति युगे युगे
प्रख्यापयिष्यन्ति ये लोके दर्शनार्थं यशस्विनि ।
स्यामङ्गशो वियोगश्च तथा स्वप्ने न जायते ॥ २२ ॥
किं दानैः किं तपोभिश्च किं यज्ञैर्बहुदक्षिणैः । स्पर्शनाल्लभते राज्यं स्वर्गं मोक्षं क्रमेण
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । अप्सरेश्वरदेवस्य श्रूयतां कर्कलेश्वरः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽप्सरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

कलकलेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीशिव उवाच

देवमष्टादशं विद्धि ख्यातं कलकलेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण कलहो नैव जायते ॥
सर्वदुःखोपशमनं सर्वपापप्रमोचनम् । व्याधिसर्पाग्निचौराणां शमनंवाञ्छितप्रदम्
मम देवि त्वया सार्द्धं कलहः समपद्यत । पुरा विस्तरतो वच्मिशृण्वेकाग्रमनाःशुभे
यदा त्वं हिमशैलस्यदुहितावरवर्णिनि । तदा विवाहितं कान्तेयथोक्तविधिनामया
विनिवृत्ते विवाहे च त्वयासार्द्धंवरानने । महाकालीतिनाम्ना वै वर्णेनापिचतादृशी

नीलोत्पलनिभप्रख्या नीलकुञ्चितमूर्द्धजा ।
अप्येकस्मिंस्तदा त्वं हि मातॄणां मण्डपे शुभे ।
मध्ये समुपविष्टाऽसि कृष्णाञ्जनसमप्रभा ॥ ६ ॥

कालि सुन्दरि मत्पार्श्वंवल्लभेत्वमुपाविश । शरीरेममतन्वङ्गिसितेभास्यसितद्युतिः
भुजङ्गीवासिता शुभ्रे संश्लिष्टा चन्दने तरौ । रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषहरासिमे

इत्युक्तासि मया देवि! गिरिजे! चारुहासिनि !।
तदा प्रोक्तं त्वया वाक्यं मामुद्दिश्य सगद्गदम् ॥ ६ ॥

यदात्वया मदर्थे हि प्रेरितावेदपारगाः । सप्तर्षयो महाभागाः किं कृते न तदात्थमाम्

तदा त्वया मदर्थेऽपि प्रार्थितो जनको मम ।
हिमाद्रिराजो यत्नेन किं काली न तदात्थ माम् ॥ ११ ॥
यदाप्युक्तं त्वया दैन्यान्मदर्थे गच्छ नारद !।
प्रार्थ्यतां पार्वती शीघ्रं किं काली न तदात्थ माम् ॥ १२ ॥

सत्येयं लौकिकी गाथा न वृथा परिजायते । स्वकृतेनजनः सर्वो जाड्येनपरिभूयते
अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनां मुण्डमुण्डनाम् ।

मनोभिरीप्सितैर्वाचैस्तु वचनैः प्रार्थितवाप्यथ ॥ १७ ॥

मन्ये मे निजमन्येव हृदयाम वर्तते । नैवास्मि कुटिला शीघ्रा विस्मापयामास हृदि माहात्म्यात्प्रयासानतुष्टा न समागता । अविरचना यत्र स्थानोदितं दोषावधाय अनुपमया पृच्छ हे सर्वपापापि यथा । सर्वमुत्सारितानेनावगता स्थितेन च

शार्दिगणान्ते विमानानु सम्बन्धादसान्यथ ।

यथा बोभ्यासिता दृष्टा वक्तावि निरपत्र ॥ १८ ॥

पृष्टा ह्या विज्ञानानिद्रायसांप्रयाणे निर्वाच्य । पृथिव्यां यत्र यत्र सर्वतीर्थानि संप्रविशत्य यत्र मामयं वर्तते ममत्वादिनिर्बन्धम् । रम्यवापि प्रवाहोऽस्य प्रभावमयभिमे हर निरतावय न प्रवाहन्त्यामे दृश्यमहति । विज्ञाय मायया ममत्वम् पर्वतं गुणम् मन्यमे नाव सम्भावनया शैलो कल्पवलयम् । यथा न तु मुनयस्त्वयं विज्ञानेोऽभिवर्धते महेश्वर विज्ञानानि न स्थान नैव भवम् । मायधर्मेषु मात्सु च सुनासुराणां पितामहेन

न नाभ्निकाऽस्तु विभ्रमे यत्र किं पुनरन्तिक ।

स्मृतोऽसौ मया दृष्टिः मया कौतुक पुन ॥ १९ ॥

अन्तर्गतानि विविधा सहरतिमतस्यान्विति । मम सर्वसम्बन्धे स्मृतोऽपि विसृज्य पितु

कादिना अत्यन्तेति धातुभ्यो वनस्पतिना ।

कटिलया न सर्वभ्योऽपि सम्बन्ध हिमादिव ॥ २० ॥

स्मृतमाऽसि मया देवि पुन प्रोक्त त्वया यत्र ।

तथापि दुष्करमता महत्यान्त मयन्य हि ॥ २१ ॥

स्याद्भाऽस्तनकन्निष्ठ यनमान निवेदयनम् । इत्यालुण्यशाद्रवाद्वै पूर्वोधाय पूर्वादपि

उपशायत मान्याद्य च नमस्य च न न्यया ।

निर्गुण च कपालाम त्वया ते विगत्वा चिरम् ॥ २२ ॥

पथ नगऽसमदर्शादि कन्दः समवेत्तुम । पथ प्रवृत्ते तु तदा कम्पितं भुवनत्रयम् भाताश्च देवगन्धर्वयक्षपन्नगराक्षसाः । तस्मात्कोलाहलोभूमिमिस्थालिङ्गमभूत्तदा लिङ्गमन्यानमभु पत्र वाणीसुखकराशुभा । आश्वासयन्तीदेवान्वै त्रैलोक्यं सचराचरम्

नामास्य चक्रुर्देवेशास्तदा कलकलेश्वरम् । स्वरनामार्मीनतोऽभूच्छङ्करो भुवि विश्रुतः
यस्तमर्चयते भक्त्या देवं कलकलेश्वरम् । न राक्षसाः पिशाचाश्च न भूता न विनायकाः
विघ्नं कुर्युर्वरारोहे ! कलहो न भवेद् गृहे ॥ ३४ ॥
सुशीला गृहिणी तस्य सुरूपा सुभगा प्रिये । बहुपुत्रा बहुधना जायते दर्शनात्तथा
ये पश्यन्ति चतुर्दश्यां देवं कलकलेश्वरम् । न दुःखं न जरा व्याधिर्नाकालमरणं तथा
न च शत्रुभयं तेषां जायते गिरिपुत्रिके । लोकोऽक्षयो भवेद्देवि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । यस्य श्रवणमात्रेण क्षेममत्र परत्र च ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कलकलेश्वरमाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नागचण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकोनविंशतितमं नागचण्डेश्वरं प्रिये । निर्माल्यलङ्घनात्पापान्मुच्यते यस्य दर्शनात्
तस्य प्रभावं सुभगं कथयाम्यथ विस्तरात् ।
शृण्वेकाग्रमना देवि! सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥
पुरा देवर्षिगन्धर्वाश्चारणा गुह्यकास्तथा । उपविष्टाः सुधर्मायां कथयन्तः शुभां कथाम्
एतस्मिन्नन्तरे शक्रो देवर्षिं नारदं मुनिम् । पप्रच्छ सादरं देवि समायातं शुचिव्रतम्
दृष्ट्वा विनयसम्पन्नं ब्रह्मचर्यपरायणम् । मेखलाजिनकौपीनं वीणादण्डविभूषितम्
त्वया दृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् । उत्पाद्यमानमुत्पन्नं प्रलयश्च सहस्रशः
त्वत्तुल्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्मुक्त्वैकं परमेष्ठिनम् ।

जगत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ ७ ॥
योगेन तपसा भक्त्या यत्त्वया परितोषितः ।
त्रैलोक्यमभिजानासि त्वं सर्वं सर्वतः स्फुटम् ॥ ८ ॥
अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि कथ्यतां मम निश्चयम् । पृथिव्यां प्रवरं क्षेत्रं पावनं भुक्तिमुक्तिदम्
एवमुक्त्वा तदा ध्यात्वा चिन्तयामास नारदः । चिन्तयित्वा चिरं कालमिदं वचनमब्रवीत्
देवराज' शृणुष्व त्वं पुण्यं क्षेत्रराजमनुत्तमम् । क्षेत्राणामुत्तमं चैव प्रयागाञ्च प्रशस्यते ॥
तस्माद्दशगुणं क्षेत्रं महाकालस्य कथ्यते । भुक्तिदं मुक्तिदं तच्च दर्शनादपि वासव'
एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षो वर्णयित्वा च तं मुनिम् ।
सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं विमानस्थस्तदागतः ॥ १३ ॥
अन्तरिक्षस्थितो विष्णुर्ब्रह्मा चैव सुरैः सह । क्षेत्रलिङ्गैः समाकीर्णं मङ्गुलस्यान्तरमहि
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च । महाकालवने रम्ये निर्माल्यं च इत्यतेऽवधम्
निर्माल्यलङ्घनाद्दोषो महान्भवति निश्चितम् । इत्यालोच्य पुनर्देवा गन्तुं स्वर्गं मनो दधुः'
निर्माल्यदोषभीतास्ते क्षेत्रे न विविशुः सुराः ।
एतस्मिन्नन्तरे दिवि' विमानस्था गणोत्तमाः ॥ १७ ॥
गणैर्नानाविधैः सत्यगीर्भिर्गन्धर्वकिन्नरैः । चारणैः स्तूयमानस्तु स्वर्गलोकं गतः सुरैः
प्रफुल्लनयनैर्दृष्टः कोऽयं धन्यो महातपाः ।
तेजसा दीप्यमानोऽयमप्सरोभिश्च सेव्यते ॥ १९ ॥
पप्रच्छुरमराः सर्वे कोऽयं रुद्रनियोगतः । याति शुभ्र महाबाहो ह्युत्तमाग्रहसम्मुख
पृष्टस्तदा सुरैः सर्वैर्विस्मयाविष्टमानसैः । कस्त्वं पुरुषशार्दूल किं त्वया सुकृतं कृतम्
देवानां पुरतो देवैरिति संकथितं तदा । महाकालो महादेवः पूजितो भक्तितः स्तुतः
हृष्टेन तेन मे दत्तं गणत्वं यत्सुदुर्लभम् । नाम दत्तं च सुमतं नागचण्ड इति ध्रुवम्
एवञ्छ्रुत्वा ततस्ते च सादरं गणसत्तम' । नागचण्ड त्वया तत्र निर्माल्यं पतितं त्वय
महाकालवने पुण्ये लङ्घितं चरतात्त्वया । सञ्चारो नास्ति तत्रैव लिङ्गसङ्कीर्णतावशात्
उपायस्तेन कथितो देवानां पुरतस्तदा । तत्र तिष्ठति देवेशो लिङ्गं सर्वफलप्रदम् ॥

ईशानेश्वरदेवस्य तिष्ठतीशानभागतः । तस्य दर्शनमात्रेण न स गच्छति दुष्कृतम्
निर्माल्यलङ्घनोद्भूतंयत्पापंजायते महत् । तत्सर्वंनाशमायातितस्यलिङ्गस्यदर्शनात्
ततो देवगणाः सर्वे महाकालवने पुनः । समायातामहाभागा महाकालश्च पूजितः
यथा लिङ्गं च तद्दृष्टं सर्वदोषक्षयङ्करम् । तस्य दर्शनमात्रेण निर्माल्यलङ्घनादिभिः
दोषो नष्टः सुराणां च ततो नामास्य चक्रिरे ॥ ३० ॥
अस्माकं तेनकथितंनागचण्डेनधीमता । नागचण्डेश्वराख्यानमतोलोके भविष्यति
कृत्वास्य नाम ते देवा जग्मुः स्वर्गेहमुत्तमम् ।
पूजयिष्यन्ति ये केचिन्नागचण्डेश्वरं शिवम् ।
निर्माल्यलङ्घनोद्भूतं तेषां नश्यति पातकम् ॥ ३२ ॥
नागचण्डेश्वरं देवं येपश्यन्तिदिनेदिने । अज्ञानाज्ज्ञानतः पापं तेषां नश्यतिनान्यथा
आह्लादं निर्वृतिं स्वास्थ्यमारोग्यं चारुरूपताम् ।
सप्त जन्मान्यवाप्नोति दर्शनेन न संशयः ॥ ३४ ॥
प्राप्नोत्यभिमतान्कामान्देवानामपि दुर्लभान् ।
कीर्त्तनान्नात्र सन्देहो नागचण्डेश्वरस्य च ॥ ३५ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । नागचण्डेश्वरस्यैव प्रतीहारेश्वरं शृणु
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येनागचण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥

जगत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ ७ ॥
योगेन तपसा भक्त्या यत्त्वया परितोषितः ।
त्रैलोक्यमभिजानासि तत्सर्वं सर्वतः स्फुटम् ॥ ८ ॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि कथ्यतां मम निश्चयम् । पृथिव्यां प्रवरं क्षेत्रं पावनं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ पृष्टश्चैवं तदा व्यासो ध्यात्वा चिन्तयामास नारदः । चिन्तयित्वा चिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ देवराज! शृणुष्व पुण्यं क्षेत्रराजमनुत्तमम् । क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं प्रयागाच्च प्रशस्यते ॥ तस्माद्दशगुणं क्षेत्रं महाकालस्य कथ्यते । भुक्तिदं मुक्तिदं तच्च दर्शनादपि वासव!

एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षो वन्दयित्वा च तं मुनिम् ।
सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं विमानवरसंस्थितः ॥ १३ ॥

अन्तरिक्षस्थितो जिष्णुर्ददर्शाक्षीश्च सुरैः सह । क्षेत्रं लिङ्गैः समाकीर्णं मङ्गलं व्याप्तमङ्गलैः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च । महाकालवने रम्ये निर्माल्यलङ्घनं कथम् ॥ निर्माल्यलङ्घनाद्दोषो महान्भवति निश्चितम् । इत्यालोच्य पुनर्देवास्तस्थुः स्वर्गं मनोरमाः ॥

निर्माल्यदोषभीतास्ते क्षेत्रे न विविशुः सुराः ।
एतस्मिन्नन्तरे देवि! विमानस्थो गणोत्तमः ॥ १७ ॥

गणैर्नानाविधैः सेव्यमानो गीयमानश्च किन्नरैः । चारणैः स्तूयमानस्तु स्वर्गलोकमजङ्घुरे ॥

प्रफुल्लनयनैर्दृष्टः कोऽयं धन्यो महातपाः ।
तेजसा दीप्यमानोऽयमप्सरोभिश्च सेव्यते ॥ १९ ॥

पप्रच्छुरमराः सर्वे कोऽयं यक्षिमोगणः । याति त्र महावाहो दृग्गस्माप्रहस्य सुखः ॥ पृष्टस्तदा सुरैः सर्वैर्विस्मयाविष्टमानसैः । कस्त्वं पुरुषशार्दूल किं त्वया सुकृतं कृतम् ॥ देवानां पुरतो देविनि शेषकथितं तदा । महाकालो महादेवः पूजितो भक्तितः स्तुतः ॥ तुष्टेन तेन मे दत्तं गणत्वं यत्सुदुर्लभम् । नाम दत्तं च सुभग नागचण्ड इति ध्रुवम् ॥ पप्रच्छुरमरास्तत्र सादरं गणसत्तम! । नागचण्ड त्वया तत्र निर्माल्यं पतितं स्वयं ॥ महाकालवने पुण्ये लङ्घितं चरतात्वया । सञ्चारो नास्तितत्रैव लिङ्गसङ्कीर्णतायतः ॥ उपायस्तेन कथितो देवानां पुरतस्तदा । तत्र तिष्ठति देवेशा लिङ्गं सर्वफलप्रदम् ॥

ईशानेश्वरदेवस्य तिष्ठतीशानभागतः । तस्य दर्शनमात्रेण न स गच्छति दुष्कृतम्
निर्माल्यलङ्घनोद्भूतं यत्पापं जायते महत् । तत्सर्वं नाशमायाति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्
ततो देवगणाः सर्वे महाकालवने पुनः । समायाता महाभागा महाकालश्च पूजितः
यथा लिङ्गं च तद्रूपं सर्वदोषक्षयङ्करम् । तस्य दर्शनमात्रेण निर्माल्यलङ्घनादिभिः
दोषो नष्टः सुराणां च ततो नामास्य चक्रिरे ॥ ३० ॥
अस्माकं तेन कथितं नागचण्डेन धीमता । नागचण्डेश्वराख्यानमतो लोके भविष्यति
कृत्वास्य नाम ते देवा जग्मुः स्वर्गं हमुत्तमम् ।
पूजयिष्यन्ति ये केचिन्नागचण्डेश्वरं शिवम् ।
निर्माल्यलङ्घनोद्भूतं तेषां नश्यति पातकम् ॥ ३२ ॥
नागचण्डेश्वरं देवं ये पश्यन्ति दिने दिने । अज्ञानाज्ज्ञानतः पापं तेषां नश्यति नान्यथा
आह्लादं निर्वृतिं स्वास्थ्यमारोग्यं चारुरूपताम् ।
सप्त जन्मान्यवाप्नोति दर्शनेन न संशयः ॥ ३४ ॥
प्राप्नोत्यभिमतान्कामान्देवानामपि दुर्लभान् ।
कीर्त्तनान्नात्र सन्देहो नागचण्डेश्वरस्य च ॥ ३५ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । नागचण्डेश्वरस्यैव प्रतीहारेश्वरं शृणु
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये नागचण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९॥

———

विंशोऽध्यायः

प्रतीहारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

प्रतीहारेश्वरं देवि विद्धि विंशतिमं प्रिये । यस्य दर्शनमात्रेण धनवानिह जायते ॥
दक्षकोपात्त्वं देवि पुराप्राणविसर्जिते । हिमाद्रेः तनयाजाता मयाप्राप्तापुनः प्रिये

प्रारब्धा च मया देवि त्वया सार्द्धं रतिस्तदा ।
दिव्यं वर्षशतं जातं मम देवि प्रमोदनम् ।
अनुरागवशाच्चैव मन्मथेन प्रपीडिता ॥ ३ ॥

महारतिसमुद्भूतवाद्यदैत्या संक्षुब्धमानसाः । वर्षमंतरयथाकालंसमयात्तु यथोचित
दिव्यं वर्षशतं दृष्टो गौर्या सह महारतिम् । कुर्वन्तिष्ठतिदेवोऽसौमन्दरेचाद्रिसत्तम
अनयोर्बीजमध्यस्थो पुत्रो योऽहिमतेजसः । विनश्येनैव त्रैलोक्यमखिलं च न संशयः

तस्य तेजोऽपि नो वोढुं समर्था निश्चितं वयम् ।
तस्मात्तत्क्रियतां कर्म रतिर्येनोपशाम्यति ॥ ७ ॥

उवाच दुष्टचान्तत्र वचनं गुरुरमर्षी । बृहस्पतिर्महातेजा वेदशास्त्रार्थपारगः

गच्छन्तु त्रिदशाः सर्वे शिवस्य तु समीपतः ।
स्वयं विज्ञापयतां देवस्तत्कर्म न करिष्यति ॥ ९ ॥
इति निश्चित्य च ते देवि अगमुः शीघ्रं सुरास्तदा ।
मन्दराद्रौ शुभे द्वारि स्थितास्ते चिन्तयान्विता ॥ १० ॥

गणानामधिपोनन्दीद्वारितिष्ठतियत्नतः । त्वयासार्द्धंमहदेविकुर्वंस्तिष्ठामितारति
अथ सुरेशो दयाना दुष्करो मम पार्श्वतः । तदाचिन्तयमानाश्चतत्रतिष्ठन्तिते सुर
अग्निनातद्धितवाक्यमुक्तनेचापुरं शुभम् । हंसरूपं समास्थायवात्यामिशिवसन्निधि
वञ्चयित्वा प्रतीहारं कृतं तेन तथैव च । हंसरूपेण कथितं कर्णे मम शुचिस्मिते

इन्द्राद्या अमरा देवा द्वारि तिष्ठन्ति संयताः ।
श्रुत्वा तस्य च तद्वाक्यं ततोऽहं द्वारमागतः ॥ १५ ॥
ततश्च तैः कृतो मह्यं प्रणामश्चयथाक्रमम् । मयादृष्टाश्च तेदेवा युष्माकंकिंकरोम्यहम्
तैरुक्तं त्यज्यतां चैव सम्भोगस्तु सुदारुणः । तथामयाकृतंदेवि गतास्तेत्रिदिवंपुनः
ततः शप्तोमयानन्दी भूलोकंगच्छसत्वरम् । ततःशापपरिभ्रष्टःपृथिव्यां पतितस्तदा
सोच्छ्वासहृदयो दीनो दुःखव्याकुललोचनः ।
विलपंश्च तथा नन्दी विलुठञ्छोकतो भुवि ॥ १६ ॥
वञ्चितश्चाग्निना वाढंवासवेनविशेषतः । किं मया दुष्कृतं कर्म कृतंकिञ्चित्पुरातनम्
स दृष्टो लोकपालैस्तुतामवस्थांगतोगणः । पृष्टश्चतैःकुतोनन्दिन्विलाप कुरुषेमहत्
सर्वं निवेदितं तेन तेषामग्रे च नन्दिना । उपायः कथितस्तैश्च महाकालवनं ततः ॥
ततश्च वचनं श्रुत्वा नन्दी रोमाञ्चकञ्चुकः । महाकालवने देवि!जगाम स तदा गणः
पूजयामास विधिवद्धृत्वा कापालिकीं तनुम् ॥ २३ ॥
अशरीरसमुत्पन्ना वाणी लिङ्गात्तदा प्रिये । सञ्जाता शापमोक्षस्तेप्रतीहार!सुभक्तितः
पूजितोऽसौ महाभक्त्या प्रतीहारेण नन्दिना ॥ २४ ॥
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रतीहारेश्वरेश्वरः । मया ते कथितोदेवि! प्रतीहारेश्वरस्य च
प्रभावः सर्वलोकानामत्यभीष्टफलप्रदः ॥ २५ ॥
पूजयिष्यन्ति ये भक्त्या प्रतीहारेश्वरं शिवम् ।
स्थानभ्रंशो वियोगश्च तेषां स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ २६ ॥
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तत्सर्वंनाशमायातिप्रतीहारेश्वरार्चनात्
मनसा ये स्मरिष्यन्ति प्रतीहारेश्वरंशिवम् । एवंतस्य कुलंसर्वंयातिस्वर्गंनसंशयः
इति श्रीस्कान्देमाहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये प्रतीहारेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

कुक्कुटेश्वरमहिमवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकविंशतिकं विद्धि कुक्कुटेश्वरमुत्तमम् । यस्य दर्शनमात्रेण तिर्यग्योनिर्न लभ्यते
कौशिको नाम राजाऽभूत् कुक्कुटो जायते सदा । इक्ष्वाकूणामन्वये वै सर्वाभरणभूषित

ख्यातो वै पृथिव्यां येन सर्वालयनकाननः ।
पृथक्समस्तमारभ्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ २ ॥
विशालानाम विख्याता भार्या तस्य महीपतेः ।
रूपलावण्यसंयुक्ता चतुःषष्टिकलान्विता ॥ ४ ॥

तया चकार सहितः स राज्यमकण्टकम् । सा वल्लभापि नृपतेः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी
तथाप्यसौ कदाचिच्च सुरतं नाभिवाञ्छति । सन्तप्ता सर्वदा सा च रत्यभावाद्बभूव ह
एवं गच्छति काले तु मदनाग्निसमातुरा । सर्वमन्मथमग्ना सा विशालाविपुलेक्षणा

दृष्ट्वा कान्तमिथुनमनङ्गकलहातुरम् ॥ ७ ॥
प्रमादयन्त्यथा कान्तं स्वा प्रिया च मुहुर्मुहुः ।
बालाऽस्मि तव कान्ताऽहं रूपसौभाग्यसुन्दरि ॥ ८ ॥

भजस्व मां यथाकाममनङ्गशरपीडितम् । शिरसा प्रणतेनैव रचितस्ते मयाऽञ्जलिः

न त्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित् ।
सुरूपरूपसदृशी मद्गुणा चारुहासिनी ॥ १० ॥

कुतो वा मयि सन्तानं चक्रुद्वेषप्रियवादिनि । किमर्थं वद कल्याणि सरोषवदनास्थिता
सा तमाह सकोपं च किञ्चिद्बाष्पसमाकुला । त्वयामोदकचूर्णं तु मम विहाय मनोरमम्

प्रदत्तं कामलुब्धेन अन्यस्यै कीटकाधम ॥ १२ ॥

नाहमेवं करिष्यामि कान्ते प्राह पुनः पुनः । स्पृशामि पादौ सत्येन प्रणतस्य प्रसीद मे

इति तद्वचनं श्रुत्वा साप्रसन्नाऽभवत्तदा । आत्मानमर्पयामास कामनाय पिपीलिका
दृष्ट्वातन्महदाश्चर्यं सा राज्ञी विललाप ह । धिग्राज्यं धिक्त्वमे रूपधिक्चयौवनमद्यमे
न कामिताऽहं कान्तेन मरिष्यामि न संशयः ॥ १७ ॥
एवं विलप्य बहुधा विनिःश्वस्य पुनःपुनः । उन्मत्तेवविशालाक्षीगालवस्याश्रमंगता
दृष्ट्वा तमृषिमासीनं तपोयोनिं दृढव्रतम् । उवाच प्रणताङ्गी सा शोकसन्तप्तमानसा
एकोऽयं संशयो ब्रह्मन्हृदयेपरिवर्त्तते । वश्योऽपि हि च मे भर्त्ता रूपलावण्यवानपि
न जाने कारणं किं तु सङ्गमो नोपजायते ॥ १८ ॥
योगत्वाप्रम शाराज्यंजित्वा सर्वाःपुरा रणे । आजहारशुभास्तासांमध्यादष्टौवराङ्गनाः
नैव कामयते तासु किमेतदिति सुव्रत !॥ १९ ॥
वाजिनो वारणाश्चैव धनधान्यमनन्तकम् । वर्त्तन्ते हि जनः सर्वोममाज्ञांपालयन्क्षितौ
केन कर्मविपाकेन ममेदं यौवनं दृढम् । व्यर्थं जातं द्विजश्रेष्ठ! रतिं न कुरुते नृपः ॥
दृश्यते वासरे भागे रात्रौ नैव न दृश्यते । इहजन्मकृतं चैतदाहोस्वित्पारलौकिकम्
दुष्कृतावर्जनं ब्रह्मन्ममेदं वक्तुमर्हसि । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा गालवोवाक्यमब्रवात्
शृणुपुत्रि पुरावृत्तं बलभावेन यत्कृतम् । अनेन राज्ञा धर्मज्ञे रात्रौ येन न दृश्यते ॥
विदूरथस्य तनयस्तव भर्ता स निश्चितम् । मांसाहारीदोषरतिर्विषयासक्तमानसः॥
कुक्कुटानां च मांसेन प्रीतिस्तस्य तदाऽभवत् ।
बहवः कुक्कुटास्तेन भक्षिता राजसूनुना ॥ २६ ॥
एवं भक्षयतस्तस्य बहुशो वत्सरा गताः । कालेन महता राज्ञा ताम्रचूडेन मन्त्रिणः
पृष्टाः किं कारणं नात्र समायान्ति हि कुक्कुटाः ॥ २७ ॥
अथ केनापि कथितं कुक्कुटानां च भक्षणम् ।
विदूरथस्य पुत्रेण कौशिकेन दुरात्मना ॥
भक्षिताः कुक्कुटाः सर्वे विना कारणतो नृप !॥ २८ ॥
ताम्रचूडोऽथसङ्क्रुद्धोददौशापंदुरात्मने । कौशिकायक्षयोरोगोभविष्यतिभयावहः
तदा प्रभृत्यभूत्क्षीणो राजपुत्रो दिने

औषधैरचिकित्स्योऽभ्येति व्याधिना पीडितो भृशम् ॥ ३० ॥

अथ केनापि कालेन वामदेवसमागमः । क्षयरोगाभिभूतोऽसौ मरणोन्मुखमानसः ॥

पप्रच्छ वामदेवं स नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

भगवन्केन पापेन क्षीयतेऽहर्निशं वपुः । महौषधैः पोष्यमाणं हि मासेन विविधेन च

वामदेवोऽथ तं प्राह कुक्कुटा भक्षितास्त्वया ।

ताम्रचूडेन शप्तोऽसि कुक्कुटानां नृपेण हि ॥ ३३ ॥

तमेव शरणं गच्छ स उपायं वदिष्यति ।

ततः स ताम्रचूडस्याभ्यर्णमागान्नृपो मम ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा च ताम्रचूडं तं महाभक्त्या कृताञ्जलिः । प्रोवाच त्वं विभो पाहि मां शरणागतम्

अज्ञानाद्भक्षिता देव कुक्कुटाः पुष्टिकारणात् । स तु महत्किल्बिषं मम क्षपयस्व च

प्रोवाच ताम्रचूडोऽप्यस्मात्प्रार्थयसे नृप । तस्मात्ते वासरे प्राप्ते पुत्रस्तव भविष्यति

शास्ता गोप्ता च लोकानां राजा दण्डधरः प्रभुः ।

कुक्कुटो भविता राजा सर्वरोगविवर्जितः ॥ ३८ ॥

अतो न दूषयन् पुत्रि नियमाय समाश्रितः ॥ ३९ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गालवस्य महात्मनः ।

सा सम्पूज्य विशालाक्षी गालवं मुनिसत्तमम् ॥

प्रपच्छ परया भक्त्या शापान्तो हि कथं भवेत् ॥ ४० ॥

गालवः कथयामास ध्यानेनालोक्य यत्नतः ॥ ४१ ॥

महाकालवने लिङ्गं पक्षियोनिविमोचनम् । उत्कटेश्वरस्य देवस्य पूर्वभागे व्यवस्थितम्

तस्य दर्शनमात्रेण शापस्यान्तो भविष्यति ॥ ४२ ॥

सा प्रणम्य मुनिश्रेष्ठमाजगाम त्वरान्विता ।

यत्रास्ते नृपशार्दूलो विध्यन्बहुविधान्मृगान् ॥ ४२ ॥

प्रफुल्लनयनाम्भोजा सा दृष्टा लोकेक्षणप्रिया । आह्लादिता बहुविधैः कोमलैर्वचनामृतैः

ततस्तेन सदा राज्ञा प्रोक्ता सा मृगलोचना । इदानीं किं मया कान्ते कार्यं भवति कथ्यताम्

तयाप्रोक्तं महाराज गम्यतेऽद्य मया सह । महाकालवने पुण्ये सर्वदुष्कृतनाशने ॥४६

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा त्वरमाणो मुदान्वितः ।
तया नीतोऽथ नृपतिर्लिङ्गस्यास्य समीपतः ॥ ४७ ॥

पूजयित्वाथतल्लिङ्गं पक्षियोनिविमोचनम् । तत्रैव स्थितोराजाप्रिययासहपार्वति
तस्यां रात्रौ न सञ्जातःकुक्कुटोयादृशःसदा । शिवप्रसादादभवद्दिव्यरूपोमनोहरः
रूपेण निर्जितः कामस्तेनाप्रतिमतेजसा । ततो विस्मयमापन्नश्चिन्तयामासपार्थिवः
कोऽयं प्रभावो येनाहं शापान्मुक्तः सुदुस्तरात् ॥५० ॥

प्रियां पप्रच्छ नृपतिः पूर्णेन्दुवदनां भृशम् । कथंशापाद्विमुक्तोऽहं केनपुण्येन कर्मणा

अथ सा कथयामास वृत्तान्तं विस्तरान्मुदा ।
गालवेन हि यत्प्रोक्तं यत्किञ्चिच्छापमोक्षणम् ॥ ५२ ॥
राजञ्छापाद्विमुक्तोऽसि लिङ्गस्यास्य प्रभावतः ।
पुनः प्रसाद्य तल्लिङ्गं भुक्त्वा भोगांश्चिरं भुवि ॥ ५३ ॥

तयासार्द्धंययौराजा स्वर्गं सुरगणैःस्तुतः । तदाप्रभृति तल्लिङ्गं कुक्कुटेश्वरसञ्ज्ञकम्

विख्यातं देवि! लोकेऽस्मिन्सर्वकामफलप्रदम् ।
तच्च ये पूजयिष्यन्ति कुक्कुटेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥
तिर्यग्योनि न यास्यन्ति न वियोगो भविष्यति ॥ ५५ ॥

न चापिनरकावाप्तिर्न दुःखं न जराभयम् । नाकालेमरणं नृणां न च कष्टं भविष्यति
रूपसौभाग्यसम्पन्ना भविष्यन्ति युगेयुगे । चतुर्दश्यांप्रपश्यन्तिलिङ्गंयेकुक्कुटेश्वरम्

तेषां कुले च ये केचित्पितरो निरयस्थिताः ॥ ५७ ॥

तिर्यग्योनिगतायेचपशुयोनितु ये गताः । वृक्षत्वमथवा प्राप्तास्तेषांमोक्षोभविष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कुक्कुटेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः

औषधैरधिकोऽस्म्यैनि व्याधिना पीडितो भृशम् ॥ ३० ॥

अथ केनापि कालेन वामदेवो भगवान् । क्षयरोगाभिभूतोऽसौ मरणो सुकुमानसः ॥

पप्रच्छ वामदेवं स नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

भगवन्केन पापेन क्षीयतेऽहर्निशं वपुः । मन्त्रैः पोष्यमाणं हि मासेन विविधेन च

वामदेवोऽथ तं प्राह कुक्कुटा भक्षितास्त्वया ।

ताम्रचूडेन शप्तोऽसि कुक्कुटानां नृपेण हि ॥ ३३ ॥

तमथ शरणं गच्छ स उपायं वदिष्यति ।

ततः स ताम्रचूडस्याऽशरणमागमन्नृपो मुनेः ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा च ताम्रचूडं स महाभक्त्या कृताञ्जलिः । प्रोवाच नमनतोऽभूद्वदाहि मां शरणागतम्

अज्ञानाद्भक्षितास्तेऽपि कुक्कुटा पुष्टिकारणात् । क्षम्यतामद्य मे देवेश प्रमादं कृपणस्य च

प्रोवाच ताम्रचूडोऽथ तस्मात्प्रार्थयसन्नृप ।(तस्मात्ते वामदेवासे पुत्रस्त्वं भविष्यति

शान्ता नाम्ना च लोकानां राजा दण्डधरः प्रभुः ।

कुक्कुटो भविता राज्ञो सर्वरोगविवर्जितः ॥ ३८ ॥

अतो न दृश्यते पुष्टिः निर्यन्माव समाश्रितः ॥ ३९ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गालवस्य महात्मनः ।

सा सम्पूज्य विशालाक्षी गालवं मुनिसत्तमम् ॥

प्रपच्छ परया भक्त्या शापान्तो हि कथं भवेत् ॥ ४० ॥

गालवः कथयामास ध्यानेनालोक्य तत्त्वतः ॥ ४१ ॥

महाकालवने लिङ्गं पक्षियोनिविमोचनम् । उमाल्लेश्वरस्य देवस्य पूर्वभागे व्यवस्थितम्

तस्य दर्शनमात्रेण शापस्यान्तो भविष्यति ॥ ४२ ॥

सा प्रणम्य मुनिश्रेष्ठमाजगाम त्वरान्विता ।

यत्रास्ते नृपशार्दूलो विध्यन्बहुविधान्मृगान् ॥ ४३ ॥

प्रफुल्लनयनाभ्यां सा दृष्ट्वा लोकेक्षणाप्रिया । आह्लादिता बहुविधैः कोमलैर्वचनामृतैः

ततस्तेन सदा राज्ञा प्रोक्ता सा मृगलोचना । इदानीं किं मया कान्ते कार्यं भवति कथ्यताम्

तयाप्रोक्तं महाराज गम्यतेऽद्य मया सह । महाकालवने पुण्ये सर्वदुष्कृतनाशने ॥४६

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा त्वरमाणो मुदान्वितः ।
तया नीतोऽथ नृपतिर्लिङ्गस्यास्य समीपतः ॥ ४७ ॥

पूजयित्वाथतल्लिङ्गं पक्षियोनिविमोचनम् । तत्रैव च स्थितोराजाप्रियया सहपार्वति

तस्यां रात्रौ न सञ्जातःकुक्कुटोयादृशःसदा । शिवप्रसादादभवद्दिव्यरूपोमनोहरः

रूपेण निर्जितः कामस्तेनाप्रतिमतेजसा । ततो विस्मयमापन्नश्चिन्तयामासपार्थिवः

कोऽयं प्रभावो येनाहं शापान्मुक्तः सुदुस्तरात् ॥५० ॥

प्रियां पप्रच्छ नृपतिः पूर्णेन्दुवदनां भृशम् । कथंशापाद्विमुक्तोऽहं केनपुण्येन कर्मणा

अथ सा कथयामास वृत्तान्तं विस्तरान्मुदा ।
गालवेन हि यत्प्रोक्तं यत्किञ्चिच्छापमोक्षणम् ॥ ५२ ॥

राजञ्छापाद्विमुक्तोऽसि लिङ्गस्यास्य प्रभावतः ।
पुनः प्रसाद्य तल्लिङ्गं भुक्त्वा भोगांश्चिरं भुवि ॥ ५३ ॥

तयासार्द्धंययौराजा स्वर्गं सुरगणैःस्तुतः । तदाप्रभृति तल्लिङ्गं कुक्कुटेश्वरसञ्ज्ञकम्

विख्यातं देवि! लोकेऽस्मिन्सर्वकामफलप्रदम् ।
तत्र ये पूजयिष्यन्ति कुक्कुटेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥
तिर्यग्योनिं न यास्यन्ति न वियोगो भविष्यति ॥ ५५ ॥

न चापिनरकावाप्तिर्न दुःखं न जरामयम् । नाकालेमरणं नृणां न च कष्टं भविष्यति

रूपसौभाग्यसम्पन्ना भविष्यन्ति युगेयुगे । चतुर्द्दश्यांप्रपश्यन्तिलिङ्गं येकुक्कुटेश्वरम्

तेषां कुले च ये केचित्पितरो निरयस्थिताः ॥ ५७ ॥

तिर्यग्योनिगतायेचपशुयोनिंतु ये गताः । वृक्षत्वमथवा प्राप्तास्तेषांमोक्षोभविष्यति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कुक्कुटेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः

द्वात्रिंशोऽध्यायः

कर्कोटेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीविश्वनाथ उवाच

द्वात्रिंशत्तमं विद्धि कर्कोटेश्वरसंज्ञकम् । यस्य दर्शनमात्रेण निर्धनोऽपि धनं लभेत्
सार्वभौमः पुरा कश्चिद् धर्ममूर्तिरभूत् नृप । सुहृत्सख्यविनोदेन देवता सह
सोमसूर्योदयो यस्य तेजसा निर्मला रमा । प्रजासंघास्तिलैनित्यं नित्यमरेश्वित
पालितास्तस्य धारायां सहस्रांशुसमप्रभा । कन्यकानुसरीतानामभवाद्वै त्रैलोक्यसुन्दरी
तासामन्यतमा महिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
दशसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजिता ॥ ५ ॥
सुतो नृपस्यैव न च दानादिकं व्यधात् । कदाचिदेकान्ततः पप्रच्छ स्वपुरोहितम्
धिन्मयेनापृच्छत वशिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ६ ॥
भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा । कस्माच्च विपुलं तेजो दुर्लभं मम दृश्यते ॥
वसिष्ठ उवाच
पुरा त्वमधर्मीणाऽऽसी शूद्रजातिसमुद्भव । बहुदारसमायुक्तो दुष्टात्मा मार्गदाऽभवः
नियमशून्यहृदयो वर्षाणि सुबहून्यपि । महाक्रोधाभिभूतात्मा सदा निष्ठुरजल्पक
सदा प्रजान्यहारी त्वं सदापरविनिन्दक । सदा वाक्पारुष्यो राजन्सदापि मद्यासक्तक
अथ पश्चाद्धर्मात्मा काले मरणमागतः । माघमासे परं दग्धो दशवर्षाणि पञ्च च
रौरवं कुम्भिपाकं च महादारुणमन्ततः । सूक्ष्माविनिर्याताः नरकात्तरन्यदन्यनेकशः
मृगयो धर्मिणो राजन्नपि पर्वे च दारित । देवपाञ्चजन्यः पश्चात् चराचरामपसारितः
विधाय कार्पटं करं यमेन त्वयि पार्थिव ।
शिवस्य सरो विख्यातं महाकालवनोत्तमे ॥ १४ ॥
दृष्टं जलं हृतं यत्र दूरं देवाधनादिवत् । स्थं तद्रूपं कर्मं तस्मिन्सरसि विश्रुतम्

निक्षिप्तस्त्वं तदा तेन मा विपुण्येन कर्मणा । तत्र स्थितस्त्वं भूपाल वर्षाणां पञ्चकं तथा
कदाचित्तीरभूम्यां त्वं गतः सङ्क्रीडितुं शनैः ।
समीक्ष्य तत्र काकेन धृत्वा चञ्चुपुटेन च ॥ १७ ॥
आकाशमार्गं चोड्डीनः स त्वया ताडितो भृशम् ।
त्वत्तीक्ष्णपातैश्चरणैस्ताडितो व्यथितस्तदा ॥ १८ ॥
मुक्तस्त्वं चञ्चुपुटतो वायसेनाकुलेन तु । स्वर्गद्वारस्य पूर्वे तु देवगारे सुपुण्यदे
शिवस्य क्षिप्तस्त्वं शीघ्रं चञ्चवाक्षेपप्रपीडितः ।
मृतोऽसि सन्निधौ तत्र देवस्य परमेष्ठिनः ॥ २० ॥
विमुच्य देहं तज्जीर्णं यावत्त्वं कार्कटं पुरा । तत्क्षणाद्दिव्यदेहश्च दिव्याभरणभूषितः
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद् भूत्वा विद्याधरेश्वरः ।
कामगेन विमानेन पूज्यमानो गणेश्वरैः ॥ २२ ॥
स्वर्गं व्रजंस्त्वं सम्पृष्टः सुरसङ्घैश्च सादरम् ।
कोऽयं महात्मा मुदितो याति दिव्यपथोऽम्बरात् ॥ २३ ॥
ततो रुद्रगणैः सर्वं सुराणां कथितं पुरा । वृत्तान्तं विस्तरात्सर्वं कार्कटत्वविमोचनम्
तस्य लिङ्गस्य देवेशाः प्रभावोऽयमुपस्थितः ।
देवैः प्रोक्तश्च सहसा लिङ्गस्यास्य प्रभावतः ॥ २५ ॥
कार्कटीयोनिमुक्तस्य प्राप्तं स्वर्गसुखं यतः । कर्कटेश्वरनामायमतो लोके भविष्यति
तदाप्रभृति देवोऽयं कर्कटेश्वरसञ्ज्ञकः । त्वया स्वर्गे महाभोगा भुक्ता राजन्यथेच्छया
आगतोऽसि पुनर्भूमौ लब्धं राज्यमकण्टकम् ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याज्जातं सर्वं तवाधुना ॥ २८ ॥
तस्मात्पार्थिव! भूयस्त्वं लिङ्गमाराधयाद्भुतम् । जातिस्मरत्वमापन्नो वशिष्ठवचनात्तदा
पूर्वं कर्म स्मृतं तेन स्वकीयं पार्थिवेन तु । पुनर्गत्वा च तल्लिङ्गं पूजयामास यत्नतः
तस्मिँल्लिङ्गे लयं प्राप्तः स्वशरीरेण पार्वति ॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या कर्कटेश्वरम् ...

भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
नियमेन प्रपश्यन्ति ये दृष्टं कर्कटेश्वरम् । अरण्यां वा चतुर्दश्यां नैशां पुण्यफलं शृणु
सूर्यकोटिप्रतीकाशविमाने सार्वकामिके । भूत्वा मम पुरं यान्ति त्रिदशैर्दुर्लभं पुरा
तत्र दिव्यैर्महाभोगैः क्रीडन्त्यप्सरसोऽन्विताः । कल्पकोटिशतं दिव्यं सेव्यमानाश्च मनि हि
तदन्ते विष्णुभवनेतारम्यं संचरन्ति हि । पञ्चविंशति वर्षाणि स्थित्वा चैव हि सेविता
विष्णुलोकात् ब्रह्मलोकं महात्म्य मुनिना पुनः ।
भोगान्नानाविधान्भुक्त्वा ततो यान्ति परम्पदम् ॥ ३६ ॥
दशाश्वमेधैर्यत्पुण्यं तत्फलं तीर्थयात्रया । कर्कटेश्वरं दृष्ट्वा मेघनादेश्वरं शृणु ॥३७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कर्कटेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

मेघनादेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

मेघनादेश्वरं देवि त्रयोविंशतिमं शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः
राजमूला महादेवि योगक्षेमाः सुवृष्टयः । प्रजाश्च व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च ॥
राजा कृतं तथा त्रेता द्वापरश्च तथा कलिः ।
राजमूलानि सर्वाणि राजा धर्मस्य कारणम् ॥ ३ ॥
राजा बभूव लोकेऽस्मिन्मदान्धो नाम पार्थिवः । अहङ्कारावृतो दुष्टो देवब्राह्मणकण्टकः
कलिद्वापरयोः सन्धौ तस्य दोषाश्च भूमिनि । अनावृष्टिरभूद्घोरा लोके द्वादशवार्षिकी
न ववर्ष सहस्राक्षः प्रतिलोमोऽभवत्प्रभुः । नादृश्यन्तापि राजन्ते कुलधर्माश्च जातयः

नद्यःसंक्षिप्ततोयौघाःक्वचिदन्तर्हितास्तदा । निवृत्तयज्ञस्वाध्यायानिर्वषट्कारमङ्गलाः
उच्छिन्नकृषिगोरक्षानिवृत्तविपणास्तथा । अस्थिकङ्कालसङ्कीर्णाहाहाभूतनराकुलाः
शून्यभूयिष्ठनगरा दग्धग्रामनिवेशिनः । गोजाश्वमहिषैर्हीना भक्ष्यमाणाः परस्परम्
आश्रमान्सम्परित्यज्य पर्यधावन्निनस्ततः । ब्राह्मणा दुःखबहुला मृतानष्टाश्चपार्वति
सृष्टिरुन्मूलितासर्वा जङ्गमास्थावराखिला । एतस्मिन्नन्तरेदेवाःशक्राद्याभयविह्वलाः
शरण्यं शरणं जग्मुर्देवदेवं जनार्दनम् । क्षीरोदस्योत्तरे कूले श्वेतद्वीपं मनोरमम् ॥
ब्रह्मलोकादिभिर्लोकरनौपम्यगुणं शुभम् । सदानन्दकरं शान्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्
स्वेच्छाकल्पितविन्यासप्रासादशयनासनम् ।
वज्रेन्द्रनीलवैडूर्यचन्द्रकान्तादिदीपितम् ॥ १४ ॥
जरामृत्युभयोपेतसर्वव्याधिविवर्जितम् । तस्मिन्द्वीपेततो देवि सूर्यकोटिसमप्रभम्
साष्टाङ्गां प्रणतिं कृत्वा ते देवाः स्तुतिमब्रुवन् ॥ १५ ॥
वान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रोदेवसत्तमः । भवान्कर्त्ताविकर्त्ताचलोकानांप्रभवोऽव्ययः
वं च सत्यं परमं तपश्च परमं तथा । पवित्रं परमं मा यज्ञस्त्वं परमः प्रभो ॥
रं हौत्रं परं धाम त्वामाहुः पुरुषं परम् । एवं स्तुतस्तदा तैस्तु देवदेवो वरानने !
प्राह देवांस्ततः कृष्णः किं करोम्यद्य वः सुराः ।
विज्ञप्तस्तैर्हरिर्देवो ह्यनावृष्ट्या प्रपीडितैः ॥ १६ ॥
उपायः कथ्यतां देवतुष्टिःपुष्टिर्यथाभवेत् । ध्यानेनचिन्तयित्वाचकथयामासकेशवः
गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे महाकालवने शुभे । लिङ्गं वृष्टिकरं तत्र पुरा मेघैःप्रतिष्ठितम्
मेघा वृष्टिकराः सर्वे तस्मिँल्लिङ्गे च सन्ति वै ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद्वृष्टिरेव भविष्यति ॥ २२ ॥
प्रतीहारेश्वराद्देवादीशाने विद्यते सुराः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वासुदेवस्य पार्वति
महाकालवनेप्राप्ता यत्रास्ते लिङ्गमुत्तमम् । तुष्टुवुः परया भक्त्या दृष्ट्वा देवंमनोरमम्
नमस्तेऽस्तु महेशाय नमोऽनन्ताय मालिने । नमस्तैजसमूर्त्तायनमः सौन्दर्यशालिने
नमो योगाय वेदाय नमः पिङ्गजटाय ते । अनन्तज्ञानदेहाय नम ईश्वरमूर्त्तये ॥ २६ ॥

नमः शुभ्राट्टहासाय नमस्तेऽस्तु शिखण्डिने । शङ्कराय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु पिनाकिने
नमोऽन्तकाय मध्याय त्र्यम्बकायास्तु ते नमः । नमस्ते बहुरूपाय नमस्तेऽचिन्त्यमूर्त्तये
नमो योगशरीराय नमस्ते सर्व सर्वदा । नष्टं देव जगत्सर्वमनावृष्ट्या प्रपीडितम् ॥
सुवृष्ट्या देवदेवेश पाहि नः शरणागतान् । एतस्मिन्नन्तरे मेघाः पार्यणाङ्गारवषस
लिङ्गमध्यात्समुत्तस्थुर्घोदयन्तो नभस्तलम् । अन्योन्यवेगाभिहता ववृषुर्भूतले तदा
आसन् विभिन्नप्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तिमिरौघपरिक्षिप्ता रेजुश्चापि दिशोदश
तेतस्य देवदेवस्य माहात्म्येन प्रतोषिताः । देवाः प्रीतिपरा जग्मुः सर्वेऽमृतमिवोत्तमाः
ततस्तमः संहरन्तो विनेशुश्च बलाहकाः । प्रववुः शीतला वाताः प्रशान्ताश्च दिशोऽन्या

शुभ्रप्रभाणि ज्योतींषि ताम चक्रुः प्रदक्षिणाम् ।
अचिग्रह महाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ॥ ३१ ॥

महयपो विशोकाश्च नन्द्योश्च फल जगुः । अभूत्स्वपि पुनः सर्वा लिङ्गस्यास्य प्रभावतः
सुरैः सम्पूज्यमानस्यातेऽकुर्नाम यथार्थतः । अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा प्रीताः सुरास्तु
मेघनादेश्वरं नाम भविष्यत्यस्य सर्वतः । मेघनादेश्वरस्यायं मया ते कथितः प्रिये

भविष्यन्ति नरा भूमौ कृतार्थास्तत्प्रभावतः ।
दर्शनादस्य लिङ्गस्य कामवृष्टिर्भविष्यति ॥ ३६ ॥

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । कुर्वंल्लिङ्गस्य स्नपनं रुद्रलोके महीयते
प्रमाय पठते यत्र मेघनादस्य पार्वति । अतिवृष्टिश्चैव ततो भविष्यति न भूतले

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये मेघनादेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

महालयेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

महालयं महाभागे चतुर्विंशतिकं शुभम । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥
उत्पादितं धृतं व्याप्तं त्वया देव मया श्रुतम् । त्वयैकेन विशुद्धेन सर्वगेन महात्मना
अत्यर्थं मुनयःसर्वेमुदितामौनिनोऽव्ययाः । वदन्ति कारणंचास्यत्रैलोक्यस्यमहेश्वर
त्वया सर्वमिदं सृष्टं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् । उत्पाद्यमानमुत्पन्नं प्रलीयच्चसहस्रशः
देवदानवगंधर्वमुनिचारणभोगिनाम् । उत्पत्तिस्थितिसंहारास्त्वया दृष्टामुहुर्मुहुः ॥
जगच्चराचरं देव कुत्र स्थित्वा सृजस्यलम् । लीलया संहरस्येतत्प्रसादाद्वक्तुमर्हसि
कोऽसौ महालयो रौद्रग्रहरूपी व्यवस्थितः ।
यस्मिन्धृतं त्वया सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम ॥ ७ ॥
इतिपृष्टस्त्वयादेवि!मयातेकथितं पुरा । इदानीं कथयिष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसा
पृथिव्यादीनि भूतानि महाकालवने प्रिये । धृतानि प्रलयस्यान्ते एकोद्दे शेमहालये
ब्रह्मलोकादिभिर्लोकैरनौपम्यगुणं शुभम् । स्थानं महालयं तत्र ममानन्दकरंपरम् ॥
परंब्रह्ममयं लिङ्गं तत्रतिष्ठति सर्वदा । तस्यलिङ्गस्य मध्ये तु धृतंकृत्स्नंचराचरम्
तत्र ब्रह्मादयो देवाविष्णुस्तत्रैवसंस्थितः । लिङ्गस्याभ्यंतरेदेविसर्वमेवाधितिष्ठति
तस्माल्लिङ्गात्समुत्पन्नो महानात्मा महामतिः ॥ १२ ॥
भूतादिश्चाप्यहङ्कारो विष्णुः शम्भुश्च पार्वति !।
बुद्धिःप्रज्ञा धृतिः ख्यातिः स्मृतिर्लज्जा सरस्वती ॥ १३ ॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १४ ॥
अस्माद्भूतानि लिङ्गानि महाभूतानि पञ्च वै ।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिः प्रलीयते ॥ १५ ॥

स्थलमापस्तथाकाशं जन्म चापि चतुर्विधम् । अण्डजोद्भिज्जसस्वेदजरायुजमथापि वा

चतुर्धा जन्म चिह्नं यल्लिङ्गेऽस्मिन्नेव लक्ष्यते । तपः कर्म च पुण्यञ्च व्रतं दानं तथैव च

रजः सत्त्वं तमोभावस्तस्माल्लिङ्गाच्च जायते ।
तस्मिंस्तच्छ्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥ १८ ॥

अव्यक्तकारणं सूक्ष्मं यत्तत्सदसदात्मकम् । यस्मात्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः

विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि ।
यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च गुह्यकाः पितरस्तथा ॥ २० ॥
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयस्तथा ॥ २१ ॥

यस्मात्सदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम् । यदिदं दृश्यते किञ्चित्तस्मिन्नेव प्रलीयते

अतो महाल्योनाम विख्यातो भुवनत्रये । मुक्तीश्वरस्य देवस्य दक्षिणे सव्यवस्थितः

यः पूजयति तल्लिङ्गं रुद्रमूर्त्या महाल्यम् ।
त्रैलोक्यविजयी नित्यं कीर्तिमांश्च नरो भवेत् ॥ २४ ॥

महाल्येश्वरे पुण्ये पूजिते परमेश्वरे । भवत्या परया चैव सर्वे देवाः सुपूजिताः ॥

भवन्तीह महाभागे यतस्तैरपि पूज्यते ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये महाल्येश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

मुक्तीश्वरवर्णनम्

श्रीहर उवाच

पञ्चविंशतिकन्देवं विद्धि मुक्तीश्वरं प्रिये। यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिर्भवति पार्वति
पुराराथन्तरे कल्पे बभूव द्विजसत्तमः। मुक्तिर्नाममहाभागे संशितात्मा जितेन्द्रियः
महाकालसमापे तु मुक्तिलिङ्गमनुत्तमम्। महाकालवने रम्ये तत्रास्ते योगतत्परः

ततस्तेपे जिताहारो वत्सराणि त्रयोदश।

कदाचित्सोऽभिषेकाय आजगाम महानदीम् ॥ ४ ॥

शिप्रांविप्रप्रियांपुण्यांमहापातकनाशिनीम्। तत्रस्नात्वाजपन्विप्रोददर्शायान्तमग्रतः
व्याधं महाधनुष्पाणिं रक्तनेत्रंसुभीषणम्। वदन्तं हन्तुकामस्वै वल्कलानांजिघृक्षया
तं दृष्ट्वा क्षुभितोविप्रोब्रह्मघ्नस्यभयादिति। ध्यायन्नारायणन्देवं तस्थौतत्रैवसद्विजः
तं दृष्ट्वान्तर्गतहरिर्व्याधो भीत इवाग्रतः। विहाय सशरं चापं ततो वचनमब्रवीत् ॥

व्याध उवाच

हन्तुमिच्छुरहं ब्रह्मन्भगवन्तमिहागतः। इदानीं स्वगताबुद्धिस्त्वां दृष्ट्वैव महाप्रभम्

ब्राह्मणानां सहस्राणि स्त्रीणामयुतशस्तथा।

निहतानि मया ब्रह्मन्वृत्तिहेतोः कुटुम्बिना ॥ १० ॥

नच मे व्यथितंचित्तंकदाचिदपिजायते। इदानींतप्तुमिच्छामितपोऽहंत्वत्समीपतः
उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि। एवमुक्तो ह्यसौ विप्रो नोत्तरम्प्रत्यपद्यत ॥१२
ब्रह्महापापकर्मेतिमत्वाब्राह्मणपुङ्गवः। अनुक्तोऽपिस धर्मस्तुव्याधस्तत्रैवतस्थिवान्

स्नात्वा सद्यः समायातो मुक्तिलिङ्गसमीपतः।

द्विजेन सहितो देवि! दृष्ट्वा देवं सनातनम् ॥ १४ ॥

तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु तस्मिंल्लिङ्गेलयंगतः। दृष्ट्वातन्महदाश्चर्यं मुक्तिर्विप्रो निजान्तरे

चिन्तयामास सहसा मुक्तिं प्राप्ता वरानने ॥ १५ ॥
व्याधेन पापयुक्तेन समाधिरहितेन च । मया पुनः समाचीर्णं तपः परमदुष्करम्
न प्राप्ता परमा मूर्त्तिर्मुक्तिर्नैव च लभ्यते । एवं सचिन्तयित्वाथ वैराग्याद्ब्राह्मणर्षभ

अन्तर्जलगतो भूत्वा चचार विपुलं तपः ॥ १७ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य स नर्मदामगमत्किल ।
व्याघ्रो बुभुक्षितः साध्वि तं विहगं समुद्यतः ॥ १८ ॥
अन्तर्जलचरं विप्रं यावद्व्याघ्रो जिघृक्षति ।
नमो नारायणायेति तावदुच्चार्य द्विजोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥
व्याघ्रेणापि श्रुतो मन्त्रोऽजहात्प्राणांश्च तत्क्षणात् ।
दिव्याम्बरधरो देवि दिव्याभरणभूषितः ॥
दिव्यालङ्कारशोभाढ्यः पुरुषश्चाभवत्तदा ॥ २० ॥
सोऽब्रवीद्यामि तं देशं यत्र विष्णुः सनातनः ।
त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ मुक्तः शापाच्चिरामय ॥ २१ ॥

इत्युक्ते ब्राह्मण आह कोऽसि त्वं पुरुषर्षभ । सोऽब्रवीदस्मि राजेन्द्र प्रतापी पूर्वजन्मनि दीर्घबाहुरिति ख्यातः सर्वधर्मविशारदः । अहं जानामि वेदांश्च शास्त्राणि विविधानि च शुभाशुभमहं वेद्मि सर्वज्ञोऽहं महामते । ब्राह्मणैर्नैव मे कार्यं किं वदन्तु ब्राह्मणा इति

तस्मिन्कस्मिन्दिने विप्राः सर्वे क्रोधसमन्विताः ।
ददुः शापं दुराचारः क्रूरो व्याघ्रो भविष्यसि ॥ २५ ॥

अपमानेन विप्राणां मांसाहारी भवाम्यहम् । सञ्जातोऽस्मि द्विजश्रेष्ठ पश्य कालविपर्यये इत्युक्तोऽहं पुरा तैस्तु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । दुर्धर्षोऽयं मया प्राप्तो ब्रह्मशापो द्विजर्षभ ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे प्रणिपत्य मया मुने । प्रसादिता मया विप्रास्तदा गद्गदया गिरा

जानामि तेजो विप्राणां महाभाग्यं च धीमताम् ।
अपेयः सागरः क्रोधात्कृतो यैस्तपसोदकः ॥ २६ ॥

तथैव दीप्ततपसा मुनीनां भावितात्मनाम्

ब्राह्मणानां परीभावाद्ब्रात्तापिश्च दुरात्मवान्।
अगस्तिमृषिमासाद्य जीर्णः क्रूरो महासुरः ॥ ३१ ॥
सर्वभक्षः कृतो वह्निर्भृगुणा कारणान्तरे । गौतमेन पुरा शक्रः स सहस्रभगः कृतः
दशधा केशवो जज्ञे ब्रह्मशापात्सुदुस्तरात् । प्रसन्नैर्वालखिल्यैश्च पक्षीन्द्रो गरुडः कृतः
अश्विनौ देवभिर्जौ च्यवनेन महात्मना । विष्टम्भयित्वा कुलिशं कृतौ तौ सोमपायिनौ
कार्त्तवीर्यार्जुनेनैव बाहूनां च सहस्रकम् । दत्तात्रेयप्रसादेन प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥
पुरा सेन्द्रा वशिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः । ब्राह्मणप्रभवं सौख्यं कीर्तिरायुर्यशो बलम्
लोकालोकेश्वराश्चैव सर्वे ब्राह्मणपूर्वकाः । एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः
भस्मीकुर्युर्जगदिदं क्रुद्धाः प्रत्यक्षदर्शनाः । प्रभावा बहवश्चापि श्रूयन्ते ब्रह्मवादिनाम्
कोपश्च विपुलः सद्यः सद्यः प्रत्ययकारकः । अहं कोपाद्द्विजेन्द्राणां गतो निरययातनाम्
नित्यं क्रोधाच्छ्रियं रक्षेद्धनं रक्षेत्समत्सरात् ।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥ ४० ॥
मयाऽज्ञानात्कृतं पापं राजगर्वेण दैवतः। क्षन्तुमर्हथ विप्रेन्द्रा भवतः शरणागतम् ॥
अथ तुष्टा द्विजाः सर्वे त ऊचुर्मामिदं मुदा । षष्ठान्नकालिकस्तेऽग्रे यदा स्थास्यति कश्चन
मांसभोक्ता च भविता कश्चित्कालं नराधिप ।।
यदा शिप्रान्तरे पुण्ये स्नातस्तु द्विजसत्तमः ॥ ४३ ॥
अन्तर्गलगतेनोक्तो नमो नारायणेति च । जिघृक्षुर्व्याघ्ररूपेण तदा मुक्तो भविष्यसि
एवं स भवता प्रोक्तो नमो नारायणेति च । मंत्रः श्रुतो मया त्वत्तस्तस्येयं व्युष्टिरागता
जातोऽहं दिव्यदेहस्तु प्रसादात्तव सुव्रत ।। स कृतार्थोऽस्मि सञ्जातो भगवन्दर्शनात्तव
परं च गृह्यतां मत्तो यश्च ते संशयो हृदि । तं च ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ! सर्वं सम्पादयामि ते
तवोपदेशदानेन आनृण्यं गन्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा दिव्यदेहस्य स द्विजः ।
प्रोवाच परया तुष्ट्या प्रफुल्लमुखपङ्कजः ॥ ४९ ॥
अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं तपः । अद्य मे सफला जिह्वा सफलं चक्षुरद्य मे॥

श्रुतं देवेन सम्प्रोक्तमात्मापश्यत्तितदेहिन । शाकम्भरीगतं नेऽध्य स्थावरूपन्तपोधम
तेजोमय शरीरं तु ब्रह्मरूपं सनातनम् । यदि त्वहमनुग्राह्यो यदीप कर्तुमर्हसि॥
कारणं श्रोतुमिच्छामि हृदि मे वर्तनचिरम् । क्व मुक्तिर्महाभागमुक्तिर्कामिनयतन
योगाभ्यासरतेनापि परसराक्ष त्रयोदश । न लब्धा परमाश्चर्यं तपसा दुष्करेण तु
ध्यानेनापि भृशं तेन यासा मुक्तिं क्षयेन तु।
अत्र मे संशयो जात को हेतु कथ्यतां भृशम् ॥ ५५ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ततो वचनमब्रवीत् । कथयामि परं गुह्यं रहस्यमुक्तिलक्षणम्
महादेवमुपास्याशु मुने मुक्तिः सुदुर्लभा । पुरातनैस्तु विद्वद्भिरिभुक्त महात्मभिः
श्रृणुष्वैकमना विप्र कुरुवर्तनयथायत । मन्नियोगात्कुर्त्विजश्रेष्ठततोमुक्तिमवाप्स्यसि
शानोऽहं तैयदा विप्रैस्तदा मे तोषिता भृशम् ।
ममानुकम्पया प्रोक्त मुक्तिस्ते भविता ध्रुव ॥ ५६ ॥
मुक्तिकामो महाकालेमुक्तिर्ब्राह्मणसत्तम । चिरातनपसायुक्त स ते प्रसन्नकरिष्यति
मुक्तीश्वरतदा लिङ्गतस्याप्रकथयिष्यसि । तथापितस्यमुक्तेश्चमुक्तिरेवभविष्यति
पूर्वं हि विहितं कर्म देहिनो न विमुञ्चति ।
धात्रा विहितं दृष्टे बहुधा कर्मभिश्च ॥ ६२ ॥
इतितस्य वच श्रुत्वा स विप्रोश्रवचित्तम । अन्तर्जलात्समुत्थायततोवचनमब्रवीत्
दिष्ट्या त्वमागतो भूयं दिष्ट्या ते सङ्गत मया ।
ईदृशा दुर्लभा लोके नरा मुक्तिप्रदर्शका ॥ ६४ ॥
इत्युक्त्वा नृपविप्रौ तौ मुक्तिलिङ्गं समागतौ ।
दर्शनार्थं विशालाक्षिं दृष्ट्वा देवं सनातनम् ॥ ६५ ॥
तत्क्षणा सशरीरौ तौ तस्मिंल्लिङ्गे लयगतौ । ईदृशोऽप्रभयादेवि'महिमाकथितस्तव
अस्य लिङ्गस्य संस्पर्शान्मुक्तिर्भवति नान्यथा ।
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या मुक्तिलिङ्गं सनातनम् ।
अपि पापसमायुक्ता (स्त) स याति (न्ति) परमां गतिम् ॥ ६७ ॥

रे मूढाः किं तपोभिश्च किं दानैर्नियमैश्च किम् । कुरुध्वं मुक्तिलिङ्गस्य दर्शनं मुक्तिदायकम्
न मां विदुर्देवगणा नासुरा न महर्षयः । परं रूपं विशालाक्षि यदस्मद्द्युति निर्मलम्
न मे वेत्ति परं रूपं स्वयं साक्षात्प्रजापतिः । न विष्णुस्त्रिदशश्रेष्ठाः कुतोऽन्ये मुनयः प्रिये
यदेतद्दृश्यते तेजो लिङ्गरूपं यशस्विनि !। एतदेव शुकाद्या हि ध्यायन्ति त्रिदशा अमी
अनेकजन्मसंशुद्धा योगिनोऽनुग्रहान्मम । प्रविशन्तु तनुं देवि! मदीयां मुक्तिदायिकाम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये मुक्तीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

——:*:——

षड्विंशोऽध्यायः

सोमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

विद्धि षड्विंशकं देवि! देवं सोमेश्वरं परम् । यस्य दर्शनमात्रेण निष्कलङ्को नरो भवेत्
अत्रिर्नाम महाभागो ब्रह्मणो मानसः सुतः । प्रजापतिरभूद्देवि ! कल्पे वाराहसञ्ज्ञके

तस्य पुत्रोऽभवत्सोमो दक्षोऽथ मातृभागतः ।
सप्तविंशतिर्याः कन्या दाक्षायण्यः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
सोमपत्न्यो हि मन्तव्यास्तासां श्रेष्ठा तु रोहिणी ।
तामेव भजते सोमो नेतरा इति शुश्रुम ॥ ४ ॥

इतराः प्रोचुरागत्य दक्षस्याग्रे यथातथम् । दक्षोऽथ स तदागत्य तमुवाच स नाकरोत्
यदा न वारितस्तस्यौ दक्षः क्रुद्धस्तदा प्रिये । शशाप सोमं सङ्क्रुद्धः शीघ्रमन्तर्हितो भव
एवं शप्तस्तु सोमो वै तदा ह्यन्तर्हितोऽभवत् । शशाप सोमो दक्षं तु भवानपि भविष्यति
अनेकत्वं विहायैतज्जलदेहं सनातनम् । अतः प्राचेतसो दक्षो ब्रह्मपुत्रोऽपि गीयते ॥
एवमन्तर्हितः सोमो गतो वै दक्षशापतः । देवाश्च नागा यक्षाश्च गन्धर्वाः पितृभिः सह

वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्माणं समुपस्थिताः ॥ ९ ॥
तस्याग्रे कथयामासुर्नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
भगवन्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयम्भुवः ॥ १० ॥
स्रष्टा च दुर्वाससः शापाद्धीनाः शरणागताः । देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा प्राह प्रजापतिः
आश्वासयामास सुरान्सुस्निग्धैर्वचनाम्बुभिः । भवद्भिर्विरहात्स्नेहात्प्राप्ता दुर्वाससः
शापान्तं भगवान्देवो विष्णुरेव करिष्यति । पद्मजस्तानथो देवान्समादाय पद्मजन्मन
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्गतव्यथाः ॥ १३ ॥
ब्रह्मणा सहिता देवाः स्तुतिं चक्रुः समाहिताः । नमस्तेऽस्तु सर्वेश नमस्ते विश्वभावन
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥ १४ ॥
नारायण जगन्नाथ त्वामस्या शरणं गताः । त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥ अन्तर्धानगतः स्वामी लक्ष्मीशापान्न दृश्य
विनाशोऽयं स्थितोऽस्माकं मग्ना इव महार्णवे । देवानां वचनं श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्
भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् । अथ सम्मथनं क्षीरसागरस्य विधीयताम्
प्रमुखस्था तु भगवान्विष्णुरिदमब्रवीत् । सोमं सन्धाय सहसा ...
यदा स्तुतो नारायणेति महाबुद्धो जनार्दन । पुराणपुरुषो देवोऽब्रवीदिदमब्रवीत्
देवैरसुरसङ्घैश्च मथ्यमाने क्षीरोदधौ । भविष्यति पुनश्च श्रीर्मथ्यमाने महोदधौ ॥
अमृतं तत्र उत्पन्नं रत्नानि विविधानि च ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वासुदेवस्य पावनि ॥ २२ ॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् । देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमम्भसाम्
सोमार्थे च पुरा देव तथैवासुरदानवाः । बलिमुखमुपाश्रित्य नागराजो महेश्वरा ॥
विबुधाः सहिताः सर्वे तत्र पुच्छान्ते स्थिताः । अनोऽथ भगवान्देवो यतो नारायणस्तत
शिरस्युद्यम्य नागस्य पुनः पुनरथाक्षिपत् ।
उदधौ मथ्यमाने वै महाशब्दो बभूव ह ॥ २६ ॥
तत्र नानाजलचरा विनिष्पिष्टा महाद्रिणा । विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः

तस्मिंस्तु मथिने देवि! प्रयत्नात्केशवस्य च ।
प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥ २८ ॥

तमेव देवा मनुजाः पितरश्च यशस्विनि !। उपजीवन्ति वृक्षाश्चतथैवौषधयो विधुम्
समुत्पन्नमथो दृष्ट्वा भगवान्प्राहकेशवः । पालयेमाः प्रजाश्चन्द्र त्वं ज्येष्ठोजगतो भव
इत्युक्तो वासुदेवेन प्रजाःपालयितुं शशी । पूर्वं सोमोऽपि यो नष्टःप्रविष्टोगहनंवनम्

तस्याग्रे नारदः सर्वं कथयामास सत्वरम् ।
देवर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥

पीडितो दक्षशापेन सोमोऽप्यन्तर्हितस्तदा । जगाम शरणं देवि ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्
तत्र गत्वा यथाशापं कथयामास गद्गदः । पूर्वचन्द्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥
अयं मे प्रथमः पुत्रः पीडितः शशिनाभृशम् । नवेनोदधिजातेन किमयाक्रियते पुनः
विष्णुना च बलं दत्तमस्मै चन्द्रमसे दृढम् । तस्माद्यास्यामि तत्राहंयत्रदेवोजनार्दनः
तं दृष्ट्वा मधुहन्तारं ब्रह्मा विष्णुमुवाचह । त्वदादेशाज्जगन्नाथ एष चन्द्रः कृतो मया॥
स चायं पीडितो देव शशाङ्केन नवेन वै । इत्युक्तोब्रह्मणा देवि!वासुदेवोजगत्पतिः

वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्माग्रे च पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
ब्रह्मापि पूर्वचन्द्रार्थे विष्णुं लोकनमस्कृतम् ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥ ३९ ॥

नमःकृष्णनमोविष्णोनमोजिष्णोनमोनमः । नमोवामनगोविंदनमोऽनन्तनमोऽच्युत

जयस्व गोविंद! महानुभाव! जयस्व विष्णो! जय पद्मनाभ !।
जयस्व सर्वाद्य गदाधरेश जयस्व विश्वेश्वर विश्वमूर्त्ते !॥ ४१ ॥

एवं स्तुतस्तदादेवि ब्रह्मणा लोककारिणा । समीपस्थंसमालोक्य सोमंवचनमब्रवीत्
गच्छसोम ममादेशान्महाकालवनोत्तमे । उत्तरे मुक्तिलिङ्गस्य लिङ्गंकान्तिकरंपरम्

तमाराधय यत्नेन स ते देहं प्रदास्यति ॥ ४३ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन ब्रह्मणा च पुनः पुनः । आजगाम महादेवि! महाकालवनोत्तमे ॥
लिङ्गं दृष्ट्वा च तुष्टाव स्तोत्रेणानेन भक्तितः ॥ ४५ ॥

सकृदभ्यर्च्य सोमेशं बिल्वपत्रेण मानवः। मुक्तो भोगी निरातङ्को मम लोके वसेच्चिरम्
काञ्चनैः कुसुमैर्दिव्यैर्लिङ्गं सोमेश्वरं प्रिये। पूजयन्ति नरा भक्त्या ते यान्ति परमां गतिम्
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः। सोमेश्वरस्य देवस्य शृणुष्वानरकेश्वरम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सोमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

अनरकेश्वरवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

सप्तविंशतिमं देवि अनरकेश्वरमष्टकम्। यस्य दर्शनमात्रेण स्वप्नेऽपि नरकः कुतः ॥१
पुरा कलियुगे देवि! कल्पे घोरात्मकेऽष्टके। कलुषं कालमासाद्य सत्ये च प्रलयं गते

निर्मर्यादा निराधारा निरीक्षानास्तिका जनाः।
वर्णाश्रमाश्च सञ्जाता वञ्चयन्ति परस्परम् ॥ ३ ॥
नार्चयन्ति सुरान्विप्राः कर्म कुर्वन्ति कुत्सितम्।
लोभमोहपरा भूत्वा कामसक्ताश्च मानवाः ॥ ४ ॥

निमिर्नाम महाभागो यममार्गं ददर्श ह ॥ २७ ॥
रौद्रं भयानकं दुर्गं पूरितम्पापकर्मभिः । तमसा सम्वृतञ्चैव केशशैवालशाद्वलम् ॥
सम्पृक्तं पापकृद्दुर्गन्धैर्मांसशोणितकर्दमैः । वह्निज्वालेनदीप्तेन समन्तात्परिवारितम्
अधोमुखैश्च ककोलैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् । सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम्
वृक्षै रुधिरमांसैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः । निकृत्तोदरहस्तैश्च तत्रतत्र प्रचारितैः ॥
वृतं कुणपदुर्गन्धैरशिवं भोगवर्जितम् । असिपत्रवनञ्चैव समन्तात्परिवारितम् ॥
करम्भवालुकाकीर्णमायसीश्च शिलाः पृथक् ।
ददर्श चापि देहोत्थयातनां पापकर्मणाम् ॥ ३३ ॥
स तं दुर्गन्धमालक्ष्य पुरुषं तमुवाच ह । कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिदमब्रवीत्
देशोऽयंकश्च देवानामेनदिच्छामिवेदितुम् । इत्युक्तोयमदूतस्तुदण्डहस्तोऽग्निसप्रभः
पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीत्युवाच ह ॥ ३५ ॥
भूयःसराजा तं प्राहकिङ्करंविनयान्वितः । भो याम्यपुरुषाचक्ष्वकिंमया दुष्कृतंकृतम्
येनेदं व्यसनम्प्राप्तं मया च धार्मिकेण हि । निमिर्नामाहं विख्यातो जनकनामहंकुले
जातो विदेहविषये सम्यङ्मनुजपालकः । चातुर्वर्ण्यञ्च धर्मस्यं कृत्वा संरक्षितं मया
धर्मप्रधानकल्पेन मनुनाऽत्र यथा पुरा । यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही ॥ ३६
नोत्सृष्टश्चैव संग्रामेनातिथिर्विमुखोऽभवत् । कृतास्पृहाचन मयापरस्त्रीविभवादिषु
सोऽहं कथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम् ।
इति पृष्टस्तदा तेन निमिना यमकिङ्करः ॥
उवाच प्रणतो भूत्वा क्रूरोऽपि प्रश्रितं वचः ॥ ४१ ॥

पुरुष उवाच

महाराजयथात्थत्वं तथैतन्नात्रसंशयः । किन्तुस्वल्पंकृतम्पापं भवन्तंस्मारयामितत्
उक्ता या दक्षिणा श्राद्धे न दत्ता सा त्वया नृप ॥
प्रमादाद्विस्मृता चैव तस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ४३ ॥
एतावदेव ते पापं नान्यत्किञ्चन विद्यते । वैदेहागच्छ पुण्यानामुपभोगायपार्थिव ॥

एवं श्रुत्वा तु राजर्षिर्निमिर्दूतमथाब्रवीत् । यास्यामि देवानुचरयन्त्रणा त्वं हि नेष्यसि
किंचित्पृच्छामि ते तत्त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
एवमेतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः ॥ ४६ ॥
पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वत्पापभवन्ति हि । किं कृतं कर्मदूतेन्द्र कथयैतज्जुगुप्सितम्
हरन्त्येषां तथा जिह्वामायमानां पुनर्नवाम् । करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेते सुदुःखिताः
किमेतेनवचित्ताश्च तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः । एवमाक्रम्याश्च रुदन्ते यातनापापकर्मिणाम्
कियत्कालं भविष्यन्ति तन्ममोद्देशतो वद ॥ ४९ ॥
पुरुष उवाच
यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्मफलोदयम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण तथातथम्
पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्यायेण समश्नुते । भुञ्जतश्चक्षयं याति पुण्यं पापमथापि वा
न तु भोगादृते पुण्यं पापं कर्म च मानव । परित्यजति राजेन्द्र नरस्यैतदुदाहृतम्
एवमेते महापापा यातनाभिरहर्निशम् । क्षपयन्ति महाघोरं नरकान्तरवर्त्तिनः ॥ ५३॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यक्त्वेऽथ शुभाशुभम् ।
पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखं न संशयः ५४ ॥
एतदुद्देशतो राजन्भवता कथितं मया । स्वकर्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा
तदेहाग्यत्र गच्छावो यथादृष्टं त्वयाधुना । ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः
तदा हि सर्वे दृष्टस्य यातनास्थायिभिर्भृशम् । प्रमादकृद्भूपति विष्णु राजन्मुहूर्तकम् ॥
त्वदङ्गसङ्गी पवनो देहान्ह्लादयते हि नः ॥ ५७ ॥
परितापं च गात्रस्थं पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः । अपहन्ति नरव्याघ्र कृपां कुरु महीपते
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः । पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति
किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् । आह्लादजननी दृष्टिर्यस्येयं तदुदीर्यताम्
पुरुष उवाच
त्वया दृष्टो महाकाले विख्यातोऽनरकेश्वरः ।
आश्विनस्य चतुर्दश्यां तस्येदं फलमीदृशम् ॥ ६१ ॥

तत्स्नानाद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतां राजन्यातना न प्रबाधते ॥

राजोवाच

यदिमत्संनिधानेसायातना न प्रबाधते । ततो भद्रमुखात्राहंस्थास्येस्थाणुरिवाचलः

पुरुष उवाच

एहि राजेन्द्र! गच्छावो निजपुण्यसमार्जितान् । ।
भुङ्क्ष्व भोगान्न यास्येतां यातनां पापकर्मणाम् ॥ ६४ ॥

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः ।
यदार्त्तजन्तुं निर्वाणमानेतुमिति मे मतिः ॥ ६५ ॥
तस्मान्नतावयास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।
मत्सन्निधानात्सुखिनो भवन्तु नरकौकसः ॥ ६६ ॥

प्राप्स्यन्तेतेयदिसुखंवहवोदुःखिते मयि । किन्तुप्राप्तंमयासर्वंतस्मात्त्वंव्रजमाचिरम्

पुरुष उवाच

एष धर्मश्चशक्रश्चत्वांनेतुंसमुपागतौ । अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात्पार्थिवगम्यताम्

एतस्मिन्नन्तरे धर्मः शक्रेण सहितोऽब्रवीत् । निमे परमधर्मज्ञ प्रीता देवगणास्तव॥

गेह्येहिपुरुषव्याघ्रकृतमेतावताप्रभो । सिद्धिःप्राप्तात्वयाराजँल्लोकाश्चाप्यक्षयान्विताः

नचमन्युस्त्वयाकार्यः शृणु मे वचनंविभो । अवश्यंनरकस्तावद्द्रष्टव्यः सर्वराजभिः

नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वयासम्यगुपासितः । विमानवरमारुह्यविमलंचाद्यगम्यताम्

निमिरुवाच

नरके मानवा धर्मपीड्यन्तेऽत्रसहस्रशः । त्राहीतिवार्त्ताक्रन्दन्तोमामतोनव्रजाम्यहम्

इन्द्र उवाच

कर्मणा नरके प्राप्तिरेषां च पापकर्मणाम् । स्वर्गंत्वयाऽपिगन्तव्यंनृप!पुण्येनकर्मणा

राजोवाच

परिजानासि धर्मज्ञ! त्वं वा शक्र शचीपते !। विशिष्टं ममकिं पुण्यंशुभंतद्वक्तुमर्हसि

धर्म उवाच

आश्विनस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी । तस्यां त्वया महाबाहो महाकालवनोत्तमे
दृष्टो देवः सुविख्यातः स्वर्गदोऽनरकेश्वरः ॥ ७९ ॥
क्षद्विशिष्ट च तं पुण्यं तस्य सङ्ख्या न विद्यते ।
स्वकर्मोपार्जितं पुण्यं भुङ्क्ष्व राजन्यथासुखम् ॥
एते नारकिकाः सर्वे क्षपयन्तु स्वकर्मजाम् (यातनामितिशेषः) ॥ ८३ ॥

राजोवाच

कथं स्पृहा कस्यचिन्निसत्सङ्गेपुण्यमानदा । यदि मत्सन्निधानेनामुत्कर्षो नोपजायते
तस्माच्चरसुकृतं किञ्चिद्विशिष्टतरमस्ति वै । तेन मुच्यन्तु नरकात्पापिनो यातनागताः

धर्म उवाच

राजंस्त्वया कृतं पूर्वेऽनरकेश्वरदर्शनम् । तत्पुण्यस्य पुण्यस्य फलमेभ्यः प्रयच्छ वै
तत्पुण्यस्य प्रभावेण मोक्ष्यन्तेनरकादिमे । तथा कृते तमन्तेन विमुक्ता नरकाच्च ते
ततोऽप्यर्थाद्धर्मराजो ह्निमिषं शमसमन्वितः । एवं श्रेष्ठतरं स्थानं त्वया प्राप्तं महीपते
पताश्च नारका पश्य विमुक्ताः पापकर्मणः । ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपते
विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः । येये तत्रामवन्पापा यातनाभ्यः परिच्युताः
प्रभावात्तस्य देवस्य स्वर्गलोकं गता प्रिये ।
अतो देवः सुविख्यातः स देवोऽनरकेश्वरः ॥ ८५ ॥
स्तुतो देवगणैः सर्वैर्नरकाद्भवतारकः । जातः स एव सुकृताकुलः तैस्तैः पावितम् ॥
य पश्यतिनरो नित्यं देवश्चानरकेश्वरम् । येऽर्चयन्तिनरा भक्त्या देवश्चानरकेश्वरम्
तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ ८७ ॥
येऽनुमोदन्ति देवस्य दर्शनं पर्वतात्मने । तेऽपिपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्तिममम न्दिरे
समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतंनरः । मम लोकं नयत्याशु तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्
शिवयोगसमायुक्ता कृष्णा या च चतुर्दशी ।
सा प्रोक्ता वल्लभा तस्य सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ९० ॥

ये चायान्ति नरास्तस्यां देवं चानरकेश्वरम् । उपोष्यपापैर्मुच्यन्ते नराःशतजन्मजैः
कर्मणामनसावाचायत्पापंसमुपार्जितम् । तत्क्षालयतिदेवोसौ तिथौतस्यांसमर्चितः
एप ते कथितो देवि!प्रभावः पापनाशनः । जटेश्वरस्य देवस्य शृणुमाहात्म्यमुत्तमम्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽनरके (मनके) श्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

जटेश्वरमहिमवर्णनम्

श्रीदेवदेव उवाच

अष्टाविंशतिकं विद्धि विख्यातं च जटेश्वरम् । यस्यदर्शनमात्रेणमुक्तोभवति मानवः
पुरा राथन्तरे कल्पे वीरधन्वा महीपतिः । धर्मात्मा च यशस्वीचवभूवभुविविश्रुतः
सकदाचिद्वनं गत्वा मृगहेतोर्वरानने !। व्यापादयन्मृगगणान्धनुषा क्रोधविह्वलः ॥
जगाम तत्र यत्रासन्भ्रातरः पञ्च सुव्रताः । सम्वर्त्तस्य सुतादेविमृगरूपेणसंस्थिताः
ते कदाचिद्वने पञ्च दृष्ट्वाहरिणपोतकान् । श्वसनो जातमात्रांश्चकौतूहलसमन्विताः
एकैकं जगृहुस्तत्र मृतास्ते त्वतिदुःखिताः ।
ततः सर्वे च ते पञ्च ययुर्वै पितुरन्तिकम् ॥ ६ ॥
प्रायश्चित्तं समीहन्तःसम्वर्त्तं सांसदैर्वृतम् । ऊचुस्तेवचनं चेदं मृगहिंसाश्रितंतदा
जातमात्रा मृगाः पञ्च अस्माभिर्निहताः प्रभो !।
अकामतस्ततोऽस्माकंप्रायश्चित्तं विधीयताम् ॥ ८ ॥
ऊचेस शुद्धिमाप्नोतिप्रायश्चित्तेकृतेसति ।'अनधीत्य धर्मशास्त्रं प्रायश्चित्तंददातियः
प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं दातरि व्रजेत् ॥ ९ ॥
धर्मशास्त्रसमारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।क्रीडार्थमपि यद्ब्रयुः स धर्मःपरमःस्मृतः

ब्रह्मच्छिद्रं जपच्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि । अच्छिद्रं जायते सर्वं ब्राह्मणैरुपपादितम्

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ।

प्रणश्यत्यखिलं पापमग्निष्टोमफलं भवेत् ॥ १२ ॥

इत्येवं वदति श्रेष्ठे संवर्त्ते द्विजसत्तमे । समागताश्च मुनयो भृग्वाद्यङ्गिरसादयः ॥

तेषामर्थं यथावृत्तं कथयामासुरेव ते । संवर्त्तस्य सुता दीना भक्तिनम्रा पुनः

तेऽप्यूचुर्धर्मशास्त्राणि विहितानि यथार्थतः ।

प्रायश्चित्तं यथोद्दिष्टं देशकालविभागतः ॥ १५ ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ।

प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो वै व्याधितस्य च ॥ १६ ॥

देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः ।

प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥

इदानीं मृगचर्माणि परिधाय धृतव्रताः । चरध्वं पञ्च वर्षाणि ततः शुद्धा भविष्यथ

एवमुक्तास्तु ते बाला मृगचर्मोपजीविनः । वनं विविशुरव्यग्राः ध्यायन्तो ब्रह्म शाश्वतम्

ततो वर्षे ह्यतिक्रान्ते वीरधन्वा महीपतिः ।

तत्राजगाम यस्मिंस्ते चरन्ति मृगरूपिणः ॥ २० ॥

ते चाप्येकतरोर्मूले मृगचर्मोपजीविनः । जपन्तः संस्थितास्ते हि राजाहृष्टा मृगा इति

मत्वा विव्याध तु नाराचैस्तांस्ते ब्रह्मवादिनः ।

तान्दृष्ट्वा च मृतान्राजा ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ।

भयेन वेपमानस्तु देवराताश्रमं ययौ ॥ २२ ॥

तत्रापृच्छद्ब्रह्मवध्या मम जाता महामुने । आमूलान्तं वधान्तस्य कथयित्वा नराधिप

भृशं शोकपरात्मा रुरोद भृशदुःखितः । स ऋषिर्देवकल्पस्तु रुदन्तं नृपसत्तमम्

उवाच मा भैः पर्नेऽपनेष्यामि पातकम् । पाताले सुतलाख्ये निमज्जन्तीय याधरा

उद्धृता देवदेवेन विष्णुना क्रोडमूर्त्तिना । तद्वद्भवन्तं राजेन्द्र ब्रह्महत्यापरिप्लुतम् ॥

उद्धरिष्यति देवोऽसौ स्वयमेव जनार्दनः ॥ २६ ॥

एवमुक्तस्ततो राजा दुरितो (दुःखितो ?) वाक्यमब्रवीत्॥ २७ ॥
किमनेन द्विजेनैव निष्प्रभेण दुरात्मना । उद्धर्तुंनैव शक्नोति स्वयमेव द्विजाधमः ॥
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षः खड्गेनैव जघान तम् । मृतंदृष्ट्वाद्विजंराजाक्रोधेनकलुषीकृतः
तस्मिन्नेववनेदेविपापसङ्घेनमोहितः । जघान कपिलांदोग्ध्रींसवत्सांगालवस्यच
क्षुधार्त्तश्च तृषार्त्तश्च बाल्यान्मोहाच्च साहसात् ।
क्रूरा बुद्धिः समभवज्जटीभूतं च पातकम् ॥ ३१ ॥
जटीभूतेन पापेन बभ्राम गहने वने । स कदाचित्तुरङ्गेण हृतो दूरं महद्वनम् ॥ ३२॥
व्याघ्रसिंहगजाकीर्णं मृगशम्बरसेवितम् । एकाकी तत्रराजासावश्वंमुक्त्वातरोरधः
कुशोपरि तदातत्रसुष्वाप च स निर्भयम्। तत्रव्याधाः समभवन्दृष्ट्वासुप्तंचनिर्भयम्
ते गतास्त्वरिताव्याधाःस्वभर्तुःकथनायवै । स्वामिनातेननिर्दिष्टानिग्रहीतुंप्रचक्रमुः
तावद्राज्ञःशरीरात्तु श्वेताऽभरणभूषिता । उत्थायचक्रमादायतयाम्लेच्छाश्चपातिताः
दस्यून्निहत्य सा देवी तत्रैवादर्शनं गता ॥ ३७ ॥
अथ राजा तया मुक्तः प्रतिबुद्धोऽथ तत्क्षणात् ।
म्लेच्छांश्च निहतान्दृष्ट्वा चिन्तयामास पार्थिवः ॥ ३८ ॥
गोवध्या ब्रह्मवध्या च वने ह्यस्मिन्सुदारुणा । कथं मया नृशंसेनप्राप्तापापपरंपरा ॥
एवं स चिन्तयित्वाऽथ निःश्वस्य च पुनःपुनः । तमेवाश्वंसमारुह्यवामदेवाश्रमंययौ
मुनिना वामदेवेन दृष्टो राजा तथाविधः ।
जटीभूतेन पापेन पीडितो दुःखितस्तदा ॥ ४१ ॥

वामदेव उवाच

अयं स पुरुषव्याघ्रो वीरधन्वा महीपतिः । सोमवंशसमुत्पन्नो दशां कष्टांसमागतः
उद्धरिष्यामि राजानमेनं पुरुषसत्तमम् । इत्यालोच्य तदा विप्रो वामदेवो महातपाः
प्रत्युवाच महीपालं वीरधन्वानमातुरम् ॥ ४३ ॥
भोभो राजन्महीपाल! वीरधन्वेति विश्रुतः ।
विदूरथस्य तनयो विख्यातो भुवनत्रये ॥ ४४ ॥

प्रागभवे व्याधरूपेणनिहिंसितविपिने मृगान् । दृष्ट जागरणरात्रावामलक्यास्तरोरध·
फाल्गुनामल्पक्षे त्वामलक्येकादशीशुभा । पुष्यर्क्षसंयोगिनीतस्यां जागरणप्रदक्षिणा
पूजा लोके कृताद्दृष्ट विष्णवेनन्यथा पुरा । मकामादुपवासोऽभूत्तस्यां जागरणं पुन
र्व प्रमाचादभू राजा महाबलपराक्रम । तया सरक्षितो राजन्म्लेच्छवर्गाद्दिनेऽधुना ॥
निहता शत्रव सर्वे तथैव शुभमाप्स्यसि । पूर्वकर्मविपाकेन प्रहहत्या समागता ॥
ज्ञाता तपःप्रभावेन मया योगबलेन च । जटीभूत शरीरं ते पापसङ्घेन पार्थिव

इदानीं पालयिष्यामि शृणु मे वचन परम् ॥ ५१ ॥

इत्युक्तो वामदेवेन मुनिना स महीपति । प्रणम्यप्रयतो भूत्वा पप्रच्छ च पुन पुन
कथ यास्यन्ति मे हत्या गोब्राह्मणसमुद्भवा । उपदेशप्रदानेन प्रसाद कर्तुमर्हसि ॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा वामदेवो महामुनि ।

कथयामास माहात्म्य लिङ्गस्यास्य यशस्विनि ॥ ५५ ॥

महाकालवन गच्छ महाराज ममाज्ञया । तत्रास्ते देवदेवोऽपि जगद्व्यापी जटेश्वर
पापसङ्घप्रहर्त्ता च सर्वदेवेषु पठ्यते । देवस्यानरकेशस्य उत्तरे स व्यवस्थित ॥ ५६
तस्य तद्वचन श्रुत्वा वामदेवस्य पार्थिव । आजगाम त्वरायुक्तो महाकालवनोत्तमे
तत्र दृष्ट्वा जगद्वन्द्य देवदेव जटेश्वरम् । स्तुतिं चकार राजेन्द्रो भक्त्या परमया पुन

शिवाय ते नमो नित्य विश्वकाय नमोनम ।

नमो दिव्याय शुभाय गुह्यगतशरीरिणे ॥ ५६ ॥

नमो जटाय शमाय मायया चान्तकारिणे । नमोऽस्तु बहुरूपाय नमो लीलाम्रूपिणे
नमो भोगाय भद्राय नमोऽस्तु गगनात्मने । नमो वह्निसमूहाय नमस्ते निर्मलाकर
नमो महान्धकारक नमस्ते शत्रुघातिने । नम ससारपाराय दिव्यरूपशरीरिणे ॥

नम कनकवर्णाय नमो मोहितमोहिने ॥ ६२ ॥

नम सुरूपाय सुरार्चिताय नमो विरूपाय प्रहते पराय ।

नमोनमो रूपनिराश्रयाय श्यामासुरूपाय नमो नमस्ते ॥ ६३ ॥

इति स्तुतस्तदा देवि महादेवो महेश्वर । जटाजेपितसर्वाङ्गो लिङ्गमध्याद्विनिस्सृत

भस्मचर्चितसर्वाङ्गो भोगिभोगाङ्गदोज्ज्वलः ।
हिमराशिनिभाकारो राजताचलनिर्मलः ॥ ६५ ॥
मुक्तालतानिभाभिस्तु जटाभिर्भूषितो विभुः ।
कपिलाभिः करालाभिर्विकटाभिश्च वेष्टितः ॥ ६६ ॥
भोगीन्द्रफणबद्धाभिः सितपीतादिभिस्तथा ।
नदीरूपाभि (रे ?) रूनाभिः शोभितोऽसौ जटेश्वरः ॥ ६७ ॥
राजानं प्रत्युवाचेदं वचनं पर्वतात्मजे !। स्तोत्रेणानेन राजेन्द्र तुष्टोऽहंतोषितस्त्वया
जटीभूतं त्वने पापं गतं मद्दर्शनेन वै । तस्मात्स्थानं परं गच्छ मदीयं शाश्वतं मुदा
इत्युक्तो देवदेवेन वीरधन्वामहीपतिः । जगाम परमं स्थानं दाहप्रलयवर्जितम् ॥
कामगेन विमानेन स्तूयमानो गणैः प्रिये । पापसङ्घेन मुक्तोऽसौ जटीभूतेशदर्शनात्
लिङ्गश्चातः समाख्यातो नाम्ना देवो जटेश्वरः ।
जटेश्वरं वरारोहे! ये पश्यन्ति सुभक्तितः ॥
तेषां पापं जटीभूतं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ७२ ॥
येऽर्चयन्ति सदा देवि देवदेवं जटेश्वरम् । तेषां बलंप्रभावश्च सौभाग्यं च भविष्यति
येऽप्यन्ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षसमानवाः । लिङ्गंच पूजयिष्यन्तिविधिवद्भक्तिभावतः
तेऽपि कामानवाप्स्यन्ति यांश्च कांश्चसुदुर्लभान् ।
ऐश्वर्यं धर्ममतुलं दीर्घमायुररोगताम् ॥ ७५ ॥
निःसपत्नत्वमतुलं यच्चान्यत्तदवाप्नुयात ।
पापिनः क्रूरकर्माणो येऽपि लिङ्गं समाश्रिताः ॥
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता भविष्यन्ति गतज्वराः ॥ ७६ ॥
जटेश्वरंप्रपश्यन्ति भक्त्यायेचदिनेदिने । ते धर्मधनसौभाग्यैर्भविष्यन्ति समन्विताः
व्याधितो व्याधिना मुक्तो दुःखी दुःखात्प्रमुच्यते ।
दर्शनात्तु भवेत्सद्यः सर्वपातकवर्जितः ॥ ७८ ॥
जटेश्वरस्य माहात्म्यं ये पठिष्यन्ति पार्वति ॥

प्रागभवे व्याधरूपेणनिहिथाविपिने मृगान् । दृढ जागरणरात्रावामलक्यास्तरोरधः
फाल्गुनामलपक्षे स्यामलक्येकादशीशुभा । पुष्यर्क्षसंयोगिनीतस्या जामदग्न्यप्रदक्षिणा
पूजा लोकै कृताद्दृष्ट्वा विस्मयेनत्वया पुरा । अकामादुपवासोऽभूत्तस्यां जागरण पुन
तत्प्रभावाद्भू राजा महाबलपराक्रम । तथा सरक्षितो राजन्म्लेच्छवर्गाद्दिनेऽधुना ॥
निहता शत्रव सर्वे तथैव शुभमाप्स्यसि । पूर्वकर्मविपाकेन ब्रह्महत्या समागता ॥
ज्ञाता तप प्रभावेन मया योगबलेन च । जटीभूत शरीरं ते पापसञ्चयत पार्थिव
इदानीं पालयिष्यामि शृणु मे वचन परम् ॥ ५१ ॥
इत्युक्तो वामदेवेन मुनिना स महीपति । प्रणम्यप्रयतो भूत्वा पप्रच्छ च पुन पुन
कथ यास्यन्ति मे हत्या गोब्राह्मणसमुद्भवा । उपदेशप्रदानेन प्रसाद कर्तुमर्हसि ॥
तस्य तद्वचन श्रुत्वा वामदेवो महामुनि ।
कथयामास माहात्म्य लिङ्गस्यास्य यशस्विनि ॥ ५४ ॥
महाकालवन गच्छ महाराज ममाज्ञया । तत्रास्ते देवदेवोऽपि जगद्व्यापी जटेश्वर
पापसङ्घहर्ता च सर्वदेपु पठ्यते । देवस्यानरकेशस्य उत्तरे स व्यवस्थित ॥ ५६
तस्य तद्वचन श्रुत्वा वामदेवस्य पार्थिव । आजगाम त्वरायुक्तो महाकालवनोत्तमे
तत्र दृष्ट्वा जगद्वन्द्य देवदेव जटेश्वरम् । स्तुति चकार राजेन्द्रो भक्त्या परमया पुन ॥
शिवाय ते नमो नित्यं विश्वकाय नमोनम ।
नमो दिव्याय गुह्याय गूढमनशरीरिणे ॥ ५८ ॥
नमो जटाय रामाय माययाक्रान्तकारिणे । नमोऽस्तु बहुरूपाय नमो नीलात्मरूपिणे
नमो भोगाय धूम्राय नमोऽस्तु गगनात्मने । नमो वह्निसमूहाय नमस्ते निर्मलाकर
नमो महान्धकाराक नमस्ते शत्रुघातिते । नम ससारपाराय दिव्यरूपशरीरिणे ॥
नम कनकवर्णाय नमो मोहितमोहिने ॥ ६२ ॥
नम सुरूपाय सुरार्चिताय नमो विरूपाय प्रकृते पराय ।
नमोनमो रूपनिराश्रयाय श्यामासुरूपाय नमो नमस्ते ॥ ६३ ॥
इति स्तुतस्तदा देवि महादेवोमहेश्वर । जटावेष्टितसर्वाङ्गो लिङ्गमध्याद्विनिस्सृतः

गृहाण परशुं पुत्र वह्निज्वालोद्भवं दृढम्। अनेन शितशस्त्रेण ततःख्यातोभविष्यति
अथ केनापि कालेन कार्त्तवीर्यार्जुनो नृपः। हैहयानां कुले जातः सहस्रबाहुविश्रुतः
जघान जमदग्निं तु कामधेनुकृतेकुधीः। पितरं निहतं दृष्ट्वा रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्

अथ पश्यन्तु मे वीर्यं त्रयो लोकाः सनातनम्।
स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा कृतवीर्यजः ॥ १० ॥

मत्पिता निहतो येन सत्कर्मनिरतः सदा। तस्यबाहुसहस्रं तुछेत्स्यामीह नसंशयः

इत्युक्त्वा क्रोधरक्ताक्षः कार्त्तवीर्यार्जुनं भुवि।
धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं पुनः पुनः ॥ १२ ॥

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन तीक्ष्णेनज्ञातिभिःसहितंतदा
रथस्थं पातयामास जघान नृपतिं प्रिये !। त्रिःसप्तकृत्वःपृथिवीतेननिःक्षत्रियाकृता
कृत्वा निःक्षत्रियां चैवभार्गवः स महाबलः। सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेनचेष्टवान्

तस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुन्धराम् ॥ १६ ॥

वारुणांस्तुरगाञ्छुभ्रान्रथं च रथिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामतिः
तदा तस्मिन्महायज्ञे वाजि मेधेमहायशाः। तथापिन गता हत्याह्यनेकप्राणिसम्भवा
एवं किल पुराणेषु सर्वागमविदादिषु। विश्वस्तघातिनां चैव निष्कृतिःश्रूयतेयथा
अश्वमेधेन यज्ञेन ब्रह्महत्या विनश्यति। अथवा द्वादशाब्देन यद्येकाऽऽस्याकृताभुवि
मया पुनर्नृशंसेन बहवः प्राणिनो हताः। विश्वस्ताश्च प्रमत्ताश्च गर्भस्थाश्च पुनःपुनः
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्चमाता चैव विशेषतः। इतिदुःखान्वितोरामो विषादंपरमंगतः
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु गतो रैवतकं गिरिम्। तथातपोऽतपद्घोरंबहून्वर्षगणान्प्रिये

तथापि न गता हत्या ह्यनेकप्राणिसम्भवा।
अथ रामो जगामाथ महेन्द्रे मलये तथा ॥ २४ ॥

सह्ये हिमालये रम्ये पुण्ये बदरिकाश्रमे। चरित्वा पर्वतान्सर्वान्स्नानार्थंनर्मदां ययौ

यमुनां चन्द्रभागां च गङ्गां त्रिपथगामिनीम्।

इरावतीं वितस्तां च परां चर्मण्वतीं शुभाम् ॥ २६ ॥
विशालां कपिलां दुर्गां गम्भीरां गोमतीं शिवाम् ।
गोदावरी दशार्णा च पुण्या भीमरथी तथा ॥ २७ ॥
गया चैव कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा । अट्टहासं प्रभासं च केदारममरेश्वरम् ॥ २८
कृतयात्रोऽपि तु चार्तश्चिन्तयामास भार्गव ।
न नूनं तीर्थमाहात्म्यं दृश्यते भुवि साम्प्रतम् ॥ २९ ॥
न गता ब्रह्महत्या मे कृतो धर्मो निरर्थक । मिथ्या न कथ्यते शास्त्रे तीर्थस्नानादिभिः शुभैः
यदि स्यात्सत्यमेतच्च नष्टं जातं कथं मम ॥ ३० ॥
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो मुनिपुङ्गव । आजगाम तमुद्देशं यत्र रामोऽवस्थितः
विषण्णवदनो दीनश्चिन्तयान पुनः पुनः । दृष्ट्वा तथाविधो रामः प्रत्युवाचाथ नारदम्
भोभो नारद देवर्षे शृणु मे परमं वचः । जननी निहता पूर्वं पितुर्वाक्याद्द्विजोत्तम
पितुः पराभवाद्भूमौ भूमिपाला मया हताः ।
गर्भा विदारिताः स्त्रीणां बाला वृद्धाश्च योषितः ॥ ३४ ॥
निरन्तरा हता लोका विशोनेनाद्यालुना । पश्चात्तु घृणा समुत्पन्ना परलोकं समीक्षतः
यज्ञ कृतोऽश्वमेधश्च दत्तं दानमनेकधा । स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च ॥ ३६
पर्वतेषु तपस्तप्तं हुतं जप्तं निरन्तरम् । ब्रह्महत्याविनाशार्थं किं किं नात्र मया कृतम्
परं नैव गता हत्या तस्मात्सर्वं निरर्थकम् ॥ ३८ ॥
इतितद्वचनं श्रुत्वा नारदो भगवान्मुनिः । प्रत्युवाच हितं तस्य चिरं ध्यात्वा वचस्तदा
भोभो राम किमात्मानं न स्मरस्यधुना हरिम् ॥ ३९ ॥
त्वयैव कथितं पूर्वं ब्रह्महत्याविनाशनम् । महाकालवने क्षेत्रे क्षेत्राणामुत्तमं परम् ॥
तस्मिन्क्षेत्रे महालिङ्गं ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ ४० ॥
जटेश्वरो महाभाग विद्यते शावभिद्धिदम् । कृतावताररामत्वं तत्र गच्छाविलम्बितम्
नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मृत्वा क्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
जगाम त्वरितं देवर्षि महाकालवने ततः । लिङ्गमाराधयामास ततो हत्यागताक्षयम्

लिङ्गमध्यादहं देवि! प्रसन्नो निर्गतस्तदा॥ ४२॥
जामदग्न्यो मया प्रोक्तः कान्तकामं ददाम्यहम्।
स प्रोवाच ततो रामो भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥ ४३॥
त्वत्पादपङ्कजे भूयाद्भक्तिर्मे विपुला सदा। वरमेतं प्रयच्छाद्य यदि तुष्टो महेश्वर॥
इत्युक्तोऽहंतदातेनयथातुष्टेनपार्वति। तस्मै दत्ता मयाभीष्टावरा कीर्त्तिकरास्थितिः
अद्यप्रभृति ते नाम्ना देवःख्यातोभविष्यति। यदारामेश्वर इति त्रिषु लोकेषु गीयते
भक्त्याये पूजयिष्यन्ति देवं रामेश्वरंपरम्। आजन्मप्रभवं पापंतेषांनश्यतितत्क्षणात्
स एव पुण्यवान्पूज्य इह लोके परत्र च। यःपश्यतिनरो भक्त्या देवं रामेश्वरंशिवम्
येऽनुमोदन्तिदेवस्य दर्शनंयजनं तथा। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः प्रयान्तिममम न्दिरम्
यच्चापि पातकं घोरं ब्रह्महत्यासहस्रकम्। तत्पापं विलयं याति रामेश्वरसमर्चनात्
दुष्प्राप्यं यत्फलं विप्रैर्याजपेयादिभिर्मखैः। प्राप्यते तत्सुखेनैव श्रीरामेश्वरदर्शनात्
ये हताभिमुखाःशूरागोविप्रार्थे रणाजिरे। गतिरभ्यधिकातेभ्यो दृष्ट्वारामेश्वरंशिवम्
जितास्तेन सदा लोका रामेणेव जगत्त्रयम्।
दृष्टं येन सदा भक्त्या लिङ्गं रामेश्वरं शिवम्॥ ५३॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः। रामेश्वरस्य देवस्यशृणुत्वं च्यवनेश्वरम्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

च्यवनेश्वरप्रभाववर्णनम्

श्रीविश्वनाथ उवाच

त्रिंशत्तमं विजानीहि देवं देवि च्यवनेश्वरम्। यस्य दर्शनमात्रेण स्वर्गप्राप्तिर्भवेन्नृणाम्॥ भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनो नाम पार्वति। स्थाणुभूतस्तपस्तेपे निराहारो महामुनिः॥ विपाशायास्तटे रम्ये बहुवर्षगणान्किल। स वल्मीकोऽभवद्विप्रो लताभिरभिसंवृतः॥

कालेन महता देवि समाकीर्णः पिपीलकैः।
तथा स संवृतो धीमान् मृत्पिण्ड इव सर्वशः ॥ ४ ॥

आजगाम समुद्देशं विहर्तुं वन उत्तमे। शर्यातिर्नाम धर्मात्मा सत्तुङ्गभो गुणान्वितः॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहः। एकैव तु सुता सुभ्रूः सुकन्या नाम नामतः॥

सा सखीभिः परिवृता सर्वाभरणभूषिता।
सा भ्रम्यमाणा वल्मीके दृष्ट्वा भार्गवचक्षुषी ॥ ७ ॥
सा कौतुकात्कण्टकेन बुद्धिमोहवती तदा।
किं नु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदाऽस्य लोचने ॥ ८ ॥

अभवत्स तया विद्धो नेत्रयोः परमार्तिमान्। ततः शर्यातिसैन्यस्य शकृन्मूत्रसमावृतम्॥ ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे पर्यतप्यत पार्थिवः। प्रोवाच ततः क्रुद्धो राजा गद्गदया गिरा॥ केनापराद्धमद्येह भार्गवस्य महात्मनः। तपोनित्यस्य वृद्धस्य रोषणस्य विशेषतः॥ ज्ञातं वा यदि वाज्ञातं तद्ब्रूत मा चिरम्। तमूचुः सैनिकाः सर्वे न विद्मोऽपकृतं वयम्॥

ततः स पृथिवीपालः साम्ना चोग्रेण च स्वयम्।
पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं भूयोभूयः सुदुःखितः ॥ १२ ॥

पितरं दुःखितं दृष्ट्वा सुकन्या तमथाब्रवीत्। मया किंचिच्च वल्मीके दृष्टं सत्त्वमतिच्छवि॥

खद्योतवदविज्ञातं तन्मया विद्धमन्तिकम्।

एतच्छ्रुत्वा तु शर्यातिर्वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥ १५ ॥
तत्रापश्यत्तपोवृद्धं वयोवृद्धं च भार्गवम् । प्रार्थयामाससैन्यार्थेप्राञ्जलिः स महीपतिः
अज्ञानाद्बालया यत्तेऽपकृतं तु महीसुर । इमामेव च ते कन्यां ददामि सुदृढव्रताम्
भार्यार्थं त्वं गृहाणेमांप्रसीदद्विजसत्तम । ततोऽब्रवीन्महीपालंच्यवनो भार्गवस्तथा
यद्येवम्प्रतिगृह्यैतां क्षमिष्यामि महीपते ॥ ददौ दुहितरं तस्मै च्यवनाय महीपतिः
प्रतिगृह्य च तां कन्यां भगवान्प्रससाद ह । प्राप्ते प्रसादे राजाथससैन्यो विषयंगतः

सुकन्याऽपि पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिन्दिता ।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥ २१ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावश्विनौ प्रिये ॥
कृताभिषेकां विवृतां सुकन्यां तामपश्यताम् ॥ २२ ॥

तां दृष्ट्वा दर्शनीयाङ्गीं देवराजसुतामिव । ऊचतुः समुपद्रुत्य कस्य त्वमतिशोभने ॥
सा प्रोवाचमहाभागा पतिव्रतपरायणा । शर्यातितनयाञ्चैव भार्यां च च्यवनस्य हि
ततोऽश्विनौ प्रहस्यैनामब्रूतां पुनरेव तु । कस्मादेवंविधा भूत्वाजराजर्जरितंपातम्
त्वमपास्येह कल्याणि कामभोगबहिष्कृता । वृद्धं च्यवनमुत्सृज्य वरयस्वैकमावयोः
पत्यर्थं देवगर्भाभे मा वृथा यौवनंकृथाः । एवमुक्ता सुकन्या तु दस्रौ ताविदमब्रवीत्
रताहं च्यवने देवे मैवं मा पर्यशङ्कतम् । ततोऽब्रूतां पुनस्त्वेनामावां देवभिषग्वरौ ॥

युवानं रूपसम्पन्नं करिष्यावः पतिं तव ।
एतेन समयेनावामामन्त्रय सुमध्यमे ॥ २६ ॥
सा तयोर्वचनं श्रुत्वा कथयामास भार्गवे ।
तच्छ्रुत्वा च्यवनो भार्यां क्रियतामित्यभाषत ॥ ३० ॥

ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः । ततोऽप्सुच्यवनःशीघ्रं रूपार्थीप्रविवेशह
अश्विनावपि तत्काले सरःप्राविशतांप्रिये । ततो मुहूर्त्तादुत्तीर्णाःसर्वेतेसरसस्तदा
दिव्यरूपधराः सर्वे युवानो दिव्यकुण्डलाः । तुल्यवेषधराश्चैव मनसः प्रीतिवर्द्धनाः
तेऽब्रुवन्सहिताःसर्वेवृणीष्वान्यतमंशुभम् । अस्माकमीप्सितंभद्रे पतित्वेवरवर्णिनि

सा समीक्ष्य तु तान्सर्वांस्तुल्यरूपधरान्स्थितान् ।
निश्चित्य मनसा बुद्ध्या देवी वव्रे स्वकं पतिम् ॥ ३५ ॥
लब्ध्वा तु च्यवनो भार्यां वयोरूपं तु वाञ्छितम् ।
हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः ॥ ३६ ॥
यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः । कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां चेमामवाप्तवानिमाम् ॥ ३७ ॥
तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपायिनौ । सत्यमेतद्वचो वह्नेः शृणुतां सुरसत्तमौ ॥ ३८ ॥
तच्छ्रुत्वा हृष्टमनसौ दिवं तौ प्रतिजग्मतुः । याजयामास सोमाहौं नासत्यावश्विनाविति ॥ ३९ ॥
भिषजौ देवतानां हि कर्मणा तेन गर्हितौ ।
आभ्यामथाय सोमं त्वं प्रदास्यसि यदि स्वयम् ॥ ४० ॥
वज्रं ते प्रहरिष्यामि घोररूपं सुदारुणम् । एवमुक्तः स्मयन्निन्द्रमभिवीक्ष्य स भार्गवः
बलिनं धारयं ज्ञात्वा चिन्तयामास सत्वरम् ॥ ४१ ॥
देवमाराधयिष्यामि महादेवं महेश्वरम् । यस्य कर्मकरः शक्रो यस्य देवाश्च सानुगाः
यः समर्थो जगद्गोप्ता सृष्टिसंहारकारकः ॥ ४२ ॥
इत्युक्त्वा च्यवनो देवि महाकालवनं गतः । शमीश्वरस्य देवस्य लिङ्गमीशानतः स्थितम्
श्रद्धयाराधितं तत्र च्यवनेन महात्मना ॥ ४३ ॥
तस्य प्रसन्नो रुद्रस्तु स वज्रादभयं ददौ । तस्य प्रहरतो बाहुं स्तम्भयामास भार्गवः
समाराधनतुष्टस्य लिङ्गस्यास्य प्रभावतः । ततस्तस्य ततरे ज्वालानि सृजन् लिङ्गमध्यतः
तथा देवगणाः सर्वे दह्यमाना विचेतसः । प्रोचुर्गद्गदया वाचा धूमेनाकुलितेक्षणाः
क्रियेतां सोमपावेतावश्विनौ बलसूदन । देवानां वचनं श्रुत्वा च्यवनं भयपीडितः
प्रत्युवाच ततः शक्रः प्रणामानतकन्धरः ॥ ४४ ॥
सोमपावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव । भविष्यतस्ततः सर्वमेतत्सत्यं ब्रवीमि ते ॥
मा तेऽतिष्यामि संरम्भो भविष्यति तपोधन ।
लिङ्गस्यास्य प्रभावोऽयं यदहं निष्प्रभीकृतः ॥ ४६ ॥
ततस्त्वन्नामधेयेन प्रसिद्धिं भुवि यास्यति ।

आराधितं यतो देवि! च्यवनेन महात्मना ॥ ५० ॥
च्यवनेश्वरमेतद्वै ख्यातं त्रिभुवनेऽभवत् । भक्ता ये पूजयिष्यन्ति देवेशं च्यवनेश्वरम्
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात् ॥ ५१ ॥
यः पश्यति नरो नित्यं च्यवनेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
जन्मदुःखजरारोगैर्मुक्तो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
यंयं काममभिध्यायेन्मनसाभिमतं नरः । त तं दुर्लभमाप्नोति च्यवनेश्वरदर्शनात् ॥
नियमेन प्रपश्यन्ति ये देवं च्यवनेश्वरम् । ते प्रयान्ति तनुं त्यक्त्वामदीयेभुवनेप्रिये
यः शृणोति कथां पुण्यां सर्वपापहरां शुभाम् ।
स पुण्यात्मा परं स्थानं याति दिव्यं न संशयः ॥ ५५ ॥
भक्तिहीनः क्रियाहीनो यः पश्यति प्रसङ्गतः ।
स पुण्यां गतिमाप्नोति योगिगम्यां यशस्विनि !॥ ५६ ॥
पुष्पैर्विचित्रैर्ये देवं यजन्ते च्यवनेश्वरम् । संसारार्णवमुल्लङ्घ्यते यान्ति परमं पदम्
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।
च्यवनेश्वरदेवस्य शृणु खण्डेश्वरं शिवे ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये च्यवनेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

[illegible]

पुलस्त्य उवाच

[illegible] । [illegible] दृष्ट्वा [illegible]

[illegible] बभूवे [illegible] [illegible] वर्णिता ।

[illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] । [illegible] पुनर्नामसदृशोऽभूदि

[illegible] [illegible] ।

[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] । [illegible] सम्प्राप्य [illegible] विधि

[illegible] ।

[illegible] पुनर्भवा ॥ ६ ॥

[illegible] । [illegible]

[illegible] प्राह हर्षित ॥ ७ ॥

[illegible] दृष्ट्वा [illegible] । अहो [illegible] पुरं [illegible]

[illegible] दृष्ट्वा पुत्राय [illegible] । [illegible] पुनरेवमुवाच ह

[illegible] [illegible] ।

[illegible] पुत्रम् ॥ १० ॥

[illegible] । [illegible] पुनरब्रवीत्

[illegible] सुतम् । [illegible] दिवसेऽभ्येत्य षष्ठे चैव पुनः पुनः

[illegible] दृष्ट्वा दिने [illegible] ।

प्रार्थयन् [illegible] विस्मित [illegible] ।

किं हर्षकारणं ब्रह्मन् येन नृत्यसमन्वितः ॥ १३ ॥

अगस्त्य उवाच

अहो भूपालमूढस्त्वंमहामूर्खाश्च मन्त्रिणः । अहोपुरोहितो मुग्धोयेनजानन्तिमेमतम्
ईदृशा अपि जायन्ते राजानो यस्य दर्शनात् । एवमुक्तस्ततो राजाकृताञ्जलिरभाषत
न जानीमो वयं ब्रह्मन्नभिप्रायं तवाधुना । कथयस्वमहाभाग यद्यनुग्रहकृद्भवान् ॥

अगस्त्य उवाच

इयं राज्ञी त्वदीयाऽभूद्दासी वैश्यस्य वैदिशे ।नगरे हरिदत्तस्यत्वमस्याःपतिरेवच
खण्डव्रतप्रभावेण जातः कर्मकरो भवान् ॥ १७ ॥
स च वैश्यो महाकालेगत्वादेवंमहेश्वरम् । अर्चयामासविधिवद्गन्धपुष्पादिभिःशुभैः
अभ्यर्च्य तु गृहं यावद्व्रजन्तौ रक्षपालकौ । ततः कालेन महता मृतौ द्वावपिदम्पती
तेनपुण्येन ते जन्म प्रियव्रतगृहेऽभवत् । इयं च पत्नी ते जाता पुरा वैश्यप्रदासिका
परकीयप्रसङ्गेन सञ्जाता भूमिरुत्तमा । राज्यं पत्नी सुता साधुरित्युक्तं वचनं मया
तस्य देवस्य माहात्म्याद्यजन्तं विविधैर्मखैः ।
पश्यामि त्वां महीपाल! भूपालशतवेदितम् ।
अतः साधुपुरा प्रोक्तं मया तव महीपते !॥ २३ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा कुम्भयोनेर्महात्मनः । महाकालवने गन्तुंमतिचक्रे महीपतिः
ततः सान्तःपुरः प्रायात्तेन सार्द्धं महर्षिणा ॥ २४ ॥
अगस्त्यकथितंलिङ्गं ददर्श श्रद्धया पुनः । पूजयामासविधिवत्पत्न्यासार्द्धंमहीपतिः
ततस्तुष्टस्तदादेवो नृपं प्राहामितद्युतिः । मनोऽभीष्टं तपस्तेऽस्तु भोगमैश्वर्यमेवच
कुलं प्रभावं सौभाग्यं दीर्घमायुररोगिताम् ।
निःसपत्नं ततो राज्यं कृत्वा स्वर्गमवाप्स्यति ॥ २७ ॥
इत्युक्तोदेवदेवेनगतोऽसौविषयं स्वकम् । निष्कण्टकंततोराज्यंकृत्वास्वर्गंगतःप्रिय
अनेकजन्मचरितं खण्डव्रतकदम्बकम् । सम्पूर्णमभवद्देवि लिङ्गस्यास्य प्रभावतः
अतः खण्डेश्वरो देवो विख्यातो भुवनत्रये ।

ये पश्यन्ति नरा देवि देवं खण्डेश्वरं शिवम् ॥ ३० ॥

खण्डव्रतानि पूर्णानि तेषामाशु भवन्ति हि । तप खण्डमतेखण्डदानखण्डवपत्कृतम्
तत्सर्वं पूर्णतां याति श्रीखण्डेश्वरदर्शनात् ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा खण्डेश्वरं देवं पापविघ्नैः प्रमुच्यते । सप्तजन्मकृतैर्देवि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
दृष्ट्वा खण्डेश्वरं देवं कृतकृत्यत्वमाप्नुते ।
तस्य नश्यति दौर्भाग्यं सप्तजन्मोद्भवं प्रिये ॥ ३३ ॥

खण्डेश्वरेऽर्चिते देवे सर्वे देवाः सवासवाः । सन्तुष्टा वरदाश्चैव भवन्तिवरवर्णिनि
देवं खण्डेश्वरं ये वै यजन्ति श्रद्धया प्रिये । पुष्पैर्नानाविधैः स्नाते सुगन्धैश्च विशेषतः
धूपदीपैर्नमस्कारैर्जपैः स्तोत्रैः पृथग्विधैः ।
ते सर्वे कामसम्पन्ना श्रीमन्तो राज्यसंयुताः ॥ ३६ ॥
दीर्घायुष शुभाचारा जायन्ते देहिनोऽमलाः ।
अतिथिष्ठा गमिस्तैवा विशोका नित्यमक्षया ।
खण्डेश्वरप्रसादेन जायन्ते नाऽत्र संशय ॥ ३७ ॥

एतैश्च विष्णुब्रह्मेन्द्रकुबेरदहनादय । परा सिद्धिं सुसम्प्राप्ता खण्डेश्वरसमर्चनात्
एष ते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन । खण्डेश्वरस्य देवस्य शृणु वै पत्तनेश्वरम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये खण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

पत्तनेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

त्रिषु लोकेषुविख्यातंद्वात्रिंशत्तममुत्तमम् । विद्धिसिद्धिप्रदंपुंसांपत्तनेश्वरमीश्वरम्
पुराऽहं पर्वते देवि! मन्दरेचारुकन्दरे । क्रीडन्सार्द्धं त्वयापृष्टःकदाचिद्रहसि स्थितः
किमर्थंपर्वतंत्यक्त्वा कैलासंरमणीयकम् । मुक्ताफलशिलाशुभ्रं शङ्खचन्द्रांशुनिर्मलम्
सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोद्गीतनादितम् । सदा पुष्पद्रुमच्छन्नं कदलीवनराजितम् ॥
अथकोकिलचक्राह्वचकोरकुरराकुलम् । पुण्यलोकोपमं स्थानं त्रिविष्टपविभूषणम्
महाकालवने शून्ये नानागुल्मलतावृते । गजेन्द्रगजशार्दूलसिंहशम्बरसङ्कुले ॥ ६ ॥
ऋक्षवानरगोमायुजन्तुकादिविराजिते । मयूरसर्पमार्जारमूषिकादिविराजिते ॥
कथं वासः कृतो देव! कौतूहलमिदं मम ॥ ८ ॥
इति पृष्टस्त्वया देवि! मन्दरे चारुकन्दरे । मया प्रोक्तं प्रसन्नेन पत्तनं च मम प्रिये ॥
महाकालवनं रम्यं स्वर्गात्सुखकरं परम् । श्मशानपीठसत्क्षेत्रवनोपरसमाश्रितम् ॥
अनौपम्यगुणं विद्धि पत्तनं पर्वतात्मजे !। एवं पत्तनदेवो वै न दृष्टो भुवनत्रये ॥
गीतवादित्रचातुर्यैः स्पर्द्धते यः सुरालयम् ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि!देवर्षिर्नारदोमुनिः । द्रष्टुकामःसमायातो मन्दरे मां यशस्विनि
विनोदार्थं मया पृष्टस्त्वत्प्रियार्थं कुतूहलात् ।
क्व त्वया गमितः कालः कल्पसङ्ख्यो महामुने !॥ १३ ॥
कस्मिन्नाश्रमसंस्थानेतपसःसंचयःकृतः। तीर्थानिकानिभ्रान्तानिकते रतिरभूच्चिरम्
कौतुकं दृष्टपूर्वं तु वद मे मुनिसत्तम !। इति पृष्टो मया देवि! ब्रह्मपुत्रो महामुनिः ॥
कथयामास वृत्तान्तं पत्तनस्य प्रयत्नतः ॥ १५ ॥
बहूनि संपरिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च । पत्तनानि [illegible]

गच्च

अटनार्थं महादेव जम्बूद्वीपे मनोरमे । दृष्टं पत्तनराजश्च सदानन्दकरं परं ॥ १७ ॥

स्वेच्छाकल्पितविन्यासं प्रासादशतकल्पितं ।

इच्छाकामफलावाप्तिरनिर्देश्यसुखावहः ॥ १८ ॥

सर्वर्तुकुसुमामोदसुखस्पर्शानिलावृतं । वीणावेणुरवैर्घुष्टो मनःप्रह्लादकारकः ॥

वज्रेन्द्रनीलवैडूर्यचन्द्रकान्तादिदीपितः । जरामृत्युभयोपेतः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥

शक्राग्नियमरक्षोऽब्धिवायुसोमेशसेवितं । ऊर्ध्वांध सप्तलोकेषु पुण्येषु निवसन्ति हि

सदा प्रमुदिता देवास्तेऽपि काङ्क्षन्ति पत्तनम् ।

तत्र शान्ता महात्मानो निवसन्ते महेश्वर ॥ २२ ॥

विद्योतितदिशो दान्ताः सूर्यवैश्वानरप्रभाः । दिव्याम्बरधराः धीराः जटामुकुटधारिणः

विप्रा माहेश्वराः पुण्याः क्षत्रियाहवतत्पराः । मुमुक्षवस्तपोनिष्ठा वैश्याः शूद्राश्चिरायुषः

स शुभ्ररूपः स च लोहिताकृतिः स चापि पीतः सितेतरः क्वचित् ।

स नामधेयः स च नामवर्ज्यं सोऽदृश्यरूपः स च दृष्टरूपः ॥ २५ ॥

क्वचिद्द्विसहस्राक्षः क्वचिदेकरविप्रभः ।

क्वचिच्चन्द्राद्रिशिख्येत कश्चिद्गुलिकान्तिमान् ॥ २६ ॥

जन्ममृत्युजरारोगेषु स्थानि विविधानि च । प्रयान्ति विलयं तानि प्रसन्ने पत्तनेश्वरे

एषते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । पत्तनेशस्य देवस्य आनर्त्तेशमतः शृणु

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये पत्तनेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

त्रयस्त्रिंशत्तमं देवमानन्देश्वरमीश्वरम् । विद्धि पापहरं पुण्यं सर्वसम्पत्करं सदा ॥
पुरा राथन्तरे कल्पे बभूव पृथिवीपतिः । अनमित्र इति ख्यातः सार्वभौमो महीतले
सधर्मात्मा महात्मात्र पराक्रमधनोनृपः । अतीत्यसर्वभूतानि वर्मो भानुरिवाव्ययः
समः शत्रौ च पुत्रे च मित्रे च,परधर्मवित् । गिरिभद्रागिरेःपुर्त्रीतेनोढा वरवर्णिनी
अतीववल्लभासाच प्राणेभ्योऽपिगरीयसी । आनन्दइतिपुत्रोऽभूत्तस्यज्ञानरतःसुधीः

जातमात्रो निजोत्सङ्गे स्थिरमुल्लाप्य वै पुनः ।
परिष्वजति हार्द्देन उल्लापयति पुनः पुनः ॥ ६ ॥
स जातिस्मरणो जातो मातुरुत्सङ्गमास्थितः ।
जहास च तदा माता सङ्क्षुब्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीताऽस्मि किमिदं वत्स! हासो यद्वदने तव ।
अकालबोधः सञ्जातः किंचित्पश्यसि शोभनम् ॥ ८ ॥

इत्युक्तोमातरंप्राहसर्वोऽपि स्वार्थमीहते । मां नेतुमिच्छतिपुरोमार्जारीकिंनपश्यसि
अन्तर्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ॥ ९ ॥
पुत्रप्रीत्याचमातस्त्वमतःस्वार्थंसमीहसे । उल्लाप्योल्लाप्यबहुशःपरिष्वजसिमांचत
उद्भूते बालके स्नेहात्सम्भ्रमात्स्त्रीजनोऽप्ययम् ।
ततोऽयमागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ ११ ॥
स्वार्थे प्रसक्तामार्जारीलोलुपा मामवेक्षते । तथान्तर्द्धानगा चेयंद्वितीयाजातहारिणी
त्वंतु क्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभाप्स्यसि । नमांजानासिकोऽप्येवंन वै चोपकृतंमया
सङ्गतिर्नातिबालानां पञ्चसप्तदिनात्मकम् ।

तथापि जिहासि प्रीत्या परिष्वजसि सन्ततम् ॥ १५ ॥

तनेतिवत्स मोमद्रूत्यलीक ब्रवीषिमाम् । पुत्रस्यवचनश्रुत्वातन्द्रामाताऽब्रवीदिदम्

नाह त्वामुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे ।

स्वार्थो मया परित्यक्तो यत्स्यसो मे भविष्यति ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् ।

जहार तत्परित्यक्त सा सद्या जातहारिणी ॥ १७ ॥

साह यातनदाधात्पूर्वजातिस्मरप्रिये । हैमिन्या शयने न्यस्य द्विकान्तस्यमहाभृत

मत्वा स्वकाय पुत्र तु विक्रान्तेन महीभृता । कृत वै नामकरणमानन्दइति विश्रुतम्

विक्रान्तस्यसुतोभीतोबोधस्यच द्विजन्मन । चैत्रनामाकृतस्तेनसंस्कृतोवेदमन्त्रकै

तृतीय भक्षयामास बोधपुत्र निशाचरी । जातिस्मरोऽप्यथानन्द कृतोपनयनस्तदा

गुरुणासमनुज्ञातश्रियतामभिधानम् । जनन्या प्रागुपस्थानमिरयुक्तो वाक्यमब्रवात्

वन्द्या मे कतमा माता जनित्री पालिनी च वा ।

आनन्दस्य वच श्रुत्वा गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

नन्वियं ते महाभाग जनित्रानमकात्मना । विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनीनामनामत

आनन्द उवाच

चैत्रश्च प्रसविश्रायचैत्रोऽपद्विजवेश्मनि । सन्हस्तोब्राह्मणैर्मन्त्रैर्गिरिभद्रासुतस्त्वहम्

गुरुराह तत कस्य चैत्र को वा त्वयोच्यते ।

तत स कथयामास पूर्ववृत्तान्तमादित ॥ २६ ॥

गुरुरुवाच

अतीव गहन वत्स सङ्कट महदागतम् । न वेद्मिकिञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तिमम बुद्धय

आनन्द उवाच

मोहस्यावसर कोऽत्र जगत्येव व्यवस्थित ।

क कस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्य न बान्धव ॥ २८ ॥

अत ससारता हन्ति ससार प्राणिनामिह । महामोहहत चेतश्चित्रमत्र कथ गुरो

ब्रह्मपुत्रस्य दुष्टस्य दुःसहस्य सुता भुवि । जातहारिणिकानाम परिवर्त्तयते सुतान्
मातृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि । मातृद्वयमथोप्राप्तं जातिं संस्मरतासता

सोऽहं तपः करिष्यामि चैत्रआनीयतामिति ।
ततः सुविस्मितो राजा सभार्यः सह बन्धुभिः ॥ ३२ ॥

तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेने च तम्प्रति । चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः
सन्मान्यब्राह्मणं येन पुत्रबुद्ध्यासपालितः । सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेमहाकालवनेशुभे
इन्द्रेश्वरस्य देवस्य पश्चिमे लिङ्गमुत्तमम् । भक्त्या ह्याराधयामासतपसादुष्करेणतु
तपस्यन्तं ततस्तन्तुदेवः प्राहशुचिस्मिते । किमर्थंतप्यसे वत्स!तपस्तीव्रंब्रवीमिते
मनुर्नाभविताभाव्यंपष्ठेन ब्रजतत्कुरु । अलन्तेतपसा॑तस्मिस्ततो मुक्तिमवाप्स्यसि
इत्युक्तो देवदेवेन तथेत्याह महामतिः । बभूव स मनुर्देवि! ब्रह्मतुल्यो महायशाः ॥

पुत्रानुत्पादयामास लिङ्गस्याऽस्य समर्चनात् ।
कृतं नाम तदा देवैरानन्देश्वरमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

आनन्देनयतःप्राप्तासिद्धिर्देवि सुदुर्ल्लभा । अतोनामसुविख्यातमानन्देश्वरमाख्यताम्

ये पश्यन्ति विशालाक्षि आनन्देश्वरमीश्वरम् ।
ते पुत्रपौत्रसम्पन्ना भविष्यन्ति महीतले ॥ ४१ ॥

येषांक्षीणंनृणां पापं कोटिजन्मशतोद्भवम् । तेषां भवतिसाभक्तिरानन्देश्वरदर्शनात्
तदैव पुरुषो मुक्तो जन्ममृत्युजरादिभिः । यदा पश्यति देवेशमानन्देश्वरसञ्ज्ञकम्
मयोक्तं मुक्तिदं नृणामानन्देश्वरदर्शनम् । स्वर्गापवर्गदं देवमानन्दं लिङ्गमुत्तमम् ॥

अत्र देवैर्विशालाक्षि! पूजितं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४४ ॥

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । आनन्देश्वरदेवस्यशृणु त्वं कन्थडेश्वरम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कन्थडेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

चतुस्त्रिंशत्तमं विद्धि देवम्बै कन्थडेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते
वितस्तायास्तटेरम्ये ब्राह्मणोनिवसत्पुरा । चमुचपाण्डवोनाम दरिद्रेणातिपीडितः
ज्ञातिभिश्चपरित्यक्तो दुष्टया भार्यया सया ।
कन्थाप्येका स्थिता यस्य सर्वस्वप्रेमधारिणी ॥ ३ ॥
तेनाह सुतकामेन तोषितो गिरिगह्वरे । मयाऽप्युक्त विशालाक्षि पुत्रस्तव भविष्यति
तस्य पुत्र समुत्पन्न कन्थामध्यादयोनिज ।
शीतोष्णधारिणी कन्था तस्य पुत्रस्य माऽभवत् ॥ ५ ॥
स च लब्ध प्रसादेन मदीयेन वरानने । रुद्रेण च वरो दत्त कन्थाया मथिना पुनः
अथ षष्ठे गते वर्षे मौञ्जबन्धमचिन्तयत् । तदामन्त्र्य मुनीन्सर्वान्प्रसाद्य पुनः पुनः
नमस्कृत्य ऋषीन्सर्वान्पूजयामास भक्तितः ॥ ७ ॥
फलैर्विभवानुसारेण मौञ्जी तस्याप्यबन्धत । तेऽप्युक्ता मुनयः सर्वे प्रसाद्य पुनः पुनः
दीयतामाशिषोह्यस्मिन्पुत्राय मुनिसत्तमाः । ममपुत्रस्यपुत्रोऽयं दीर्घायुर्जायतां चिरम्
तूष्णीम्भूता स्थिता सर्वे तच्छ्रुत्वा नोत्तरं ददुः ।
यदा ते नोत्तरं प्रोचुस्तदा मुनिवरः स्वयम् ॥
ध्यानेन चिन्तयामास नूनमल्पायुषं सुतम् ॥ १० ॥
इतिज्ञात्वा तु सम्मोहमगमत्सहसामुनिः । विललाप स दुःखार्तः सुतस्नेहेनदुःखित

पाण्डव उवाच

दत्त स्वयं महेशेन ममाल्पायुः कथं सुतः । रुद्रेण च वरोदत्त प्रसन्नेन पुरा मम ॥
मत्तुल्यकायं पुत्रन्ते कन्थामध्याद्भविष्यति ।

जातं च दत्त्वा ह्यल्पायुं मिथ्या त्र्यक्षस्य तद्वचः ॥ १३ ॥
पितरं दुःखितं दृष्ट्वा तूष्णींभूतोमुनिस्तदा। स बालःसहसावाक्यं बभाषेहर्षवर्द्धनम्
त्यजत भयमिदानीं यन्ममार्थे विषण्णा विनिहतनिजयत्नं प्रेतराजं करोमि ।
शृणुत मम गिरम्भोः सेश्वरा लोकपालाः पितृपतिविजयार्थं सत्प्रतिज्ञाममैषा ॥१५
अतिविषमतपोभिः शङ्करंतोषयित्वा स्वपितुरपि च भक्त्या हन्मिमृत्योर्जयाशाम् ।
किमतिशयविषादव्याकुलास्तात! सर्वेसपदि पितृपतिं तं स्वे वशे स्थापयामि॥१६

प्रयामि रुद्रं शरणं महेश्वरं देवम्वरं चाप्युमयाऽविहीनम् ।
शृण्वन्तु सर्वेमुनयः समन्तान्न मादृशे मृत्युपराभवोऽस्ति ॥ १७ ॥
तपोभिरुग्रैः शितिकण्ठपादौ प्रसाद्य मृत्युं न चिराद्विनेष्ये ।
कन्थाजवाक्यामृतलोलनेत्राः सञ्जातरोमाञ्चलसत्स्वदेहाः ॥ १८ ॥
पप्रच्छुरेनं मुनयः शिशुं तं जानासि रुद्रं परमं कथं त्वम् ।
वयं चिरं कालमुपासमानास्तपोभिरुग्रैर्व्रतसञ्चयैश्च ॥ १९ ॥
तथापि विद्मो न वयं महेशं ज्ञातस्त्वयाऽसौ कथमर्भकेण ।
ईहामहे तं किल पुत्र! सम्यक्छ्रोतुं प्रहर्षाद्भुतजातरोमाः ॥ २० ॥
ज्ञातस्त्वया कुत्र कथं महेशो महेश्वरो वै भुवनैकनाथः ॥ २१ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स बालः कथयामास वृत्तान्तं पर्वतात्मजे ॥ २२ ॥
ममात्र क्रीडतः सिद्धः सिद्धिदः समुपागतः ।
विज्ञायाऽल्पायुषं मां तु वात्सल्यादब्रवीदिदम् ॥ २३ ॥
गच्छ पुत्र ममादेशान्महाकालवनोत्तमे। दक्षिणे चास्ति यल्लिङ्गमानन्देश्वरलिङ्गतः
तमाराधयशीघ्रं त्वंचिरञ्जीवीभविष्यसि । तस्योपदेशदानेनज्ञातंसम्यङ्महेश्वरात्
नान्यो देवोऽस्ति लोकेषु सत्यं सत्यं मुनीश्वराः !।
तस्मादद्यैव यास्यामि महाकालवने शुभे ॥ २६ ॥
लिङ्गमाराधयिष्यामि विषादस्त्यज्यतामिह ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तेन सार्द्धं महर्षयः ॥ २९ ॥

पिता चविस्मितोदेवि सर्वेपचसमागताः । देवमाराधयामास बाल कालजिघांसया
लिङ्गमध्यात्ततोवाणीनि सृतापर्वतात्मजे । अहोतुष्टोऽस्मितेवत्सकंकामंप्रददाम्यहम्
बाल उवाच
यदितुष्टोऽसिमेदेवयेत्वापश्यन्तिशङ्कर ।। पापकञ्चकविनिर्मुक्तास्तेसन्तुचिरजीविन
बालस्यमातापितरौस्याल्लिङ्गेमोक्षयशस्विनि । येत्वमापूजयिष्यन्तिश्रद्धयापरयायुता
ते भविष्यन्ति सततं जरामरणवर्जिताः ॥ ३१ ॥
लप्स्यन्ते परमान्कामान्भविष्यन्ति गणोत्तम ।।
पूज्या सर्वेषु लोकेषु सर्वालङ्कारभूषिताः ॥ ३२ ॥
पपात चापरः कश्च प्राञ्जलिः समुपस्थितः । लिङ्गेनोक्तं प्रसन्नेन सूनो वरयसुव्रत
वरो वै दुर्लभो लोके दयदानवगुह्यकैः । मयायतारितोयस्माज्ज्ञानयदेवतयाधुना ॥
बालेनोक्तो महादेव यदि देवो वरः पुनः । मयाल्पादेवतेख्यातिभूयात्त्रिभुवनेशुचि
वपमन्दिरपतिलिङ्गेन प्रोक्तमुत्तेनपार्वति ।। तदाप्रभृति देवेशो विख्यातः कन्थडेश्वरः
यस्य दर्शनमात्रेण पितृमुक्तिर्भवेन्नरः ॥ ३६ ॥
य समीक्षति तल्लिङ्गं कन्थडेश्वरसंज्ञितम् ॥ ३७ ॥
पापकञ्चकविनिर्मुक्तोमुक्तियास्यतिनान्यथा । पुण्यवशाच्यगोयत्तल्लिङ्गं पापप्रणाशनम्
पुनाति पापकामनसा नाम नामानुकीर्तनात् ॥ ३८ ॥
सेऽपश्यन्पुरालोके मेनाजन्मनिरर्थकम् । येभं दृष्टोमहाकालेदेवोऽसौकन्थडेश्वर
एवं तेकथितोदेवि प्रभावः पापनाशनः । कन्थडेश्वरदेवस्य इन्द्रेश्वरमथो शृणु
इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कन्थडेश्वरमाहात्म्यवर्णननाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

पञ्चत्रिंशत्तमं देवमिन्द्रेश्वरमनुत्तमम् । महासिद्धिप्रदं देवि ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ १ ॥

आसीत्प्रजापतिस्त्वष्टा तस्य पुत्रः कुशध्वजः ।
स्वकर्मनिरतो दान्तो वासवेन निपातितः ॥ २ ॥

तस्य पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः । अवलुञ्च्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत्
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं त्रयो लोकाः सदेवताः । स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः
स्वकर्मनिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः ।
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥ ५ ॥

ततो वृत्रः समुत्तस्थौ ज्वालामालासमाकुलः । महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः
इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टुस्तेजोऽभिवृंहितः । अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलम्
वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम् । चिन्तयामास सहसा किं कृतं सुकृतं भवेत्
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वृत्रो बलवतां वरः । ददर्श वासवं तत्र देवैः सार्द्धं वरानने ॥
दैत्यो वृत्रो महाकायश्चक्रे सङ्ग्राममुल्वणम् ।
नानाशस्त्रास्त्रसङ्क्षोभं भटसङ्घट्टसङ्कटम् ॥ १० ॥

छिन्नभिन्नतनुत्राणक्रोधरक्तधरातलम् । लूनाननाब्जप्रकरं करपल्लवदुर्गमम् ॥ ११ ॥
कबन्धसङ्घघटनं वर्टितामरसैनिकम् । विकीर्णाभरणस्फीतस्फुरद्योधाङ्गभूषणम्
कल्लोलरुधिरोद्गारपाटलीकृतदिङ्मुखम् । तस्मिन्रणे महाभीमे देवान्भित्त्वा सगुह्यकान्
वासवं बन्धयित्वा तु स्वर्गलोकं जगाम ह । राज्यं चकार निःशङ्को निःसपत्नं वरानने
ततस्तु बद्धे देवेन्द्रे बृहस्पतिरुदारधीः । आजगाम तमुद्देशं यत्र बद्धः शतक्रतुः ॥ १५
दृष्ट्वा तथाविधं शक्रमाशीर्भिरभिनन्द्य च । बन्धनान्मोचयित्वा तु प्रोवाचेदं वचस्तदा

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

मार्कण्डेयेश्वरं विद्धि षट्त्रिंशत्तममीश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण पुत्रवाञ्जायते नरः ॥
ब्रह्मवंशसमुत्पन्नो मृकण्डुर्नाम तापसः । वेदाध्ययनसम्पन्नः स चापुत्रो बभूव ह ॥
पुत्रार्थं चिन्तयामास कथं पुत्रो भवेदिति । अपुत्रस्य कुतो लोक इति वेदेषु पठ्यते
तस्मात्तपः करिष्यामि येन मे तनयो भवेत् । एवं सञ्चिन्त्य बहुधा स जगाम हिमालयम्
चकार वसतिं चापि तपसे भावितात्मवान् । वायुभक्षोऽम्बुभक्षश्च निराहारोर्ध्वपादकः
शाकमूलफलाहारः पर्णाश्येकद्विपर्णभुक् । एवमाशीति वर्षाणि तपासिद्धवह्न्यपि
चकार स मुनिस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु । न तुष्टोऽहं तदा देवि तपसा दुष्करेण तु

ततो ज्ञात्वा मतिं तस्य विस्मितोऽहं तदा त्वया ।
करोत्येव तपः क्रूरं पुत्रहेतोर्मुनिर्महान् ॥ ८ ॥

तेजसा दीप्यमानेन शोषयन्सलिलाशयान् । तपसा दुष्करेणैव क्षुभिता नाकवासिनः

समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चन्द्रादित्यौ तथैव च ।
ऋषयो विस्मृतिं प्राप्ताः कम्पेते चापि रोदसी ॥
अकालप्रलयो देव भविष्यति न संशयः ॥ १० ॥

मुनयेऽतः मृकण्डाय पुत्रो वै दीयतामिति । अथाप्योक्तं वरारोहे पुत्रमिच्छत्ययोनिजम्
अक्षयं सुचिरायुष्यं सदाशासमिवापरम् । चन्द्राभं चन्द्रवदनं चन्द्रवत्सुप्रभप्रियम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामं नीलोत्पलदलेक्षणम् । विशालपादजघनं चारुकुण्डलमण्डितम्

पुत्रमिच्छति देवर्षिः मृकण्डोऽयं महामुनिः । १२ ॥

त्वयाप्युक्तं पुनर्देवि कारुण्याद्गिरिजन्मने । न ददासि मुने पुत्रं तप्यतो विपुलं तपः
कलत्रदाता तपसा सर्वेषां तापस ध्रुवं । कस्त्वां शरण्यं गच्छेल्लोकानां सम्प्रभयम्

करोषि सर्वदैत्यानां सर्वदेवाकुलाकुलम् । त्वयाहं सुचिरं देव सत्कृता करुणाकर
नान्यो मामनुकम्पार्थं प्रयच्छेत्प्रवरं वरम् । सत्वंसर्वजगन्नाथ प्रभुः कर्त्ताप्रशासिता

हेतुः स्वामी महेशानो दयालुर्भक्तवत्सलः ।
सर्वेश्वर! स्तुतोऽभीष्टं किं न विप्राय दीयते ॥ १८ ॥

तपसा क्षीणपापस्य ब्रह्मत्वेभाविताल्मनः । अस्यपुत्रप्रदानं त्वं कुरु मद्वचनाच्छिव
मया त्वं वर्णिता देवि स्नेहाक्षरपदैः शुभैः । लोलपङ्कजपत्राक्षि गौरि भूधरगात्रजे
स्कन्दमातः कलापूर्णचन्द्रबिम्बनिभानने । कृशोदरि विनिःस्पृष्टचामीकरनिभद्युते

त्वयोक्तं प्रकरिष्यामि वाक्यं द्विरदगामिनि ॥
त्वं सिद्धिःसाधकासाध्यं त्वं क्रिया प्रक्रमाश्रया ॥ २२ ॥

त्वं मायाश्रीर्द्युतिः श्रीमच्छ्रद्धारुचिरसंततिः । कृत्वामानंबहुविधं मयैव सहसुन्दरि
भ्राजसे विविधाकारा मोहयित्वाखिलंजगत् । त्वयाप्युक्तंपुनर्देवक्रियतांतुवचोमम
मुनयेऽस्मै तपः क्षीणसर्वगात्राय साम्प्रतम् । वरःप्रदीयतामस्मै ब्राह्मणायमहेश्वर!॥
मयाप्युक्तं विशालाक्षि! श्रूयतां वचनंमम । असौ गच्छतुविप्रेन्द्रोमहाकालवनोत्तमे
पत्तनेश्वरपूर्वे तु तत्रास्ते लिङ्गमुत्तमम् । पुत्रप्रदं विशालाक्षि महापातकनाशनम् ॥
मदीयं वचनं श्रुत्वा त्वयाप्युक्तो द्विजोत्तमः । महाकालवनं गच्छ पुत्रार्थमृषिसत्तम

तत्र लिङ्गं समाराध्य लप्स्यसे पुत्रमुत्तमम् ॥ २८ ॥

त्वया सम्प्रेरितो विप्रस्तथेति कृतनिश्चयः । आशया परयायुक्तः पुत्रकामोजगामसः
तत्र दृष्ट्वा महालिङ्गं पुत्रदं पापनाशनम् । भक्त्या संसेवयामास तपसादुष्करेण तु ॥
अथकेनापि कालेन निःसृतोऽहं त्वयासह । लिङ्गमध्याद्वरारोहे सचप्रोक्तोद्विजोत्तमः

शर्वोऽहमिति जानीहि ब्रूहि किं करवाणि ते ।
आवां पुरा प्रसन्नौ ते ज्ञातं तव विचेष्टितम् ॥ ३२ ॥

यमिच्छसि वरं ब्रह्मंस्तदद्य प्रददामिते । मया प्रोक्तःप्रसन्नेन मुनिः परमविस्मितः
प्रह्वः प्राहसुहृदये स हृष्टो मुनिसत्तमः । अपत्यहेतोर्देवेशौ किमलभ्यं भवेन्मम ॥

मया प्रोक्तस्तदा देवि! मृकण्डो मुनिसत्तमः ।

मधुरूपो न कारोऽयं सुरोत्तम महाप्रभो । तथोत्तमामहालिङ्गं महाकालगुणान्वितम्

दृष्टा हि मया सर्वे सुरा तव महाप्रभो ॥ १७ ॥

एवं भोऽपि विज्ञेयं त्वां सत्यं स्मार्यदिति सुमति ।

न लाङ्गलाङ्गं सर्वं कलापिनागुणविहितम् ।

दृष्टो यदि धनो यानि मत्कृतो लावण्योऽसि च ॥ १८ ॥

दृष्टान्तनिवसम्बन्धा सह लब्धवमानाम् । स्थानानुमन्त्रोऽवास पुत्रपुत्रदृश्यन्ते विजय प्रतिवसन्ध्यं च भावद् दृष्टान्त । कस्यायमस्यावस्य दृश्यता स्नातस्य दिव

सम्पदां नवस्थानेन यः स पुत्रो महेश्वर ॥ २४ ॥

इतिहासेण धन्या दृष्टान्तनिवासानाम् । अन्यतः शिवतो मूलं लक्ष्य सह समस्तता महादेवस्थाने स्थले लब्धभागवस्यविहितः । सम्यकाचक्षं लिङ्गं विदेन सह पावन महासमयसानेन लब्धमें प्रदादयति । दृष्टान्तनिवसमुन्दा सह सौभाग्यं गत ॥ महादेवस्थानेऽस्ति दृष्टान्तलिङ्गमनुत्तमम् । स्तुति कथाय महता प्रतिष्ठानमवस्थाः नमाद्यादिस्थान मङ्गलाय नृपाय च । कारणाय बहुरूपाय स्थानपद्मोद्यामिने ।

पद्मनाभ नमोऽस्तिर्थं सत्यानल साहनाय ॥ २५ ॥

भाष प्रसादक्षिप्तान्तरलन कार प्रसादःसंदर्शिन स्वधन ।

मनागलिभु नवनिलयन धनेश्वरस्य दृष्टान्तपमेव ॥ २६ ॥

माङ्गल्य गुण सर्वकामसमव धाता विधाता परमः पुराण ।

अनायासस्यं वाञ्छस्वमय शालोकमस्यं मुक्तस्वरा ।

दिव्यमुखारामाल गुणान्तमय विनायको गुणपरस्यमेव ॥ २७ ॥

इत्यादितो स्तुति धरया लिङ्गं मोक्ष शासनेषु ।

नम्पद्व शाम 'विमाद्वरान्तरसो ओष्ठ हिता यत्र ।

ननिश्वसि न मन्द्रदो पूर्व दिवुविदारण ॥ २८ ॥

तन्धलिङ्गन्य माहात्म्यादर्शनेन पावति । अधानन्तमवृत्तं पश्यतां त्रिदशाद्दिगाम् निहत्य दानपाश्रमाद्यलिपा वपावका । उपाच दृष्टतरा देवा हतोऽयमहारणो ॥

त्रैलोक्याध्यक्षतां प्राप्ता भवन्तो मत्पराक्रमात् ।
एवमुक्तास्तु शक्रेण ते देवाविस्मयान्विताः ॥ ३१ ॥
अस्य देवस्य माहात्म्याद्धतो वृत्रो महासुरः ।
शरीरे च स्थिताः पापा दर्शनात्सङ्क्षयं गताः ॥ ३२ ॥
इन्द्रेणाराधितोयस्माद्देवदेवोमहेश्वरः । तस्मादिन्द्रेश्वरोनामख्यातोभुविभविष्यति
दर्शनादस्य लिङ्गस्य पुरीमिन्द्रस्य शोभनाम् ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति सर्वपातकवर्जिताः ॥ ३४ ॥
यःपश्यतिनरोनित्यं श्रीइन्द्रेश्वरसञ्ज्ञकम् । समुक्तःपातकैःसर्वैर्दिविमोदिष्यतेचिरम्
इन्द्रेणाराधितं लिङ्गं भक्त्या यः पूजयिष्यति ।
सयाति वै परं स्थानं दिव्यकल्पचतुष्टयम् ॥ ३५ ॥
येन चेन्द्रेश्वरोदेवो भक्त्या सम्यक्प्रपूजितः । तेनविष्णुप्रभृतयो वयंसर्वेसवासवाः
मुनयो लोकपालाश्च पूजिताः स्युर्न संशयः ॥ ३७ ॥
इत्युक्तः स सुरैः शक्रो वैकुण्ठाद्यैःसमन्ततः । तैरेवसहितो देवोजगामाथत्रिविष्टपम्
इन्द्रेश्वरस्य देवस्य प्रभावः कथितस्त्वयम् ।
मार्कण्डेयेश्वरं देवं शृणु पार्वति ! साम्प्रतम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य इन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

मार्कण्डेयेश्वरं विद्धि षट्त्रिंशत्तममीश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण पुत्रवाञ्जायते नरः ॥
महायशाः समुत्पन्नो मृकण्डोनाम तापसः । वेदाध्ययनसम्पन्नः स चापुत्रो बभूव ह ॥
पुत्रार्थं चिन्तयामास कथं पुत्रो भवेदिति । अपुत्रस्यकुतो लोक इति वेदेषु पठ्यते
तस्मात्तपः करिष्यामियेन मे तनयोभवेत् । एवसञ्चिन्त्यबहुधा स जगामहिमालयम्
चकारचसततिचापि तपस्तेमापिनात्मवान् । वायुभक्षोऽम्बुभक्षश्च निराहारोऽप्यपारक
शाकमूलफलाहारः पर्णाश्येकद्विपर्णभुक् । एवमादीनि चान्यानि तपांसि सुबहून्यपि
चकारस मुनिस्तत्र वर्षाणि द्वादशैवतु । न तुष्टोऽहं तदा देवि! तपसा दुष्करेण तु
ततो ज्ञात्वा मतिं तस्य विस्मितोऽहं तदात्वया ।
करोत्येव तपः क्रूरं पुत्रहेतोर्मुनिर्महान् ॥ ८ ॥
तेजसा दीपयञ्शैलं शोषयन्सलिलाशयान् । तपसादुष्करेणैव क्षुभितानाकवासिन
समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चन्द्रादित्यौ तथैव च ।
ऋषयो विस्मृतिं प्राप्ताः कम्पेते चापि रोदसी ॥
अकालप्रलयो देव भविष्यति न संशयः ॥ १० ॥
मुनयेत-मृकण्डायपुत्रो वै दीयतामिति । मयाप्रोक्तं वरारोहे पुत्रमिच्छत्ययोनिजम्
अक्षय सुविशालाक्षि सहस्राक्षमिवापरम् । चन्द्राभं चन्द्रवदनं चन्द्रवद्बहुधनप्रियम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामं नीलोत्पलदलेक्षणम् । विशालवक्षजघनं चारुकुण्डलमण्डितम्
पुत्रमिच्छति देवेशि! मृकण्डोऽयं महामुनिः । १३ ॥
त्वयाप्युक्तं पुनर्देवि कारुण्याद्भक्तिवत्सले । न ददासि मुने पुत्रं तप्यतो विषमं तपः
फलस्यदातातपसांकथंत्वंगीयसे बुधैः । कस्त्वांनुशरणं गच्छेल्लोकानांसम्भवभवम्

करोषि सर्वदैत्यानां सर्वदेवाकुलाकुलम् । त्वयाहं सुचिरं देव सत्कृता करुणाकर
नान्यो मामनुकम्पार्थं प्रयच्छेत्प्रवरं वरम् । सत्वंसर्वजगन्नाथ प्रभुः कर्त्ताप्रशासिता
हेतुः स्वामी महेशानो दयालुर्भक्तवत्सलः ।
सर्वेश्वर! स्तुतोऽभीष्टं किं न विप्राय दीयते ॥ १८ ॥
तपसा क्षीणपापस्य ब्रह्मत्वेभावितात्मनः । अस्यपुत्रप्रदानं त्वं कुरु मद्वचनाच्छिव
मया त्वं वर्णिता देवि स्नेहाक्षरपदैः शुभैः । लोलपङ्कजपत्राक्षि गौरि भूधरगात्रजे
स्कन्दमातः कलापूर्णचन्द्रबिम्बनिभानने । कृशोदरि विनिःस्पृष्टचामीकरनिभद्युते
त्वयोक्तं प्रकरिष्यामि वाक्यं द्विरदगामिनि ॥
त्वं सिद्धिःसाधकासाध्यं त्वं क्रिया प्रक्रमाश्रया ॥ २२ ॥
त्वं मायाश्रीर्द्युतिः श्रीमच्छ्रद्धारुचिरसंततिः । कृत्वामानंबहुविधं मयैव सहसुन्दरि
भ्राजसे विविधाकारा मोहयित्वाखिलंजगत् । त्वयाप्युक्तंपुनर्देवक्रियतांतुवचोमम
मुनयेऽस्मै तपः क्षीणसर्वगात्राय साम्प्रतम् । वरःप्रदीयतामस्मै ब्राह्मणायमहेश्वर!॥
मयाप्युक्तं विशालाक्षि! श्रूयतां वचनंमम । असौ गच्छतुविप्रेन्द्रोमहाकालवनोत्तमे
पत्तनेश्वरपूर्वे तु तत्रास्ते लिङ्गमुत्तमम् । पुत्रप्रदं विशालाक्षि महापातकनाशनम् ॥
मदीयं वचनं श्रुत्वा त्वयाप्युक्तो द्विजोत्तमः । महाकालवनं गच्छ पुत्रार्थमृषिसत्तम
तत्र लिङ्गं समाराध्य लप्स्यसे पुत्रमुत्तमम् ॥ २८ ॥
त्वया सम्प्रेरितो विप्रस्तथेति कृतनिश्चयः । आशया परयायुक्तः पुत्रकामोजगामसः
तत्र दृष्ट्वा महालिङ्गं पुत्रदं पापनाशनम् । भक्त्या संसेवयामास तपसादुष्करेण तु ॥
अथकेनापि कालेन निःसृतोऽहं त्वयासह । लिङ्गमध्याद्वरारोहे सचप्रोक्तोद्विजोत्तमः
शर्वोऽहमिति जानीहि ब्रूहि किं करवाणि ते ।
आवां पुरा प्रसन्नौ ते ज्ञातं तव विचेष्टितम् ॥ ३२ ॥
यमिच्छसि वरं ब्रह्मंस्तदद्य प्रददामि ते । मया प्रोक्तःप्रसन्नेन मुनिः परमविस्मितः
प्रह्वः प्राहसुहृदये स हृष्टो मुनिसत्तमः । अपत्यहेतोर्देवेशौ किमलभ्यं भवेन्मम ॥
मया प्रोक्तस्तदा देवि! मृकण्डो मुनिसत्तमः ।

अयोनिजस्ते तनयो मानुषो वै भविष्यति ।
ऐश्वर्यज्ञानसम्पन्नो दीर्घायु सर्ववित्सुधी ॥ ३५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि प्रादुर्भूतो महातपा । पुत्रः परमधर्मात्मा मार्कण्डेयो महामुनिः
स जातमात्रो धर्मात्मा तत्रैव तपसि स्थितः । देवमाराधयामास सन्तुष्टोऽथ वरं ददौ
त्वयाऽहं जातमात्रेण तपसा तोषितोऽद्य ।
तस्मात्ख्यातिं गमिष्यामि त्वन्नाम्ना द्विजसत्तम ॥ ३८ ॥
ये मां पश्यन्ति विप्रेन्द्र भक्त्या परमया युताः । प्राप्नुवन्ति गतिं नित्यां ते सदानन्ददायिनीम्
प्रसादात्ते गमिष्यन्ति तेऽसदा तु खवर्जिताः । देवदेव समाराध्य मोदिष्यन्ति हिते नराः
ब्रह्मादयो महेश्वरा सिद्धा सिद्धगन्धर्वसेविताः । तं मां पश्यन्ति सततं प्रमथास्ताश्च ये नराः
ये मां सम्पूजयिष्यन्ति धूपैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।
दीर्घायुषो भविष्यन्ति सदा दुःखविवर्जिताः ॥ ४२ ॥
इत्युक्ते तेन लिङ्गेन मार्कण्डेयो महातपाः । तपश्चचार तत्रैव महाकालवने स्थितः ॥
प्रभावः कथितो देवि मार्कण्डेयेश्वरस्य च ।
शिवेश्वरस्य देवस्य माहात्म्यं शृणु साम्प्रतम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये मार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्य
वर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

सप्तत्रिंशत्तमं विद्धि शिवेश्वरमनन्तकम्। यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसम्पदः ॥
राजा रिपुञ्जयोनाम ब्रह्मकल्पे पुराऽभवत्। महाकालवने रम्ये प्रजापालनतत्परः ॥
देवपूजां व्रतं दानं ध्यानं स्वाध्यायसत्क्रियाम्।
प्रजापालनकं कृत्वा न स जानाति किञ्चन ॥ ३ ॥
स प्रजाः पालयामासपुत्रवत्परिपालिताः। प्रजास्ताःसुखसंवृद्धाजरामृत्युविवर्जिताः
पुत्रिणो धनधान्याढ्याः सर्वकामसमन्विताः।
तस्यैव तेजसा व्याप्तं महाकालपुरं प्रिये !॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे पृथ्वीं तस्मिञ्छासतिपार्वति। महाकालवनंदेविस्वपुरंविहितंमया
विना चोज्जयिनीं गन्तुं न रतिं प्राप कुत्रचित् ॥ ६ ॥
तदा मया गणेशस्तु शिवसञ्ज्ञो गणाग्रणीः।
चिन्तितस्तत्क्षणात्प्राप्तः किं करोमीत्युवाच ह ॥ ७ ॥
मयाप्युक्तो गणेशोहि गच्छ पुत्र मम प्रियम्। महाकालपुरं व्याप्तं राज्ञारिपुञ्जयेनहि
इत्युक्तः स मयादेवितथेत्युक्त्वाकृताञ्जलिः। गतोऽसौमानुषेलोकेममाज्ञाहर्षिताननः
गते शिवगणे देविसन्तुष्टोऽहंशुचिस्मिते। युक्तिज्ञानवृतोदक्षःप्रभोर्भृत्योहिदुर्लभः
ततः सभिक्षुरूपेण बह्वौषधिपरिग्रहः। गृहीत्वाडुन्दुभिं स्कन्धे वचनं चेदमब्रवीत्
कश्च भूतविषग्रस्तो नानादोषैःसमाश्रितः। कस्य कोव्याधिरत्युग्रोयमहंप्रशमंनये
कोऽपुत्रःपुत्रवानस्तुमन्मन्त्रबलमाश्रितः। वैद्योऽस्मि सर्वयुक्तिज्ञःसर्वकामप्रदायकः
तस्यवाक्यंसमाकर्ण्यकौतूहलसमन्वितः। सवृद्धबालनारीकोजनस्तमभिजग्मिवान्
तेषां स नाशयामास व्याधिं दुर्जयमव्यति। तेचतस्मैसुमहतींपूजांचक्रुःसुहर्षिताः

हेमरत्नाम्बरधनैर्धान्यग्रामपुरादिभिः ॥ १५ ॥

एवं स क्षपणस्तत्र वर्षाणि च चतुर्दश । नृपतेस्तस्य वेश्मस्थो नवान्तरमवापतः ॥ १६

अहोऽतिदुष्करो राजा अहो लोकपरायणः ।

अहो तेजोनिधिर्धीरो दुर्जयोऽस्मी महामतिः ॥ १७ ॥

एवं सचिन्तयंस्तत्र भिक्षुरूपी शिवोगणः । आर्जोधान्यस्नात्स्वात्मनोऽसम्भूत निध

अन्तरे तु नृपतेस्तस्य लोकप्रतस्य तु । महिषी निर्गता नाम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी

रूपेणाप्रतिमा लोके सा चातुरा सुतार्थिनी ।

सपत्नीपद्गुला देवी श्रुत्वा भिक्षुं समाश्रिता ॥ २० ॥

सर्वकामप्रदं तत्र नागराणां सकौतुकम् । तया सखीं प्रेषयामास तु तस्य नामभामि

भिक्षोरानयने शुभमस्य शुभमन्दिरा । तया नाम्ना विमो भिक्षुर्विविक्तस्थगतं स्थित

उवाच विनयात् भिक्षुं भिक्षाससमन्वितम् ॥ २२ ॥

प्रणम्य बद्धाञ्जलिभूत्वा कार्यार्थं विगतव्यथा । मनोज्ञमहिषी नाम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी

पार्थ्या पुत्रार्थिनी तया शुभं त्वा द्रष्टुमिच्छति ॥ २३ ॥

कथमन्तःपुरं प्रवेष्टुं महात्मनोऽहितम् । एवं श्रुत्वा विशालाक्षी एवमुक्ता सुवाच

भिक्षुरुवाच

भद्रे वेदं तव मतिर्विपरीतप्रलापिनी । अविज्ञातो नरपतेर्गृहमेष्यामि आपसे

अविज्ञातं पुरं दृष्ट्वा साहसी पुरुषो भवेत् ॥ २५ ॥

एवं मत्वा व्रज क्षिप्रं त्वमेवान्तःपुरं शुभे । नाहं तत्रागमिष्यामि यावन्नृपतेर्वच

सा तु तस्य वचः श्रुत्वा भिक्षोः क्षुभितमानसा ।

जगामान्तःपुरं तूर्णं देव्यै तत्र न्यवेदयत् ॥ २७ ॥

सखीवचस्तु सा श्रुत्वा देवी दीना उवाच ताम् ।

सुनन्दे क उपायोऽस्ति राजा येन प्रवर्तते ।

भिक्षोरानयने क्षिप्रं यावच्चासौ व्रजेत्क्वचित् ॥ २८ ॥

उवाच सा तां युवतीं च सुनन्दा युक्तभाषिणी । त्वत्तस्य च कुमाराश्च प्राणेभ्योऽपि गरीयसं

तस्मादस्वथचित्तत्वं राज्ञः स्वंसम्प्रदर्शय । हेतुना तेनराजा च वाक्यंतवकरिष्यति
एतस्मिन्नेव काले तु देव्या दर्शनलालसः । जगामान्तःपुरं राजा प्रियांदीनांददर्शह
तामपृच्छत्ततो राजा स्नेहार्द्रीकृतमानसः ॥ ३१ ॥

राजोवाच

किमिदं देवि! ते रूपं विमनस्केव भाषसे । भग्नासि केनदुःखेनकस्यापकृतमीदृशम्
नृपस्य वचनं श्रुत्वा राज्ञीवचनमब्रवीत् । न पुत्रान्नृप मेसन्तितेन मे नास्तिनिर्वृतिः
क्रीडनं पीडनायैव तेषां ये पुत्रवर्जिताः । अपुत्रा जगतो दीनादुःखिताः पुत्रवर्जिताः
अपुत्रे च गतिर्नास्ति सुतापुत्रविवर्जिते ॥ ३४ ॥

सुखिनस्तेजनालोकेये बालंपांसुभूषितम् । परिष्वजन्तिस्वसुतमस्फुटाक्षरभाषकम्
अनेन कारणेनास्मि निर्वेदं परमं गता । उपायो हि मया दृष्टःपुत्रार्थे ममसाम्प्रतम्
इह भिक्षुः समायातो देवरूपी सनातनः । तस्य चाव्याहता शक्तिःश्रूयतेसर्ववस्तुषु
सस्त्रीबालो जनश्चात्र शरणं यस्य गच्छति । तस्यभिक्षोःप्रसादेनसुतवत्योवयंनृप
भविष्यामोऽत्र सन्देहो न मे मनसि वर्त्तते ॥ ३८ ॥

तस्याः स वचनं श्रुत्वा जीर्णोद्यानंजगाम ह । प्रिययासहितोराजातंचभिक्षुंददर्शह
दृष्टमात्रो नृपतिना भिक्षुर्लिङ्गत्वमागतः । दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यं भक्तिनम्रोमहीपतिः ॥
पूजयामास विधिवत्तल्लिङ्गं भिक्षुरूपकम् ॥ ४० ॥

अपुत्रोऽस्मीत्युवाचेदं धन्येयंमहिषी मम । देहि मे तनयं देव शिवोद्भवान्महेश्वरः
इत्युक्तो राजसिंहेन भिक्षुलिङ्गाकृतिस्तदा । प्रत्युवाच महीपालं पुत्रस्ते भवितानृप
ततःप्रभृति राजाऽसौ सकलत्रो महामतिः । सर्वभावेन तं देवं जगाम शरणंमुदा ॥
देवदेवस्य माहात्म्यात्पुत्रो जातो महाबलः ।
धर्मात्मा च यशस्वी च सार्वभौमो गुणाधिकः ॥ ४४ ॥

अथाहं मन्दराद्देवि कौतुकात्तुसमागतः । लिङ्गाकारंगणंदृष्ट्वा राजानं सेवकं तथा ॥
योगैश्वर्येण च मयाकृतमग्रे पुरमात्मनः । नानारत्नप्रभोद्द्योतं नानासिद्धिनिषेवितम्
तच्छिवं शाश्वतं स्थानं दत्तं देवि! तदा मया ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेयेश्वराद्वेषादुत्तरे वरवर्णिनि । तदाप्रभृति देवोऽसौ शिवेश्वरइति स्मृतः ॥
येऽर्चयिष्यन्तिसततंशिवेश्वरमनुत्तमम् । निर्धूतसर्वपापास्तेभविष्यन्तिगणोर
विदित्वार्मगुरुल्लोकयेद्रक्ष्यन्तिशिवेश्वरम् । अन्तकालेप्रदास्यामि तेषांज्ञानमनुत्त
मोक्षसुदुर्लभमत्यासंसारभयातिभीषणम् । अपुनर्भवहेतुत्वात्ससेव्योऽसौशिवे

सर्वावस्थोऽपि यो मर्त्य प्रश्नयेत शिवेश्वरम् ।
स ता गतिमवाप्नोति यज्ञैर्दानैर्हि या गति ॥ ५२ ॥

आख्यानमस्यतोमर्त्याय इदश्रावयेच्छुचि । पञ्चेद्वावायेद्वापिसमुच्येत्सर्वकिल्बि
पयते कथितोदेवि प्रभाव पापनाशन । शिवेश्वरस्य देवस्य कुसुमेशमत शृ!

इति श्रीस्कान्देमाहापुराणे चकाशीतिसाहस्र्या संहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये शिवेश्वरमाहात्म्यवर्णन नाम
समत्रिंशोऽध्याय ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्याय

कुसुमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अष्टत्रिंशत्तमं विद्धि कुसुमेश्वरसञ्ज्ञकम् । देव स्वर्गप्रदंदेवि महापातकनाशनम्
पुरा वैवस्वते कल्प प्राप्त धाराहसञ्ज्ञके । प्रादुर्भूते विशालाक्षि कैलासादहमाग
महाकालवनरम्ये रममाणस्य पार्वति ।। त्वया सार्द्धं ममाक्षेश्च प्रादुरासीन्महास्व
पृष्टोऽहञ्चनदाश्चत्वाशब्दंचातिवहु सहम । शब्दोत्पत्तिर्मयादेवि कथितासास्वदम
पतगणेशा क्रीडन्ति मध्येवै वीरकोगण । कुसुमैर्भूषितोऽत्यर्थंममातीवसुवह
कुसुमैर्नित्यतऽस्यर्थं पूज्यते कुसुमोत्करै । स एव वीरको देवि सदा मे हर्षदाय
नानाश्चर्यगुणाधारो गणेश्वरशतार्चित । मदीयं वचनं श्रुत्वा त्वयाप्युक्तं वरानने

न दृश्यते विना पुण्यैः पुत्रस्याननपङ्कजम् ।
ईदृशस्य सुतस्यापि ममोत्कण्ठा महेश्वर !॥ ८ ॥
कदाहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायकम् । मया तव वचःश्रुत्वा हसित्वाच पुनःपुनः
प्रोक्तं पार्वति! पुत्रोऽयं प्रदत्तो वीरकोऽधुना ॥ ९ ॥
एष एव सुतस्तेस्तु नयनानन्ददायकः । त्वया मात्रा कृतार्थस्तु वीरकः कुसुमार्चितः
मदायं वचनं श्रुत्वा प्रेषिता विजया त्वया । दत्तो हरेण मे पुत्रो विजये शीघ्रमानय
विजयोवाच गणपं गणमध्ये च वर्त्तिनम् ।
एहि वीरक! चापल्यात्त्वया देवः प्रकोपितः ॥
किमुन्मत्तवदत्यर्थं नृत्यरागेण मोहितः ॥ १२ ॥
इत्युक्तो भयसन्त्रस्तःकुसुमैर्भूषितस्तदा । त्वत्समीपं समायातोविजयानुगतःशनैः
भूषितं कुसुमैर्दृष्ट्वा भयत्रस्तञ्च वीरकम् । त्वयाचाकारितो देवि! गिरा मधुरवर्णया
एह्येहि जातोऽसि मे पुत्रकस्त्वं देवेन दत्तोऽधुना वीरकोऽसि ।
उक्तवत्येवमङ्के निधायाथ तं पर्यचुम्बःकपोले कलम्बादिनम् ॥ १५ ॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय सम्मार्ज्य गात्राणि सा भूषयामास दिव्यैः स्वयम्भूषणैः ।
किङ्किणीमेखलानूपुरैः सन्मणीनिष्ककेयूरहारोत्करैः सद्गुणैः ॥ १६ ॥
कोमलैः पल्लवैश्चित्रितैश्चारुभिर्दिव्यमन्त्रोद्भवैस्तस्य शुभ्रैस्ततः ।
भूतिभिश्चाकरोमिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधींस्तस्य तुष्टा सती ॥ १७ ॥
एवमाधाय चोवक्त्र कृत्वा स्रजं मूर्ध्नि गोरोचनापत्रभङ्गोज्ज्वलैः ।
वत्स गच्छाऽधुना क्रीड सार्द्धं गणैरप्रमत्तो यथा वालचर्यां शनैः ॥ १८ ॥
सोऽपि सिद्धध्याकुले गण्डशैले मिलद्व्रलजाले वृहच्छालतालाकुले ॥
क्षणं फुल्लमालातमालालिमाले क्षणं वृक्षमूले विलोलालिमाले ॥ १९ ॥
क्षणं स्वल्पपङ्के जले पङ्कजाले क्षणं वृक्षखण्डे शुभे निष्कलङ्के ।
परिक्रीडते वालको वै विहारी गणेशाधिपो देवतानन्दकारी ॥ २० ॥
एवं विक्रीडतस्तस्य वीरकस्य गणस्य च ।

सन्ध्या तमोमयी प्राप्तो विश्रुतोऽहं त्वया प्रिये ॥ २१ ॥

ऐश्वर्यं दीयतामस्य मम पुत्रस्य शङ्कर । शरीरार्द्धं गणेशाख्यं लोकपालत्वमव्यय ।

लिङ्गस्यमक्षयत्वं च स्थानं दिव्यं सुदुर्लभम् ।

पश्यमानं यथा देवि सिद्धगन्धर्वकिंनरैः ॥

महेन्द्रप्रमुखादित्यलोकपालैश्वरेश्वरैः ॥ २३ ॥

एतैरेवागणैः सार्द्धं स्तूयमानं महात्मभिः । कन्दर्पसोमपावकैः कुसुमैर्विविधैः शुभैः कुसुमेश्वरमत्यन्तमर्च्यमानं तोषयिष्यति । मयाप्युक्तं विशालाक्षि शर्वाशं दिव्यमव्यमप्रमाणममं दिव्यं सेवितं गणैः सदा । शृणु गन्धर्वगीतानां माधुर्यमनुत्तमम् । पश्य विद्याधराणां नाट्यलास्यमनोरमम् । पश्याप्सरःसमूहस्य नृत्यमेतत्प्रियावहम् । विद्याधरैः परिवृतः कुसुमेशो वरानने । विश्रान्तो मया देवि प्रथमं प्रमथेश्वरः ॥

कुसुमेश्वरतां नीतो यदा कुसुमसञ्चितः ॥ २८ ॥

स्थानमत्र विशालाक्षि लिङ्गमस्य गणोत्तमे । ततोऽत्रतो बहुमतो कुरुष्व त्रिदशेश्वरि । ये नराः द्रक्ष्यन्ति सततं कुसुमेश्वरमव्ययम् । न तेषां जायते शोकः ...

कुसुमैस्तर्पयिष्यन्ति ये नराः कुसुमेश्वरम् ।

सन्तानं न वियोगश्च भविष्यति गतत्वरा ॥ ३१ ॥

वाञ्छितं दिव्यं सर्वत्र प्राप्स्यन्ति मानवाः ।

॥ कुल ... अवतीर्य सोऽहं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

ये पूजयन्ति मानवाः कुसुमैः कुसुमेश्वरम् । ते प्राप्य ... पुत्रांश्च ... एवमादिष्ट ... कुसुमेश्वरः । इत्यन्यो गणो देवि लिङ्गेश्वर...

कुसुमेश्वरदेवस्य प्रभावः कथितस्तव ।

... ॥ ३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे कुसुमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

— —

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

अक्रूरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

हर उवाच

अक्रूरेश्वरमेकोनचत्वारिंशत्तमं शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण सुबुद्धिर्जायते नृणाम् ॥ १

पुरा त्वयैव कल्पादौ परया शक्तिरूपया । कृतं कृत्स्नंवरारोहेत्रैलोक्यं सचराचरम्

ततस्त्वं संस्तुता देवैः सकिन्नरमहोरगैः । प्रदक्षिणांप्रकुर्वन्तिगणानानाविधास्तुते

नमस्कारंप्रकुर्वन्तिस्तोत्रं कुर्वन्तिचापरे । नकरोतिनमस्कारमेको भृङ्गिरिटिस्तदा

क्रूरां बुद्धिं समास्थाय गर्वेणार्ताथ गर्वितः ॥ ५ ॥

एको देवोमहादेवः स्त्रियाकिमनयामम । यदानायाति ते पार्श्वंतदा प्रोक्तस्त्वयागतः

कस्मान्न कुरुषे पूजां प्रदक्षिणमथोस्तुतिम् । मद्भक्तोमदधीनोऽसिममपुत्रोमयाकृतः

इत्थं भूतगणेश! त्वं किं घैं लौल्येन वर्त्तसे ॥ ७ ॥

इति भृङ्गिरिटिः श्रुत्वाक्रुद्धस्त्वामाह गर्वितः । नाहंपार्वति ते पुत्रःपुत्रोऽहंशङ्करस्यतु

एष एव च मे माता एषएव च मे पिता । एवं रात्रिदिनं यामि शरणं परमेष्ठिनम् ॥

त्वमप्यस्यैवशरणंननु पार्वतिसंस्थिता । यदि वत्वामहंवन्देतद्वन्देसकलान्गणान्

इति भृङ्गिरिटेः श्रुत्वा वाक्यं कुपितया त्वया ।

तस्योक्तं प्रमथेशस्य भीरु! भृङ्गिरिटेरिदम् ॥ ११ ॥

सुतो भूत्वा भवान्कस्माददाक्षिण्यं ब्रवीषि माम् ।

त्वङ्मांसशोणितान्त्रं च मातृकं तनयस्यतु ॥ १२ ॥

नखदन्तास्थिसङ्घातः शिश्नं वाकच शिरस्तथा । तथैवशुक्रंगणपपैतृकं तु शरीरकम्

इति भृङ्गिरिटिःश्रुत्वासद्यो योगवलेनतु । मांसादित्यक्तवान्सर्वं मातृकंभागमेवहि

ततः प्रभृति वामोरु! नखदन्तास्थिनासिकः । सचक्रूरांमतिकृत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः

त्वां परित्यज्य दुःखार्त्त आजगाम ममांतिकम् ।

यथा त्वया तदा शप्तो गणो भृङ्गिरिटिः प्रिये ॥ १६ ॥
क्रूरबुद्धिः कृता यस्मात्त्वयाकुमतिना भृशम् । तस्मात्त्वं मानुषे लोके भविष्यसि न संशयः ॥
इत्युक्तस्तु त्वया देवि गणो भृङ्गिरिटिस्तदा । पपात मानुषे लोके पुण्यात्तस्मात्सुरेश्वरि ॥
स गत्वा पुष्करद्वीपं तपसे भावितात्मवान् । तत्रैकपादूर्ध्वभुजो दशपद्मान्यथ स्थितः
दग्धीभूतश्च तपसा उग्रेण दुष्करेण तु ॥ १८ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च शक्रश्च त्रिदशैः सह । वयं च चारुवदने तत्समीपं समागताः
उपगम्य ततस्तस्य कथितं पुरतो मया । अलं क्रूरेण तपसा लोकक्षयोत्पादनेन वै ॥
त्रैलोक्यमपि निःशब्दं जातमेव स्थिते त्वयि । महतस्ते तपोघोरं लोकसंतापनं महत्
प्रार्थयस्त्वं पार्वतीं पुत्र सा दास्यति वरं च मे ।
अस्याः प्रसादान्मुक्तिस्ते शापान्तश्च भविष्यति ॥ २३ ॥
एवमुक्तस्तदा तेन प्रार्थितासि महेश्वरि । गणेन भृङ्गिरिटिना भक्तिनम्रेण सादरम्
त्वया प्रोक्तं विशालाक्षि पुत्र गच्छ ममाज्ञया । महाकालवने रम्ये तत्राऽक्रूरो भविष्यसि
पुनः प्राप्स्यसि कैलासं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । अङ्कपादाग्रतो लिङ्गं समन्वेषय तत् महत्
यस्य दर्शनमात्रेण शुभा बुद्धिः प्रजायते ॥ २६ ॥
कृतघ्ना नास्तिकाः क्रूराश्च विश्वासघातकाः । महापातकिनो ये चान्ये शापवशंगताः
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य तेऽपि स्वर्गभुजो नराः ॥ २७ ॥
क्रूरांबुद्धिसमासाद्यस्त्यागकेशिवा । बलदेवेन सहितस्त्यक्त्वा तां मथुरां पुरीम्
महाकालवनं गत्वा तोषयित्वा महेश्वरम् । अक्रूरश्चासमप्राप्त कीर्तिलेभेच शाश्वतीं
त्वदीयं वचनं श्रुत्वा गणो भृङ्गिरिटिस्तदा । ततो विप्रस्य जातो महाकालवनं गतः
देवमाराधयामास तपसा दुष्करेण तु ॥ ३० ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि लिङ्गमध्यात्समुत्थितम् ।
महाङ्गं मामकं कृत्वा स्वकीयाङ्गमथाद्धृतम् ।
फणीन्द्रबद्धजूटाग्रमर्धमिन्दुविभूषितम् ॥ ३१ ॥
पत्रवल्लीविचित्राङ्गमर्धचन्द्रविराजितम् । मुक्ताहारनिबद्धाङ्गमङ्गं सदैव वेष्टितम् ॥

ततोभृङ्गिरिटिर्देवि! दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् । चिन्तयामास हृदये मयाऽज्ञानादनुष्ठितम्
उमा च शङ्करश्चैव देहमेकं सनातनम् । एका मूर्त्तिरनिर्देश्या द्विधा भेदेन दृश्यते ॥
एवं चिन्तयतस्तस्य भक्तिनम्रस्य पार्वति !॥ प्रोक्तंत्वया प्रसन्नाहं वरं वरय पुत्रक!

तेनोक्तं यदि तुष्टाऽसि मातर्मम महेश्वरि !॥
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्क्रूराबुद्धिर्गता मम ॥ ३६ ॥

अक्रूरेश्वरनामायं देवः ख्यातो भवत्विति । त्वं देवि सर्वभावानामेकाकारणमुच्यते

त्वं मूर्ता पुण्यनिचया त्वं गतिः पुण्यसेविनाम् ।
पिता माता सुहृद्बन्धुस्त्वमेका कारणं परम् ॥ ३८ ॥

कुरु पुण्यतमं स्थानं ब्रह्महत्यादिनाशनम् । भुक्तिदं मुक्तिदंचैववाञ्छितार्थप्रदायकम्
तथेति च त्वया प्रोक्तं गिरा मधुरयातदा । यत्ते प्रियतमं वत्स तत्सर्वंप्रकरोम्यहम्
नमेऽस्ति दुष्करं पुत्र त्वत्कृते कनकप्रभ !॥ अस्मिन्स्थाने तुयेदेवमक्रूरेश्वरसञ्ज्ञकम्

प्रसङ्गादपि पश्यन्ति अपि पापरता नराः ।
तेऽप्यवश्यं भविष्यन्ति त्वत्समा नियतं गणाः ॥ ४२ ॥
भक्त्या स्तोष्यन्ति ये नाम लिङ्गस्यास्य च मानवाः ।
मानसैः पातकैर्मुक्ता यास्यन्ति स्वर्गमक्षयम् ॥ ४३ ॥
स्नात्वा तु विधिवत्पूजां यः करिष्यति मानवः ।
स मुक्तःपातकैःसर्वैःप्राप्स्यते रविमण्डलम् ॥ ४४ ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं काममत्र हि वाञ्छितम् ।
गोसहस्रफलं चात्र स्पृष्ट्वा प्राप्स्यति मानवः ॥ ४५ ॥

स्नात्वामन्दाकिनीकुण्डे योऽक्रूरेश्वरमीश्वरम् । पूजयेद्विविधैःपुष्पैर्महापापहतोपिवा

विमानं दिव्यमारूढो यावत्कल्पचतुष्टयम् ।
गन्धर्वैर्गीयमानस्तु सोऽपिस्वर्गं गमिष्यति ॥ ४७ ॥
इत्युक्तः स गणो देवि! मत्समीपमुपागतः ।
शापान्मुक्तस्त्वया सार्धं विस्मिता किं वरानने !॥ ४८ ॥

एतते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । अक्रूरेश्वरदेवस्य शृणु कुण्डेश्वरं परम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽक्रूरेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

कुण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

चत्वारिंशत्तमं विद्धि कुण्डेश्वरमतः शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण लभ्यते सद्गतिः परा ॥
विज्ञप्तोऽहं त्वया देवि मन्दरे चारुकन्दरे । वीरकं द्रष्टुमिच्छामि क्व गतो मम पुत्रकः ॥
मया प्रोक्तं विशालाक्षि महाकालवनोत्तमे । जलमध्ये स्थितस्तेपे तपः परमदारुणम् ॥
मुनिभिः सहितो धीमान्वामाजमानोऽशुमानिव ।
गच्छामस्तत्र तं द्रष्टुं गणैः सार्द्धं वरानने ॥ ४ ॥
मदीयवचनं श्रुत्वा त्वयाहं प्रेरितस्तदा । उत्तिष्ठ शम्भो गच्छामो वृषमारुह सत्वरम् ॥
समस्तरी स्तनौ जाता मम सम्भूय वीरकम् ।
मया स्मृतो वृषो देवि धर्मरूपः सनातनः ॥ ६ ॥
मदायचिन्तितश्चात्मा ममपार्श्वमुपागतः । आरूढोऽहं त्वया सार्द्धं तस्मिन्नेव वृषे तदा ॥
प्रस्थितास्ते क्षणाच्छ च गणैर्नानाविधैः सह ।
वेगात्प्रयातो वृषभः स्कन्धालम्बितया त्वया ॥ ८ ॥
रणद्वलयबाहुभ्यां गाढमालिङ्गितोऽह्यहम् । त्वमीताचनदा जातायदाऽतीव प्रणोदितः
वृषो मया विशालाक्षि सहस्रोगणपस्तदा । कृष्णश्च स वरं दृष्ट्वा प्रोक्तं चभीतया तदा
श्रान्तास्मि माश्वतं दयवेगमानेनर्मापिता । तद्विश्रमितुमिच्छामि मूधरस्यतटे विभो
क्षणं पद्भ्यां गमिष्यामि विषमोऽयं गिरिर्महान् ।

त्वदीयं वचनं श्रुत्वा वाढमुक्तं प्रिये मया ॥ १२ ॥
मुहूर्त्तं चारुजघने शैलपादमुपाश्रिता। कुरुश्रमापनयनं यावद्वेगात्प्रयाम्यहम् ॥ १३ ॥
पन्थानं त्वत्सुखं यत्र तं वयंमृगयावहे। एषकुण्डोगणाध्यक्षस्त्वत्समीपेवसिष्यति
त्वदाज्ञावशवर्त्ती च किङ्करः स्थापितो मया ॥ १४ ॥
एवमुक्त्वा ततो देवि संस्थाप्यगणरक्षकम्। आरूढोऽहंगिरेःप्रान्तमुदयाद्रिंरविर्यथा
ततोऽवलोकितोऽत्यर्थं रमणीयोमहागिरिः। इदं रम्यमिदंरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते
पश्यतोमम शैलेन्द्रं गताःसम्वत्सरादश। त्वयाथचिन्तितंदेवि क्वगतस्त्रिपुरान्तकः
नूनं न मदनात्तप्तां वेत्तिमां रतिवर्जिताम्। मां विहायमहादेवोनिर्विशङ्कः क्व वर्त्तते
हरस्य क्वापि यातस्य वैरंसंस्मृत्यचित्तजः। बाधतेमामनङ्गोऽपिचापरोपितमार्गणः
विलोकयन्तीं हा दृष्ट्वा विलपन्तीं पुनः पुनः ॥ १९ ॥
ततः कुण्डो गणाध्यक्षो ज्ञात्वा भावं त्वदीयकम्।
उत्कृष्टेन स्वरेणोक्तं मा देवि! विमना भव ॥ २० ॥
आयात एष ते भर्त्ता मा चेतः कलुषं कुरु।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कुण्डस्य कमलानने !॥ २१ ॥
दुःखार्त्तयात्वयाप्रोक्तः कुण्ड!वेद्मि नशङ्करम्। क्वगतःकिं चकुरुतेकालंदीर्घमिमंशिव
दर्शयस्व महादेवमित्युक्तोऽसौ पुनःपुनः ॥ २२ ॥
यदा न दर्शितस्तेन कुण्डेनाहं वरानने। तदाशप्तस्त्वयादेविक्रुद्धया गणरक्षकः॥
गच्छ त्वं मानुषं लोकं यस्मान्नकथितो हरः।
एतस्मिन्नन्तरे देवि !प्राप्तोऽहं त्वत्समीपतः ॥ २४ ॥
पृष्टश्चाहंत्वयादेविविहायक्वगतोऽसिमाम्। दुर्गमेपर्वतेशून्येतस्मात्त्यक्ष्यामिजीवितम्
गत्वाग्रे भूधरस्यास्य किंकृतंचत्वयाविभो। मया तववचःश्रुत्वाकथितंसर्वमेवतत्
दुराधर्षतरः शैलः समन्ताद्दुरतिक्रमः। त्वत्प्रियार्थंमहाभागेमयामार्गोऽवलोकितः
येन मार्गेण विश्रब्धं गमिष्यामः सुमध्यमे।
अयं कुण्डो गणो देवि! विषण्णो व्याकुलः कृतः ॥ २८ ॥

त्वयाप्युक्तं महादेव कुण्डं-शतोमया गणः । ममाज्ञा नकृतायस्माद्विफलं नवघो मम
तस्माद्यातु ममादेशान्महाकालवनं शुभम् ॥ ३६ ॥
भैरवं रूपमास्थाय यत्र त्वं चोत्तरेस्थितः । तस्याग्रतः स्थितलिङ्गं वत्स तेकामदम्
तस्यदर्शनमात्रेण गणपोऽयं भविष्यति । कुण्डेश्वरेतिविख्यातः सदैवोर्वैभविष्यो
इत्युक्तः सत्वयादेविसमासाद्यपुनः पुनः । प्रस्थापितस्त्वयादेशाद्वत्सकुण्डममाश्रः
महाकालवनशीघ्रं लिङ्गमाराध्य सत्वरम् । कीर्तितस्तेभवितापुत्रविपुलोकेपुशाश्वतः
इत्युक्तस्तु क्षणात् प्राप्तो दृष्ट्वा लिङ्गं तु शाश्वतम् ।
उत्तरस्य शिवस्याग्रे पूजयामास भक्तितः ॥ ३८ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्चपरमर्षयः । यक्षाश्चाप्सरसश्चैव समाजग्मुः सहस्रशः
अथाहूतः क्षणात् प्राप्तस्त्वयासार्द्धं गणैर्वृतः । दृष्ट्वाकुण्डं गणेशत्वं लिङ्गाराधनतः परः
समाधिध्याननिरतः प्रोक्तस्त्वमाभिराद्रात् । सुष्टा ते पार्वतीपुत्रप्रार्थ्यतांवरमुत्तमः
अक्षयं तु पदं प्राप्तं यथालिङ्गस्यदर्शनात् । अद्यप्रभृतिदेवोऽयमख्यातोभुविभविष्यति
नाम्ना कुण्डेश्वरो यस्मात्सवमस्त्वर्करं सदा ।
कुण्डेश्वरमनादिं [illegible] भक्त्या पश्यति यो नरः ।
सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्स्यति वा यथा ॥ ३९ ।
तस्यदानफलं सर्वं सर्वतीर्थफलं सदा । लिङ्गं कुण्डेश्वरंयस्तु भक्त्यासम्पूजयिष्यति
वृषाणामश्वमेधानामग्निष्टोमशतस्य च । स्पर्शनात्फलमाप्नोति कुण्डेश्वरस्यसर्वदा
प्रातः पश्यन्ति ये भक्त्या कृत्वा नियमपूर्वकम् ।
सिद्धिं सुकामिकीं दृष्टा सम्प्राप्स्यन्ति न संशयः ॥ ४२ ॥
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । कुण्डेश्वरस्यदेवस्य शृणु लुम्पेश्वरं परम्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कुण्डेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामच त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

लुम्पेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

चत्वारिंशत्तमं सैकमीश्वरं विद्धि पार्वति ।। लुम्पेश्वरमिति ख्यातं नामयस्यमहीतले
देशेम्लेच्छगणाकीर्णे बभूव जगतीपतिः । लुम्पाधिप इतिख्यातोमहेन्द्रसमविक्रमः
तस्यासीद्दयिता भार्याविशालानामनामतः । सायौवनगुणोपेतारूपेणाप्रतिमाभुवि
स युद्धकामो नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान् ॥ ४ ॥
अथ केनापि कथितमाश्रमे सामगो द्विजः । तेनसार्द्धं महाबाहोयुध्यस्वत्वंनृपोत्तम
ततः स प्रस्थितो राजा म्लेछैः सार्द्धं सहस्रशः ।
तुषारैर्बर्बरैर्लुम्पैः पह्लवैः श्वगणैस्तथा ॥ ६ ॥
दस्युभिः सम्वृतः क्रूरैः क्रोधेनाकुलितेन्द्रियः ।
आजगामाश्रमं पुण्यं सामगस्य मुनेस्तदा ॥ ७ ॥
[मु]निना पूजितस्तेन मधुपर्कादिविष्टरैः । एतस्मिन्नन्तरे राजा होमधेनुं ददर्श ह ॥
[प्र]ार्थयामास सहसा न दत्ता मुनिना तदा । प्रमथ्य चाश्रमं तस्य होमधेनुंजहारसः
वनं बभञ्ज सकलं तस्य विप्रस्य पश्यतः ॥ ९ ॥
काल्यमानां च गां दृष्ट्वा वत्सं चार्तीव दुःखितम् ।
उवाच वचनं विप्रो मा राजन्साहसं कुरु ॥ १० ॥
एवं वदन्तं विप्रेन्द्रं शरैस्तीक्ष्णैर्जघान ह । लुम्पः क्रोधसमाविष्टो दुष्टो दुष्टजनैर्वृतः
असकृत्पुत्रपुत्रेति विलपन्तमनाथवत् । हत्वा च सामगं विप्रंजगाम स्वगृहं नृपः ॥
एतस्मिन्नन्तरे पुत्रः समित्पाणिरुपागतः । दृष्ट्वा च पितरं विप्रं तदामृत्युवशङ्गतम्
अनागसं महात्मानं विललाप सुदुःखितः ॥ १३ ॥
केनेदं कुत्सितं कर्म कृतं पापेन मे पिता । अयुध्यमानो वृद्धःसन्हतः शरशतैः शितैः

विलप्यैवं सकरुणं बहुमानाविधं तथा। प्रेतकार्याणि सर्वाणि पितुश्चक्रे पितामह-
दशाह पिण्डं श्राद्धं तोयमादाय साम्प्रतम् ।
तस्य तुलुकाधिपस्यापि दर्शे श्राद्धं सुदारुणम् ॥ १६ ॥
स्वधर्मनिरतो विप्रस्त्वेन मे निहतः पिता । तथापापान्मद्गुणाकार कुष्ठरोगमवाप्नुय
एतस्मिन्नन्तरे राजा कुष्ठरोगेण पीडितः । ब्रह्मघ्नत्वमथो प्राप्तो तुलुकाधीश्वरो
सौम्यैः शिवोऽस्मीति ब्रह्मशापमवापनः ।
वैराग्यमतुलं प्राप्तोऽसौ वाद्यान्यादाय दुःखितः ॥ ११ ॥
शिवं कर्तुं समारेभे समायातोऽथ नारदः । पूजितो विधिना तेन तु शिवेनस्थपेना
अथ पप्रच्छ तुलुकोऽसौ नारदं मुनिसत्तमम् । कस्मात्मम देवर्षे कुष्ठरोगोऽभूय
तेनाहं पीडितोऽनौव न च शान्ति लभाम्यसौ ॥ २१ ॥
श्रीरूपैश्वर्यं ते कस्मादिदमापन्नमर्हसि । न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदिह लोके परत्र
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तुलुकाधिपस्य नारद । कथयामास तत्सर्वं ब्रह्मशापकृतुम्तर
ततः समाप्यौ नृपतिः प्रार्थयामास नारदम् ।
कथं मे भगवञ्छापो दुस्तरो यास्यति क्षयम् ॥ २४ ॥
एवमुक्तस्तुलुकेन नारदो भगवानृषिः । कारुण्यात्कथयामास समार्थस्य यशस्विन'
महाकालवने राजंल्लिङ्गं कुष्ठहरं परम् । सर्वसत्त्वकरं तत्र विद्यते पापनाशनम्
शिप्रायाश्च तटे रम्ये केशवार्कस्य पूर्वतः ।
तत्र त्वं गच्छ राजेन्द्र! कान्त्यायुक्तो भविष्यसि ॥ २३ ॥
एवमुक्तस्तुलुकोऽसौ ह्याजगाम त्वरान्वितः । महाकालवनं रम्यमहर्षिगणसेवित
ग्राम स्वर्गोपम भूयं शिप्रयापरिशोभितम् ।
विवेश स मुदायुक्तो दृष्ट्वा लिङ्गमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये महापातकनाशने । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य दिव्यरूपोऽभव
कुष्ठरोगेण मुक्तस्तु मुक्तो वै ब्रह्महत्यया ।
कृतकृत्यो नृपो जातो दर्शनादेव पार्वति !॥ ३१ ॥

सतत्र तामुषित्वैकां रजनीं पृथिवीपतिः । तापसानां परं चक्रे सत्कारं भार्यया सह

ततः कृतस्वस्त्ययनस्तापसैस्तैर्महात्मभिः ।

दिव्यज्ञानान्वितैर्दिव्यैः सूर्यवैश्वानरप्रभैः ॥ ३३ ॥

कृतं नाम तदातस्य लिङ्गस्य कमलानने । लुम्पेनाराधितोयस्माद्देवोऽयंकुष्ठनाशनः

लुम्पेश्वर इति ख्यातो भविष्यति महीतले ॥ ३४ ॥

पूजयिष्यन्ति ये भक्त्या लिङ्गं लुम्पेश्वरं परम् ।

स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये ते यास्यन्ति परं पदम् ॥ ३५ ॥

प्रार्थयिष्यन्ति यान्कामान्मनसाचेप्सितान्प्रियान् ।

तानाप्स्यन्ति न सन्देहो लुम्पेशस्य च दर्शनात् ॥ ३६ ॥

महापापसमायुक्तो:यःपश्यतिसमाहितः । लिङ्गंलुम्पेश्वरंसोऽपिदेवतुल्योभविष्यति

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च मातृहा गुरुतल्पगः । दुष्टकर्मसमाचारो भ्रातृहा पितृहा तथा ॥

लुम्पेश्वरं सकृत्पश्यन्मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः । पूजितोऽपिदहेत्पापंसप्तजन्मार्जितंचयत्

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वेपूजयामासुरन्विताः । कुष्ठरोगविनिर्मुक्तोराजास्वविषयंगतः

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । लुम्पेश्वरस्य देवस्य श्रृणु गङ्गेश्वरं परम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये लुम्पेश्वरमाहात्म्यवर्णनं-
नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

——:*:——

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

गङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

द्विचत्वारिंशतं देवि गङ्गेश्वरमथो शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥
प्रयागस्य जगद्योने यद् मातावजन्य तु ॥ १ ॥
पद्माम्बुभृता या देवी गङ्गा त्रिपथगा नदी ।
सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारममलाम् ॥ २ ॥
तत्र स्वच्छन्दमानन्दराशिममृतशीतलाम् । पतन्ति मेरुपृष्ठे च सा चतुर्धा ततो ययौ
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती यशस्विनी ।
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा ॥ ४ ॥
मन्दरादिषु शैलेषु प्रविभक्तोदकाशया । तत्र सीतेति विख्याता ययौ चैत्ररथं वनम्
तत्प्लावयित्वा च ययावरुणोदं सरिद्वरा ॥ ६ ॥
तथैवालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने । मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥ ७ ॥
मानसं च महावेगात्प्लावयित्वा सरोवरम् । तस्मात्कैलासं रम्यं त्रिशिखरं गता
तस्मात्पर्वता सर्वे प्लाविताश्चतसृभिः प्रिये ।
तांश्च प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥ ९ ॥
मया धृता तत्रैव जटाजूटेन पार्वति । न मुक्ता च यदा गङ्गा तदा क्रुद्धा ममोपरि
गात्राणि द्रावयामास सर्वाण्यानि वरानने । मया च क्रुद्धाक्रोधेन जटामध्ये वशीकृता नि
तत्रैव सा तपश्चके बहून्यब्दशतानि च । भगीरथेनोपवासैः स्तुत्याचाराधितोह्यहम्
तदा मुक्ता मया देवि गङ्गा त्रिपथगामिनी । महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरून्
समुद्रमहिषी जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । नदीनामुत्तमा गङ्गा समुद्रेण कृता तदा
स तया सहितो रेमे समुद्रः सरितांपतिः ॥ १४ ॥

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपासाञ्चक्रिरे सुराः । तथार्णवोजगामाथब्रह्मलोकं सनातनम्
गङ्गया सहितो देवि! दर्शनार्थं महोत्सवे ॥ १५ ॥
अथ गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्या वासः समुद्भूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥ १६ ॥
ततोऽभवन्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिर्निःशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥ १७ ॥
तस्य भावं विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स तिरस्कृतः ।
उक्तस्तु जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ १८ ॥
गङ्गाशप्ताथक्रुद्धेनसमुद्रेणयशस्विनि । मांविहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यसिमानुषम्
लोकमल्पायुर्दीना तत्रदुःखमवाप्स्यसि । तं शापं दारुणं श्रुत्वा गङ्गावचनमब्रवीत्
विनापराधाच्छप्ताहं कस्माद्धे देवसंसदि । पतिव्रता पतिप्राणा पतिना परमार्थतः
प्रमादाद्वस्त्रमुद्धूतंवायुना व्यापकेन तु । प्रत्युवाच ततोब्रह्मा तां नदींलोकपावनीम्
वसूनां कारणाद्देवि! शप्ता यस्मान्महानदि ॥
भाव्यर्थे तोयनिधिना तस्माच्छीघ्रं व्रजाधुना ॥ २३ ॥
महाकालवने रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते । शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिङ्गमुत्तमम्
सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ।
तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाञ्छितम् ॥ २५ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपथगामिनी । गमनं तत्र मेऽभीष्टंविद्यते यत्सखी मम
शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ॥ २६ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदीतदा । आजगाममहाकाले ह्यपश्यल्लिङ्गमुत्तमम्
पूजयामास पयसा दिव्येन विधिनातदा । दृष्ट्वाशिप्रांसखीं तत्र संश्लेषंचाभवत्तयोः
ततःप्रभृतिसञ्जाता साशिप्रापूर्ववाहिनी । त्रिषुलोकेषुविख्यातोदेवोगङ्गेश्वरःस्वयम्
गङ्गयाऽऽराधितो यस्मात्समीहितफलप्रदः ॥ २९ ॥
संस्तुता देवगन्धर्वैर्गङ्गा देवनदी तदा । ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैस्तथान्यैर्मुनिभिर्मुदा

समुद्रस्तत्र सम्प्राप्तो मानिता सा महानदी ।
लिङ्गेनोक्ता तदा गङ्गा कलया स्थीयतामिति ॥ ३१ ॥

तत्समीपे महापुण्ये यावत्तिष्ठति मेदिनी । अङ्गीकृतसमुद्रेण यथोक्तस्तथास्त्विति

एवमुक्त्वा गता गङ्गा कलया तत्र संस्थिता ।
गङ्गेश्वरं तु यः पश्येत्स्नात्वा शिप्राम्भसि प्रिये ॥ ३३ ॥

गोसहस्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः । सर्वतीर्थफलं तस्य सर्वधर्मफलं तस्

सर्वयज्ञफलं तस्य सर्वदानफलं तथा । सर्वयोगफलं देवि प्राप्नोत्येव निरन्

तत्र तीर्थानि सुभगे पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
धर्मारण्यं फल्गुतीर्थं पुष्करं नैमिषं गया ॥ ३८ ॥

प्रयागश्च कुरुक्षेत्रं केदारममरेश्वरम् । चन्द्रभागा विपाशा च सरयूर्देविका [illegible]

गोदावरी शतद्रुश्च बाहुदा वेत्रवत्यपि । तथा चान्ये सरित्सङ्घाः सन्ति गङ्

गुप्तानि पुण्यतीर्थानि सिद्धक्षेत्राणि चैव हि । तत्र सर्वाणि तिष्ठन्ति कलामात्रेण पाव

एतेषां फलमाप्नोति यः पश्यति समाहितः । स्नात्वा गङ्गेश्वरं देवं सत्यमेतन्मयोदि

अतः पुण्यतमं स्थानं गीयते गणधन्विते ॥ ४० ॥

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । गङ्गेश्वरस्य देवस्य शृण्वङ्गारेश्वरस्य

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये गङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अङ्गारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीशिव उवाच

चत्वारिंशत्तमं विद्धि त्र्यधिकं पर्वतात्मजे । यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसम्पदः

आदिकल्पे पुराजातो वक्राङ्गो लोहितच्छविः ।
रौद्रस्त्वङ्गारसदृशो मम गात्राद्वरानने ॥
मया धृतो धरण्यां स विख्यातो भूमिपुत्रकः ॥ २ ॥
जातमात्रे सुते तस्मिन्महाकाये भयावहे ।
कम्पिता धरणी देवी देवास्त्रस्ताः सवासवाः ॥ ३ ॥

क्षोभंगताः समुद्राश्च चेलुश्च धरणीधराः । तेनैव पीडितंसर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥
ऋषयो वालखिल्याश्च देवाःशक्रपुरोगमाः । बृहस्पतिपुरस्कृत्य ब्रह्मलोकंगताः प्रिये!

सोच्छ्वासाः कथयामासुर्नमस्कृत्य पितामहम् ।
वृत्तान्तं विस्तरात्सर्वं लोकत्रयविनाशनम् ॥ ६ ॥

हरगात्रोद्भवेनैव जातमात्रेण लीलया । लोकत्रयं समाक्रान्तं पीडितं भक्षितं तथा

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चिन्तयित्वा तु तैः सार्द्धमाजगाम ममान्तिकम् ॥ ८ ॥
मया पृष्टास्तु ते सर्वे किमर्थं भयविह्वलाः ।
सोच्छ्वासहृदया दीनाः कस्माद्वो भयमागतम् ॥ ६ ॥

तैःसर्वं कथितं देवि! ममाग्रे भयविह्वलैः । त्वदङ्गसम्भवेनैव देवदेव जगत्पते ॥
पीडितं भक्षितं चैव सदेवासुरमानवम् ॥ १० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वाक्षेमार्थं कृपया मया । आकारितोमत्समीपमुवाच वदतां वरः
आदेशो दीयतां देव किंकरोमीत्युवाचसः । नाकर्षत्वंजगदिदं मया प्रोक्तः पुनः पुनः

ममाङ्गाद्द्रजसा जातस्तेनाङ्गारक उच्यसे ।
लोकानां स्वस्तये नित्यं मङ्गलोऽसि मया कृत ॥ १३ ॥
इदानीं चक्रता यातो चक्रस्त्व मीयसेवुधै । विक्षतोऽहतदा तेनमम वाक्यश्रु
आहारेण विना देवा कथ तृप्तिर्भविष्यति ॥ १४ ॥
तस्मान्म देहि सुस्थानमाधिपत्य च देहि मे । शक्तिश्चदेहिमे शीघ्रमाहार देहि
तस्य तद्वचन श्रुत्वा पुत्रोऽयमम वल्लभ । तस्माद्दास्यामि परमस्थानमक्षयम्
इति सञ्चिन्त्य मनसा स्मृत स्थान मयोत्तमम् ।
उत्सङ्गे च सुत कृत्वा प्रेम्णा प्रोक्त पुन पुन ॥ १७ ॥
दत्त पुत्र मया स्थान महाकालवनोत्तमे । गङ्गेश्वरस्य पूर्वे तु प्रशस्यस्थानमु
खगर्ता चैव शिप्रा च सङ्गमस्तत्र विद्यते ॥ १८ ॥
यदाभया धृता गङ्गासदासाचन्द्रमण्डलात् । प्रमाद्वात्पतिता भूमौ महाकालवन
खगर्तेति च विख्याता बाह्मणापापनाशिनी । अतोमयाधतारस्तुसहसातत्रवै
लिङ्गमूर्तिरहं पुत्रतिष्ठामिसुरपूजित । तत्स्थान सुलभ देवैस्तस्माच्च गच्छस
पूजितोऽह त्वया तत्र मङ्गमे लोकपूजिते ।
त्रिषु लोकेषु यास्यामि स्याति वै तव नामन ॥ २३ ॥
मध्ये ग्रहाणा सर्वेषामाधिपत्य मया तव । दत्तमुत्तीयक स्थान तत्र तृप्तिर्भवि
पूजां प्राप्स्यसितत्रैवग्रहमध्ये व्यवस्थित । तिथिदत्ता चतुर्थीततस्याधेयतत
त्वामुद्दिश्य करिष्यन्ति पूजा शान्ति सदक्षिणाम् ।
तेन सर्वेण ते तृप्तिर्भविष्यति न सशय ॥ २४ ॥
वारश्चैकश्च ते दत्तो मङ्गलार्थं मया तव । नववस्त्रपरीधान विद्यारम्भं दिने त
तैलाभ्यङ्ग करिष्यन्ति न च प्राप्स्यन्ति ते बलम् ॥ २७ ॥
इत्युक्तस्तुमयादेवि धमाङ्गो मङ्गलसुतः । अङ्गारकेति विख्यातस्तथेत्यङ्गीचका
सन्तुष्टस्तेन वाक्येन मदीयेन वरानने । आजगाम मुदा युक्तो महाकालवनोत्त
शिप्रायाश्च तटे रम्ये खगर्तासङ्गमान्तिकम् । दृष्टोऽहं लिङ्गरूपेण परांतुष्टिमुपाग

मया चालिङ्गितः प्रेम्णा चुम्बितः शिरसि प्रिये !।
वरो दत्तो विशालाक्षि! वाञ्छितं ते भविष्यति ॥ ३१ ॥
दृष्टोऽहं च त्वया पुत्र भक्त्या चाराधितस्त्वया ।
मम वाक्यं कृतं यस्मात्तस्मात्तुष्टोऽस्मि मङ्गल! ॥ ३२ ॥

अङ्गारेश्वरनामाहमद्यप्रभृति पुत्रक !। त्रिषु लोकेषु विख्यातो भविष्यामि न संशयः
ये मांपश्यन्ति सततं सङ्गमेऽत्र व्यवस्थितम् । नतेषांपुनरावृत्तिर्भविष्यतिमहीतले
येमांसम्पूजयिष्यन्ति ह्यङ्गारकदिने नराः । कलौयुगेकृतार्थास्तेभविष्यन्तिनसंशयः
चतुर्थ्यां मङ्गलदिने येमां पश्यन्ति सुव्रताः । नतेयास्यन्तिसंसारे घोरेदुःखशताकुले
अमावास्या च भौमश्च संयोगो दृश्यतेयदा । खगर्त्तायाश्चशिप्रायाःसङ्गमेदेवपूजिते

स्नात्वा तदा प्रपश्यन्ति मामत्रैव व्यवस्थितम् ।
तेषां पुण्यफलं देवि! समासाच्छृणु साम्प्रतम् ॥ ३८ ॥
वाराणस्यां प्रयागे च कुरुक्षेत्रे च यत्फलम् ।
गयायां पुष्करे प्रोक्तं तत्पुण्यमधिकं भवेत् ॥ ३९ ॥

एष ते कथितोदेवि प्रभावः पापनाशनः । अङ्गारेश्वरदेवस्य श्रूयतामुत्तरेश्वरम् ॥ ४०

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽङ्गारकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

उत्तरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

चत्वारिंशत्तम विद्धि चतुर्भिरधिकपरम् । यस्यदर्शनमात्रेण समीहितफल लभेत

उत्तरेशमिति ख्यातं समीहितफलप्रदम् ॥ १ ॥

पुरानियुक्ता शक्रेण ये मेघा वृष्टिकारका । तै प्लावितं जगत्सर्वं सपर्वतमहीतल

एकार्णवे ततो जाते देवा भीता वरानने ॥

नि स्वाध्यायवषट्कारा स्वधास्वाहाविवर्जिता ॥ ३ ॥

नैवाप्यायनमस्माक विना होमेन जायते । वयमाप्यायिता विप्रैर्यज्ञभागैर्यथोचिते

तेषायवप्रयच्छाम कामान्यज्ञादिपूजिता । नास्तितत्सर्वमप्येतदन्योन्यमवदन्सु

दृष्ट्वा पृथ्वीजलेमग्ना ब्रह्माणशरणगता । कथयामासुरस्युग्र नमस्कृत्य पितामहम्

एकार्णवा मही जाता विनष्टा क्रतव प्रभो । नि स्वाध्यायवषट्कारं जगज्जात पिता

देवाना वचनश्रु त्वा ब्रह्मलोकपितामह । मुहूर्तं चिन्तयामास किमेतदितिविस्मि

अकाले प्रलय कस्मान्निमग्ना पृथिवीजले । गताश्चोन्मर्यादा तुष्ध्यं जात वचो म

इतिसञ्चिन्त्य हृदये सस्मार वरसूदनम् । स्मृतमात्रस्तुपरहाशाजगाम पितामह

प्रोवाच वचन श्रुत्वा नमस्कृत्य पितामहम् ।

स्मृतोऽहं केन कार्येण हाशा मे पितामह ॥ ११ ॥

ब्रह्मणोक्तस्तदाशक्र किमर्थं प्लाविता मही । असबद्धैस्त्वदीयैश्चमेघै विसहस्राधृत

तत सद्य समाहूता मेघा शक्रेण पावति ॥ पितामहसमक्षं तुसमायाताश्चनरक्षणा

पितामहेन शक्रेण मर्यादाच कृतातदा । गजोनाम महामेघ पूर्वस्यादिशि निर्मि

गजाकारैस्ततो मेघै सहस्रैर्दशभिर्वृत । गवयो दक्षिणामाशा षट्सहस्राधिप कृत

शरभ पश्चिमामाशा सहस्राधिपति कृत । उत्तरोनाम यो मेघो मेघै कोटिभिरावृत

उत्तरस्यां दिशि तदाप्रभुत्वे सम्प्रतिष्ठतः । मर्यादा च कृता देवि! ब्रह्मणा वासवेन तु

प्रावृट्काले च वर्षध्वं नक्षत्रैर्जलजैर्द्रुतम् ।

आर्द्रादिस्वातिपर्यन्तं नक्षत्रदशकं स्मृतम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मशक्रवचः श्रुत्वा तथेति कृतनिश्चयाः । ववृषुर्नियते काले तन्नामानि भवन्ति हि

एवं व्यवस्थिते लोके मर्यादायां स्थिता घनाः ।

ब्राह्मणा विज्वरा जातास्त्रिदशा मुदिता भृशम् ॥ २० ॥

क्रूरग्रहैरथो रुद्धास्ते मेघा वृष्टिकारकाः । शनैश्चरेण भौमेन भास्करेणाथ केतुना ॥

पीडिताः शरणं जग्मुर्वासवं भयविह्वलाः । निवेदितं भयात्सर्वं नमस्कृत्य पुनः पुनः

मेघानां वचनं श्रुत्वा सन्त्रस्तो वासवस्तदा । उवाच वचनं तेषां नाहं शक्तो निवारणे

ग्रहाणामसमर्थोऽहं सर्वदैव पयोधराः ॥ २३ ॥

अहं राज्यात्परिभ्रष्टः कृतः क्रूरग्रहैः पुरा । स्थापितोऽहं कदाचिच्च सुप्रसन्नैर्ग्रहैः पदे

मम मान्याश्च पूज्याश्च ग्रहा एव यतोऽधिकाः ।

ग्रहाः सर्वहराः प्रोक्ता इति मे वर्त्तते मतिः ॥ २५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूमौ सञ्जाता शतवार्षिकी । अनावृष्टिर्महारौद्रा सर्वप्राणिविनाशिनी

अस्थिकङ्कालशकला श्वेतपर्वतसन्निभा । पृथिवी तत्क्षणाज्जाता विनातोयेन पार्वति

देवाः सर्वे पुनर्भीता ब्रह्माणं शरणं गताः । ऊचुश्च प्रणताः सर्वे त्राहि नः शरणागतान्

अनावृष्ट्या जगत्सर्वं पीडितं च पितामह !। अकाले प्रलयो जातः पुनरेव च तादृशः

त्वया च वासवेनैव नियुक्ता ये पयोधराः । क्रूरग्रहैस्तीव्रोग्रैः पीडितास्ते पितामह

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । अहं बिभेमि भो देवा ग्रहैस्तैर्बलवत्तरैः

सर्वं जानामि माहात्म्यं ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् । शनैश्चरेण वक्रेण भवन्तः पीडिताः सदा

वरुणो यादसां नाथो मङ्गलेन प्रपीडितः । राज्यभ्रष्टस्तु बहुधा केतुना वासवः कृतः

शिरश्छेदो मया प्राप्तो चक्रेण रविणा पुरा ।

एकैकशः समर्थास्ते किं पुनः सङ्घशस्त्वमी ।

तस्मात्सर्वे महादेवं गच्छामः शरणं वयम् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सर्वे देवाः सवासवाः । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य मामेव शरणं गताः

उक्तोऽहं त्रिदशैः सर्वैः पाहि नः शरणागतान् ।

त्वं नो धाता विधाता च सृष्टिसंहारकारकः ॥ ३७ ॥

कृत्स्नं देवं महादेव रुद्रा मेघाः समन्ततः । न कुर्वन्ति प्रभो वृष्टिमनावृष्टिः सुदारुणा ॥

सर्वप्राणिविनाशाय प्रजानां शङ्करार्तिकृत् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मयाज्ञातं वरानने ॥

क्रूरग्रहाणां सामर्थ्यं यथा च विदितं मम ॥ ३८ ॥

इति ज्ञात्वा महादेवि उपायश्चिन्तितो मया । उत्तरो नाम यो मेघो मेघैः कोटिभिरावृतः

आहूतस्तत्क्षणात्प्राप्तः किं करोमीत्युवाच ह ॥ ३९ ॥

मया प्रोक्तो महादेवि गच्छ त्वं मेघसंयुतः । महाकालवनं रम्यं वाञ्छितार्थफलप्रदम्

गन्धर्वस्य देवस्य दक्षिणे लिङ्गमुत्तमम् । तमाराध्य यत्नेन ततः प्राप्स्यसि वाञ्छितम्

एवमुक्तो मया मेघ उत्तरो मेघसंयुतः । जगाम त्वरया युक्तो महाकालवनोत्तमे ॥

दृष्ट्वा वृष्टिकरं लिङ्गं तत्र पापप्रणाशनम् । शिप्राजलगृहीतैश्च तुष्टाव स्नानैश्च यत्नतः

तावद्यावज्जलं शिप्रा पुनरेवागता प्रिये ॥ ४२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्रादुर्भूतं धूममण्डलम् । लिङ्गमध्याद्वरारोहे ज्वालामालाकुलं महत्

ततो ज्वालामयं सर्वमभूत्तत्र नभोऽम्बरम् । तस्य ज्वालासमूहेन दग्धं वै मेघमण्डलम्

समस्तमपथ यावत्ततो जाता महाप्रिये । तमेव शरणं प्राप्ता धूमज्वालाकुलानना ॥

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च तद्दृष्ट्वा महदद्भुतम् । दर्शनार्थं सहसा तौ लिङ्गान्तिकमुपागतौ

तल्लिङ्गं सुमहाज्वालं ज्वालाभिः पूरिताम्बरम् ।

दुष्प्रेक्ष्यं दुर्विदं नाम वर्द्धमानं ददर्श सः ॥ ४८ ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण वक्त्रद्वययोजनायुतम् । दृष्ट्वा तु वर्द्धमानस्य लिङ्गस्यात्यद्भुताकृतिम्

सुरेशो मोहमापन्नो विसंज्ञश्च महांस्तदा ॥ ४९ ॥

ततस्तु तस्य लिङ्गस्य वारिधाराविनिःसृता । एकोद्देशाद्वरारोहे धरा त्वेकार्णवीकृता

लिङ्गस्यान्यप्रदेशात्तु वायुः समभवन्महान् । इतरस्मिन्प्रदेशे [illegible] समूहस्तडितामभूत्

सधूमा समभूज्ज्वाला लिङ्गस्यान्यप्रदेशतः ॥ ५२ ॥

एवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा वर्द्धमानं समन्ततः। लिङ्गमव्यक्तमुद्भूतमापूरितनभोऽन्तरम् ॥

ग्रहाश्च विह्वला जाता धूमेनाकुलितेन्द्रियाः।

तुष्टुवुश्च तदा लिङ्गं दह्यमानाः समन्ततः ॥ ५४ ॥

ग्रहा ऊचुः

नमः सुरूपाय सुरार्चिताय नमो विरूपप्रकृतिक्रियाय।

नमोनमो रूपनिराश्रयाय जलस्वरूपाय नमो नमस्ते ॥ ५५ ॥

इतिस्तुतोयदादेविग्रहैःक्रूरैस्तदाप्रिये। लिङ्गात्प्रादुरभूत्खस्थःस्वरूपोविग्रहाकृतिः

भस्मधूसरसर्वाङ्गो भोगिभोगाङ्गदोज्ज्वलः।

हिमराशिनिभाकारोरजताचलनिर्मलः।

उवाच सैतान्प्रणतान्ग्रहान्कम्पितकन्धरान् ॥ ५७ ॥

किं वा काममनोऽभीष्टंभवद्भ्यो यद्ददाम्यहम्। ममामोघमिदंसर्वदर्शनंचातिदुर्लभम्

भवद्भ्यो लोकतुष्ट्यर्थं दर्शनंहिददाम्यहम्। एवमुक्त्वाग्रहाःसर्वेप्रोचुःप्राञ्जलयस्तदा

यदि देयोवरोदेवयदि तुष्टोऽसि शङ्कर !। कर्मारम्भेषु सर्वेषुपूजाऽस्माकंयथा भवेत्

तथा कुरु महादेव! तेन तृप्तिर्भविष्यति ॥ ६० ॥

एवंभविष्यतीत्युक्त्वामेघंवोत्तरमुक्तवान्। तुष्टोऽस्म्यहंतुनेवत्सगृहाणवरमीप्सितम्

तच्छ्रुत्वा वचनं तत्र ह्युत्तरः प्राह हर्षितः। यन्मे तुष्टोऽसिभगवंस्तन्महांदीयतांवरम्

यदास्माकं महावाधां कदाकोऽपि करिष्यति।

तदा वृष्टिर्विधातव्या त्वया देव! सदा भुवि ॥ ६३ ॥

रक्षाकार्या च मेघानां रक्षणीयास्त्वयावयम्। एवमस्त्वितितेनोक्तंलिङ्गेननगात्मजे

अद्यप्रभृतिनेनाम्ना ख्यातिं यास्यामिभूतले। उत्तरेश्वरसञ्ज्ञोऽहंभविष्यामिनसंशयः

ये मां सम्पूजयिष्यन्ति भक्त्या परमयायुताः।

तेषां दास्यामि सततं वाञ्छितार्थफलम्भुवि ॥ ६६ ॥

पश्यन्ति प्रयता ये मां कृत्वा नियमपूर्वकम्।

ते यास्यन्ति पुरं शैवं यावत्कल्पाष्टकायुतम ॥ ६७ ॥

मारुतासूर्यमद्गुर्णैर्विमाने सार्वकामिकैः । हृद्यकन्यासमाकीर्णैर्हंससारससंयुतैः ॥
नृत्यवादित्रनिर्घोषैस्तूर्यशब्दविनादितैः । दोधूयमानैश्च नरैः स्तूयमाना सुरासुरैः ॥

प्रसङ्गाद्भक्तिहीनोऽपि यो मां पश्यत्यशाठ्यतः ।
ऐश्वर्यं तस्य दास्यामि ह्युत्तरेषु कुरुष्वथ ॥ १० ॥

स्मरिष्यति च यो नित्यं प्रभाते चोत्तरेश्वरम् । स याति परमं स्थानं दाहप्रलयवर्जितम् ॥
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । उत्तरेश्वरदेवस्य शृणु त्रिलोचनेश्वरम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य उत्तरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रिलोचनेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीदेवदेव उवाच

पञ्चचत्वारिंशकं विद्धि देवि त्रिलोचनेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धिरवाप्यते ॥
इतिहासमिहासीत्पाडे विरजमङ्गले । त्रिलोचनस्य प्रासादे नानामणिविनिर्मिते
नानामङ्गल्यवाद्याढ्ये ब्रह्मसामाधिवापरे । देदीप्यमानसौवर्णकलशेन विराजिते ॥
पावनेन शशाङ्केन मेरुगिरिव समासिते । तत्र पारावतद्वन्द्वं वसतः स्वैरं कृतालयम्

प्रातः सायं च मध्याह्ने कुर्वन्नित्यं प्रदक्षिणम् ।
उड्डीयमानं परितः पक्षपातैरितस्ततः ॥ ५ ॥

रत्नप्रासादसंलग्नं दूरीकुर्वन्दिशो दश । त्रिलोचनेति सततं नाम मर्त्यैः स्माहृतम् ॥

त्रिविष्टपेति च तथा तयोः कर्णविषयं भवेत् ॥ ६ ॥

चतुर्विंशतिसंख्यानि शम्भुनामानि कृतान्यलम् । तयोः कर्णपुटद्वाराप्यन्तःशब्दं प्रतन्वते

मङ्गलारात्रिकज्योतिस्त्रिसन्ध्यं पक्षिणोस्तयोः ।
नेत्रान्तं निर्विशन्नित्यं भक्तचेष्टां प्रदर्शयन् ॥ ८ ॥
प्राणयात्रां विहायापि कदाचित्स्थिरमानसौ ।
नोड्डीय वाञ्छितं यातः पश्यन्तौ कौतुकं खगौ ॥ ९ ॥
तत्रासकृज्जनाकीर्णप्रासादपरितोऽवनौ । तण्डुलादिचरन्तौतौकुर्वन्तौच प्रदक्षिणम्
देवदक्षिणदिग्भागेविष्णुदेहोद्भवञ्जलम् । तृषार्त्तौपिवतोनित्यं स्नात्वास्वाजग्मतुश्चतौ
तयोरित्थंविचरतोस्त्रिलोचनसमीपतः । अगाद्वहुतिथःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः
अथ देवालयस्कन्धे गवाक्षान्तर्गतौ च तौ ।
श्येनेन केनचिद्दृष्टौ क्रूरदृष्ट्या सुखं स्थितौ ॥ १३ ॥
तच्च पारावतद्वन्द्वं श्येनः परिजिघृक्षया । अवतीर्याम्बरादाशु उपविष्टः शिवालये ॥
ततो विलोकयामास तद्गागमविनिर्गमौ । केनमार्गेण विशतो दुर्गमेण पतत्रिणौ
केनाध्वना च निर्यातः किंकाले कुरुतश्च किम् ।
कथं युगपदेतौ मे ग्राह्यौ स्वैरं भविष्यतः ॥ १६ ॥
दुर्वलोऽप्याकलयितुं सहसारिर्नशक्यते । करिणां च सहस्रेण वराश्वानांञ्च लक्षतः
न कर्म सिद्ध्येन्नृपतेर्दुर्गेणैकेनयद्भवेत । दुर्गस्थोनाभिभूयेत विपक्षःकेनचित्क्वचित्
स्वतन्त्रं यदि दुर्गं स्याद्रूपमार्गप्रकाशकम् ॥ १८ ॥
इति दुर्गे वलं शंसञ्छ्येनो रोषारुणेक्षणः ।
असाध्यसौ कलरवौ वीक्ष्य यातो नभोङ्गणे ॥ १९ ॥
अथ परावती दक्षा विपक्षक्षपणेक्षणम् । महावलं दुर्गवलात्प्राह पारावतं पतिम् ॥

कलरव्युवाच

प्रिय पारावत प्राज्ञ सर्वकामसुखाश्रव । तव दृग्विषयं प्राप्तः श्येनोऽयं प्रवलो रिपुः ॥
सवतद्वाक्यमाकर्ण्यपारावत्याश्चसत्पतिः । पारावतीमुवाचेदं काचिन्तेतितव प्रिये

पारावत उवाच

कतिनाम न सन्तीह सुभगे व्योमचारिणः । कतिदेवालयाद्येषु खगानोपवसन्तिहि

गतेऽथ शकुनी तस्मिन्सा बभाषे विहङ्गमम् ।
नाथ! स्थानान्तरं यावो मृत्युर्वै निकटेऽन्वगात् ॥ ४० ॥
पुनर्दृष्टे प्रणष्टः स्यादावासश्च सुखं प्रिय!। प्रिययस्यास्तिपक्षस्यगतिःसर्वत्रसिद्धिदा
स किं स्वदेशरागेण नाशं प्राप्नोति बुद्धिमान् ।
सोपसर्गं निजं देशं त्यक्त्वा योऽन्यं तु न व्रजेत् ॥ ४२ ॥
स पङ्कुर्नाशमाप्नोति कूलस्थित इवद्रुमः । प्रियोदितं निशम्येतिसभयैर्वीदशार्दितः
तां वाक्यं पुनरप्याह प्रिये माभैःखगार्दिता । अपरस्मिन्नहनिच स श्येनः प्रातरेवहि
तद्द्वारदेशमासाद्य सायंयावत्स्थितोऽचलः ।
अस्ताचलस्य शिखरं याते भानौ गते खगे ॥ ४५ ॥
कुलायाद्बाह्यमागत्योवाच पारावती पतिम् ।
नाथ! निर्गमनस्यायं कालः कालोऽस्ति दूरतः ॥ ४६ ॥
यावत्तावद्विनिर्याहि त्यक्त्वा मामपि शंसिनीम ।
त्वयि जीवति दुष्प्राप्यं न किञ्चिज्जगतीतले ॥ ४७ ॥
पुनर्दाराः पुनः पुत्राः पुनर्वसु पुनर्गृहम् । यद्यात्मा रक्षितः पुंसां दारैरपि धनैरपि
तदा सर्वंहरिश्चन्द्रभूपतेरिव लभ्यते । अयमात्माप्रियोबन्धुरयमात्मा महद्धनम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्मार्जकः परः । यावदात्मनि वै क्षेमं तावत्क्षेमं जगत्त्रये
सोऽपिक्षेमः सुगतिना यशसा महवाञ्छ्यते । यशोहीनं तुयत्क्षेमंतत्क्षेमान्निधनंवरम्
तद्यशः प्राप्यतेपुम्भिर्नीतिमार्गप्रवर्तिभिः । अतोनीतिपथंचिन्त्यंनाथस्थानादितोव्रज
न व्रजिष्यसि चेत्प्रातस्ततो मां संस्मरिष्यसि ॥ ५२ ॥
इत्युक्तोऽपिसवै पत्न्यापारावत्यासुमेधया । ननिर्ययौततःस्थानाद्वचित्यांप्रतिचारतः
अथोषसि समागत्य श्येनेन बलिना तदा । निर्गमद्वारमारुद्धं किञ्चिद्वस्यवता तदा
दिनानि कतिचित्तत्रातिष्ठच्छ्येनोमहाबलः । पारावतमुवाचेदंधित्त्वांपौरुषवर्जितम्
किं वा युध्यस्व दुर्बुद्धे! किं वा निर्याहि मे गिरा ।
क्षुधाक्षीणो मृतः पश्चाच्चिरयं पश्यसि ध्रुवम् ।

विधिरेष हि साहाय्यं न कुर्यात्तव नोदितम् ॥ ५६ ॥

इत्यपश्येनेन स प्रोक्तः पत्न्या ससहितः खगः । अयुध्यत्तेन श्येनेनस्यदुर्गद्वारमाश्रितः क्षुधितस्त्वरित सोऽप श्येनेनबलिना धृतः । चरणेनदृढेनाशु चञ्चवासापिधृनाश्रगाः

तावत्तावपोतुयाघ्रश्च श्येनो व्योमनि सत्वरम् ।

चिन्तयन्भक्षणस्थानमन्यत्पक्षिविवर्जितम् ॥ ५८ ॥

अथपत्न्याकलरवः प्रोक्तस्तत्र सुमेधया । यतोऽयमानिनायान्यथाहन्यीतिबुद्धि मनोऽयन्यामिमा प्राप्त. किं कुर्यामबलायतः । अधुनापिवबोध कर्तेयिवदिमेधि तदा हि न मेवक्ष्यामिकुर्यीतद्विचारितम् । ममैवपापकस्णारदीक्षितोनमयिष्वगि

यावद्गत्वं गताश्चपस्य यावत्कपोतो [illegible] भूमिगः ।

तावद्गत्वाविमुञ्चेत्त्वं कण्ठपा पादं दृढं दृढ़ा ॥ ६२ ॥

इतिपर्वतीय भूप्स तथा स गतवान्खग । स चाहितोदृढंपादे श्येनश्रीरूलघाञ्च

तेन चीत्कारकेनाथ मुक्ता सा सुत्तमङ्गुराम् ।

वाताङ्गुलीना दुगपचे सोऽपि पारावतोऽपतत् ॥ ६५ ॥

विपरपिष्यादन स तत्यापाप कविकुल । कपडस्गुप्तहन्तल्पकपतप्यादर्थावन प स द्वादल्वधाभूत दृष्टोऽयाहनमहुतम् । पुर्वतेष्षुपपचपीयालिसिनहानिवेतु गीपम तत्माद्गुणयानुमारेण परस्थेव मधोवम । प्रवानश्च्युपदतातो विचरपिष्यासिव: सत्य तौ कालयोगेन अप्रमाणौ मृतौ तदा । अप्रमाणं मृतावेवैतेनान्यगं तदाऽन्यः पुण्यहीन तदा जातो गन्धर्वसदः शुभः । सम्प्राप्तवान्नवा सतसा परिसपालयः । अनेकविद्यानिलय करार्वतलभाजनम् । कौमारं वयुवसाय स्थितानिनापोऽभवत् नियमं यापिजवाद्धविनिर्गोघ्रपमावन । यवताग्रीवतनिर्न्यवरिष्यामीतिनिश्चितम

यत्तोविज्जनमागतियागुः कीर्तिवंशं शुभम् ।

इतिम्यालंगनि जापि तम्यावाती वत्रदैर्पुर्धाः ॥ ७१ ॥

अनुरंबापिविन्यसं लघुविष्यामागमाहरे । गमजनमालतयापातालिमलोकनगमाभयन सममतस्तुल्यविलय: मानसतांवरतावः । तमव्मजातमवर्ष पयामरहैवकारयन

रजः प्रासादसँल्लग्नं नुन्नं पक्षानिलैः पुनः ॥ १०६ ॥
उपरिष्टादधस्ताच्चकृताभूरिप्रदक्षिणाः। व्योम्नि सञ्चरमाणाभ्यांसञ्चीर्णंचममाजिरे
स्नातं चतुर्नदे तीर्थे पीतं तत्राम्बुचासकृत्। आभ्यांकलरवाभ्याञ्च कृताःकलरवामुदा
एताभ्यां।स्थिरचित्ताभ्यां मुदिता त्वमतीव हि।
दृष्ट्वा हि कौतुकान्यत्र मम भक्तैः कृतान्यपि ॥ ११२ ॥
अमूभ्यांबहुशो दृष्टा मम मङ्गलदीपिकाः। पीतंश्रुतिपुटाभ्याञ्च मम नामाक्षरामृतम्
तिर्यग्योनिप्रभावेण न मृतौ मम सन्निधौ ॥ ११३ ॥
जम्बूमार्गे मृतौ यस्मात्स्वर्गप्राप्तिकरे ध्रुवम्।
तस्मात्पारावती ह्येषा रत्नदीपसुताऽभवत् ॥ ११४ ॥
पतिःपारावतोऽस्याश्चजातो विद्याधराङ्गजः। एषाप्रभावतीनागीनागराजस्यसद्मनि
इह जन्मनि कन्यासीत्पूर्वजन्म ब्रवीमि च ॥ ११५ ॥
त्रिशिखस्योरगेन्द्रस्यसुताचेयंकलावती। एतस्याअपिवृत्तान्तंनिशामयतुवच्म्यहम्
भवान्तरेतृतीयेऽतःकन्येचारायणस्यच। आस्तांमहर्षेः शीलाढ्ये प्रेमवत्यौपरस्परम्
पित्रा चारायणेनापि ताभ्यां सम्प्रेरितेन वै।
आमुष्यायणपुत्राय दत्ते नारायणाय हि ॥ ११८ ॥
अप्राप्तयौवनोऽरण्ये समिदाहरणाय वै। गतो विधिवशाद्दष्टो दन्दशूकेन कानने ॥
भवानीगौतमीनाम्न्यौ ते तु चारायणाङ्गजे। वैधव्यदुःखमापन्ने दैन्यग्रस्ते बभूवतुः
अत एव प्रयत्नेन परिणेता विवर्जयेत्।।देवतासरिदाह्वान कन्यापाणिग्रहं सुधीः ॥
अथर्षेः कस्यचिद्दैवादाश्रमे देवसन्निभे। रम्भाफलान्यदत्तानि मोहाज्जग्रहतुस्तदा॥
कृत्वा नानोपवासादिव्रतानि ब्राह्मणाङ्गजे।
अध्यास्य निधनं कालाच्छाखामृग्यौ बभूवतुः ॥ १२३ ॥
फलचौर्यविपाकेन वानरत्वं तयोरभूत्। शीलरक्षणभावेनावन्त्यां जनिमवापतुः ॥
स च नारायणोविप्रः पितृशुश्रूषणे रतः। दष्टोऽपिदन्दशूकेन काश्यांपारावतोऽभवत्
एवं भवान्तरे चासीदेतयोःपतिरेव सः। तिसृणांभवतीनां च भावी भर्ता पुनःस्वै

ववन्दिरेऽथ ता बाला ज्ञात्वा रुद्रमभिरीश्वरम् ।
तुष्टुवुश्च प्रहृष्टास्ता सजकण्ठ्योऽतिविक्लवम् ॥ ९४ ॥
जयशम्भो जयेशान जयसर्वेश सर्वद । जय त्रिपुरसंहतजयान्धकनिषूदन ॥ ९५ ॥
जय जालन्धरहर जयकन्दर्पदर्पहृत् । जय त्रैलोक्यजनक जय त्रैलोक्यवन्दित ॥
जय भक्तजनाधीश जय प्रमथनायक ॥ ९६ ॥
नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनम ।
त्रिलोचन नमस्तुभ्य त्रिविष्टप नमोऽस्तु ते ॥ ९७ ॥
इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपेतु कुमारिका ।
अथोत्थाप्य कुमारीस्ता प्रोवाच शशिभूषण ॥ ९८ ॥
सुतो मन्दारदाम्नश्च नाम्ना परिमलालय । पतिर्विद्याधरवरो भवतीना भविष्यति
चिर विद्याधरे लोके भोगान्भुक्त्वा समन्तत ।
ततो ह्यवन्तिका प्राप्य मा ध्यात्वा सिद्धिमाप्स्यथ ॥ १०० ॥
जन्मान्तरेऽपि मे भक्तिर्भवतीभिश्च तेन च । विहिताजेनयोजन्मनिमल्लक्ष्मचिभावितः
एतत्प्रभावतीस्तोत्रयेपठिष्यन्तिमे पुर । तेभ्य कामान्प्रद स्यामि भवतीनामयंवर
इत्युक्तवतिदेवेशे ता कन्या हृष्टमानसा । प्रणम्यप्रोचुरीशान प्रयतकरसम्पुटा ॥
नागकन्या ऊचु
पृच्छामो ब्रूहि नो नाथ करुणाकर शङ्कर । जन्मान्तरे कय सेवा चतुर्भिभवत कृता
तत प्राकनवृत्तान्तमेतस्यापि त्वनाथ मन । अस्माकमपिवाल्याहि कृपाकुरुकृपानिधे
इतिश्रुत्वाप्रणयनोवाल्योरीशिनमीप्सितम् । प्रोवाचतासामपिचभवान्तरविचेष्टितम्
ईश्वर उवाच
शृणुध्व नागतनयास्तिस्रोऽपि हि समाहिता ।
प्राग्भव भवतानाञ्चैतस्यापिकथयाम्यहम् ॥ १०१ ॥
पुरारत्नावलीपूर्वमासीत्पारावती नगरी । स च विद्याधरवरपतिरस्या नगरेऽभवत
प्रासादे च मयैतास्यामुषितं सुचिरं सुखम् ।

जामातरं समासाद्य शुभं परिमललालयम् ॥ १४१ ॥
अन्योऽन्यं स्वजनास्ते तु मुदा विकसितेक्षणाः ।
विवाहोत्सवमारच्य स्वं स्वं भवनमाविशन् ॥ १४२ ॥
त्रिलोचनस्य लिङ्गस्य वर्णयन्तोऽपि गौरवम् ।
स च विद्याधरः श्रीमान्नागीभिर्विपुलं सुखम् ॥
भुक्त्वाऽवन्तीं ततः प्राप्य संसेव्य च त्रिलोचनम् ॥ १४३ ॥
गायन्गीतंसुमधुरंनागीभिःसहितःकृती । आत्मानंचातिविस्मृत्यमध्येलिङ्गंलयंगतः
त्रिलोचनस्य महिमा कलौ देवेनगोपितः । ततोऽल्पसत्त्वा मनुजान तल्लिङ्गमुपासते
त्रिलोचनकथामेतां श्रुत्वा पापान्वितोऽप्यहो ।
विपापो जायते मर्त्यो लभते च परां गतिम् ॥ १४६ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावःपापनाशनः । त्रिलोचनस्य देवस्य शृणु वीरेश्वरंपरम्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये त्रिलोचनमाहात्म्यवर्णनंनाम
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

वीरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

षट्चत्वारिंशकं देवि! वीरेश्वरमथो शृणु । यस्य दर्शनमात्रेणकुलवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥
निशामय महा देवि! वीरेशाविर्भवं परम् । यच्छ्रुत्वा पितरःपुण्यंप्राप्नुयुर्विपुलं शिवे!
आसीदमित्रजिन्नाम राजा परपुरंजयः । धार्मिकः सत्त्वसम्पन्नः प्रजारञ्जनतत्परः ॥२
यशोधनो वदान्यश्च सुधीर्ब्राह्मणदैवतः । सदैवावभृथस्नातः परिक्लिन्नशिरोरुहः ॥

प्रासादस्यापि पार्श्वे तु न्यग्रोधश्च महानग ।
तस्मिञ्शाखिनि वामाढ्ये शाखामृग्यौ बभूवतु ॥ १२७ ॥
विष्णुदेहजले तीर्थे क्रीडया च ममज्जतु । पपतुश्चापि पानीय तस्मिंस्तीर्थेऽगातुरे ,
जातिस्वभावचापल्यात्क्रीडन्त्यौ च प्रदक्षिणम् ।
चक्रतुर्वृक्षश्चैव लिङ्ग ददृशतुर्वृ ॥ १२९ ॥
विचरन्त्यावपि स्वैरं तत्र न्यग्रोधमस्थियौ । केनचित्तोयवेषेण पारोभक्षनिषण्णिके
भिक्षार्थं शिक्षिते नैव न स्तुतिर्मनिवसतम् । अथ ते कापिमर्कट्यौ कालधर्मवशागते
भवन्तावामपुण्येन त्रिलोचनस्य सेवया । प्रादक्षिण्यानुरूपेण जाते भागशुभे अपि
अधुना त पतिश्चाप्य विद्याधरकुमारकम् ।
निर्विश्य स्वर्गभोगांश्चावन्त्या नित्यं निमास्यथ ॥ १३३ ॥
यैरत्यपनपि चावन्त्या कृत कर्म शुभाशुभम् ।
तस्य मोक्ष परीपाको निश्चित मदनुग्रहात् ।
त्रैलोक्येऽपि च सर्वस्मिन्नत्र ह्यावन्तापुरा सदा ॥ १३४ ॥
सतोऽपि लिङ्गरूपेण सकोऽत्र त्रिलोचनम् ।
तिष्ठमानोऽत्र लिङ्गेऽह भुक्ति मुक्ति ददामि वै ॥ १३५ ॥
अतः सर्वप्रयत्नेनावन्त्या पूज्यस्त्रिलोचन । इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्प्रासादान्तरेऽविशत्
लिङ्गस्वरूपमासाद्य शुभं त्रिभुवनादपि । ताश्चस्वसदनं प्राप्यतद्वृत्तान्तमदीपत ॥
स्वमातु पुरतश्चोक्तवा इतद्वत्या इवाऽभवन् ॥ १३७ ॥
एकदा माधवेमासि सहभार्या समागता ।
विद्याधरास्तथा नागा मिलिता सर्पविच्छदा ॥ १३८ ॥
विरजस्के महाक्षेत्रे त्रिलोचनसमीपत । देवस्यचरदानाश्चपृष्ट्वाऽन्योन्यं कुलावलिम्
विद्याधरायता कन्या नागैस्तिस्त्रोऽपि कल्पिता ।
मन्दारदाम्ना सन्तुष्ट प्राप्य तच्च स्नुषात्रयम् ॥ १४० ॥
रक्तदीपैश्च नागेन्द्र पद्मी च भुजगेश्वर । विशिष्टोऽपि फणीन्द्रश्च हृष्टा पतेत्रयोऽपिच

सौधभित्तिषु दृश्यन्ते चित्राणि कृत्रिमाणि च ॥ २३ ॥

ऋतेहरिकथायास्तु नान्यावार्त्ताभिशम्यते । हरिणानैववध्यन्ते हरिणामांसधारिणः

तस्यराज्ञो भयाद्व्याधैररण्ये सुखचारिणः । नमत्स्यानैव च चक्रावगाहाश्चनकेनचित्

हन्यन्ते क्वापि तद्राज्ये मत्स्यमांसाशिनाऽपि वै ।

अपुत्रा न नरास्तस्य राष्ट्रेऽमित्रजितः क्वचित् ॥ २६ ॥

स्तनपानं न कुर्वन्ति संप्राप्य हरिवासरम् । पशवोऽपि तृणाहारं परित्यज्य हरेर्दिने

उपोषणपरा जाता अन्येषां का कथा नृणाम् ॥ २७ ॥

महामहोत्सवः सर्वैः पुरीकोभिर्वितन्यते । तस्मिन्प्रशासति भुवंसंप्राप्ते हरिवासरे

यो विष्णुभक्तिरहितः प्राणैरपि धनैरपि ।

सववद्दण्ड्यो भुङ्क्ते यो राज्ञोऽमित्रजितः क्षितौ ॥ २९ ॥

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्राङ्कधारिणः ।

सम्प्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इति संस्थिताः ॥ ३० ॥

शुभानि यानि कर्माणिक्रियन्तेऽनुष्ठितंजनैः । वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानितैरफलेप्सुभिः

विनामुकुन्दगोविन्दपरमानन्दमच्युतम् । नान्योजप्येत नश्येतमभाष्येतजनःक्वचित्

कृष्ण एव परो बन्धुस्तस्यासीद्वनीपतेः ॥ ३२ ॥

एवंतस्मिन्महीपालेराज्येसम्यक्प्रशासति । एकदानारदःश्रीमांस्तंदिदृक्षुःसमाययौ

राज्ञा समर्चितः सोऽथ मधुपर्कविधानतः । नारदो वर्णयामास तममित्रजितं नृपम्॥

श्रीनारद उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽप्यसि दिवौकसाम् ।

सर्वभूतेषु गोविन्दं परिपश्यन्विशाम्पते ॥ ३५ ॥

यो वेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः । योऽन्तरात्मास्यजगतःकर्ताहर्ताऽविताविभुः

तन्मयं पश्यतो विश्वं तव भूपालसत्तम । दर्शनं प्राप्य शुभदं शुचित्वमगमं परम् ॥

एष एव हि सारोऽत्र संसारेक्षणभङ्गुरे । कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः

परित्यज्य ह यः सर्वं विष्णुमेकं सदा भजेत् ।

विनीतो नीतिसम्पन्नः कुशलः सर्वकर्मसु । विद्याविशारदश्चाय गुणवान्गुणिवत्सल

कृतज्ञो मधुरालापः पापकर्मपराङ्मुखः ।

सत्याङ्ग्रौघनिलयः सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ॥ ६॥

रणाङ्गणे कृतान्तस्य सदृग्याचाश्च सद्गोजिरे ।

कामिनीकेलिकालज्ञो युवाऽपि स्थविरप्रियः ॥ ७ ॥

धर्मार्थधनकोशश्च समृद्धबलवाहनः । सुभगश्च सुरूपश्च सुमेधाः सुप्रजाप्रियः ॥

स्थैर्यधैर्यसमापन्नो देशकालविचक्षणः । मान्यानां मानदो नित्यसर्वदूषणवर्जि

वासुदेवाङ्घ्रियुगले चेतोवृत्तिं निधाय च ।

चकार राज्यं निर्द्वन्द्वं विविधभीतिविवर्जितम् ॥ १० ॥

अलङ्घ्यशासनः श्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ।

अभुनक्प्रवरान्भोगान्समन्ताद्विष्णुसत्कृतान् ॥ ११ ॥

हरेराराधनान्युच्चैः प्रतिसौध पदेपदे । तस्य राज्ये समभवन्महाभागनिधे शि

गोवृन्दगोपगोपालगोपीजनमनोहर ‍। गदापाणे गुणातीत गुणाढ्य गरुडध्व

केशिहन्कैटभाराते कंसारे कमलापते ॥ १४ ॥

कृष्ण केशव कञ्जाक्ष कालाशमयनाशन । पुरुषोत्तम पापारे पुण्डरीकविलोचन

पीतकौशेयवसन पद्मनाभ परात्पर । जगन्नाथ जगन्नाथ जाह्नवीजलजन्मभू

जन्मिनां जन्महरण अजपूर्वाघनाशन । श्रीवत्सवक्ष श्रीकण्ठ श्रीकरश्रेयसां नि

श्रीखड्गशार्ङ्गकोदण्ड शौरेशीतांशुलोचन । दैत्यारे दानवाराते दामोदर दुरन्त

देवकीहृदयानन्द दन्दशूकेश्वरेशय । विष्णो वैकुण्ठनिलय वामारे विष्टरश्रव

विष्वक्सेन विभो वीर वनमालिन्बलिप्रिय ।

त्रिविक्रम त्रिलोकेश चक्रपाणे चतुर्भुज ॥ २० ॥

इत्यादीनि पवित्राणि नामानि प्रतिमन्दिरे । श्रीवृन्दावनगोपालवदनोदीरितानि

श्रूयन्ते यत्र कुत्रापि रम्याणि मधुविद्विषः । सुरम्यकाननान्येव विलोक्यन्ते गृहे गृ

विचित्राणि चरित्राणि गीयते च गृहे गृहे ।

सौधभित्तिषु दृश्यन्ते चित्राणि कृत्रिमाणि च ॥ २३ ॥

ऋतेहरिकथायास्तु नान्यावार्त्तानिशम्यते । हरिणानैववध्यन्ते हरिणामांसधारिणः

तस्यराज्ञो भयाद्व्याधैररण्ये सुखचारिणः । नमत्स्यानैव च वकावराहाश्चनकेनचित्

हन्यन्ते क्वापि तद्राज्ये मत्स्यमांसाशिनाऽपि वै ।

अपुत्रा न नरास्तस्य राष्ट्रेऽमित्रजितः क्वचित् ॥ २६ ॥

स्तनपानं न कुर्वन्ति संप्राप्य हरिवासरम् । पशवोऽपि तृणाहारं परित्यज्य हरेर्दिने

उपोषणपरा जाता अन्येषां का कथा नृणाम् ॥ २७ ॥

महामहोत्सवः सर्वैः पुरौकोभिर्वितन्यते । तस्मिन्प्रशासति भुवंसंप्राप्ते हरिवासरे

यो विष्णुभक्तिरहितः प्राणैरपि धनैरपि ।

सवध्यदण्ड्यो भुङ्क्ते यो राज्ञोऽमित्रजितः क्षितौ ॥ २९ ॥

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्राङ्कधारिणः ।

संप्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इति संस्थिताः ॥ ३० ॥

शुभानि यानि कर्माणिक्रियन्तेऽनुदिनंजनैः । वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानितैरफलेप्सुभिः

विनामुकुन्दगोविन्दपरमानन्दमच्युतम । नान्योजप्येत नध्येतसभाज्येतजनःक्वचित्

कृष्ण एव परो बन्धुस्तस्यासीदवनीपतेः ॥ ३२ ॥

एवंतस्मिन्महीपालेराज्येसम्यक्प्रशासति । एकदानारदःश्रीमांस्तंदिदृक्षुःसमाययौ

राज्ञा समर्चितः सोऽथ मधुपर्कविधानतः । नारदो वर्णयामास तममित्रजितं नृपम्॥

श्रीनारद उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽप्यसि दिवौकसाम् ।

सर्वभूतेषु गोविन्दं परिपश्यन्विशाम्पते !॥ ३५ ॥

यो वेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः । योऽन्तरात्मास्यजगतःकर्त्ताहर्ताऽविताविभुः

तन्मयं पश्यतो विश्वं तव भूपालसत्तम । दर्शनं प्राप्य शुभदं शुचित्वमगमं परम् ॥

एष एव हि सारोऽत्र संसारे क्षणभङ्गुरे । कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः

परित्यज्य ह यः सर्वं विष्णुमेकं सदा भजेत् ।

सुमेधस मनन्ते ॥ पदार्था सव एव हि ॥ ३६ ॥

हृषीकेशाद्धृषीकाणि यस्य स्थैर्यं गतान्यहो । स एव स्थैर्यमाप्नोति ब्रह्माण्डेऽतीव चञ्चले
यौवनं धनमायुष्य जलं पद्मदले यथा । अतीव चञ्चलं ज्ञात्वाऽच्युतमेव समाश्रयेत्
यस्य चेतसि कर्णेऽथ यस्य देवो जनार्दनः ।
स एव सर्वदा वन्द्यो नररूपो जनार्दनः ।
निर्व्याजप्रणिधानेन शीलयित्वा श्रियः पतिम् ॥ ४२ ॥

पुरुषोत्तमता को न प्राप्तस्त्वमिव भूतले । अनघाविष्णुभक्तपातैः सन्तुष्टेन्द्रियमानस
उपकर्तुमना भूप्या तन्निशामय भूपते ॥ ४३ ॥

माला विद्याधरसुता नाम्ना मलयगन्धिनी । कान्ता पितुराक्रोशहता कङ्कालकेतुना
कङ्कालकेतुपुत्रेण दानवेन बलीयसा । आगामि यातु नायाया तस्या पाणिग्रहं किल
पाताले चम्पकाख्या या नगरी सास्ति साम्प्रतम् ।
हाटकेशात्समागच्छन्त्यायाऽसौ साधुनेत्रया ॥ ४६ ॥

दृष्ट प्रणम्य विहसो यथा तस्य निशामय । ब्रह्मचारिन्मुनि श्रेष्ठ गन्धमादनशैलज ।
बालयाऽनन्यशरणा मा ब्रह्मन् त्वमावसाम् ।
कङ्कालकेतु पुत्रान्नान्य नास्ति च घातक ॥ ४८ ॥

स स्वत्रिशूलपातेन त्रिदश मान्यपां रवं । अगम्यशास्तु सान्हस्य निद्रान्ययविनिमय
यदि कापि दृश्नशा मा दृश्यन दुष्टदानवम् । मद्गत त्रिशूलेन मयेद्वं च वे हतम् ।
यथाश्रोपविशत्यु स्य स्थ मा दुष्टदानवान् । ममापि हितपरोदत्तो भगवदयोमधासुरा
विष्णुभक्तो शुधा धीमान्पुत्रि त्वां परिणेष्यति ॥ ५१ ॥
आतुतायानिधि यथा तद्वाक्यं तस्यतां व्रजेत् ।
तथा निमित्तमात्र त्वं भव यत्न समाचर ॥ ५२ ॥

इति तद्वचनाद्गत्वा विष्णुभक्तिपरायणम् । युवत्वं चापि धीमन्तत्वामनुज्ञानवानहम्
तद्गच्छ कायसिद्ध्यै त्वं हत्वा तं दुष्टदानवम् ।
मानयाऽऽशु महाबाहो शुभां मलयगन्धिनीम् ॥ ५४ ॥

सातुविद्याधरीबालाविलोक्यत्वांनरेश्वर ।अवश्यमेवतच्छूलंदास्यतीतिविनिश्चितम्

पार्वतीवचनाद् दुष्टं घातयिष्यस्यसंशयम् ॥ ५५ ॥

इतिनारदवाक्यंसनिशम्यामित्रजिन्नृपः । अनल्पोत्कलिकोजातोविद्याधरसुतांप्रति

उपायं चापि पप्रच्छ गन्तुं वै चम्पकावतीम् ॥ ५६ ॥

नारदेन पुनः प्रोक्तः स राजा गिरिराजजे !। तूर्णमर्णवमासाद्य पूर्णिमादिवसे नृप !॥

भवान्द्रक्ष्यति पोतस्थकल्पवृक्षरथास्थिताम् ।

तत्र दिव्याङ्गनां काञ्चिद्दिव्यपर्यङ्कसुस्थिताम् ।

वीणामादाय गायन्तीं गाथामत्यन्तसुस्वरम् ॥ ५८ ॥

त्कर्म विहितं येनशुभंवाप्यथवाऽशुभम् । सएवभुङ्क्तेतत्तथ्यंविधिस्तत्रनियन्त्रितः

ाथामिमां तु सङ्गीय सरथा सनर्हारुहा । सपर्यङ्काक्षणादेवमध्येसिन्धु प्रवेक्ष्यति

ावानप्यविशङ्कं च ततः पोतान्महार्णवे । तमनुव्रजतु क्षिप्रं यज्ञवाराहसात्मवान् ॥

ातो द्रक्ष्यसि पाताले नगरीं चम्पकावतीम् । महामनोहरांराजन्सनाथांबालयातया

त्युक्त्वान्तर्हितो देवि स चतुर्मुखनन्दनः । राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्य च

विवेशान्तःसमुद्रं चनगरीमाससाद ताम् । सापिविद्याधरीबालानेत्रयोःप्राघुणीकृता

ेन राज्ञा त्रिजगतीसौन्दर्यश्रीरिवैकिका । पाताले देवतेयं वाममनेत्रोत्सवायकिम्

िरमायिममोद्देशात्स्रष्टृसृष्टिविलक्षणा । कुहूराहुभयद्वेषात्कान्तिश्चान्द्रमसीकिमु

योषिद्रूपंसमाश्रित्यतिष्ठत्यत्राकुतोभया ।इत्थंक्षणंचनिर्वर्ण्यसराजाऽगच्छदन्तिकम्

सा विलोक्याथ तं बालं नितरां मधुराकृतिम् ।

विशालोरःस्थलतलप्रलम्बतुलसीस्रजम् ॥ ६८ ॥

शङ्खचक्राङ्कसुभगभुजद्वयविराजितम् । हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥

भवानीभक्तिबीजोत्थभूरुहं पुरुषाकृतिम् । अनेनात्र कृतं कस्य भवनं मधुराकृति ॥

इति पर्याकुलीकृत्य चक्षुषीच मुहुर्मुहुः । कङ्कालकेतुदुर्वृत्तस्त्वंवध्यः परहेतिभिः

तावद्गुप्तं समातिष्ठ शस्त्रागारेऽत्र गह्वरे ।

न मे कन्याव्रतं भग्नं सामर्थ्याच्चण्डिकावरात् ॥ ७२ ॥

राजोवाच

देव्यभीष्टतृतीयायां व्रतं कीदृग्भवेद्वद ॥ १२५ ॥

इति राज्ञोदिता राज्ञी प्रवक्तुमुपचक्रमे । इतिकर्त्तव्यतां तस्य व्रतस्य सविधानकाम्

राज्ञ्युवाच

पुरा देवर्षिणा चेदं व्रतं लक्ष्म्यै प्रतिश्रुतम् । तया प्राप्तास्तु सकलाः कामाः स्वर्गापवर्गदाः

मार्गशीर्षतृतीयायां शुक्लायां कलशोपरि ।

ताम्रपात्रं निधायैव तन्दुलैः परिपूरितम् ॥ १२८ ॥

अच्छिद्रञ्च नवीनञ्च रजनीरागरञ्जितम् । वासः पात्रोपरि न्यस्य सूक्ष्मासूक्ष्मतरम्परम्

तस्योपरि शुभं पद्मं रविरश्मिप्रकाशितम् । तत्कर्णिकाया उपरि चतुःस्वर्णविनिर्मितम्

विधिं सम्पूजयेद्भक्त्या रक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥ १३० ॥

पुष्पैः सुगन्धैः कर्पूरकस्तूर्यादिभिरर्चयेत् । रात्रौ जागरणं कार्यं विप्राणां परमोत्सवैः

होमः कार्यो महाभक्त्या सहस्रपरिसङ्ख्यया ।

नवप्रसूतां कपिलां दद्याच्च सुपयस्विनीम् ॥ १३२ ॥

दद्यादाचार्यवर्याय सालङ्कारां सदक्षिणाम् । उपोष्य दम्पती भक्त्या नवाम्बरविभूषितौ

प्रातः स्नात्वा चतुर्थ्याञ्च सम्पूज्याचार्यमादितः ।

वस्त्रैराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ॥

सोपस्करां च तां मूर्तिमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ १३४ ॥

मन्त्रः

नमो विश्वविधानज्ञे! विधे विविधकारिणि !। सुतञ्च शङ्करं देहि तुष्टाह्यस्माद्व्रतोत्तमात्

सहस्रं भोजयित्वाथ द्विजानां भक्तिपूर्वकम् । भुक्तशेषेण चान्नेन कुर्याद्वै पारणं ततः

इत्थमेतद्व्रतं नाथ! चिकीर्षामि त्वयाज्ञया । कुरुचैतत्प्रियं मह्यमभीष्टफललब्धये ॥

इति भूपालवर्येण श्रुत्वा संहृष्टचेतसा । तदा व्रतं समाचीर्णं सान्तर्वत्नी बभूव ह ॥

तयाऽथ प्रार्थिता गौरी गर्भिण्या भक्तितोषिता ।

पुत्रं देहि महामाये! साक्षाद्विष्णवंशसम्भवम् ॥ १३८ ॥

तत्प्रहारान्महाबाहु पञ्चरथमगमत्क्षणात् । स्थैर्यीघकारनद्धश्च त्रिशूलतोऽयन्करे

पश्यतोऽस्य महाबाहो स च प्राणाञ्जहौ क्षणात् ।

इत्थं कङ्कालकेतु स निहत्य सुरकम्पनम् ॥ ११० ॥

विद्याधरीं प्रपश्यन्तीं प्राह हृष्टतनूरुह । नारदस्य मुनेर्वाक्यात्तव सुश्रोणियाऽहितम्

हतं मया दुष्टं किं करवाण्यधुनापरम् । इत्येतितस्य सा वाक्यमाह गम्भीरचेतसा

मत्स्यगन्धिन्युवाच

गुह्यारमत वारन्निजप्राणे पणाहताम् । त्रिमावृष्टसियुवतीकुलकन्यामदूषिताम्

इति ब्रुवन्त्या कन्यायां पुन स्वैरचरोमुनि ।

अतर्कितागम प्राप्तो नारदो देवलोकत ॥ ११४ ॥

ततस्तुष्टुवतुस्तौ तु तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमम् । कृतप्रणामौ मुनिनाप्रतिष्ठाप्यापिताशिषौ

पाणिग्रहेण विधिनाऽभिषिक्तौ नारदनतु । जग्मतुर्नारदादिष्टधर्मेणा कृतमङ्गलौ ॥

तया मत्स्यगन्धिन्या युत सोऽमित्रजिन्नृप ।

पुरीं चोज्जयिनीं प्राप्य पौरर्विहितमङ्गलाम् ॥ ११७ ॥

सद्वीपजादपि नरोत्तरकीर्णेष ज्ञातुमित्त् । सतितयत्नोऽतिसौधवर्ती सर पुरीमविशन्नृप

यस्या पुर्यां प्रवेश न लभन्ते वासवादय । कैवल्यप्रयजैन्या हि तांपुरीमविशन्नृप

सापि विद्याधरधन्ती समृद्धाधीश्वदूरत । निनिन्दस्वर्गलोकं च पातालनगरीमपि

प्राप्याऽमित्रजित कान्त तथा हृष्टा न सा वधू ।

यथा दृष्ट्वाऽस्वहोऽवन्तीं परमानन्ददायिनीम् ॥ १२१ ॥

सा कृतार्थामिवात्मान मन्यमाना मनस्विनी ।

तत पत्योज्जयिन्या च परा निर्वृतिमाप सा ॥ १२२ ॥

सोऽप्यमित्रजिदासाद्यपत्नीं मत्स्यगन्धिनीम् । धर्मप्रधानससेव्यकामप्रापोत्तमंसुखम्

सा पति विष्णुभजने रतं प्रोवाच भामिनी ॥ १२४ ॥

राज्ञ्युवाच

भूपाऽभीष्टतृतीयाया चरिष्यामि महाव्रतम् ।

सम्प्राप्य तन्महापीठं स्वर्गलोकादिहागतः ।
महाकालवने पुण्ये तताप विपुलं तपः ॥ १५८ ॥
तपसाऽतीव तीव्रेणनिश्चलेन्द्रियमानसः । तस्य राजकुमारस्य प्रसन्नोऽभूदुमाधवः
आविर्बभूव पुरतो लिङ्गरूपेण शङ्करः । उवाच च प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नृपाङ्गज
सर्वज्योतिर्मयं लिङ्गं पुरतो दृष्टवान्स्वयम् । सप्तपातालमुद्भिद्योत्थितं बृहदनुग्रहात्
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ परितुष्टाव धूर्जटिम् । सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यासात्सुहृष्टो रुद्रदैवतैः
वरञ्च प्रार्थयाञ्चक्रे परिहृष्टतनूरुहः ॥ १६२ ॥
देवदेव महादेव! यदि देयो वरो मम । तदत्र भवता स्थेयं भवतापहृता सदा ॥१६३
अस्मिँल्लिङ्गे स्थितः शम्भो! कुरु भक्तसमीहितम् ।
विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणापि विना विभो! ॥ १६४ ॥
स्य लिङ्गस्य ये भक्ता मनोवाक्कायकर्मभिः । सदैवानुग्रहस्तेषु कर्त्तव्यो वर एष मे
ते तद्वरमाकर्ण्य लिङ्गरूपोऽवदत्प्रभुः । एवमस्तु यदुक्तं ते वीर! वैष्णवसूनुना ॥
वीर वीरेश्वरंनाम लिङ्गमेतत्त्वदाख्यया ।
अवन्त्यां सम्प्रदास्यामि भक्तानां चिन्तितान्यहो ॥ १६७ ॥
त्र दत्तं हुतं जप्तं स्तुतमर्चितमेव च । तदक्षयं भवेदत्र भक्तानां नात्र संशयः ॥१६८
त्वं तु राज्यं परम्प्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम् ।
भुक्त्वा भोगांश्च विपुलानन्ते सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १६६ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । वीरेश्वरस्य देवस्य नूपुरेशमथो शृणु

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये वीरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

जातमात्रो व्रजेत्स्वर्गं पुनरायातिधात्र वै । भक्त सदाशिवेऽप्ययं प्रसिद्ध सर्वभूतले

धिनैव स्तन्यपानेन षोडशाब्दाकृति क्षणात् ॥ १४० ॥

एवम्भूत सुतो गौरि! यथा स्यान्मे तथा कुरु ।

मृडान्यापि तथेत्युक्ता राज्ञा भक्त्यातितुष्टया ॥ १४१ ॥

अथ कालेन तनय मूलर्क्षेसाऽप्यजीजनत् । हितैरमात्यैरथ सा विज्ञनारिस्तस्थिता इथिराजार्थिनीत्यतुल्यजदुष्क्षजसुतम् । सा मन्त्रिवाक्यमाकर्ण्य वेवल्यपतिरेयता भ त्याक्षीत्त सपाप्तात तनय नयकोविदा । धात्रिका तु समाहूय प्राहेद सा नृपाङ्गना पञ्चमुद्रमहापाठे विकटानाम मातृका । तदग्रे स्थापयित्वाशु बाल धात्रि त्विद यद

गौरि ! दत्त शिशुरसौ तदग्रे विनिवेदित ।

राज्ञ्या पत्यु प्रियेषिण्या मन्त्रिविज्ञमिनुज्ञया ॥ १४६ ॥

सापि राज्ञ्युदित श्रुत्वा बाल शिशुशशिप्रभम् ।

विकटाया पुरोभागे संन्यास्य गृहमागता ॥ १४७ ॥

अथ सा विकटाऽऽकाशमाहूय च योगिना । उवाच नियतक्षिप्र शिशु मातृगणाग्रत स्तास्ताभ्यो वदुरत रक्षतामुत्रयत्नत । योगि-योविकटारव्यया खेचरस्तत्क्षणेनतम नि युगगनमार्गेण ब्राह्मयाद्याश्च मातर । प्रणम्य योगिनात्रु दवशिशु सुपर्वसम

पुरोनिधाय मातृणा प्रोचुश्च विकटोदितम् ।

ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्री वाराही नारसिंहिका ॥

कौमारी चापि माहेन्द्री चामुण्डा चैव चण्डिका ॥ १५१ ॥

दृष्ट्वा त बालक रम्य विकटाप्रेषित तत । पप्रच्छुर्युर्योगपदाख्य करुनबाल प्रमुख्यक मातृभिश्चविपृष्टस्तुयदा किञ्चिन्नचक्तिस । तदाख्यायोगिनाचक्र प्राहमातृगणास्त्विवति रा ययोग्योभव येऽसमहालक्षणलक्षित । पुनम्तश्चनेतव्योयोगिन्यस्त्वयिचलियतम् पञ्चमुद्रामहादेवा तिष्ठते यत्र कामदा । यस्या संसेवना-नृणा निर्वाणश्चारदूरत ॥ तत्पादसेवनादस्य षोडशाब्दाकृते शिशो । सिद्धिभवत्रा परमा रुद्रस्यानुग्रहात्परा एव मातृगणात्सद्योयोगिनाभिक्षणेन तु । प्रापितोमातृवाक्येन पञ्चमुद्रान्तिकपुन

सम्प्राप्य तन्महापीठं स्वर्गलोकादिहागतः ।
महाकालवने पुण्ये तताप विपुलं तपः ॥ १५८ ॥
तपसाऽतीव तीव्रेणनिश्चलेन्द्रियमानसः । तस्य राजकुमारस्य प्रसन्नोऽभूदुमाधवः
आविर्बभूव पुरतो लिङ्गरूपेण शङ्करः । उवाच च प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि नृपाङ्गज
सर्वज्योतिर्मयं लिङ्गं पुरतो दृष्टवान्स्वयम् । सप्तपातालमुद्भिद्योत्थितं बृहदनुग्रहात्
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ परितुष्टाव धूर्जटिम् । सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यासात्सुहृष्टो रुद्रदैवतैः
वरञ्च प्रार्थयाञ्चक्रे परिहृष्टतनूरुहः ॥ १६२ ॥
देवदेव महादेव! यदि देयो वरो मम । तदत्र भवता स्थेयं भवतापहृता सदा ॥१६३
अस्मिंल्लिङ्गे स्थितः शम्भो! कुरु भक्तसमीहितम् ।
विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणापि विना विभो! ॥ १६४ ॥
अस्य लिङ्गस्य ये भक्ता मनोवाक्कायकर्मभिः । सदैवानुग्रहस्तेषु कर्त्तव्यो वर एष मे
इति तद्वरमाकर्ण्य लिङ्गरूपोऽवदत्प्रभुः । एवमस्तु यदुक्तं ते वीर! वैष्णवसूनुना ॥
वीर वीरेश्वरंनाम लिङ्गमेतत्त्वदाख्यया ।
अवन्त्यां सम्प्रदास्यामि भक्तानां चिन्तितान्यहो ॥ १६७ ॥
त्र दत्तं हुतं जप्तं स्तुतमर्चितमेव च । तदक्षयं भवेदत्र भक्तानां नात्र संशयः ॥१६८
त्वं तु राज्यं परम्प्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम् ।
भुक्त्वा भोगांश्च विपुलानन्ते सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १६६ ॥
ष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । वीरेश्वरस्य देवस्य नूपुरेशमथो शृणु
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये वीरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

नूपुरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीईश्वर उवाच

सप्ताधिक विजानीहि नूपुरेश्वरसञ्ज्ञकम् । यस्य दर्शनमात्रेण प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः
पुरा रथन्तरे कल्पे नूपुरो नाम वै गणः । रुद्रभक्तिपरो नित्यं पञ्चमुद्राविभूषितः

एकदा कुबेरस्य सभायां प्राप्य संस्थितः ।

प्रवृत्ते महोत्सवे तत्र अप्सरोभिः कृते तदा ॥ ३ ॥

नृत्यं प्रारब्धवत्तत्र उर्वशी योषितां वरा । रम्भा तिलोत्तमा मेना गन्धर्वैः संयुता
तासां नृत्यं तदा वीक्ष्य नूपुरो गणपस्तदा । कामबाणार्दितो नूनं तासां मध्येऽनन्तरं
नृत्यमानस्तनौ हृष्टः पुष्पगुच्छेन वक्षसि । उर्वशीं ताडयामास कामबाणप्रपीडितः
उर्वशी तु ततः क्रुद्धा पुष्पगुच्छेन ताडिता । जगाम शरणं देवं धनदं सर्वकामदम्

उवाच धनदस्तत्र कोपेनाकुलमानसः ॥ ८ ॥

यस्मात्त्वया रङ्गभङ्गः कृतः कामार्दितेन वै । तस्मात्त्वं मानुषे लोके पतस्व पापपूरुष
कुबेरस्य च शापात्तु जगाम धरणीतलम् । विललापसुदुःखार्तः किं करोमि पापिनामय
विलप्यसुभृशं सोऽथ शरण्यां परमेश्वरीम् । जगाम मनसा देवि रक्षार्थं वरदायिनीम्
त्वं मुदा तु तदा जाता प्रत्यक्षा परमेश्वरी । उवाच गणप प्रीत्या भक्तिनम्रं तदा भुवि
गच्छ पुत्रं ममादेशान्महाकालवनं शुभम् । प्राचीं सरस्वतीं तत्र प्राप्याकाराघविघ्नं

तस्या दक्षिणतो वत्स विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ।

धारया स्नात्वा च तल्लिङ्गं समाराधय भक्तितः ॥ १४ ॥

सा प्राची स च देवेशस्त्वत्राम्ना ख्यातिमेष्यति ।

इत्युक्तो नूपुरो देवि महाकालवनं गतः ॥ १५ ॥

त्वया च प्रेरितो देवि कीर्त्यर्थं तत्र गम्यताम् ।

इत्युक्तो नूपुरो दिव्यो गणो हृष्टःकृताञ्जलिः ॥ १६ ॥
महाकालवनं रम्यं देवगन्धर्वसेवितम् । ददर्श तत्र तल्लिङ्गं सुरगन्धर्वसेवितम् ॥
प्राची सरस्वती तत्र वाप्याकारा च संस्थिता ।
तस्यां स्नात्वा ततो देवं पूजयामास नूपुरः ॥ १८ ॥
ततो देवः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचाथ नूपुरम् । साधुनूपुरभद्रं तेस्वस्तिप्राप्नुहिसर्वदा
भविता वल्लभोदेव्याःपार्वत्याः शङ्करस्य च । इत्युक्तस्तेनलिङ्गेनतत्क्षणान्नूपुरःप्रिये
उदितादित्यसङ्काशोविभावसुसमद्युतिः । तेजोराशिश्चसञ्जातोदुर्निरीक्ष्यस्त्रिविष्टपैः
प्रभावं तादृशं दृष्ट्वा देवैरुक्तं वरानने !। अहो लिङ्गस्य माहात्म्यं दृश्यतेऽत्यद्भुतं भुवि
प्राप्ता च कामिकी सिद्धिर्नूपुरेण च दर्शनात् ।
अतो देवोऽद्यप्रभृति विख्यातो भूतलेऽभवत् ॥ २२ ॥
सर्वकामप्रदो नित्यंनूपुरेश्वरनामतः । दर्शनंयेकरिष्यन्तिस्नात्वावाप्यांसमाहिताः
नूपुरेश्वररुद्रस्य ते यान्ति परमं पदम् । येऽत्रपूजांकरिष्यन्ति भक्तिभावसमन्विताः
वसन्ति मुदिताः सर्वे यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ २५ ॥
जन्ममृत्युजरारोगदुःखानि विविधानि च । प्रयान्ति विलयं सद्यः पूजितेनूपुरेश्वरे
वापी गङ्गासमा सा तु स्वयमेवशुभेक्षणे । सङ्गमन्तुवितस्तायांयमुनायास्तुसुव्रते
प्रयागमेतज्जानीहि भूधरेन्द्राङ्गसम्भवे !॥ २७ ॥
सोमतीर्थं तदा देवि सर्वपातकनाशनम् । तत्र स्नात्वा पुमान्देविवाजपेयफलंलभेत्
कृष्णाष्टम्यां च यः स्नात्वा पूजयेन्नूपुरेश्वरम् ।
कुलं वै तारयेत्सोऽपि मातृकं पितृकं शतम् ॥ २६ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावःपापनाशनः । नूपुरेश्वरदेवस्यश्रूयतामभयेश्वरम् ॥ ३०॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डेऽ-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये नूपुरेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

तदा तावसुरौ भीमौ हन्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ १४ ॥
तच्छ्रुत्वा तु तदा विष्णुर्ज्ञात्वा दुःखं परम्परम् ।
क्षणं विश्रम्यतां तावत्पश्चाद् द्वन्द्वं भविष्यति ॥ १५ ॥
इत्युक्त्वाकृतसङ्केतौ तौ दैत्यौबलगर्वितौ । ब्रह्मनारायणौहन्तुंधावितौतुत्वरान्वितौ
ब्रह्मविष्णूतदा दृष्ट्वा दानवौ दुर्जयौ रणे । सन्त्रासं जग्मतुस्तत्र स्वेदकम्पपरिप्लुतौ
अन्योन्यमूचतुस्तौ हि देशकालोचितं वचः । कर्तव्यंकिं नुवाकार्यंममवातववाभवेत्
उपस्थितंभयंघोरं तत्र किं कार्यमस्तिनौ । आसन्नं मरणं दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाचकेशवम्
गम्यतांकृष्ण शीघ्रम्वै महाकालवनोत्तमम् । प्रलयेऽप्यक्षयम्प्रोक्तं तत्ररक्षाभविष्यति
अहं तत्र गमिष्यामि व्रजे त्वं तत्र केशव !॥ २० ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणाकृष्णो जगाम सह तेन च । महाकालवनम्प्राप्तौ न च दृष्टो महेश्वरः
तत्रापि दशसाहस्रं कालः पर्यटतोस्तयोः ॥ २१ ॥
ततोज्वालामयं दिव्यंनूपुरेश्वरदक्षिणे । दृष्ट्वातल्लिङ्गमाहात्म्यं ब्रह्मविष्णूततःस्वयम्
प्रार्थयाञ्चक्रतुर्देवमभयं देहि नौ प्रभो! ॥ २२ ॥
शरणं भव देवेश! दानवाभ्यां प्रपीडितौ । अभयं च ततो दत्तं तेन लिङ्गेन पार्वति!
शुश्राव गर्जितं ताभ्यां दानवाभ्यां पितामहः ।
प्रत्युवाच भयत्रस्तो लिङ्गं कम्पितकन्धरः ॥ २४ ॥
स एष मृत्युरस्माकमेति शीघ्रं भयावहः । दीयतामभयं देव! कृष्णेनोक्तं तदा प्रिये!
भयार्त्तवचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः केशवस्य च । तौ देवौ तेन लिङ्गेन जठरे सन्निवेशितौ
दृष्टं ताभ्यां जगत्सर्वं सार्कचन्द्रमहीधरम् ।
ससिद्धगन्धर्वकुलं शैलताललताकुलम् ॥ २७ ॥
समुद्रपीठसंयुक्तं नानावर्णाश्रमोज्ज्वलम् । सपातालतलं देवी सभुजङ्गमहीरुहम् ॥
ससप्तलोकविन्यासं सदेवासुरराक्षसम् ।
पुनस्तौ निःसृतौतस्माज्जठराद्विस्मयान्वितौ ॥ २९ ॥
दृष्टौ भस्मीकृतौ दैत्यौ तेनलिङ्गेन पार्वति !। तुष्टुवातेपरंलिङ्गं भक्त्यापरमयायुतौ

लिङ्गेनोक्त प्रसन्नेन मयदुर्भ्यां किं ददाम्यहम् ।
ममामोघमिदं देवो दर्शनञ्चातिदुर्लभम् ॥ ३१ ॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च वरयामासतुर्वरम् । यदि देवो वरोऽस्माकं नृणामभयदो भव
ये त्वां पूजयिष्यन्ति यक्ष्यन्ति च समाहिताः । संस्मरिष्यन्ति सततं तेषामभयदो भव
अभयेश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्यातो भुवि भविष्यसि ।
ते कृतार्था भविष्यन्ति ये त्वां पश्यन्ति भक्तितः ॥ ३४ ॥
भविष्यति भयं नैव संसारपतनं तथा । धनपुत्रकलत्राणां वियोगो न भविष्यति ॥
दुःखिता दुर्भगा नारी दर्शनं या करिष्यति । सौभाग्यसुखसंयुक्ता भविष्यति न संशयः
वीरं तु गुर्विणी कन्या पतिमाप्स्यति शोभनम् ॥ ३६ ॥
यं यं काममभिध्याय ये त्वां पश्यन्ति मानवाः ।
तं तं मनोरथं सर्वं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ३७ ॥
एवं भविष्यतीत्युक्त्वा लिङ्गेन परमेश्वरि ।
विसर्जितौ गतौ देवौ ब्रह्मविष्णू स्वमालयम् ॥ ३८ ॥
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । अभयेश्वरदेवस्य श्रूयतां पृथुकेश्वरम् ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽभयेश्वरमाहात्म्यवर्णननामाऽ-
ष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पृथुकेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

शृणु पञ्चाशदेकोनं देवेशं पृथुकेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण सार्वभौमो नरो भवेत् ॥
वंशे स्वायम्भुवे देवि! ह्यङ्गो राजाबभूव ह । मृत्योस्तुदुहितातेन परिणीतासुदुर्मुखा
वेननामा सुतोजातो नास्तिको धर्मदूषकः । देवब्रह्मस्वहारी च परभार्यापहारकः ॥
स च शप्तो द्विजैर्देवि! तत्क्षणान्निधनंगतः । तदूरोर्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनचयप्रभाः । पितुरंशात्समुत्पन्नो धार्मिको द्विजसत्तमैः ॥
मथिताद्दक्षिणाद्धस्तात्पृथुः प्रथितविक्रमः ॥ ५ ॥
स विप्रैरभिषिक्तश्च तपः कृत्वा सुदुष्करम् । विष्णोर्वरेण महता प्रभुत्वमगमन्नृपः
स च स्वाध्यायरहिता निर्वषट्कारनिर्द्धनाः ।
हाहाभूताः प्रजा दृष्ट्वा ततोऽभूद्दुःखितो नृपः ॥ ७ ॥
स दोग्धुमैच्छत्त्रैलोक्यं स देवासुरमानुषम् ॥ ८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः । क्रोधाविष्टं पृथुं दृष्ट्वा वाक्यं चेदमुवाचह
लोकत्रयविनाशायमाकोपंकुरुभूपते । पृथ्व्याऽनयाग्रासितानि सस्यानिविविधानिच
गिलितानि च अन्नानि विद्ध्येवैतन्मतं मम ॥ १० ॥
नारदस्यच वाक्येन क्रोधश्चक्रेपृथुस्तदा । निर्दग्धुमैच्छत्पृथिवीं सशैलवनकानाम्
मुमोच शस्त्रमाग्नेयं तेन सा धरणी तदा ।
दह्यमाना भयार्त्ता च गौर्भूत्वा पृथुमभ्यगात् ॥ १२ ॥
सा वध्यमाना तेनैव नृपं वचनमब्रवीत् । शरणं समनुप्राप्ता गौरहं नृपसत्तम !॥ १३॥
गौरवध्या महीपाल ! वत्सं कृत्वा च दोग्धि माम् ॥ १४ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दुदोह नृपसत्तमः ।

भास्वद्दलानि सस्यानि कृत्वा वत्स हिमालयम् ॥ १५ ॥
जाता प्रजाश्च सुमुखा प्रवृत्तश्च महोत्सवः ।
प्रवृत्ता यागदानादिक्रिया मङ्गलपूर्विका ॥ १६ ॥
राजाऽथ चिन्तयामास मया पापमिदं कृतम् ।
अवध्याश्च स्त्रियः प्रोक्ता गौरवध्या द्विजस्तथा ॥ १७ ॥
स्त्रीरूपधारिणी पृथ्वी मोहादेवा मया हता । गोवधे बहुना बुद्धिरहो पापपरम्परा
तस्माद्वह्निं प्रवेक्ष्यामि चितां कृत्वा न संशयः ॥ १८ ॥
एवं चिन्तयतस्तस्य पृथोरमिततेजसः । आजगाम पुनस्तत्र नारदो भगवानृषिः ।
दृष्ट्वा तथाविधं दीनं चिन्तयानं पृथुं प्रिये । उवाच नारदो धीमान्किमेतद्विचिन्त्यपार्थिव
ततः स कथयामास मया पापमिदं कृतम् ।
अवध्या स्त्री हता विप्र कृता बुद्धिश्च गोवधे ॥ २१ ॥
काँल्लोकांस्तु गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् । मरिष्यामि असंदेहो महापापपूरुष
अथ चेष्टोपदेशेन तु मामुद्धर भो द्विज ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कथयामास नारदः ॥
महापापप्रशमनं लिङ्गमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २३ ॥
महाकालवने लिङ्गमस्येश्वरपश्चिमम् । महापापभयकरं विद्यते तत्र भूपते ॥ २४ ॥
गच्छ त्वं सहसा राजंस्तत्र पूतो भविष्यसि ॥ २५ ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा पृथुस्तत्राजगाम सः । दृष्टालिङ्गं च वैरस्य विपापस्तत्क्षणाद
द्वादशादित्यसङ्काशो बभूव पृथिवीपतिः ॥ २ ॥
ततोऽन्तरिक्षगैर्देवैः कृतं नाम वरानने । पृथुना पूजितो यस्माद्भविष्यति महीत
अद्यप्रभृति विख्यातो देवोऽयं पृथुकेश्वरः ॥ २७ ॥
ये च द्रक्ष्यन्ति देवेशं पृथुकेश्वरमीश्वरम् । ते सर्वकामसम्पूर्णा भविष्यन्ति महीत
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि यत्पापं जायते नृणाम् ।
तत्पापं यास्यति क्षिप्रं पृथुकेश्वरदर्शनात् ॥ २९ ॥

वाचिकं मानसं वापि कायिकं गुह्यमम्भवम् । प्रकाशं वाकृतंपापंप्रसङ्गादपियत्कृतम्
तत्सर्वं यास्यंति क्षिप्रं पृथुकेश्वरदर्शनात् ॥ ३० ॥
पूजयिष्यन्ति ये भक्त्या देवं वै पृथुकेश्वरम् ।
राज्यं प्राप्स्यन्ति ते सम्यङ्नृलोके च त्रिविष्टपे ॥ ३१ ॥
भुक्त्वा राज्यं मनुष्याणां देवानां च महीतले ।
यास्यन्ति परमं स्थानं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ३२ ॥
इत्युक्त्वा देवसङ्घैश्च पूजितः पृथुकेश्वरः । पृथुः शशास पृथिवींसपत्तनांसपर्वताम्
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः । पृथुकेश्वरदेवस्य शृणु वै स्थावरेश्वरम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये पृथुकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्थावरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि! प्रयत्नेन पञ्चाशत्तममीश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण ग्रहबाधा न जायते
संज्ञानामरवेर्भार्यासासुताविश्वकर्मणः । भर्तुस्तेजोऽसहन्त्याथकदाचिच्चैवसञ्ज्ञया
छायामयी स्वात्मनस्तु निर्मिता तरसा तया ॥ २ ॥
सा प्रोक्ता सादरेणैव स्थीयतां सूर्यसन्निधौ । पृष्टयापि न वाच्यंते मदीयंगमनंरवेः
इत्युक्त्वा सा तदा सञ्ज्ञा जगाम भवनं पितुः ।
सञ्ज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायां दिवस्पतिः ।
जनयामास तनयं नामतो यः शनैश्चरः ॥ ४ ॥

तस्मिञ्जातेभय जग्मु सदेवासुरमानुषा । त्रैलोक्य जातमात्रेण क्रान्त सचराचरम्
इन्द्रोऽपि भयसन्त्रस्तो ब्रह्माण शरण गत । सूर्यपुत्रस्यवृत्तान्तकथयामासगद्गदम्
भिनत्तु रोहिणीचक्र व्याप्तनक्षत्रमण्डलम् । जातमात्रेणचाक्रान्तत्रैलोक्यरविसूनुना
वासवस्य वच श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामह । आहूय सहसा सूर्य वचनचेदमब्रवीत्
मर्यादारक्षितामात्मीयांकुरुतापुत्र सौरम । आक्रान्तनेत्रमात्रेणत्रैलोक्य भूर्भुवादिकम्

ब्रह्मणो वचन श्रु त्वा रविणा प्रोक्तवानृश ।
असा योऽयं मम सुनो वार्यता स्वयमेव तम् ॥ १० ॥
पश्य मे चरणौ दग्धौ दृष्टिमात्रेण लीलया ।
ब्रह्मापि भयसन्भ्रान्तो जगाम मनसा हरिम् ॥ ११ ॥
सूर्यस्य वचन श्रुत्वा हरि प्राप्तस्तु तत्क्षणात् ।
ब्रह्मणो वचन श्रुत्वा मौन कृष्णोऽब्रवीदिदम् ॥ १२ ॥

गम्यता तत्र यत्रास्ते देवदेवो महेश्वर । कृष्णस्य वचनात्सर्वैम्मन्त्रिकमुपागता

वृत्तान्त कथित सर्वारविपुत्रस्य यावति ।
मया स्मृतस्तु सम्प्राप्त सूर्यपुत्रस्तु तत्क्षणात् ॥ १४ ॥

अधोदृष्टिमधावूणो पङ्गूद्रोरूपवोऽसित । स्थैर्यं वानमस्कृत्यचितनोऽहशाने शने
किमर्थं वै स्मृतोदेव देवाधामशङ्कर । आदेशोनवनिष्ठामि किं करोमि प्रशाधिमाम्
इत्युक्तोऽह तदा तेन रविपुत्रणपार्थति । मया सधावितोऽस्मयं मापीडयजगत्त्रयम्

नैमोत्त देहि मे स्थान पानमाहारमेव च ।
मया दत्त विशालाक्षि पूजार्थं स्थानमुत्तमम् ॥ १८ ॥
मेषादिराशिसस्थ सप्तिशन्मासान्प्रपीडय ।
मानुषान्त्रमशो वत्स तत्र तृप्तिमवाप्स्यसि ॥ १९ ॥

अष्टमश्च चतुर्थश्च द्वितीयोजन्मसम्स्थित । द्वादशराशिसस्थोपि पीडकोभवसर्वदा
एकादशोवा षष्ठोवा तृतीयस्थानगोऽथवा । तव भक्त्यतरोनृणामन्तःपूजा भविष्यति
पञ्चमोनवमश्चैव उदासीनस्तु सतम । मकराशिगतोनित्य मानुषे कर्मभिर्युते ॥२२

पूजां प्राप्स्यसि चात्यर्थं ग्रहाणामधिकं सदा।
गतिः स्थिरा भवित्री ते चरः श्रेष्ठोऽभिधीयते ॥ २३ ॥
अतस्ते स्थावरं नाम भविष्यति महीतले।
शनैश्चरस्त्वं राशिस्थो ग्रहाणामधिको यतः ॥ २४ ॥
अतःशनैश्चरोनाम भविष्यसि सदा भुवि। गजगण्डनिभाकारोममकण्ठसमोपि च
वर्णतोह्यसितोनाम भविष्यसि महीतले। ग्रहमध्ये ह्यधोदृष्टिर्गतिर्मन्दा भविष्यति
तुष्टो ददासि राज्यं च रुष्टो वै हरसि क्षणात् ॥ २६ ॥
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः। त्वत्क्रूरदृष्टिनिहितानाशंयास्यन्तिनान्यथा
तव प्रसादात्प्राप्स्यन्ति मनोऽभीष्टं सुदुर्ल्लभम्।
अन्यच्च ते प्रदास्यामि स्थानं गुह्यं मनोहरम् ॥ २८ ॥
मनोऽभीष्टकरं पुण्यं देवदानवदुर्लभम्। प्रलयेऽप्यक्षयं प्रोक्तं महाकालवनं परम् ॥
तत्रगच्छममादेशात्पृथुकेश्वरपश्चिमे। विद्यते तत्र यल्लिङ्गं तत्ते नाम्ना भविष्यति
कीर्त्तिरेषा त्वदीयाऽपि त्रैलोक्ये भविता ध्रुवम् ॥ ३१ ॥
इत्युक्तः स्थावरो देवि! ममाज्ञापालकस्तदा।
जगाम त्वरितो रम्यं महाकालवनं शुभम् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तत्रैव तल्लिङ्गं स्थानंलब्धंसुशोभनम्। तल्लिङ्गं भुवनेख्यातंनामतःस्थावरेश्वरम्
शनिनोक्तं तदा देवि ! येऽत्र द्रक्ष्यन्ति भक्तितः।
मया प्रपूजितं लिङ्गं विख्यातं स्थावरेश्वरम्।
तेषां पीडा मदीया तु न भविष्यति कर्हिचित् ॥ ३४ ॥
मदीयेचदिनेयोवै नियमेन प्रपश्यति। तस्याहं सकलां बाधां शमयिष्याम्यसंशयम्
धक्ष्यामि सततं पीडामन्यग्रहकृतामपि। मदीयं च भयंतस्यस्वप्नेऽपि नभविष्यति
नग्रहा नपिशाचाश्च न यक्षान च राक्षसाः। विघ्नंकुर्वन्तितस्यापि मयितुष्टेनसंशयः
सङ्क्रान्तौ शनिवारे च व्यतीपातेऽयने तथा।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या लिङ्गं वै स्थावरेश्वरम् ॥

भविष्यत्यक्षयस्तेषां स्थिरो वासस्त्रिविष्टपे॥ ३८ ॥
नियमेन प्रपश्यन्ति मम वारऽत्रयेनरा । न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्थानवार्य
भविष्यति न दारिद्र्य न वैवर्ण्यवियोजनम् । दास्यामि पुत्रकामस्य पुत्रं पुत्रकृतस्य
अधनस्य धनं चैव भयार्तस्याभयं तथा । स्वर्गं चैव स्वर्गकामस्य प्रयच्छामि यथास्थितम्
इत्युक्त्वा पूजयामास भूयो लिङ्गं शनैश्चर । पूजयित्वा शुभैः पुष्पैर्नयास्तत्रैव संस्थित
एवं कथितो देवि प्रभावः पापनाशन । स्थावरेश्वरदेवस्य शूलेश्वरमथो शृणु ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये स्थावरेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकाधिकं विजानीहि पञ्चाशत्तममीश्वरम् । देवं शूलेश्वरं देवि सर्वव्याधिविनाशन
आद्ये कल्पे प्रवृत्ते च राज्यहेतोर्वरानने । देवानां दानवानां च युद्धमासीत्सुदारुण
द्वन्द्वनामीश्वरं जम्भे देवानां च शचीपतौ ॥ २ ॥
ततो देवाः पराभूता दैत्यैर्विजयिनोऽभवन् । अन्धको मन्दरं प्राप्तो दृष्टमप्राह्णिणोत्त
स दृष्ट्वा मामुवाचाथ सगर्वोद्धतमानस । अन्धकेनाहमादिष्टः शृणु शङ्कर मद्वच
गौरीं मे देहि चान्यथं मन्दरस्य यतामयम् ।
एष दूत इतायस्त्वमन्यथा नास्ति ते गतिः ॥ ५ ॥
उक्तोऽहं तेन दूतेन त्वया सह महागिरौ । स्मितानन क्षणं भूत्वा मया प्रोक्तमिदं वच
गच्छ दूत ममादेशादन्धकं प्रहिसत्वरम् । इहाभ्येत्याहवे दत्वा त्रिलोकीं सुन्दरीं म

इत्युक्तः प्रययौ दूतस्तेनाख्यातं वचो मम ।
अन्धकोऽपि तदा दैत्यः समरार्थी तु मन्दरम् ॥
समायातः सहामात्यो बलेन चतुरङ्गिणा ॥ ८ ॥
मया सहततस्तस्य घोरंयुद्धमभूच्चिरम् । अन्धकस्यरथो वीरश्छिन्नोभिन्नःसमन्ततः
ततः क्रुद्धोऽन्धको देवि! रथात्तस्मादवप्लुतः । मद्रथंबलवान्गृह्यमयासह बलोत्कटः
युयुधे स महादैत्यः शूलेन ताडितो मया ॥ १० ॥
मया धृतोऽन्तरिक्षेसशूलप्रोतोमहासुरः । शूलप्रोतोऽथवैदुष्टस्तावत्सम्भ्रामितोमया
सुस्राव तस्य गात्रेभ्यः शोणितौघस्ततो महान् ।
बिन्दौ बिन्दौ तु रक्तस्य तत्तुल्या दानवास्तथा ॥ १२ ॥
सम्भूताः कोटिशो देवि! तैरहं पुनरर्द्दितः ।
किं कर्त्तव्यमिति ध्यायन्स्थितोऽहं तत्र भामिनि !॥ १३ ॥
मया चोत्पादिता दुर्गा रक्तदन्तासुभीषणा । अन्धकस्यतदा पीतंरक्तं बहुविधंतया
तस्मिन्पीतेततो रक्तेनोत्तस्थुर्देविचापरे । पूर्वोत्थितास्तयैवाशु निहतादानवाधिपाः
तेन शूलवरेणैव तत्क्षणान्निधनं गताः ॥ १५ ॥
स मामुवाच हृष्टात्मा कृताञ्जलिपुटोऽन्धकः । त्वयिभक्तिःसदामेस्तुदुर्लभंतवदर्शनम्
स्वामिना निहतश्चाहं कोऽन्यो धन्यतरो हि मत् ।
त्वच्छूलेन विनिर्भिन्नो ह्यन्तरिक्षे ततोऽप्यहम् ॥ १७ ॥
संकल्पाक्षेपविक्षेपं कल्पकार्यप्रवर्त्तकम् । सहस्रवक्त्रशिरसं त्वामहं शरणं व्रजे ॥१८
गिरीन्द्रतनयानाथं गिरीन्द्रशिखरालयम् । महालयकृतावासं त्वामहं शरणं व्रजे ॥
एवं स्तुतोऽहंदैत्येनशूलप्रोतेन सुन्दरि !। ततो मे करुणाजाताकृतोऽन्धकोगणस्तदा
स च शुलवरो देवि! मया प्रोक्तोमुदातदा । एहिशूलहतोदैत्यस्त्वयादुष्टोऽन्धकोमृधे
परितुष्टः प्रयच्छामि परमंस्थानमुत्तमम । न देवैर्न च गन्धर्वैर्नापि तत्परमर्षिभिः ॥
सम्प्राप्यं मामनाराध्य तथा विध्वस्तकल्मषैः ।
मामुवाच ततः शूलः प्रणम्यानतकन्धरः ॥ २३ ॥

यदि प्रसन्नो भगवन्करुणा मयि चेद्यदि । स्थापय्य परं स्थानमतो मेऽत्रगुह्यपति
दुष्करमपरं मत्तोऽस्मिन्नपातकमात्मज ॥ २५ ॥
ततो यथा समादिष्टं करुणाक्लिष्टचेतसा ।
महाकालवन रम्यमतिपुण्यकरम्परम् ॥ २६ ॥
तथाऽस्मिन्नागतं लिङ्गं लोकानुग्रहकारकम् । पृथुकेश्वरपूर्वेणतदाराधय यत्नतः ॥
महेशं वचनं श्रुत्वा स जगाम त्वरान्वितः । ददर्श तत्रतल्लिङ्गमनेकफलदायकम्
लिङ्गं तत्र पुनर्दृष्टं पूर्वं सप्तावतिम् ।
सम्भूतोऽनेकधस्थान्तु दृष्टाऽऽलिङ्ग्यमालम्ब ॥ २८ ॥
स्नेहात्संदृश्य शिवोऽस्यैवं पृच्छन्तु कुशलं पुनः । कथितं तेन शुद्धेन दुःखान्यकथयत्
प्रभुणा प्रीतोऽस्त्यर्थं गुह्यार्थं भवतोऽस्मि के ।
त्वद्दर्शनेन पूतोऽहं यास्यामि शिवसन्निधौ ॥
अद्यप्रभृति भूलोके मन्नाम्ना ख्यातिमेष्यसि ॥ ३० ॥
ततो भविष्यन्त्यधिकं दर्शनात्ते शृणोम्यहम् ।
किं तीर्थैर्विविधैः स्नातैः किं दानैर्विविधैः कृतैः ॥ ३१ ॥
सौधप्रान्तात् पूत सर्वे ये त्वां द्रक्ष्यन्ति भक्तितः ॥ ३२ ॥
यः करिष्यति ते पूजां भक्तियुक्तोऽपि मानवः ।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां दिने भौमस्य भक्तितः ॥ ३३ ॥
चिमानयमारुह्याय कामगं रत्नभूषितम् । उदिताऽऽदित्यसङ्काशः स मुदा विचरिष्यति
त्वद्भाग ये प्रद्रक्ष्यन्ति सर्वदा भयपीडिताः ।
व्याधिभिः पीडिता नित्यं दुःखैवा क्लेशिता भृशम् ॥
न भविष्यति भीस्तेषां घोरसंसारसागरे ॥ ३५ ॥
ये त्वां द्रक्ष्यन्ति पुरुषा भावहीना प्रसङ्गतः ।
न पतिष्यन्ति संसारे [नरके चातिदारुणे ॥ ३६ ॥
इत्युक्त तेन शैलेन लिङ्गमाश्लिष्य यत्नतः । एतते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन

सृष्टिं कुरु ममादेशाद्विचित्रामनया सह ॥ १० ॥
इत्युक्तस्त्रिशिखो भूत्वा हिरण्यसदृशाकृतिः ।
सृष्टिमुत्पादयामास स्वशरीरान्ममाऽऽज्ञया ॥ ११ ॥

पूर्वं देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च देवताः । मनुष्याश्चपयश्चैव वेदप्रामाण्यतः कृता ॥ १
तेषां देहे प्रविष्टाना प्रादुर्भाव पुनमयत् । यथा सूतस्य सततमुद्यात्मन भवे
सह्यथोङ्कारमखिलं सदेवासुरपन्नगान् । हृतात्मगर्भे भगवानोङ्कारो जगत प्रभु
ससर्ज सर्वभूतानि कल्पान्ते पचता मजे । अव्यक्त शाश्वतश्चैव सत्य सर्वमिदं जग
कर्त्ता चैव विकर्त्ता च सहर्ताचमहास्तुय । ओङ्कारपूर्वकाद्देवा यज्ञाश्चोङ्कारपूर्वक
ओङ्कारपूर्वक ज्ञान तपश्चोङ्कारपूर्वकम् । स्वयम्भूरिति विज्ञय स ब्रह्मा भुवनाधिप

स वायुरिति विज्ञय सर्वन स प्रजाकर ।
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ॥ १८ ॥

प्रजाना पतयश्चैव सप्त चव महर्षय । वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वाश्चैव राक्षसाः ।

दैत्या पिशाचा रक्षांसि भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा म्लेच्छान्यो भुवि ॥
सर्वे चतुष्पदाश्चैव तिर्यग्योनिगतास्तथा ॥ २० ॥

जङ्गमानिच सर्वाणियश्चान्यज्जीवसञ्ज्ञकम् । हत्वासर्वमशापथ ममान्तिकमुपागत
प्रणम्य प्रयतो भू वा वचन चेदमब्रवीत् । कृता सृष्टिमयादेव त्वत्प्रसादान्महेश्वर!
देहि मे परम स्थान यथा कीर्तिर्भुवाभवेत् । ओङ्कारस्यवच श्व वामयाप्रोक्तवरानने
ममाभीष्टकर स्थान नि यमव्ययमक्षयम् । महाकालवन ग्वि यसर्वसत्व कर शुभम्
तत्र ते भविताकीर्ति शाश्वता नात्र संशय । शूलेश्वरस्य देवपूर्वभागेव्यवस्थितम्

त्रिकल्पप्रभव लिङ्गं चनाम्ना ख्यातिमेष्यति ।
ओङ्कारेश्वर इत्याख्या भविष्यति जगत्त्रये ॥ २६ ॥

इत्युक्तो हि मया देवि ओङ्कारोहृष्टमानस । दृष्ट्वा तत्रनलिङ्ग तस्मिल्लिङ्गे लयंगत
तत प्रभृति वेदेषु ओङ्कार क्रियत द्विजः । पुण्यार्थं मङ्गलार्थं च प्रथमं सर्ववस्तुषु

लयंगतो यदोङ्कारस्तदाप्रभृति पार्वति !।मयोच्यमानं लिङ्गस्य प्रभावातिशयं शृणु
यन्मुगादिसहस्रेषु व्यतीपातशतेषु च । अयनानां सहस्रेषु यत्पुण्यं समुदाहृतम् ॥
तत्पुण्यमधिकं देवि! ॐकारेश्वरदर्शनात् ॥ ३० ॥
तुर्ष्वपि च वेदेषु समधीतेषु यत्फलम् । ततोऽधिकं फलं प्रोक्तमोङ्कारेश्वरदर्शनात्
ब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं यावज्जीवं कृतेन च । तत्पुण्यमधिकंप्रोक्तमोङ्कारेश्वरदर्शनात् ॥
रीपसाधने पुण्यं यच्चपुण्यमनाशके । तत्पुण्यमधिकं देवि! ॐकारेश्वरदर्शनात् ॥
पूजायां यत्फलं प्रोक्तं तस्य सङ्ख्या न विद्यते ॥ ३४ ॥
कं यज्ञैर्बहुवित्ताढ्यैः किं तपोभिः सुदुष्करैः । ॐकारदर्शनादेव तत्फलंलभतेयतः
जनात्स्पर्शनाद्वापि कीर्त्तनाच्छ्रवणात्तथा । ॐकारेश्वरदेवस्यनराःस्युर्मुक्तिभाजनाः
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । ॐकारेश्वरदेवस्य शृणु विश्वेश्वरं परम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्यॐकारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विश्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

त्रिपञ्चाशत्तमं विद्धिसुप्रसिद्धमथेश्वरम् । परंविश्वेश्वरं ख्यातं विश्वेषुभुवनेष्वपि
बभूव नृपतिः पूर्वं विदर्भायां विदूरथः । सोऽन्तः पुरायुतोपेतंचक्रे राज्यमकण्टकम्
जघानतापसंसोऽथ प्रमादान्मृगयांगतः । कृष्णाजिनधरंशान्तंध्यायन्तंब्रह्मशाश्वतम्
मृगं मत्वा महारण्ये ब्राह्मणं दैवमोहितः । तेन कर्मविपाकेन देहान्ते रौरवं गतः ॥

तत्रासौ यातना घोरा अनुभूयात्मकालतः ।

तस्मादिहागतो मर्त्ये सर्पो विषधरोऽभवत् ॥ ५ ॥

अदशत्सोऽपि कोपेन ब्राह्मणचरणे प्रिये ॥ लकुटेन हतः सोऽपि पञ्चत्वं तत्क्षणाद्
च्युतस्तु नरकात्सिंहो द्वितीयेऽभूत्सुदारुणः । राजानं भक्षयामास राजलोकैर्निपातितः
पुनर्व्याघ्रो बभूवासौ तृतीयेऽपि भवान्तरे । तीक्ष्णपादनखैर्घोरैर्घातयामास सूकरं
तेनापि वैश्यो निधनं नीतः कश्चिद्वनान्तरे । निषादैर्निहतः सोऽपि प्राणैः पञ्चत्वमागतः
चतुर्थेऽपि गजो जातः सिंहाद्भयमवाप्तवान् । पञ्चमे मकरो जातः क्षाराम्भसि महोदरः
स्नातुकामामयो रामामाश्रयानासिपायहृत् । धीवरैः हृतधिक्कारैर्बडिशैः सन्निपातितः
पुनः षष्ठे भवे नाम पिशाच पिशिताशनः । सिद्धमन्त्रैर्यथोद्गीरैर्यथं प्रमयैन्द्र राम्
मन्त्रा मन्त्रविदा श्रेष्ठो ब्राह्मणस्तं जयानह । सप्तमे पुनर्जातो दुर्निराक्ष्यः पुभ्रंश

ताम्रपत्रद्रष्ट्रः करालास्यो मांसशोणितभोजनः ।

शुष्काङ्गो मरुभूमौ तु (?) पापिष्ठो ब्रह्मराक्षसः ॥ १४ ॥

आकृष्य निमिराजेन राज्ञा राक्षसशत्रुणा ।

समारोप्य धनुः सद्यो ब्रह्मास्त्रेण निपातितः ॥ १५ ॥

द्वादश सायमयोऽभूदतिकृष्णोऽष्टम भवे । स शूकरस्तु राघातमयो पञ्चत्वमागतः ।

नवमं जम्बुको जातः श्मशाने स च मांसभुक् ।

शीलयास्स निधनं प्राप्तो दुःखार्तो श्वापदैर्हतः ॥ १७ ॥

दशमे स्वमयद्गृध्रस्तीक्ष्णतुण्डो भयावहः । पूतिमांसवसाहारो रोगेण निधनं गतः

एकादशेऽपि चाण्डालो गतोऽवन्त्यां वरानने ।

द्रव्यस्य हरणार्थं वै प्रविष्टो द्विजवेश्मनि ॥ १६ ॥

स दण्डपाशिकैर्नैव प्राप्तो बद्धश्च तत्क्षणात् । आनीतो हिमघातार्थं यत्र वृक्षाग्रे ह्यवलम्बितः
तत्रैव लिङ्गमासन्नं सान्धिशूलेश्वरोत्तरे । तस्य दृष्टिपथं प्राप्तमतिविस्मयचेतसः ।
क्षणेन निधनं प्राप्तः स गतस्त्रिदशालयम् । तत्र भुक्त्वा वरान्भोगानवतीर्य च भूतले
जातः ख्यातो विदर्भायां विश्वेशो नाम पार्थिवः । जातिस्मरत्वमापन्नो लिङ्गदर्शनपुण्यतः

दुर्लभान्बुभुजे भोगान्प्राप्तं राज्यञ्चकार सः ।
सोऽभिषिच्य सुतं राज्ये विनीतमतिधर्मवित् ॥
संस्मरन्पूर्ववृत्तान्तं जगामाऽवन्तिकां पुरीम् ॥ २४ ॥
तत्र दृष्ट्वा महल्लिङ्गं दुर्दर्शमतितेजसा । दिव्येनचक्षुषाऽपश्यल्लिङ्गमध्ये चराचरम् ॥२५
लिङ्गमध्येस्थिताःसर्वेसागराःसरितस्तथा ।।द्वीपाश्चपर्वताश्चैवतथान्यादित्यभृतयः
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्चाश्विना सह । धनदोवरुणश्चैव यमः शक्रोमरुत्पतिः
मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । नागायक्षाःपिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः
ब्रह्माद्या देवताश्चान्याः स्कन्दो लम्बोदरस्तथा ।
सर्वं त्रिभुवनं देवि! लिङ्गमध्ये विलोकितम् ॥ २९ ॥
प्रभावं तस्य लिङ्गस्य ज्ञात्वा सम्यङ् महीपतिः ।
संयतः पूजयामास विश्वयोनिं महेश्वरम् ॥ ३० ॥
प्रसन्नश्चाभवत्तस्य वचनंचेदमब्रवीत् । वरं वरय भद्रं ते किमभीष्टं ददामि ते ॥३१॥
तेनोक्तंवचनंराज्ञायदितुष्टोसि मे प्रभो । ये त्वांपश्यन्तिमनुजाःश्रद्धयाऽश्रद्धयाऽथवा
मा भूत्तेषां प्रपतनं घोरे संसारसागरे । विश्वेश्वरेति नाम्ना वै प्रसिद्धो भव भूतले
इत्युक्ते वचने भूयो विश्वेशोऽलङ्कृतोगणैः । विमानेनसुदीप्तेनगतोलोकं मदीयकम्
गणैर्नानाविधैःसार्द्धंस्तूयमानो वरानने!। । किरीटीकुण्डलीचैव मुक्ताहारविभूषितः
विमानं तस्य तद्दिव्यं परिक्रम्य समन्ततः ॥ ३५ ॥
समहेन्द्रधनाध्यक्षनानानाकनिवासिनः । मुनयःसिद्धगन्धर्वास्तथाचाप्सरसांगणाः
नृत्येनाऽमरनारीणांविलोकितविनोदकः । युगकोटिसहस्रं तु मत्समीपेव्यवस्थितः
अतो देवि भुवि ख्यातोदेवोविश्वेश्वरेश्वरः । दृष्ट्वा लिङ्गञ्चविश्वेशं पातकैर्विप्रमुच्यते
सप्तजन्मकृतैर्देही मनोवाकायकर्मभिः । दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं कृतकृत्यत्वमाप्यते ॥
तस्य नश्यति दौर्भाग्यमलक्ष्मीर्नाशमेति च ।
प्राप्नोति देही कामांश्च समृद्धिं मानसीं सदा ॥ ४० ॥
दुःस्वप्नो व्याधयः क्रूरा ग्रहा भूताश्च दारुणाः ।

प्रणश्यन्ति वरारोहे विश्वेशे पूजिते सदा ॥ ४२ ॥
ये केचिच्छ्रद्धया युक्ता लिङ्गमाराधयन्ति वै । ते सर्वकामसम्पन्ना जायन्तेऽथ युगे युगे
अन्ते गतिश्च सा दिव्या जायते मत्प्रसादतः । यत्र सम्पूज्यते लिङ्गं तस्मिन्देशे शुभा श्रिया
॥ तत्र दुर्भिक्षभयं नापमृत्युभयं क्वचित् । प्रेतयोनौ च वैताला न भागा नव दुर्दिन
वतेत च विष्णुब्रह्मा न्द्रकुबेरवरुणादयः । लिङ्गार्चनेन सम्प्राप्ता परां सिद्धिं महोत्तम
एवं ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः ।
विश्वेश्वरस्य देवस्य कण्टेश्वरमतः शृणु ॥ ४६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये विश्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कण्टेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

चतुःपञ्चाशतं विद्धि देवं कण्टेश्वरप्रिये । यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत्
आद्यकल्पे पुरा देवि राजाऽभूत्सत्यविक्रमः ।
स शत्रुभिर्जितः सङ्ख्ये हृतकोशोऽतिदुःखितः ॥ २ ॥
वनं जगाम गहनमेकाकी श्रमकर्शितः । तत्राऽऽश्रमं ददर्शाऽथ वसिष्ठस्य महात्मनः
तेनर्षिणा वसिष्ठेन दृष्टमात्रः स भूपतिः । पूजितो विष्टरार्घेण राजार्हेण च सादरम्
ज्ञात्वा तपःप्रभावेण सूर्यवंशोद्भवं नृपम् । पप्रच्छाऽऽगमनं देवि कुशलं च पुनः पुनः
स नृपः कथयामास वसिष्ठाय सुदुःखितः ।
राज्यं च सकलं ब्रह्मन् हृतं विद्विषिभिर्मम ॥ ६ ॥

त्वामहं शरणं प्राप्तो दुःखैकायतनो यतः ।
निष्कण्टकं कथं राज्यं भविष्यति पुनः प्रभो !।
उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ॥ ७ ॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः । ध्यात्वाचकथयामास बहुकौतूहलान्वितः
महाकालवनंभूप! व्रज त्वं कार्यसिद्धये । दिव्या नदी वने तत्र विश्रुता भुवनत्रये ॥
तस्यास्तीरे शुभं लिङ्गं पृथुकेश्वरदक्षिणे । द्रक्ष्यसेनृपशार्दूलतपस्यन्तं च तापसम्
अस्थिचर्मावशेषं तु चीरवल्कलधारिणम् ॥ १० ॥
वचनात्तस्य विप्रस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
जगाम सहसा राजा महाकालवनं शुभम् ॥ ११ ॥
ददर्श तापसं तत्र चिरञ्जीविनमव्ययम् । उपवासकृतक्षामं द्वादशादित्यवर्चसम् ॥
तापसेन नृपो दृष्टो मित्रोऽयंमम वल्लभः । प्राप्तोराज्यपरिभ्रष्टो ज्ञात्वा वचनमब्रवीत्
एह्येहि नृपशार्दूल! दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मेऽन्तिके ।।
इत्युक्त्वा तापसेनैव हुङ्कारश्च कृतस्तदा ॥ १४ ॥
तद्धुङ्कारात्तु पातालं भित्वा पञ्च च कन्यकाः ।
निर्ययुः काञ्चनं पीठमेका तासां प्रगृह्य वै ॥ १५ ॥
भृङ्गारंतुगृहीत्वान्यानिःसृताजलसम्भृतम् । पादप्रक्षालनार्थाय तृतीया समुपस्थिता
अन्येद्वे व्यजनेगृह्य पार्श्वाभ्याञ्च व्यवस्थिते । ततो हुङ्कारमकरोत्पुनरेव महातपाः
तेन हुङ्कारशब्देन देवलोकात्समागतम् । दृष्टाश्चाप्सरसां सङ्घं नृत्यगीतमनोहरम्
अनन्तरं ददर्शाथ लिङ्गं ज्योतिष्करं परम् ।
उत्पन्नं च जगद्यस्मिल्लीयते सचराचरम् ॥ १६ ॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टो बभूव नृपसत्तमः । प्रणम्यशिरसाविप्रं किमिदं द्विजसत्तम
एवंपृष्टोनृपेणाथ स विप्रो वाक्यमब्रवीत् । सप्तजन्मनिराजेन्द्र! त्वयाऽहंपरितोषितः
अतस्ते दर्शितामाया तपसादुष्करेण तु । लिङ्गस्यास्य प्रभावेण पश्यमेतपसोबलम्
हुङ्कारेण कृतापृथ्वी जलपूर्णा तु तत्क्षणात् । हुङ्काराच्चजलंग्रस्तं मुखादग्निरजायत

हुङ्कारान्नृपधिर्या सर्वा आतापहिमवी तदा । संहृत्य तत्क्षणाद्वह्निमुखाद्वायुर्दिशिर्यथौ
हुङ्कारेण कृतं सर्वं तत्क्षणादेव पार्थिव ॥
न दिशः प्रदिशो वापि न नक्षत्रग्रहास्तदा ॥ २६ ॥
ततो बभ्राम तत्रास्ति स नृपो विस्मयान्वित ।
चिन्तयामास सहसा क स्थितु क च तापस ॥ २७ ॥
एवं चिन्तयतस्तस्य तत शब्दो महानभूत् । तस्मात्कुण्डाच्च सञ्जातं तुर्दशकारसम्भूत
सुहर्म्यंकक्ष्यारचितं विशाल विशुद्धजाम्बूनदभूषितं च ।
दिव्यैर्जनै सेवितमान्नविद्विर्ददर्श राजा सहसा पुरं तत् ॥ २८ ॥
भूयोऽपि च महाशब्दस्तस्मात्स्त्रीयुगलं परमौ । सितवस्त्रधरा चैका कृष्णवस्त्रधरा सि
पुन शब्दो बभूवाथ तस्मात्पुरुषसत्तम । द्विशिरा षण्मुखश्चैव पादैर्द्वादशभिर्यु
पुन शब्दाच्च सञ्जातं पुरुष सप्तधा गत । सहसं हि पुनस्तत्र दर्शयित्वा द्विजेन तु
प्रोक्त स्निग्ध विशालाक्षि ज्ञात कण्ठकित नृपम् ॥ ३३ ॥
पश्य लोकमिमं मया तपसा निर्मित नृप । त्वत्प्रियार्थमयं लोको दर्शितस्ते नृपोत्तम
एवमुक्तस्तदा तेन तापसेन नराधिप । विस्मयापन्नहृदय पप्रच्छ प्रयत सुधी
भगवन् सितकृष्णे द्वे के स्त्रियौ द्विजसत्तम ।
कोऽसौ द्वादशपाद्विप्र द्विशिरा षण्मुख पुन ॥ ३४ ॥
कश्चासौ पुरुषो ब्रह्मन् एक सप्तधाऽभवत् ।
तस्य तद्वचन श्रुत्वा कथयामास तापस ॥ ३५ ॥
ये स्त्रियौ त्वया दृष्टे सितकृष्णे नृपोत्तम । ते च रात्र्यहनी प्रोक्ते ब्रह्मणा निर्मिते पुर
शीर्षद्वयञ्च यद्दृष्टं तेऽयने द्वे प्रकीर्तिते । मुखानि यानि दृष्टानि षट् च ते ऋतव स्मृता
पादा द्वादश ये दृष्टा मासा द्वादश ते स्मृता ॥ ३७ ॥
य पुमान्सप्तधा जात एकीभूतो नरेश्वर । स समुद्रस्तु विज्ञेय सप्तधैकोऽप्यवस्थित
एतत्सम्वत्सरं चक्रं त्वत्प्रियार्थं निदर्शितम् ।
एवं विदित्वा राजेन्द्र! न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ३८ ॥

सर्वो विनश्वरो लोकः सदेवासुरमानुषः। मया दृष्टोहि वहुशोलिङ्गस्यास्यप्रभावतः
कुरु शत्रुविनाशाय लिङ्गस्यास्य च दर्शनम्।
राज्यं निष्कण्टकं राजन्भविष्यति न संशयः॥ ४१॥
एवमुक्तस्तदा राजा दृष्टवाँल्लिङ्गमुत्तमम्। दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य कण्टका ये महीभृतः
विद्वेषिणो मृतास्तेऽपि श्रुतास्तेन महीभृता॥ ४२॥
गतस्तंविषयं राजा चक्रवर्ती वभूव ह। लिङ्गस्यास्यप्रभावेण राज्यंकृत्वा महाध्वनैः
यज्ञैश्चविविधैरिष्ट्वा परं निर्वाणमाप्तवान्। तापसेन श्रुतं सर्वं दृष्टं ध्यानेन तेन वै॥
लब्धं निष्कण्टकं राज्यं लिङ्गस्यास्य च दर्शनात्।
मम मित्रेण सहसा राज्यभ्रष्टेन तेन वै॥ ४५॥
अतोनाम सुविख्यातंकण्टेश्वरइतिक्षितौ। भविष्यति न सन्देहोदर्शनाद्राज्यदायकः
अद्यप्रभृति पश्यन्ति देवंकण्टेश्वरंशिवम्। तेषाञ्चकण्टकाःसद्योविनश्यन्तिनसंशयः
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारेच पुष्करे। स्नानात्संसेवनाद्वापि यत्पुण्यं च भविष्यति
तत्पुण्यं भविता सम्यक्छ्रीकण्टेश्वरदर्शनात॥ ४८॥
गृहिणो लिङ्गिनो वापि ये पश्यन्ति यतव्रताः।
देवं कण्टेश्वरं भक्त्या तेषां सिद्धिर्भविष्यति॥ ४९॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्।
तत्सर्वं यास्य॑ति क्षिप्रं श्रीकण्टेश्वरदर्शनात्॥ ५०॥
दत्तंजप्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृत च यत। ध्यानमध्ययनञ्चैव सर्वं भवति चाक्षयम्
एवं ब्रुवाणं तं वि॰ तापसं संशितव्रतम्। लिङ्गेनोक्तं विशालाक्षि! तुष्टेन वरपूर्वकम्
जरारोगविनिर्मुक्तः सर्वशोकविवर्जितः। भविष्यति गणाध्यक्षो वरदः सर्वपूजितः
अवध्यश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यसमन्वितः॥ ५३॥
एवमुक्तोऽथ लिङ्गेन तापसो गणतांगतः। गणैः परिवृतो देवि! मम पार्श्वमुपागतः
अन्धकेन पुरा युद्धे सिंहनादो यदा कृतः।
तदा देवि! मदीयन्तु जातं कण्टकितं वपुः॥ ५५॥

कल्पेन च तदा लिङ्गमशेषारिविनाशनम् । देवानां कण्टका येन दग्धा लिङ्गाग्निना यत

अत कण्टेश्वरो देवो विख्यातो भुवनत्रये ॥ ५६ ॥

एष ते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन ।

कण्टेश्वरस्य देवस्य शृणु सिंहेश्वरम्परम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये कण्टेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम

चतु पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय

सिंहेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीईश्वर उवाच

पञ्चाधिक विजानीहि पञ्चाशत्तममीश्वरम् । सिंहेश्वर वरारोहे महाभयविनाशनम्

सत्य कल्पे त्वयादेवि मन्त्र्थं हिमवत्तप । कृत नीलोत्पलापाङ्गि भीषणसंशितव्रता

तपसा तव तीव्रेण दग्ध हि भुवनत्रयम् ॥ २ ॥

दुष्करं हितपो ज्ञात्वाभगवाञ्चतुरानन । आगत्योवाचदेवेशो देवि त्वोशुभयागिर

किं पुत्रि प्राप्तुकामासि किमलभ्य ददामि त ।

विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्ममाज्ञया ॥ ४ ॥

त्वया च वचन श्रुत्वा गुरोर्गौरवगर्भितम् । प्रियतथ्यहितं तत्र वचनिर्णीतवाञ्छितम्

प्रत्युक्त स तदाब्रह्माप्रणामनम्रया त्वया । तपसा दुष्करेणात्र पतित्वे शङ्करो मया

स मा श्यामलवर्णेति बहुश प्रोक्तवान्भव । श्यामाह काञ्चनाकाराघल्लभेनच संयुता

भर्त्रा भूतपतिवश्य कथं स्यादिति मे तप ॥ ७ ॥

त्वदीय वचन श्रुत्वा वरार्हो वरद प्रभु । एव भविष्यतीत्याह ब्रह्मा लोकपितामह

कियता चैव कालेन वाञ्छासिद्धिर्भविष्यति ।
गौरीनाम्ना तु ते मूर्त्तिः कान्त्या दीप्ता भविष्यति ॥ ९ ॥
एतच्छ्रुत्वा त्वया वाक्यं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
क्रुद्धा त्वं गिरिजेऽत्यर्थं कालेऽभीष्टं भविष्यति ॥ १० ॥
क्रोधात्सिंहः समुद्भूतो वदनात्ते भयावहः । विवृतास्यो महारौद्रो जटाजटिलकन्धरः
प्रोद्धूतवल्गुलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखोत्कटः ।
तस्याऽऽस्ये पतितुं देवि! व्यवसायः कृतस्त्वया ॥ १२ ॥
सोऽपि सिंहः क्षुधाविष्टस्त्वां भक्षयितुमुद्यतः ।
नचैवासौ समर्थोऽभूद्वीक्षितुं वा तपोधिकाम् ॥ १३ ॥
स दह्यमानः सहसा तेजसा तपसा तव । पराङ्मुखः समभवत्प्राणत्राणपरायणः ॥
ततस्तवाभूत्करुणा सिंहं प्रति यतव्रते ॥ क्षुधितस्य त्वया तस्य क्षीरं ह्यमृतसन्निभम्
उत्पादितं स्तनाभ्यां तु तस्य सिंहस्य कारणात् । तथापि दह्यतेऽत्यर्थं दुष्टभावं यतो गतः
तेनोक्तं दह्यमानेन मातर्दग्धोऽस्मि तेजसा । त्वदीयेन दुराचारो दुष्टोऽहं पापविग्रहः ॥
त्वामत्तुकामो दुष्टात्मा त्वयाहं जनितोऽधुना । तस्माद्यास्यामि नरकं मातृहा गुरुघातकः
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य सुतस्य तु । ममत्वेन विशालाक्षि सिंहस्य कथितं त्वया
अवन्त्यां विद्यते क्षेत्रं महाकालवनं सुत ॥ तत्र गच्छ ममादेशात् शीघ्रं देवविनिर्मितम्
कण्टेश्वरस्य देवस्य समीपे लिङ्गमुत्तमम् । सिंहनादात्समुत्पन्नं शङ्करस्य महात्मनः
अन्धकासुरयुद्धे वै पीडिते वासवे पुरा । त्वदीयं वचनं श्रुत्वा सिंहस्त्वरितविक्रमः
गतो महाकालवनं दृष्टो देवोऽथ तत्क्षणात् ।
दिव्यदेहो मृगारिस्तु जातो लिङ्गस्य दर्शनात् ॥ २३ ॥
ममत्वात्तस्य लिङ्गस्य त्वं गता तत्र पार्वति । सिंहिकारूपमास्थाय शीघ्रं सिंहस्त्वया प्रिये
दृष्टो दिव्यशरीरस्तु लिङ्गस्यास्य प्रभावतः । तव तुष्टिः परा जाता दृष्ट्वा सिंहं महाद्युतिम्
कृतं नाम त्वया देवि! लिङ्गस्यास्य वरानने ।
दिव्यदेहस्तु सिंहोऽयं जातो लिङ्गस्य दर्शनात् ॥ २६ ॥

अतः सिद्धेश्वरो देवो भुवि ख्यातो भविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सम्प्राप्तस्तत्र सुव्रते
उवाच त्वां वरारोहे देवैः परिवृतस्तदा ॥ २७ ॥
यस्मात्सिद्धः सम्भूतस्तव क्रोधात्सुलोचने । ततोऽसौ नामतो देवि भविष्यति न संशयः
लिङ्गं सिद्धेश्वरं भक्त्या यः पश्यति समाहितः ।
तस्य वासोऽक्षयो दिव्यो भविष्यति त्रिविष्टपे ॥ २८ ॥
कीर्तनान्मुच्यते पापाद्दुःस्वप्नमङ्गापि पश्यति । स्पर्शनादस्य लिङ्गस्य पुनात्यासप्तमं कुलम्
मनसा चिन्तितान्कामांस्तांश्च प्राप्नोति पुष्कलान् ।
तदैव पुरुषो मुक्तो जन्मदुःखजरादिभिः ॥ ३१ ॥
यदा पश्यति सिद्धेशं संसारार्णवतारकम् ।
व्यालव्याघ्रादयश्चौरास्तथा साहसिकाश्च ये ॥ ३२ ॥
तेभ्यो भयं न भवति श्रीसिद्धेश्वरदर्शनात् । यज्ञानां तपसां चैव दानानां चैव यत्फलम्
तत्फलं जायते सद्यो दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं शिवम् ॥ ३३ ॥
मदीयं लोकमाप्नोति सुरासुरनमस्कृतम् । यः पश्यति प्रयत्नेन देवं सिद्धेश्वरं तदा ।
इत्युक्त्वाऽसौ जगामाऽथ ब्रह्मा लोकं स्वकं प्रिये ।
यद्गुप्तस्तव पूर्वं स्यात्कोपकालिमकल्मिषम् ॥
प्रभावात्तस्य लिङ्गस्य गौरत्वं प्राप्तमद्भुतम् ॥ ३४ ॥
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । सिद्धेश्वरस्य देवस्य रेवन्तेशमतः शृणु
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रेवन्तेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

ञ्चाशत्तमं विद्धि रेवन्तेश्वरसञ्ज्ञकम् । यस्य दर्शनमात्रेण परा सिद्धिः प्रजायते
हन्ती पुरा सञ्ज्ञारवेस्तेजोऽतिदुःसहम् । तपःकर्त्तुं गतादेवि! ज्ञातासूर्येणसुव्रता
वरूपं ततः कृत्वा जगामाथोत्तरान्कुरून् । ददृशेतत्र सञ्ज्ञांचवडवारूपधारिणीम्
। सा सम्मुखं तस्यपृष्ठरक्षणतत्परा । ततोऽभून्नासिकायोगस्तयोस्तत्र समेतयोः
रत्यदस्रौ तनयावश्ववक्त्रौविनिर्गतौ । रेतसोऽन्तेच रेवन्तः खड्गीचर्मीतनुत्रधृक्
वारूढः समुद्भूतस्ततो वाणधनुर्द्धरः । तेन वै जातमात्रेण अश्वारूढेन लीलया
निर्जितं च जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥ ७ ॥
तो देवाः पराभूता ब्रह्माणं शरणं गताः । प्रणम्य कथयामासुर्भयकम्पितकन्धराः ॥
स्माकं विभवं तेजो रविपुत्रेण नाशितम् । रेवन्तेन सुरेन्द्रेण शृणु लोकपितामह
तस्य गात्रसमुद्भूतो वह्निर्धावति कालजित् ।
ज्वलन्ति पादपास्तेन पतन्ति शिखराणि च १० ॥
र्वतो व्याकुलीभूतंहाहाकारमचेतनम् । तेनैवपीडितं सर्वं ज्वालामालासमाकुलम्
दिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः । सर्वं किंशुकसङ्काशं प्रज्वलन्निव दृश्यते ॥
ते तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मणोक्तंवरानने !। ज्ञातं मया सुरश्रेष्ठाभवतां कार्यमीदृशम्
भविष्यति च वस्तच्च काङ्क्षितं यत्सुरोत्तमाः ।
गच्छध्वं सहसा तस्माच्छङ्करं शरणं सुराः !॥ १४ ॥
ह्मणो वचनं श्रुत्वा ममान्तिकमुपागताः । त्रिदशा भयसंत्रस्तानत्वामामिदमब्रुवन्
ादित्यतनयेनैव रेवन्तेन महेश्वर !। दग्धं त्रिभुवनं सर्वं शरीरस्थेन वह्निना ॥
तेजसा महता चैव विक्रमेण बलेनच ॥ १६ ॥

असाध्यं विदुः सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम । भवान्प्रभवते नान्यः शङ्कर कथञ्चन
त्वां प्रपद्यामहे सर्वे भयार्त्ताः शरणार्थिनः । शरण्यं वरदं देवं त्रिदशानां महेश्वरं ॥
मया स्मृतः सूर्यपुत्रो रेवन्तस्तत्क्षणात्प्रिये । प्राप्तः प्रीतिप्रसन्नात्मा वचनं चेदमब्रवीत्
किं मया देव कर्तव्यं ब्रूहि सर्वं सदाशिव । ततो मया सूर्यपुत्र उत्सङ्गे च कृतस्तदा

स्नेहादाघ्राय मूर्ध्नि परिष्वज्य पुनः पुनः ।
वदामि ते महाभाग वरं वरय सुव्रत ॥ २१ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते काम यथेष्टं काममाप्नुहि । इदमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैव मयाप्स्यसि
ममाभीष्टं परं स्थानं विद्यते पृथिवीतले । अक्षयं प्रलये पुत्र महाकालवनं शुभम् ॥

तत्र दास्यामि ते स्थानं तत्र कीर्तिर्भविष्यति ॥ २३ ॥

पूर्वे कण्टेश्वरस्यापि स्थानं परमदुर्लभम् । तत्र त्वं वत्स रेवन्त लिङ्गं द्रक्ष्यसि शाश्वतम्

सर्वदा त्रिदशैः पूज्यो भविष्यसि न संशयः ।
गुह्यकाधिपतिस्त्वं च स्वर्गलोके भविष्यसि ॥ २४ ॥

अश्ववाहास्तु सर्वास्तु पूजनीया भविष्यति । भूपतीनां गृहे चैव भविष्यसि सुपूजितः

गतो मदीयं तत्स्थानं लिङ्गाकारं सनातनम् ।
पूजितं त्रिदशैस्तत्र संसेव्यं वत्सलस्त्वया ॥ २५ ॥

एवमुक्तो मया देवि रेवन्तो रविजस्तदा । आगमाकाशमाविश्य महाकालवनं क्षणात्
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्थिताकारं सनातनम् । सूर्यपुत्रस्तु रेवन्तो दृष्टो लिङ्गेन पार्वति ॥
प्रोक्तः प्रणयपूर्वेण लिङ्गेनाहं दृष्टोऽसि सूर्यज । अद्यप्रभृति ते नाम्ना ख्यातिं यास्यामि भूतले
स्थानं च मत्समीपे तु सूर्यपुत्र यथा सदा । अक्षया भविता कीर्तिस्ते यावद्भुवनत्रये
रेवन्तेश्वरसंज्ञोऽहं भविष्यामि न संशयः । ये मां द्रक्ष्यन्ति रेवन्त भक्त्या परमया युताः

तेषामश्वा भविष्यन्ति विजयो यश ऊर्जितम् ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्यं दानशक्तिश्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् । गुह्यकानां पतिर्भूत्वा स्वर्गलोके सदा स्थितिः
लिङ्गस्य वचनं श्रुत्वा प्रोक्तं वै रविसूनुना । रेवन्तेन विशालाक्षि सन्तुष्टेनान्तरात्मना

देहि मे ह्यचलां भक्तिं देहि मे स्थानमुत्तमम् ।

देहि मे परमं ज्ञानं ध्रुवां कीर्तिं च देहि मे ॥ ३५ ॥

भगवन्भूतभव्येश भवबन्धभयापह !। संस्कृतार्थोऽस्मिसञ्जातस्तव देवस्य दर्शनात्

जन्मकोटिसुसंशुद्धा ये त्वां पश्यन्ति देहिनः ।

न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारसागरे ॥ ३७ ॥

इत्युक्त्वा रविसूनुर्वै रेवन्तो रविवल्लभः । रेवन्तेश्वरदेवस्य समीपेऽसंव्यवस्थितः

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । रेवन्तेश्वरदेवस्य घण्टेश्वरमथो शृणु ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-

ऽचतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये रेवन्तेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम-

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

——:*:——

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

घण्टेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

सप्तपञ्चाशतं विद्धि घण्टेश्वरमथो शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण कामावाप्तिश्च जायते ॥

घण्टोनाम गणश्रेष्ठो बभूव मम वल्लभः । चाक्षुषस्य मनोः काले कौतुकार्थंयदृच्छया

प्रस्थितो ब्रह्मसदनं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ॥ २ ॥

अथायान्तं समालोक्य गन्धर्वं गीतकोविदम् ।

चित्रसेनं गणश्रेष्ठः पप्रच्छ कुशलं मुदा ॥ ३ ॥

मया तत्रैव गन्तव्यं सदने परमेष्ठिनः । गीतैराराधयिष्यामि ब्रह्माणं जगतां पतिम्

चित्रसेनोऽथतंदेवि! प्रत्युक्तोघण्टमब्रवीत् । पद्मयोनिः सुरैःसार्धंगुह्यंमन्त्रमचीकरत्

एतच्छ्रुत्वा गणो घण्टस्तस्थौ विस्मितमानसः ।

मुहूर्तं चिन्तयामास प्रतिहारनिवारितः ॥ ६ ॥

हित्वा स्वामिनमीशानं द्रष्टुं ब्रह्माणमागतः । प्रवेशोऽपि न लभ्येत प्रसादो दूरतः स्थितः
एवं चिन्तयतस्तस्य मासः संवत्सरो गतः ।
घण्टस्य ब्रह्मणो द्वारि प्रवेशो देवि! नाऽभवत् ॥ ८ ॥
निर्गच्छन्तमथालोक्य वीणाहस्तमसुत्सुकम् । नारदं सगणश्रेष्ठः पद्मयोनिगृहोदरात्
प्रोक्तो घण्टेन सहसा मां निरीक्ष्य नारद !। गणोऽहं गीतनरनाथो महादेवस्य धाम
दर्शनार्थं समायातो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । घण्टस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतिमानभवन्मुनि
नारदः प्रत्युवाचेदं समाभाष्य स्वकं तथा ॥ ११ ॥
अहं बृहस्पतेः पार्श्वं प्रेषितोऽस्मि गणाधिप !।
किञ्चित्कार्यान्तरं प्रष्टुं ब्रह्मणाऽलोककर्तृणा ।
आयास्यामि क्षणेनैव तावत्कालं प्रतीक्ष्यताम् ॥ १२ ॥
इत्युक्त्वा नारदो देवि! ममपार्श्वमुपागतः । वृत्तान्तं कथयामास घण्टस्य मुनिसत्तम
ईदृशो दुर्लभो भृत्यो घण्टेन सदृशः प्रभो । यस्त्यक्त्वा चागणोद्भवसेवायै परमेष्ठिन
स्थितः संवत्सरं सार्धं प्रवेशं न च लब्धवान् ॥ १४ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य मुनेस्तदा । मयाशप्तस्तु कोपेन पत घण्ट! महीतले
मां त्यक्त्वा हि गतोऽन्यत्र सेवार्थं परवेश्मनि ।
मयेत्युक्ते च वचने ब्रह्मद्वारि स्थितोऽपि सन् ॥ १६ ॥
पतितो भूतले घण्टो देवदारुवनान्तिके । आत्मानं पतितं दृष्ट्वा भूमौ घण्टेन पार्वति!॥
प्रोक्तं शोकोत्तरेणैव वचनं गद्गदाक्षरम् । सेवार्थं याति योऽन्यत्र परित्यज्य स्वकं प्रभुम्
स याति नरकं घोरमपकीर्तिं च विन्दति । नारदेन मम स्वयं वञ्चितस्त्वद्रूपगतम्
यस्मात्स्वामी न मे ब्रह्मा न च देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥
एवं विलपतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः । आजगाम तमुद्देशं यत्र घण्टोऽप्यवस्थितः
देवदारुवने देवि! दर्शनार्थं तपस्विनाम् । घण्टेन नारदो दृष्टो भीतेनाऽऽकुलचेतसा॥
अवस्थामीदृशीं कृत्वा किमन्यन्मे करिष्यति ।
एवं तं चिन्तयानं तु नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

गणाध्यक्ष! नतेकार्योमन्युःपुण्यविनाशनः । कौरव्यंथंपतितोघण्टप्रायश्चित्तार्थमेवच
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रभुं प्राप्स्यसि शङ्करम् ।
तस्माद्गच्छ ममादेशान्महाकालवनं शुभम् ॥ २४ ॥
रेवन्तेश्वरपूर्वे तु विद्यते लिङ्गमुत्तमम् । सर्वसम्पत्करं दिव्यंत्वन्नाम्नाख्यातिमेष्यति
इत्युक्तो नारदेनैव जैगीषव्यः समागतः । तेनापि कथितं सर्वं सत्यमुक्तमनेन वै ॥
नारदेन गणाध्यक्ष! कीर्त्तिस्ते भविताऽक्षया ।
कश्यपेन मृकण्डेन कण्वेन जमदग्निना ॥ २८ ॥
अत्रिणा भृगुणा देवि!लोमशेनसुरर्षिणा । प्रोक्तोघण्टोगतः शीघ्रं महाकालवनंशुभम्
यत्र घण्टानिनादेन युध्यता मम संयुगे । पापक्षयकरं देवि! संभूतंलिङ्गमुत्तमम् ॥
दृष्टं तत्र गणेनैव लिङ्गं तेजोमयं शुभम् ॥ २९ ॥
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य भूयो घण्टो गणोऽभवत ।
लक्ष्म्या कान्त्या समायुक्तः सहस्रकिरणाकृतिः ॥ ३० ॥
घण्टोऽभिनन्दितोऽत्यर्थं विमानैः सार्वकामिकैः ।
मम पार्श्वं समायातो ममातीव प्रियोऽभवत् ॥ ३१ ॥
ये पश्यन्ति विशालाक्षि! देवं घण्टेश्वरं शिवम् ।
ते घण्टाभिर्नादितास्तु विमानैः सार्वकामिकैः ॥ ३२ ॥
यास्यन्तिसुचिरंकालंममलोकंसनातनम् । घण्टेश्वरंपरंलिङ्गंनाख्येयंयस्यकस्यचित्
व्याधितो यदि वादीनो दुःखितो च भवेन्नरः । यःपश्यतिप्रसङ्गेनदेवंघण्टेश्वरंप्रिये
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥ ३४ ॥
गन्धर्वाप्सरसां;मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः ।
ईप्सिताँल्लभते कामान्वीणावेणुविनोदितः ॥ ३५ ॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः;सर्वैश्वर्यसमन्वितः । हिरण्यधान्यसम्पूर्णे समृद्धेजायते कुले
राजा वा राजतुल्यो वा जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥ ३६ ॥
यः पूजयतिदेवेशं श्रद्धया परया युतः । स याति परमं स्थानमपुनर्भवकारणम् ॥

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । घण्टेश्वरस्य देवस्य प्रयागेशमथो शृणु
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये घण्टेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

प्रयागेश्वरसंज्ञं तु सर्वकामकरं परम् । अष्टाधिकं विजानीहि पञ्चाशत्तममीश्वरम्
आसीत्प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुवः पुरा । तस्य प्रियव्रतः पुत्रो यज्वा परमधार्मिकः
स चेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । सप्तद्वीपेषु संस्थाप्य भरताद्यान्सुतान्प्रिये ॥
स्वयं विशालां बदरीं गत्वा तेपे महत्तपः । कालेन बहुना तत्र नारदः समुपस्थितः
पूजितो विधिवत्तेन राज्ञा प्रियव्रतेन च । स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यं वदस्व मे
इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः । श्वेतद्वीपे मया राजन्कन्या दृष्टा सरोवरे
सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्मात्त्वमसि निर्जने ।
काऽसि भद्रे कथं चासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥ ७ ॥
कर्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने । एवमुक्ता मया साहिमां दृष्ट्वा मामनिमिषेक्षणम्
स्मृत्वा तूष्णीस्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।
विस्मृताः सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ॥ ८ ॥
ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्तामोहसमन्वितः । तामेव शरणं गत्वा यावत्पश्यामि पार्थिव
तावद्दिव्यः पुमांस्तस्याः शरीरे समदृश्यत । तस्यापि पुंसो हृदये द्वितीयस्तस्य चोरसि
तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ॥ ११ ॥

ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी कथञ्चन । वेदा नष्टाममाशेषा भद्रेकिंब्रूहिकारणम्

कन्योवाच

माताहंसर्ववेदानां सावित्रानाम नामतः । मां न जानासियेन त्वमतोवेदा हृतास्तव

एवमुक्ते मया पृष्टा विस्मयेन महीपते !। वेदानां त्वं तु माता वैकथयस्वममानघे

त्वदीयहृदये देवि! क एते पुरुषास्त्रयः ॥ १५ ॥

कन्योवाच

य एष मच्छरीरस्थः शुभाङ्गश्चारुशोभनः । एष ऋग्वेदनामा तु यजुर्वेदो द्वितीयकः

सामवेदस्तृतीयस्तु त्रयो वेदा मयि स्थिताः ।

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवा मच्छरीरे स्थिता द्विज !॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा सा तदा कन्या पश्यतो मम भूपते !।

अन्तर्द्धानं गता सद्यस्ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥ १८ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि शरणं यामि कं प्रभुम् ।

कथमाविर्भविष्यन्ति वेदाः शास्त्राणि साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

कामिकस्तीर्थराजस्तुप्रयागःश्रूयते श्रुतौ । अहंतत्रगमिष्यामिज्ञानंसम्यग्भविष्यति

नष्टवेदेन रैभ्येण प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा । सावित्री श्रूयते तत्र अक्षयवटसन्निधौ ॥

एवं मनसि सन्ध्यायगतोऽहं नृपसत्तम !। प्रयागं कामिकं तीर्थं सर्वदेवनमस्कृतम्॥

तपस्तीव्रं मया तत्र तप्तं परमदुष्करम् । अथाजगाम राजेन्द्र प्रयागोमूर्त्तिमान्स्वयम्

उक्तोऽहं प्रणयात्तेन न मांतापय नारद । ब्रह्मपुत्र! प्रयागोऽहं भीषितस्तपसा तव॥

भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन !। धन्योऽसिसर्वथा ब्रह्मंस्तपसाचविशेषतः

मया सार्धं त्वयाब्रह्मन् !गतिःकार्याऽविकल्पतः । महाकालवनेरम्येतत्रतेज्ञानमुत्तमम्

भविष्यति न सन्देहो मम कीर्त्तिश्च सुस्थिरा ॥ २६ ॥

एवं हि ब्रुवतस्तस्य प्रयागस्य नृपोत्तम !। प्रादुर्बभूव सहसा पीतवासा जनार्द्दनः ॥

शङ्खचक्रगदापाणिर्गरुडस्थो वियद्गतः । उवाच मेघगम्भीरं वाक्यं स पुरुषोत्तमः ॥

एहि नारद! गच्छामः प्रयागो यत्र यास्यति ।

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा मया प्रोक्तो जनार्दनः ॥ २९ ॥

ज्ञानं मे देहि देवेश कथं यास्यामि तद्वनम् । महाकालवनं चाथ श्रुतज्ञानविवर्जित
इत्युक्तः श्रीधरेणाह महाकालवनं नृप । आनीतस्तत्क्षणाच्छीघ्रं प्रयागसहितस्तदा
घण्टेश्वरस्य पूर्वे तु नवनद्यास्तु दक्षिणे । तत्र लिङ्गमनादिं तु ज्योतीरूपं सनातनम्
प्रयागः पूजयामास पश्यतो मम भूपते । लिङ्गेनोक्तः प्रसन्नेन किमर्थं त्वमिहागतः
प्रयाग प्रयतो भूत्वा प्रसन्नोऽहं सदा तव । दर्शनं च मदीयं तु विफलं न भविष्यति
इत्युक्तस्तेन लिङ्गेन मदर्थं प्रार्थितस्तदा । ज्ञानं देहि द्विजायास्मै नारदाय महात्मने ।

तदा वेदाश्च शास्त्राणि सान्निध्या दर्शनात्प्रभो ॥ ३६ ॥

ततो लिङ्गात्समुत्तस्थौ ब्रह्मा वेदैर्वृतस्तदा । षडङ्गैः सरहस्यैश्च पुराणैः सहितस्तदा

इत्युक्तोऽथ तदा देव्या सान्निध्या नृपसत्तम ।

लिङ्गस्यास्य प्रभावेण प्रयागाभ्यर्थितस्य वै ॥ ३८ ॥

प्रतिभास्यन्ति ते वेदा धर्मशास्त्राणि नारद । इत्युक्ते वचने भूप प्राप्ता वेदा मया नृप
ज्ञानं षडङ्गसहितं शास्त्राणि विविधानि च । लब्धज्ञानेन राजेन्द्र मया प्रोक्तं वचस्तदा

प्रयागेनार्चिता यस्माद् मम ज्ञानस्य कारणात् ।

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्यातिं लोकेषु यास्यति ॥ ४१ ॥

तदाप्रभृति तल्लिङ्गं साधकोटिशतैर्वृतम् । स्वर्गापवर्गफलदं तत्र त्वं गन्तुमर्हसि ॥
किमनेनाश्वमधेन इष्टेन नृपसत्तम । अश्वमेधशतफलं जायते तस्य दर्शनात् ॥ ४३ ॥
तपसा किं सुमहता कायक्लेशकरेण तु । वाञ्छितं लभते सद्य प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥

ईश्वर उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्वायम्भुवसुतो नृप । प्रियव्रतो महादेवि ! महाकालवनं गतः
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं नवनद्यास्तु दक्षिणे । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य मत्समीपं समागतः ॥

मया सम्मानितो देवि गणानामधिपः कृतः ।

ये पश्यन्ति नरा भक्त्या प्रयागेश्वरमीश्वरम् ॥

ते धन्या मानुषे लोके क्लिश्यन्त्यन्ये निरर्थकाः ॥ ४७ ॥

या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिर्जायते सम्यक्प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥ ४८ ॥
माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनम् । कर्त्तुं ये मानुषास्तेषामश्वमेधः पदे पदे ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । प्रयागेश्वरदेवस्य शृणु सिद्धेश्वरं परम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

एकोनषष्टिक विद्धि देवं सिद्धेश्वरं प्रिये । तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिःपुंसां प्रजायते
आसीदश्वशिरानाम राजा परमधार्मिकः । सोऽश्वमेधेन यज्ञेन इष्ट्वा.स बहुदक्षिणम्
स्नातश्चाऽवभृथे दृष्टो ब्राह्मणैः परिवारितः ।
यावदास्ते स राजर्षिस्तावत्सिद्धोऽतिदीप्तिमान् ॥ ३ ॥
नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रतन्त्रविशारदः । आययौकपिलःश्रीमाञ्जैगीषव्यश्चसिद्धराट्
तयोस्त्वरितमुत्थाय सराजाभ्यागतक्रियाम् । चकारपरयायुक्तोमुदावैपृथिवीपतिः
तावर्चितावासनस्थौ क्षमाशीलौ शुचिव्रतौ ।
महौजसौ महाभागौ मुमुक्षू मुनिपुङ्गवौ ॥ ६ ॥
विद्याविनयसम्पन्नौब्रह्मचर्यपरायणौ । अनेकसृष्टिसंहारस्थितिकार्यपरायणौ ॥ ७ ॥
उदयादित्यसङ्काशौ विभावसुसमद्युती । तेजोराशिसमायुक्तौ दुर्निरीक्ष्यौपृथग्जनैः
विनयेनोपसङ्क्रम्य प्रणिपत्याभिवाद्य च । स राजा प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रश्नमेनमपृच्छत

अश्वशिरा उवाच

श्रुतमयामुनिश्रेष्ठौनान्योदेवोजनार्दनात् । ध्यातोथपूजितोनृणामुक्तिदोभवबन्धनात्
तस्मिन् तु हृषीकेशे नराणा कोटिजन्मजम् । अशुभक्षयमाप्नोति कथनश्रणमेदपि
समाराध्य जगन्नाथ शक्राद्यास्त्रिदिवौकस ।
वसन्ति मुदिता स्वर्गे दिव्यद्युतिसमन्विता ॥ १८॥
जन्मम् युजरा रोगेदु खानि विविधानिच । प्रयान्तिविलयसद्य प्रसन्ने गरुडध्वजे
इतिपृष्टस्तदातत्रराज्ञा पितेन यशस्विना । ऊचतुस्त नृपं सिद्धौसिद्धिविज्ञानकोविदं
कस्वमोच्यत राजस्त्वया नारायणोऽधुना । मायानारायणौद्वौतुत्वत्प्रत्यक्षगतौनृप

अश्वशिरा उवाच

भवन्तौ ब्राह्मणौ सिद्धौ तपसा दग्धकिल्बिषौ ।
युवा नारायणौ कस्मादिति वाक्यमुवाच स ॥ १६ ॥
शङ्खचक्रगदापाणि पीतवासा जनार्दन । गरुडस्थो हृषीकेश कस्तस्यसदृशोभुवि
तस्य राज्ञो वच श्रुत्वा ससिद्धौ योगकोविदौ ।
श्यामालतुन्तौ हि कृत्वा नारायणं वपु ॥ १८ ॥
कपिलो मन्त्रमाहात्म्यात्स्वय विष्णुर्बभूव ह ।
शङ्खचक्रगदापाणि पीतवासाश्च तत्क्षणात् ॥ १६ ॥
जैगीषव्यश्च गरुडस्तत्क्षणात्समजायत । तत समभवत्तत्र राजवेश्मनिकौतुकम् ॥
दृष्ट्वा नारायण देव गरुडस्थ सनातनम् । आश्चर्यं तादृश दृष्ट्वा स राजाविस्मयान्वित
उवाच श्र (श्वा) स्यता सिद्धौ नाय विष्णुरयेदृश ॥ २१ ॥
तस्य ब्रह्मा समु पन्नो नाभिपङ्कजमध्यत । तस्मात्तुब्रह्मणो रुद्र सविष्णु परमेश्वर
इति राज्ञो वच श्रुत्वा तदा तौ सिद्धसत्तमौ ।
चक्रतु परमा माया योगाचार्यौ समाहितौ ॥ २३ ॥
कपिल पद्मनाभस्तु पद्ममध्ये प्रजापति । बभूव स्वयमेवत्र सहसा योगतस्तदा ॥
जैगीषव्योऽथ रुद्रस्तु तस्यैवाङ्कव्यवस्थित । ददर्शमहदाश्चर्यं सराजायोगमोहित

कौतुकात्प्रत्युवाचेदं भीतः कम्पितकन्धरः।
नेत्थं भवति विश्वेशो मायैषा योगिनां तदा॥
सर्वरूपी हरिः श्रीमान्सर्वगः सर्वदः स्मृतः॥ २६॥
ततोवाक्यावसाने तु तस्यराज्ञश्चसंसदि। मशका मत्कुणायूका भ्रमराःपक्षिणोमृगाः
अश्वा गावो हयाः सिंहा व्याघ्रा गोमहिषास्तथा।
अन्येऽपि पशवः कीटा ग्राम्यारण्याश्च सर्वशः॥ २८॥
दृश्यन्ते राजभवने कोटिशः पर्वतात्मजे। तं दृष्ट्वाभूतसंघातं राजाविस्मितमानसः॥
यावच्चिन्तयतेकिंस्यात्तावज्ज्ञातंनृपेणहि। जैगीषव्यस्यमाहात्म्यंकपिलस्यमहात्मनः
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स राजाऽश्वशिरास्तदा।
पप्रच्छ च द्विजौ भक्त्या किमिदं सिद्धसत्तमौ!॥ ३१॥
सामर्थ्यमीदृशं लब्धं कस्माद्वै तपसोबलात्। अद्यमेसफलोत्पत्तिरद्यमेसफलं श्रुतम्
सफला मे मनोवृत्तिर्युवयोर्दर्शनेन वै। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कपिलोवाक्यमब्रवीत्
महाकालवने राजन्विद्यते लिङ्गमुत्तमम्। ख्यातं सिद्धेश्वरं नाम्नासिद्धैरभ्यर्चितंसदा
सौभाग्येश्वरपूर्वे तु सौभाग्यारोग्यदायकम्।
प्रभावात्तस्य लिङ्गस्य प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा॥ ३५॥
जैगीषव्येन सिद्धेनमया वै नृपसत्तम!। तस्माद्व्रज महाबाहो महाकालवनं शुभम्॥
तत्रद्रक्ष्यसि सर्वेशंशङ्खचक्रगदाधरम्। लिङ्गमूर्त्तौस्थितंविष्णुंयस्तेसिद्धिंप्रदास्यति
संसिद्धा बहवस्तत्र सनकाद्या नरेश्वर!। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कपिलस्य महात्मनः
जगाम सहसा तत्रस राजाऽश्वशिरास्तदा। ददर्श चैव तौसिद्धौसिद्धेश्वरसमीपतः
अन्येच बहवः सिद्धाः सिद्धनाथास्तथापरे।
ज्ञात्वासिद्धेश्वरं देवं सिद्धसङ्घैः समर्चितम्॥ ४०॥
लिङ्गमध्ये स्थितं विष्णुं ज्ञात्वास नृपसत्तमः। पूजयामासभावेन परमेणसमाधिना
ततस्तुष्टोऽब्रवीद्देवो वरं वरय सुव्रत!। यत्तेऽभिलषितं सर्वमहं दास्यामि भूपते
लिङ्गस्यवचनंश्रुत्वानृपेणोक्तंचतच्छृणु। यदिमेऽस्तिदया देवप्रसन्नोऽसि...प्रभो

परोक्षरूपं परं नाथ तद्दर्शय ममाऽच्युत ॥ एतदेव हि मे देव सदाभिलषितं हृदि ॥ ४८
आजन्मतो जगन्नाथ कदा द्रक्ष्ये जनार्दनम् । एतदिच्छाम्यहं देव वराणामवरं वरम्
दीयमानं त्वयाऽभीष्टं ख्यातं सिद्धेश्वरं शिवम् ॥ ४९ ॥

रूपस्यपरमं धरया लिङ्गमोक्षं वरानने । न मे विदुर्देवगणा मातुरा न महर्षयः ।
परं रूपं नृपश्रेष्ठ रूपोऽहं लिङ्गतां गतः । समस्तलोकं तु ये मामानुजन्मभूमिता
न चैते मां विजानन्ति परमार्थेन पार्थिव । यदेतदूर्ध्वपतं तेजो लिङ्गरूपेणमामकम्
एतदेव हि प्रधावाऽवायन्तिविद्यशास्त्रवर्मा । अतो नैव परं रूपं द्रष्टुं कश्चित्क्षमो भवेत्
अनेकजन्मसंशुद्धा योगिनो मदनुग्रहात् । प्रविशन्ति तनौ मह्यं मुक्ताः संसारबन्धनैः

एष हि मृतलस्तस्य सिद्धि प्राप्ता नृपेण हि ।
विष्णुरूपं समास्थाय तस्मिंल्लिङ्गे लयं गतः ॥ ५१ ॥
अतो देवि सुविख्यातं लिङ्गं सिद्धेश्वरं परम् ।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या तेषां सिद्धिश्च शाश्वती ॥ ५२ ॥

अञ्जनपादलेपश्च पादुकासिद्धिरेव च । गुटिका खड्गसिद्धिश्च महासिद्धिः सुदुर्लभा
दिव्यौषधेश्च यासिद्धिर्मन्त्ररूपा क्रियाश्रया । एतास्तु सिद्धयः प्रोक्ताभवराल्पिमादय
धर्मार्थकामसिद्धिश्च मोक्षसिद्धिरनुत्तमा । जायते नात्र सन्देह श्रीसिद्धेश्वरदर्शनात्

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः ।
सिद्धेश्वरस्य देवस्य मतङ्गेशमथो शृणु ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

मतङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

मतङ्गेश्वरसञ्ज्ञं तु षष्टिसङ्ख्याकमीश्वरम्। विद्धिपापहरं देवि!समीहितकरं सदा
सुगतिर्नाम विप्रेन्द्रो बभूव द्वापरे युगे। सत्यवादी सदा दान्तो वेदाध्ययनतत्परः

मतङ्गस्तस्य पुत्रोऽभूद् बाल्याद्दारुणतां गतः।
स बालं गर्द्दभं देवि! तिष्ठन्तं मातुरन्तिके॥
दण्डकाष्ठेन सहसा ताडयामास चापलात्॥ ३॥

तं तु तीव्राहतं दृष्ट्वा गर्द्दभी पुत्रगृद्धिनी। उवाच माशुचः पुत्र चण्डालोऽयंनवैद्विजः
ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मणउच्यते। तुदन्पापाकृतिरयं बाले न कुरुतेदयाम्
स्वकीयां भजते चाथ प्रकृतिं मानवःसदा। एतच्छ्रुत्वा मन्तगस्तुदारुणं गर्द्दभीवचः
दण्डकाष्ठं परित्यज्य रासभीं प्रत्यभाषत। ब्रूहिरासभि कल्याणि मातामेयेनदूषिता

कथं मां वेत्सि चण्डालं यायावरकुलोद्भवम्।
केन जातोऽस्मि चण्डालो ब्राह्मण्यं येन मे गतम्॥ ८॥

गर्द्दभ्युवाच

नापितेन प्रमत्तेनब्राह्मण्यां वृषलेन हि। ततस्त्वमसि चाण्डालो ब्राह्मण्यंतेनतेगतम्
एवमुक्तो मतङ्गस्तु पितरं वाक्यमब्रवीत्। तताश्चर्यंश्रुतं मेऽद्य जातोऽहं नापितेनवै

गर्दभ्या कथितं सम्यक्तस्मात्तप्स्ये महत्तपः।
एवमुक्त्वा स पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः॥ ११॥

स गत्वा च ततोऽरण्यमतप्यत महत्तपः। ततःसन्तापयामासविबुधांस्तपसान्वितः
तं तथा तपसायुक्तमुवाचहरिवाहनः। मतङ्ग! तप्यसे किं त्वंभोगानुत्सृज्य मानुषान्

वरं ददामि तेऽहं तं वृणीष्व त्वं यदिच्छसि॥ १३॥

मतङ्ग उवाच

ब्राह्मण्यं काममानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः । देहि मे शाश्वतं शक्र वरं एतन्नो मया
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तमुवाच पुरन्दरः । ब्राह्मण्यं याचसे त्वं हि दुष्प्रापमकृतात्मभिः
नाशमेष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम मा चिरम् । चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथञ्चन
एवमुक्तो मतङ्गस्तु समशितात्मा यतव्रतः । अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतसङ्ख्यया
तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं वीर मा कृथाः साहसं नृप
न हि शक्यमवाप्तुं त्वमचिरान्नाशमेष्यसि । वृणु वा काममन्यं त्वं ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम्
एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्माऽऽक्रमत । सहस्रमेकं पादेन ततोऽध्यानमवस्थितः ।
तदेव च पुनर्वाक्यमुवाच बलवृत्रहा । चाण्डालयोनौ जातेन नावाप्यं [illegible] कथञ्चन

अन्यं वरं वृणीष्व त्वं मा वृथास्तत्त्वया श्रमम् ।
एवमुक्तो मतङ्गस्तु भृशं शोकपरायणः ॥ २४ ॥

अतिष्ठत गयां गत्वा सोऽङ्गुष्ठेन शतं समाः । सुदुष्करं वहन्योगं प्राणायामपरायणः
त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा तताप परमं तपः । तपस्तं तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः

वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः ॥ २५ ॥

शक्र उवाच

मतङ्ग ब्राह्मणत्वं हि विरुद्धमिह दृश्यते । ब्राह्मण्यं दुर्लभं तात ह्यसतां पापशीलिनाम्

ब्राह्मणे सर्वभूतानां योगक्षेमं समाहितम् ।
तदुत्सृज्येह दुष्प्राप्यं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ॥ २७ ॥
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः ॥ २८ ॥

मतङ्ग उवाच

किं मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च माम् ।
तं तु शोचामि यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं नानुपालयेत् ॥ २९ ॥
ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैः शतक्रतो ।
तपसा च कथं लब्धं विश्वामित्रेण भूभुजा ॥ ३० ॥

वीतहव्यश्च राजर्षिस्तपसा विप्रतां गतः । तस्मात्तपः करिष्यामि निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः
अहिंसादमसत्यस्थः कथं नार्हामि विप्रताम । दैवेन कृतमेतद्धि यद्यहम्मातृदोषतः
एतामवस्थां सम्प्राप्तो दैवयोगात्पुरन्दर । नूनं दैवं न शक्यं तु पौरुषेण निवर्त्तितम्
यदहं यत्नवानेवं न लभे विप्रतां विभो !। एवं ज्ञात्वा तु देवेश! दातुमर्हसि मे वरम् ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यः किञ्चिद्वा सुकृतं मम । सदुपायं हि मे शंस कथं विप्रो भवामि वै
यथा ममाक्षया कीर्त्तिर्भवेद्वापि पुरन्दर !। कर्तुमर्हसि तद्देव! शिरसा त्वां प्रसादये ॥
इत्युक्तो हि मतङ्गेन वासवो वलवृत्रहा । कथयामास सन्तुष्टो लिङ्गमाहात्म्यमुत्तमम्

इन्द्र उवाच

महाकालवने लिङ्गं स्थापितं ब्रह्मणा पुरा । दिव्यमूर्त्तिधरं दिव्यं श्रीसिद्धेश्वरपूर्वतः
तस्य दर्शनमात्रेण विप्रत्वं समवाप्स्यसि । वासवस्य च वाक्येन मतङ्गो गतवांस्तदा
महाकालवनं रम्यं सिद्धक्षेत्रमथापरम् । ददर्श तत्र तल्लिङ्गमशेषफलदायकम् ॥ ४०
दृष्ट्वा सम्पूजयामास पुष्पैर्नानाविधैस्तदा । पूजितः प्रत्युवाचेदं मतङ्गं देवसत्तमः ॥

अहो महान्सभाग्योऽसि यस्त्वया तोषितोऽस्म्यहम् ।
मत्तः सर्वं समुद्भूतं ब्रह्माण्डं भूर्भुवादिकम् ॥ ४२ ॥
वरदोऽस्मि वरार्हाणां शापदोऽस्मि दुरात्मनाम् ।
ब्राह्मण्यं मत्प्रसादाच्च अक्षयं ते भविष्यति ॥ ४३ ॥

ततोऽसौ विप्रतां यातो मतङ्गो लिङ्गदर्शनात् । पुनः पूजाप्रभावेण ब्रह्मलोकं गतो द्विजः
ब्राह्मण्यं दुर्लभं लब्धं लिङ्गस्यास्य प्रभावतः । मतङ्गेन वरारोहे तस्माद्देवो विगीयते
मतङ्गेश्वरको लोके ब्रह्मलोकप्रदायकः । वर्णाश्रमेषु विद्विष्टाः पाषण्डवचने रताः ॥

निर्मर्यादा निराचारा निःशङ्काश्चातिलोलुपाः ।
निर्घृणाः क्रूरकर्माणो धृष्टाः कलियुगे नराः ।
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य तेऽपि यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥
ये विशुद्धा महाभागा ध्यानिनो मुक्तिभागिनः ।
ते पश्यन्ति कलौ देवि !मतङ्गेश्वरमीश्वरम् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मध्यानपरा ये यज्ञदानक्रियारता । ते पश्यन्ति कलौ देवि! मतङ्गेश्वरमीश्वरम्
येऽर्चयन्तिमहादेवि! मतङ्गेश्वरमीश्वरम् । कृतपुण्यानरामर्त्यैस्तेषां वासोऽक्षयोदिवि
९१ ते कथितो देवि! प्रभाव पापनाशन । मतङ्गेश्वरदेवस्यशृणु सौभाग्यमीश्वरम् ।
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये मतङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णननाम षष्टितमोऽध्याय ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

सौभाग्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकषष्टितम विद्धि सौभाग्येश्वरमीश्वरम् । यस्यदर्शनमात्रेण सौभाग्यमतुलं भवे
प्रथमे प्राहृते कल्पे राजाभूच्चित्रवाहन । प्राग्ज्योतिषपुरे रम्ये धर्मात्मा कीर्तिवर्द्धः
अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ सङ्ग्रामेष्वपराजित । तस्यभार्या विशालाक्षि! नाम्नामदनमञ्ज
काशिराजसुतासुभ्रूरूपेणातीव शोभना । दक्षासुशीलाधर्मिष्ठा गृहव्यापारकोविद
चतुःषष्टिकलायुक्ता भर्तुर्मन हिते रता । पूर्णेन्दुवदनासौम्या सदा मधुरभाषिणी
पूर्वकर्मवशाद्देवि! दुर्भगाममजायत । सानेष्टा तस्यनृपतेर्नेत्रोद्वेगकरी सदा ॥ ६
श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्य तस्यराज्ञ करोति सा । दृशाह्लोचनेराजस्तस्या सदर्शनस्य

मूर्छां प्राप्नोत्यमहा स तस्या स्पर्शेन भूपति ।
कदा चालोकितो राजा तया प्रकृष्णा वरानने! ॥
दह्यमानोऽतिनिःश्वस्य वह्निना वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

द्वा स्थिता दुर्भगा भार्यामादाय विपिने घने । परित्यज्याशु नैतत्ते विचार्यं वचनं मम
ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्य स । द्वा स्थस्तत्याज तां सुसूमारोप्यस्यन्दनघने
सा च त्यक्ता वने शून्ये रुदती मुहुर्मुहुः । सस्मार तं महीपालं तममन्यत दैवतम्

अथसाचारुसर्वाङ्गीतत्रासक्तात्ममानसा । निःश्वासपरमानिन्ये दिनशेषंतथानिशाम्
निःश्वसन्त्यतवद्याङ्गी हाहेति रुदतीमुहुः । मन्दभाग्येतिचात्मानं निनिन्दमदिरेक्षणा
न विहारे न चाहारे रमणीये न तद्वने । न कन्दरेषु शैलानां सा ववन्ध तदा रतिम्॥
त्यक्ता तेन वरारोहे! निनिन्द निजयौवनम् ॥ १४ ॥
दुर्भगाऽहं क जाताऽत्र दुष्टदैववशीकृता । कथं प्राप्तः स मे भर्त्ता तादृशो नृपसत्तमः
धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ।
अन्यासामसतीनां च रमिष्यति न संशयः ॥ १६ ॥
अभीष्टा कस्यचित्कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥ १७ ॥
ममाऽयं वल्लभो राजा न चाहं नृपवल्लभा । परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते
यद्यद्य स महीपालो न मया सङ्गमेष्यति । तत्कामाग्निरवश्यंमांक्षपयिष्यतिदुःसहः
रमणीयमभूद्यत्तु पुंस्कोकिलनिनादितम् । हीनं हि वल्लभेनैवं दहतीवाद्य मे वनम्
इत्थं सा मदनाविष्टा विलपन्ती पुनः पुनः । ददर्श तापसं तत्र त्रिकालज्ञं दृढव्रतम्
मेखलाजिनकौपीनदण्डकाष्ठोपजीवनम । महौजसंमहाभागं मुमुक्षुं मुनिपुङ्गवम्
उदयादित्यसङ्काशं विभावसुसमद्युतिम् ।
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय सा राज्ञी दुर्मता सती ॥ २३ ॥
विनयेनोपसङ्गम्य प्रणिपत्याऽभिवाद्य च ।
वियोगकारणं राज्ञः पप्रच्छ प्रणता सती ॥ २४ ॥
भगवन्काशिराजस्य सुताहमतिवल्लभा । भगिनी शत्रुसेनस्य मातुश्चातीव वल्लभा
अश्ववाहनसञ्ज्ञेन नृपेणोढा महामुने! । धर्मतो धर्मकल्पेन प्रजापतिसमेन तु ॥२६॥
सा किमर्थं न चाभीष्टा जाताऽहं तस्य भूपतेः ।
स चातीव ममाभीष्टो नृपतिः सर्वदा विभो !॥ २७ ॥
दुर्भगाहं कथंजाता कर्मणा केन तापस !। कथम्भवति वश्यो मे भर्त्ता नृपतिसत्तमः
सौभाग्यं च कथं मे स्यादिति सत्यं च कथ्यताम् ॥ २८ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मुनिं संशितव्रत । ज्ञानेन कथयामास तस्या दौर्भाग्यकारणम्
पाणिग्रहणकाले त्वं ग्रहैः पापैर्विलोकिता । भर्ता ते नृपतिः पुत्रि ग्रहैः सौम्यैर्विलोकित
तेन ते वल्लभो राजा न त्वं भूपस्य वल्लभा ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा सा राज्ञी दीनमानसा ॥
पप्रच्छ विनयोपेता भक्तिप्रह्मात्मकन्धरा ॥ ३१ ॥
भगवन्केन दानेन ज्ञानेन नियमेन वा । कर्मणा येन सौभाग्यं परमं हि लभाम्यहम् ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा स मुनिः संशितव्रत ।
कथयामास माहात्म्यं सौभाग्यं येन लभ्यते ॥ ३३ ॥
महाकालवने पुत्रि लिङ्गं सौभाग्यदायकम् । मतङ्गेश्वरपार्श्वे तु तिष्ठतेऽभीष्टदायकम्
तस्य दर्शनमात्रेण सौभाग्यं समवाप्स्यसि ॥ ३४ ॥
इन्द्राण्याऽऽराधितं लिङ्गं पुरा सौभाग्यकारणात् ।
सौभाग्यं परमं लब्धं तया शक्रोऽपि लब्धवान् ॥
तस्माद्गच्छ ममादेशान्महाकालवनं शुभम् ॥ ३५ ॥
सौभाग्यं भविता तत्र कालेन सह दर्शनम् ।
पुत्रो भविष्यति शुभे तस्य लिङ्गस्य दर्शनात् ॥ ३६ ॥
इत्युक्ता सा तदा तेन तापसेन वरानने । विद्यते यत्र तल्लिङ्गं महाकालवनं गता ।
ददर्श प्रणयोपेता लिङ्गं सौभाग्यदायकम् । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य राजा संस्मारतां प्रियाम्
पप्रच्छ जमदग्निं तु क गता मे प्रिया विभो । भक्षिता विपिने विप्र सिंहव्याघ्रनिशाचरैः
मया त्यक्ता नृशंसेन अहं तस्यास्तु वल्लभ ।
एवं ब्रुवाणो नृपतिः प्रत्युक्तो जमदग्निना ॥ ४० ॥
न भक्षिता सा भूपाल सिंहव्याघ्रनिशाचरैः । सा चाविप्लुतचारित्रा त्वद्भक्ता च पतिव्रता
महाकालवनं राजन् गता सौभाग्यकाम्यया । भार्या रक्ष्या महीपाल इति सा श्रुतिरुत्तमा
भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ।
आत्मा हि जायते तस्यां सा रक्ष्याऽतो नरेश्वर ॥ ४३ ॥

११

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्य भवेन्नृप । नित्यक्रियाया विभ्रंशः स चापिपतनाय वै
पत्न्याऽनुकूलया भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्त्तरि ।
दुःशीला दुर्भगा भार्या पोषणीया नरेश्वर !॥ ४५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा समायातो नरेश्वरः । महाकालवनेरम्ये ददर्शस्वांप्रियां तदा
सौभाग्यालङ्कृतंसुभ्रं पूजयन्तींमहेश्वरम्।दृष्ट्वास्नेहेनचालिङ्ग्यप्रत्युवाचसतांप्रियाम्
विरहेण त्वदीयेन सन्तप्तोऽहं वरानने!। अद्य मे सफलं चक्षुर्जीवितं च सुजीवितम्
यत्त्वां पश्यामि सुभगे! कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ।
एवं दृष्टाऽतिहर्षेण सा ददर्श तदा पतिम् ॥
उवाच च प्रसीदेति भूयो भूयो मुदान्विता ॥ ४६ ॥
ततः स राजा रभसात्परिष्वज्याऽऽह भामिनीम् ।
प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयो भूयो ब्रवीमि किम् ॥ ५० ॥
ततः समागमो जातो जातः पुत्रोऽतिधार्मिकः ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद्दत्तोनाम स गीयते ॥ ५१ ॥
सौभाग्यमतुलं लब्धं तया देव्या हिमात्मजे !।
सौभाग्येश्वरसञ्ज्ञं तु ततः प्रभृति भूतले ॥ ५२ ॥
ये पश्यन्ति विशालाक्षि सौभाग्येश्वरमीश्वरम् ।
तेषां कुले न दौर्भाग्यं जायते पर्वतात्मजे !॥ ५३ ॥
भविष्यति न दारिद्र्यं वियोगो न च बन्धुभिः ।
पुत्रमित्रकलत्राणां लिङ्गस्य च समर्चनात् ॥ ५४ ॥
नोपसर्गभयं तेषां ये पश्यन्ति वरानने !। सौभाग्येश्वरसञ्ज्ञं तु न ग्रहादिभयं भवेत्
सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः । मनुष्योजायतेदेवि!सौभाग्येश्वरदर्शनात्
सम्पूज्यः सर्वलोकेषु सौभाग्यैकनिधिर्भवेत् ॥ ५६ ॥
जायते भूपतिर्लोके सार्वभौमो वरानने । नापुत्रा नाधना नारी न दीनानचदुःखिता
जायते दुर्भगा नैव सौभाग्येश्वरदर्शनात् ॥ ५७ ॥

नवैधव्यं न च व्याधिर्नाकालमरणं प्रिये ।। नपुत्रमर्तृजं दुःखं जायते लिङ्गदर्शनात् ॥

यथा लक्ष्मीर्हरेर्नित्यं सावित्री ब्रह्मणः स्मृता ।

रोहिणीवल्लभा चेन्दोः शची शक्रस्य वल्लभा ॥

तथा सा जायते नारी सौभाग्येश्वरदर्शनात् ॥ ५६ ॥

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । सौभाग्येश्वरदेवस्य शृणु रूपेश्वरं प्रि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सौभाग्येश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

रूपेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

द्विषष्टिकं विजानीहि देवं रूपेश्वरं प्रिये ।। यस्य दर्शनमात्रेण रूपवाञ्जायते नरः ॥ १

पाद्मकल्पे महादेवि पद्मो नाम महीपतिः । पद्मगर्भसमुद्भूतो बभूवातिपराक्रमी ।

पृथिव्याश्चतुरन्तायाः जातो धर्मरतो बली ॥ २ ॥

स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतबलवाहनः । वनं जगाम गहनं हयनागशतैर्वृतः ॥ ३ ॥

बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसङ्कुलम् । मृगसिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ।

तत्र वन्यसहस्राणि हत्वा सबलवाहनः । राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश सः ॥ ५

एक एवोत्तमबलः क्षुत्पिपासासमन्वितः । स वनस्यान्तमासाद्य महदारण्यमासदत्

तथाप्यतीत्य नृपतिर्ददर्शाश्रममुत्तमम् । मनःप्रह्लादजननं दृष्टिकान्तकमतीव च ॥

पुष्पितैः पादपैः कीर्णमतीव सुखशाद्वलम् ।

ततोऽगच्छन्महाबाहुरेकोऽमात्यान्विसृज्य तान् ॥ ८ ॥

ापश्यदाश्रमे तस्मिंस्तमृषिं संशितव्रतम् । उवाच कइहेत्युच्चैर्वनं सन्नादयन्निव
श्रुत्वाऽथ तं तथा शब्दं कन्या श्रीरिव रूपिणी ।
निश्चक्रामाश्रमात्तस्मात्तापसाकारधारिणी ॥ १० ॥
सा तं दृष्ट्वैव राजानं पद्मगर्भसमुद्भवम् । आसनेनार्चयित्वा च पप्रच्छ नाम तं तदा ॥
उवाच स्मयमानाथ किं कार्यं क्रियतामिति ।
तामब्रवीत्ततो राजा कन्यां मधुरभाषिणीम् ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा चैवानवद्याङ्गीं यथावत्प्रतिपूजितः । आगतोऽहं महाभागे मुनिश्रेष्ठमुपासितुम्
क गतो भगवान्भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥ एवमुक्तातु सा कन्या तेन राज्ञा तदाश्रमे
हसन्ती प्रत्युवाचेदं वाक्यं समधुराक्षरम् ॥ १४ ॥
कन्याहं पृथिवीपाल! कौमारब्रह्मचारिणः । तपस्विनोधृतिमतो धर्मज्ञस्यमनस्विनः
सुता कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वंमनुजाधिप ॥ कण्वंहिपितरं मन्येपितरंस्वमजानती
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा नृपेणोक्तं वरानने ॥ सुव्यक्तंराजपुत्रीत्वंयथाकल्याणिभाषसे
भार्या मे भव सुश्रोणि ब्रूहि किंकरवाणिते । सुवर्णरत्नवासांसि कुण्डलेपरिहारके
आहरामि तवाद्याहं भार्या मे भव शोभने ॥ गान्धर्वेणचमां भीरु विवाहेनैवसुन्दरि
विवाहानां च रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥ १६ ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा कन्या वचनमब्रवीत् । मुहूर्त्तंसंप्रतीक्षस्व स मांतुभ्यंप्रदास्यति

राजोवाच

इच्छामि त्वां वरारोहेभजमानमनिन्दिते । तदर्थं मांस्थितंविद्धित्वयामेऽपहृतंमनः
आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः । आत्मनैवात्मनोदानं कर्तुमर्हसिधर्मतः

कन्योवाच

यदि धर्मपथस्त्वेष यदि चात्माप्रभुर्मम । सत्यंमे प्रतिजानीहि दत्तमात्मानमद्य मे ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वापरिणीता नृपेणहि । गान्धर्वेणविवाहेन कामासक्तेनपार्वति
कामिता सानृपेणैवततोगन्तुं समुद्यतः । एतस्मिन्नंतरे देवि! कण्वश्चाश्रममभ्यगात्
सा कन्या पितरं दृष्ट्वा ह्रिया नोपजगाम तम् ।

विज्ञायाऽथ च तां विप्रो दिव्यज्ञानो महातपाः ॥ २६ ॥
उवाचरम मुद्गलस्तां कन्याकाममोहिताम् । त्वयाऽपितुर्ये रहसिमामवज्ञाय यन्मृत
स्वयं स्वयम्वरो मोहात्तस्मात्कृष्णा भविष्यसि ।
कुत्सिता निर्घृणा दीना निर्लज्जा रूपवर्जिता ॥ २८ ॥
मय ते नृपतिर्भर्ता दुष्टरूपो भविष्यति ॥ २९ ॥
इत्युक्ता तत्क्षणाज्जाता कन्यारूपवर्जिता । कुरूपोनृपतिर्जातःशापात्तस्यमहामत
मथ प्रसादयामास सा कन्याचिरं तदा । बालानभिज्ञाममूढाह मन्मथेन प्रपाडिता
अज्ञानाच्च कृतं पापं तात त्वं क्षन्तुमर्हसि । अयमर्हापतिस्तात प्रत्यर्ले नो महामत
न चाहं प्रार्थिता तेन मयासौ प्रार्थितोनृप । तस्मादनुग्रहं तातकर्तुमर्हसि वाचयो
इति तस्या वचः श्रुत्वा स विप्रोऽतिकृपान्वितः ।
उवाच त्वां दुहितरमाश्वास्यैव पुनः पुनः ॥ ३४ ॥
नैवचागात्स पुत्रि' यावदद्य स्मराम्यहम् । दैवमत्रपरं मन्ये धिग्बुद्धिं धिक्पराक्रमम्
अकार्यं कारितो येन बलादहमनिन्दिते ॥ उपदेशं प्रदास्यामि तस्य कर्तुंमिहार्हसि ।
महाकालवने पुण्ये लिङ्गं रूपप्रदायकम् । पशुपेश्वरपूर्वेतु विद्यतेऽभीष्टदायकम् ॥
तस्य गच्छ वरायुक्ता सह भर्त्रानृपेण्हि । रूपप्राप्स्यसि दुष्प्राप्यं लिङ्गदर्शनमात्रतः
इत्युक्ता सा तदा कन्या सह भर्त्रा गता प्रिये ॥
महाकालवने रम्ये यत्र लिङ्गमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
ददर्श परया भक्त्या स च राजा नरोत्तमः । तत्क्षणाद्दिव्यदेहासा रूपेणातिमनोहरा ॥
दिव्यवस्त्रपरिधाना दिव्यालङ्कारभूषिता ॥ ४० ॥
स च राजा तथा जातः कन्दर्पसदृशाकृतिः । रूपेणाप्रतिमो लोकेतस्यलिङ्गस्यदर्शनात्
अतोलोकेषु विख्यातो देवो रूपेश्वरः प्रिये । रूपदोधनदोऽत्यर्थं पुत्रदः स्वर्गदस्तथा
स च राजा स्वकं प्राप्तो राष्ट्रं सस्यादिसंयुतम् ।
प्रियया परया सार्द्धं चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ४३ ॥
राज्यं कृत्वा गतः स्वर्गं भार्ययासहपार्वति । देदीप्यमानो वपुषाद्वितीय इवभास्करः

विमानेन सुदीप्तेन वन्द्यमानो दिवालये । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य प्राप्तः पद्मनामयम्
ये पश्यन्ति विशालाक्षि देवं रूपेश्वरंशिवम् । नतेरूपेण हीयन्ते यशसाचकुलेन च
सदा रूपकरंलिङ्गंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । ये पश्यन्तिवरारोहे तेषांलोकाःसदाऽक्षयाः
येऽर्चयन्ति नरा नित्यं देवं रूपेश्वरं परम् । तेऽर्चितायान्ति यानेनममलोकंसनातनम्
सएव सुकृती लोके कुलं तेनाप्यलङ्कृतम् । यः पूजयति रूपेशंरूपसौभाग्यदायकम्
यः पूजयति देवेशं प्रसङ्गादपि पार्वति !। धनवान्रूपवान्सोऽपि राजा भवति भूतले
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । रूपेश्वरस्य देवस्य धनुःसाहस्रकं शृणु

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये रूपेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

धनुःसाहस्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

धनुःसाहस्रनामानमीश्वरंशृणु पार्वति !। त्रिषष्टिसङ्ख्यकं दिव्यंदर्शनात्पापनाशनम्
विदूरथोनाम नृपःख्यातकीर्त्तिरभूद्भुवि । तस्यपुत्रद्वयं जातंसुनीतिः सुमतिस्तथा
एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः । ददर्श गर्त्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम्
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति पार्थिवः । पातालविवरं मन्ये वडवानलसन्निभम्
चिन्तयन्निव तत्रासौ ददर्श विजने वने । ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमकल्मषम् ॥
स तं पप्रच्छ नृपतिः किमेतदिति भो द्विज !॥ ६ ॥

ब्राह्मण उवाच

दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले ।

कुजम्भो नाम विख्यातो भिनत्ति वसुधामिमाम् ॥ ७ ॥
तमजित्वा कथं राज्यं भोक्ष्यसे वसुधाधिप ॥
तेन विध्वंसिता विप्रा राष्ट्रे नि सृत्य पार्थिव ॥ ८ ॥
उपद्रुतास्तथा देशा ध्वस्ताश्चैवास्याश्रमा । आप्याययतिदैत्योऽयंसबलीमुशलायुध
यदि त्वं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् । ततः समस्तवसुधापतिरेव भविष्यसि
इति विप्रवच श्रुत्वा मन्त्रयामास पार्थिव ।
मन्त्रिभि सहितोऽमोघं श्रुत्वा मुशलमद्रिजे ॥ ११ ॥
तमन्त्र नियमायतुसुतुभ्यांसहमन्त्रिभि । तत्पार्श्ववर्तिनी कन्याशुभाघाधमुद्रायत
तत कतिपयाहे तु तां कन्यां अलजेक्षणाम् ।
जहारोपवनाद्दैत्य कुजम्भ स्वसखीवृताम् ॥ १३ ॥
एतच्छ्रुत्वा महापाल क्रोधपर्याकुलेक्षण । उवाच पुत्रौ जानेऽहं स कुजम्भो महासु
दृष्टा भूमौ पुरा गर्ते तत्र सहायिने मयि । कथितो द्विजमुख्येनमया पृष्टेन पुत्रकौ
स हन्यतां मोऽपहर्ता सुदाधन्या सुदुर्मति ।
प्रस्थितौ नृपभक्तयाऽथ स्वमन्यपरिचारितौ ॥ १६ ॥
तौ सुनीतबलमार्गौ पाताले पितृशासनात् । युयुधाते कुजम्भेन स्वशक्त्या सेनयावृतौ
तत्र परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधै । बाणैश्चिरतरं युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ।
ततो मायाबलवता तेन दैत्येनतत्क्षणात् । अमोघताद्वितीयेन मुशलेन वरानने ॥ १९
हतसैन्यौ रणे बद्धौ राजपुत्रौ महाबलौ ॥ २० ॥
तत श्रुत्वा महापालो विषण्णवदनोऽभवत् । बद्धपुत्र परामार्ति जगाम गिरिपुत्रिके
रुरोद बहुधाऽत्यर्थं पुत्रस्नेहेन पार्थिव । ततो विलपतस्तस्य मार्कण्डेयो महामुनि
अनेककल्पसहस्रदृष्टकार्यपरावर ॥ २२ ॥
उदितादित्यसङ्काश सप्तकल्पानुगो वशी । आजगामनृपाभ्याशे विलपन्तं ददर्श
राजानं कथयामास त्रिकालज्ञो महामुनि ॥ २३ ॥
मा शुचस्त्वं महीपाल क्षत्रियोऽसि दृढव्रत ।

क शोकः क महीपालो दुर्जेयो लोकपालवत् ॥ २४ ॥

शोकं कुपुरुषाचीर्णं त्यजत्वं राजसत्तम !। उद्यमं कुरु राजेन्द्र कुजम्भं घातयिष्यसि
नात्युच्चंमेरुशिखरं नातिनीचंरसातलम् । व्यवसायःसखातस्यनास्तिदूरेमहोदधिः
महाकालवने लिङ्गमाराधय समाहितः । रूपेश्वरस्य देवस्य पार्श्वेदक्षिणतःस्थितम्

धनुः साहस्रतुल्यं तु मुशलस्य निवारणम ।
धनुः प्राप्स्यसि राजेन्द्र! कुजम्भं विनिपातय ॥ २८ ॥

धनुः साहस्रहस्तैस्तु रक्षितं योधसत्तमैः । लिङ्गंदेवासुरैर्युद्धे सहस्राक्षेण सेवितम्

इन्द्रेण च धनुर्लब्धं जम्भो वै येन पातितः ॥ २६ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स राजार्थविदूरथः । जगामत्वरितो देवि! महाकालवनं शुभम्
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं पूजयामास भक्तितः । तस्यतुष्टस्तदा देवोददौदिव्यं धनुस्तदा

धनुः साहस्रतुल्यं च मुशलस्य निवारणम् ।
धनुर्लब्ध्वा तदा राजा बद्धगोधांगुलित्रवान् ॥
जगाम धीरः पातालं तेन गर्तेन सत्वरम् ॥ ३२ ॥

ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवस्तदा । येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम्
ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजम्भोदानवेश्वरः । आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः
ततो युद्धमभूत्तस्यसह राज्ञा वरानने !। दिनानि त्रीणिसयदा योधितस्तेनदानवः

ततः कोपपरीतात्मा मुशलायाभ्यधावत ।
गन्धमाल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति ॥ ३६ ॥

यावद्गृह्णाति मुशलं तावत्सा च मुदावती । पस्पर्शचन्दनव्याजैरनेकैश्च पुनः पुनः ॥
ततः स गत्वा युयुधे मुसलेनासुरेश्वरः । तदा मुसलपातास्ते धनुषा निष्प्रभीकृताः
धनुर्ज्याघातशब्देन पतिते भूतले तदा । ततो वैवस्वतं लोकं कुजम्भोनाम दानवः
ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महापतेः । जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानि सस्वनुः

स चापि राजा तं हत्वा पुत्रीं लब्ध्वा सुतां तदा ।
मदावर्तीं मदा यक्तो हर्षगद्गदनिर्भरः ॥ ४१ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

पशुपतीश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

शृणु त्वं पशुपत्याख्यं चतुःषष्टिकमीश्वरम् । यस्यदर्शनमात्रेण पशुयोनिर्न लभ्यते
पशुपालो महादेवि! बभूव भुवि विश्रुतः । राजा परमधर्मिष्ठः पशूनां पालने रतः ॥२

दिदृक्षुः स कदाचिच्च गतस्तोयनिधिं प्रति ।
ददर्श तत्र पुरुषान्पञ्च प्राधान्यतः स्थितान् ॥
एका स्त्री मुक्तकेशा सा भ्रमन्ती च पुनःपुनः ॥ ३ ॥

अथ राजाभयाविष्टो विसञ्ज्ञःसमपद्यत । सम्वेष्टितोदस्युभिस्तैस्तयानार्याविशेषतः
ततोन्येसमपातंचआगत्यनृपसत्तमम् । सम्वेष्ट्य संस्थितैःसद्यस्ततोरुद्धोमहीपतिः
रुद्धे राजनि ते सर्वे एकीभूतास्तु दस्यवः । पतिताःपशुपालेन न मृताः पुनरुत्थिताः

तस्य तां धृष्टतां ज्ञात्वा स्थैर्यं च नृपतेर्मृधे ।
तस्यैव नृपतेर्देहे लीनास्ते दश दस्यवः ॥ ७ ॥

अमूर्त्ताश्चतेसर्वेएकीभूतास्ततोऽभवन् । तान्दृष्ट्वादुःखितोराजापशुपालोऽभवत्क्षणात्
अथापश्यत्तदाऽयान्तं नारदं मुनिपुङ्गवम् । ब्रह्मपुत्र तपोयुक्त पप्रच्छ स नृपस्तदा

पशुपाल उवाच

भगवन्ब्रह्मपुत्राद्य मया दृष्टं तु कौतुकम् । अकस्मात्पुरुषाःपञ्च समायाता भयावहाः

तैरहं वेष्टितो दुष्टैर्व्याकुलश्च कृतस्तदा ।
मुष्टिभिर्हन्यमानोऽहं स्वस्थो जातो द्विज! क्षणात् ॥ ११ ॥
ततोऽन्ये पुरुषाः पञ्च समायाता नियुध्य माम् ।
हन्यतां हन्यतामेष मुक्तिकामो नृपाधमः ॥ १२ ॥

एवंतैः पीडितोऽत्यर्थं पुनर्मोहमुपागतः । एतस्मिन्नन्तरे सा स्त्री मामुवाचपुनःपुनः

दृढोभव महाराज मा विषादं कुरु प्रभो ! हीनवीर्या द्यमीघोरा समर्थस्त्वं स्थिरो भव
तस्या वाक्येन विप्रेन्द्र मया धैर्येण संयुगे । दश प्रधानपुरुषा जितास्तेन मृता प्रभो

प्रलीना मच्छरीरे तु केऽप्यते काऽपि साऽबला ।
पशुपालवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥
ये त्वया पुरुषा दृष्टास्त्वयि लीना स्त्रिया मृधे ।
ज्ञानेन्द्रियाणि ते पञ्च पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥
भ्रमन्ती या च नारी सा त्वया दृष्टा नृपोत्तम ॥ १७ ॥

मनोरूपेण सा बुद्धिस्त्वं मन्येथा हि न स्थिरा । जितानि तानि पूर्वेण ब्रह्मणा लोककर्तृणा
सोऽपि क्रोधवशं नीत इन्द्रियैर्विषये प्रिये । पितामहेनस्त्वेषक्लेशस्मोऽर्गोन कल्पित
महादेवो जगन्नाथः सृष्टिसंहारकारकः । इन्द्रियैर्मोहितो राजन्मनोभवशेनसुरान्पति

सुरा विभूतयो यस्य क्रीडार्थं भुवनत्रयम् ।
तेन भागनिमित्तार्थं चक्रे राज्यं धनुस्तदा ॥ २१ ॥
पूषा च हता सम्भग्ना मोहितश्च दिवाकरः ।
नेत्रे भगेन सत्यापि विद्धो यज्ञो मृगाकृतिः ॥ २२ ॥

पशवश्च हता हता मुनयो नेऽपराजिताः । स्वर्गापवर्गशास्त्राणि हतानि विमुनातः
दुर्जयानीन्द्रियाण्याहुर्मुनयो वेदपारगाः । मनोरूपेण या बुद्धिः सा ख्याता सुदुर्जयाः
तस्माद्राजन्महाबाहो मा विषादं वृथा कृथाः । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः

पशुपालो महादेवि वचनं समुपाक्रमे ॥ २० ॥

पशुपाल उवाच

कथं ते भगवन्मुक्ता देवा शक्रपुरोगमाः । पशुमायाश्च यन्त्रापि श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत् ।
पशुत्वेऽपि गता देवा ऋषिभिर्मुनिभिः सह ॥ २३ ॥

प्रस्थानमग्रतः कृत्वा गताः शरणमाश्रयम् । स्तुतिभिस्तोषितो देवो भक्तानुग्रहकारकः

उवाच वचनं राजन्यत्कर्तव्यं तदुच्यताम् ॥ २४ ॥

देवा ऊचुः

वेदशास्त्राणि विज्ञानं देहि नो भव मा चिरम् ॥
देवस्त्वं पूर्ववद्देव! यदि तुष्टो महेश्वरः ॥ ३० ॥

ईश्वर उवाच

भवन्तः पशवः सर्वे मया सार्द्धं च गम्यताम् । महाकालवनेक्षेत्रे पशुभावविमोक्षके
अहंपतिर्वोभविता ततोमोक्षमवाप्स्यथ । भवतामनुकम्पार्थं लोकानुग्रहकारणम्
लिङ्गरूपी भविष्यामि नाम्ना पशुपतीश्वरः ॥ ३२ ॥
अथ ते त्रिदशाः सर्वे दृष्ट्वादेवं तमीश्वरम् । पशुभावविनिर्मुक्ता गताहृष्टास्त्रिविष्टपम्
ब्रह्मा पशुपतिं प्राह प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ३३ ॥
ये त्वां पश्यन्ति देवेश!भक्त्यापरमया युताः । तेषांकुलेपशुत्वं चये गताःपितरःप्रभो
स्वकैः कर्मविपाकैश्च तेषां मोक्षो भविष्यति ॥ ३४ ॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि यत्पापं क्रियते नरैः । तत्पापंविलयं यातुतस्यदेवस्यपूजनात्
ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीविते फलम् ।
यैर्न दृष्टः पशुपतिः पशुयोनिविमोचकः ॥ ३६ ॥
कौमारे यौवने बाल्ये वार्द्धक्येयदुपार्जितम् । तत्पापंविलयंयातिदृष्ट्वापशुपतिंशिवम्
पौषमासे तु सम्प्राप्ते ये त्वां पश्यन्तिमानवाः । तेषांत्वंवरदोदेवसदाभीष्टकरोभवेत्
सूर्यग्रहे यथादत्तं कुरुक्षेत्रेविशेषतः । पात्रे दानं सुवर्णस्य प्रोक्तमक्षय्यमव्ययम् ॥ ३६
पौषमासे दिनैकेन नराणामधिकं तथा । तद्दर्शनेन देवेश! भविष्यति न संशयः ॥४०
इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोकंगतो नृप !। कृतकृत्यःप्रहृष्टात्मामुनिभिःऋषिभिःसह
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र! यदीच्छसि परां गतिम् ।
समाराधय तल्लिङ्गं पशुयोनिविमोचनम् ॥
महाकालवनं गत्वा इन्द्रेश्वरस्य दक्षिणे ॥ ४२ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः । जगाम पशुपालोऽपिमहाकालवनंप्रिये ॥
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य गतोऽसौ परमां गतिम् ॥ ४३ ॥

एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः । पशुपत्याख्यदेवस्य शृणु महेश्वरं शिवम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये पशुपतीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

महेश्वरमहिमवर्णनम्

श्रीहर उवाच

पञ्चषष्टिकमं देवं विद्धि महेश्वरं प्रिये । यस्य दर्शनमात्रेण महालोके सदाप्नुयात्
पुलोमा नाम दैत्येन्द्रो महाबलपराक्रमः । पौलोमानां महत्सैन्यं पूरयमाण एव हि
आगत्य स्वर्गतिदेवान् पुरीं संविदधात् च । तदा दानवसंघैश्च दैत्यानामधिपः स वै
तथापि लोकपालानामनेकशुभकारणम् ।
दानवलोकशासनं यमस्य वरुणस्य च ॥ ५ ॥
यदि नाम मम विमलस्थानाधिकारम् । सोऽहं विद्राववियामि तथामरं विश्रावितम
सर्वैरेव परिवृत पौलोमीवल्लभम् । तच्छ्रुत्वा भगवान् देवि दानवं दैत्यदानवः ।
नाकस्थान गत्वा तत्सर्वमनुसृत्य ॥ ६ ॥
दानवसमागत्य महेश्वरं तथा परम् । तथा तेषां महीं देवानामधीश्वरः पुनस्तथा
सर्व [illegible] दानवनिर्जितोऽतिमहत्तरम् । कौशिकस्तत्कालं ततः किंचित्परां गतः महेश्वरस्य
दैत्यैर्दानवनिर्जितस्थानवर्तीं महाकृतम् । महेन्द्रप्रमुखाः पुनरपि दीनाः सदा ॥ ९ ॥
ततस्तु स्वर्गविरहेण भगवान् बृहस्पतिः ।
देवान्सम्पृच्छ्य पुनः वाक्यं हितं वचनं ततः ॥ १० ॥
तच्छ्रुत्वा स हि देवेन्द्रः पुलोमानं विनाशितुम् ।

अभिदुद्राव वेगेन तावदग्रे पितामहम् ।
ददर्श नाभिकमले चिन्तयानं पुनः पुनः ॥ ११ ॥
अथ व्याकुलतां प्राप्तोब्रह्मादृष्ट्वातदद्भुतम् । आयान्तंदैत्यसिंहानांसैन्यंरणसुदुर्जयम्
अथ बोधं गतः क्षिप्रं कैटभारिर्महाबलः । ददर्शाग्रे पुलोमं तु स्वसैन्यपरिवारितम्
अजेयः सङ्गरे धीरो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

विष्णुरुवाच

पुलोमस्यविनाशार्थमुद्योगःक्रियतामिति । असौलब्धवरोदैत्यःसहसामांविजेष्यति
तस्माद्गच्छ त्वरायुक्तो महाकालवने शुभे । लिङ्गं द्रक्ष्यसितत्रैवसप्तकल्पोद्भवम्परम्
उत्तरे च्यवनेशस्य शिवशक्तिसमन्वितम् ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद् ब्रह्म प्राप्स्यति शाश्वतम् ॥ १७ ॥
कुण्डेश्वरकरस्पर्शकारि वारि निरन्तरम् । तत्रानय गृहीत्वा तु तेनायं वध्यतामिति
इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
आजगाम मुहूर्त्तेन यत्र तल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ १६ ॥
स्तुतिं चकार सहसा दृष्ट्वा भक्त्या पितामहः ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते दिव्यरूपाय नमस्ते बहुरूपिणे । नमोऽविपह्यवीर्याय नमो विश्वक्रियात्मने
नमः पिङ्गकपर्द्दायनमः खण्डेन्दुधारिणे । नमः कनकवर्णाय नमो वननिवासिने ॥
वन्दे त्वां भूतभर्त्तारं सदा शत्रुविनाशनम् । रणत्कनककेयूरं धृतपूर्णेन्दुमण्डलम्
वन्दे त्वां त्रिदशाध्यक्षंविश्वाध्यक्षंमहेश्वरम् । क्षीणसंसारदुःखौघंमुनिध्यातपदंसदा
वन्दे त्वां सर्वदा देवं दैत्यसङ्घातनाशनम् । टङ्कपट्टिशशूलाग्रधनुः खड्गगदाधरम् ॥
एवं स्तुतः स भगवाँल्लिङ्गरूपी महेश्वरः ।
किञ्चित्स्मितमुखः प्राह ब्रह्माणं लोककारणम् ॥ २६ ॥
किं तेऽभीष्टं करोम्यद्य किं ददामि पितामह !।
कस्मात्स्तौषि मुनिश्रेष्ठ! कस्मादार्तोऽसि दृश्यसे ॥ २७ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

जल्पेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

षट्षष्टितमकं विद्धि देवं जल्पेश्वरं प्रिये ॥ यस्य दर्शनमात्रेण महापापंशमं व्रजेत् ॥
जल्पोनाम महादेवि!राजाऽभूद्भुवि विश्रुतः । सदाजल्परतोनित्यं जल्पवादप्रवर्तकः
विकल्पबहुलो नित्यं संसारगतिचिन्तकः । सुबाहुप्रमुखाःपञ्च पुत्राजाता महाबलाः
तस्य राज्ञो वरारोहे! मूर्त्ताः पञ्चाग्नयोयथा । सुबाहुः शत्रुमर्द्दीचजयो विजय एव च
विक्रान्तः पञ्चमः पुत्रः सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः ॥ ४ ॥
पित्रा जल्पेनतेराज्ञा पृथग्राज्ये प्रतिष्ठिताः । पृथक्पुत्राहिते सर्वेपृथग्देशाधिपाःकृताः
प्राच्यां सुबाहुर्नृपतिर्याम्यां वै शत्रुमर्द्दनः । पश्चिमायांजयो राजाउत्तरे विजयोनृपः
मध्ये विक्रान्तसञ्ज्ञस्तु स्वपदे विनियोजितः ।
व्यवस्थामीदृशीं कृत्वा स्वयमेववनं ययौ ॥ ७ ॥
बभूवुर्मन्त्रिणस्तेषां हिता वंशक्रमागताः ।
बुभुजुः स्वस्वराज्यानि मन्त्रिभिः सहितास्तदा ॥ ८ ॥
विक्रान्तस्यचयोमन्त्री विकर्ल्पकपरायणः । तेनोक्तंविजने देशेविक्रान्तस्यमहीभृतः
यस्यैषा पृथिवी कृत्स्ना स समर्थः प्रकीर्तितः । उद्यमेन पदंलब्धं वासवेन महात्मना
त्रिदशैश्चाऽमृतं लब्धमुद्यमेन महीपते ॥ ११ ॥
हीनोद्यमा मानवा ये क्षत्त्रियाश्च विशेषतः ।
ते हास्यास्पदतां यान्ति हीनवीर्या दिने दिने ॥ १२ ॥
स्नेहं च कुरुते भ्राता राज्यलुब्धोऽर्थकारणात् । अर्थवीर्येणतेनैव संतोषंकुरुते नृपः
क्रियते न किमर्थंतु भूप! मन्त्रपरिग्रहः । भुज्यतेसकलंराज्यं मया ते मन्त्रिणाबलात्
परोऽपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितःपरः । अहितोदेहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्

भूमिमेते निर्गिलन्ति सर्पा बिलशयानिव ।
राजानमचिरोद्धारं ब्राह्मणं ग्रामवासिनम् ॥ १६ ॥
मायया मोहितं सर्वं कोवा कस्य चबान्धवः ।
उद्यम क्रियता तस्माद्भ्रातॄणां निग्रहे द्रुतम् ॥ १७ ॥

भ्रातृभिर्भ्रातर सर्वे निहतास्त्वयकारणात् । धर्मश्च शाश्वतश्चात्या निहताश्चासुरा सुरैः
इति मन्त्रिवच श्रुत्वा सराजा घिन्मयान्वितः । इत्सिन्वाग्रत्पुयाच्चेदममायंशत्रुरागत

विश्रान्त उवाच

थय च भ्रातर पञ्च पृथिवीं कामयामहे । भतुरा पृथगैश्वर्यं कथकृत्स्नामविष्यति
ज्येष्ठो भ्राता सुराहुश्च द्वितीय शत्रुमर्द्दन । जयश्च विजयश्चैव सेवा लघुरहं यत ॥

मन्त्युवाच

राज्ये स्थित पूजयन्तिज्येष्ठ नृपाहं णैर्द्वैः । कनिष्ठज्येष्ठनाश्चेय राज्यप्रार्थयनान्नृणाम्
तथेति च प्रतिमान्नैविनाज्ञेनेनमहात्मना । स मन्त्री कारयामास अभिचारविधिं तदा
अथर्वणेन मन्त्रेण पुरोधा प्रचकार ह । ज्ञात पुरोहितैस्तैस्तैस्ता तेऽपि चक्रु समाहिता
अथ कृत्यासमुत्पन्ना पश्चात्कृत्यान्वतुष्टयम् । सपुरोहितभूम्यांस्तानमसत्स्तुसर्मतदा
तत समस्तलोकस्य विस्मयश्चाऽभवन्महान् ।
यदैककाल नेशुस्ते पृथक्पुरनिवासिन ॥ २६ ॥

तत श्रुत्वा च निधन पुत्राणा अलकोनृप । यते वशिष्ठमपृच्छ किमेतद्भगवन्प्रभो
तेनापि कथित सर्वं वशिष्ठेनमहात्मना । दिव्यज्ञानेनवृत्तान्तविकल्प चाऽकरोन्नृप

राजोवाच

निमित्तोऽह विनाशस्य धिग्धिग्जन्म मर्त्यकम् ।
साद्धं चमात्यपुत्रश्च मृत ब्राह्मणपञ्चकम् ॥ २९ ॥

मत्तोऽन्य क पापतरोभविष्यति महान्भुवि । यदिजन्म मर्त्यस्याच्च जातुमहीतले
ततस्ते न विनश्येयुमम पुत्रपुरोहिता । धिग्राज्य धिक्धर्मजन्म भूभुजाचमहाकुले
कारणत्व गता याऽह विनाशस्य द्विजन्मनाम् ।

कुर्वन्तः स्वामिनस्तेऽर्थं पुत्राणां मम याजकाः ॥
नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥ ३२ ॥
इत्थमुद्विग्नहृदयः स जल्पः पृथिवीपतिः । पप्रच्छच पुनः प्रह्वोवशिष्ठं ज्ञानिनांवरम्

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे तीर्थमवियोगकरंसदा । सद्यः पापहरं विप्र!लिङ्गं वा कथय प्रभो !॥
तस्यतद्वचनं श्रुत्वा जल्पस्य पृथिवीपतेः । वशिष्ठःकथयामास दिव्यज्ञानेनपार्वति!
गच्छ जल्प! ममादेशान्महाकालवनोत्तमम् ।
कृत्वा निःक्षत्रियां पृथ्वीं यत्र रामस्तपस्यति ॥
तत्र लिङ्गमनाद्यं च कुक्कुटेश्वरपश्चिमे ॥ ३६ ॥
तदाराधयराजेन्द्रजामदग्न्याश्रमेस्थितः । वशिष्ठस्यवचः श्रुत्वाजल्पोऽसौपृथ्वीपतिः
देवदारुवनं त्यक्त्वा महाकालवनंगतः । ददर्श तत्र तल्लिङ्गमनाद्यं देवसंस्तुतम् ॥
पूजयामास विधिवत्परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥
तत्र वाणी समुत्पन्ना लिङ्गमध्याद्वरानने!। न त्वंपापसमाचारो न त्वं मरणकारणम्
पुत्राणां नृप! विप्राणामदृष्टं तत्र कारणम् ॥ ३६ ॥
विपाकेन स्वकीयेन गता वैवस्वतम्पुरम् ।
मा शोकं कुरु राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ॥ ४० ॥
अनेन शुद्धभावेन तुष्टोऽहं नृपसत्तम! । यदभीष्टं वरं ब्रूहि तत्ते दास्यामि नान्यथा ॥

राजोवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव! यदि देयो वरो मम । संसारसागरे घोरेमा भवेन्ममजन्मच
अक्षयां देहि मे कीर्त्तिं नाम्ना मे विश्रुतो भुवि ।
अयं जल्पेश्वरो देवो जल्पेनाऽऽराधितो विभुः ॥ ४३ ॥
वदन्तुत्रिदशाःसर्वेएषमे दुर्लभोवरः । ये त्वांपश्यन्तिमनुजा मन्नाम्ना ख्यातिमागतम्
तेषां वियोगो मा भूयात्पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥ ४४ ॥
न संसारभयं तेषां दस्युतो नैव राजतः । न भूतग्रहरोगेभ्यो भयमस्तु कदाचन ॥

शिपमस्तुसदा तेषां येषां त्वद्दर्शनंगतः । ते धन्यामानुषेलोके ये त्वां शरणमागताः
सर्वतीर्थाभिषेकैस्तु यत्पुण्यं प्राप्यते सुरैः । तत्सर्वमधिकं देवं लभ्यते तवदर्शनात्
तावत्पतन्ति संसारे घोरे दुःखशताकुले । यावन्न दृश्यते देवः संसारार्णवतारकः
यदा पापक्षयः पुंसां तदा ते दर्शनंभवेत् । महता पुण्यतेजेन नान्येन तपसा प्रभो !
एवं भविष्यतीत्युक्त्वा तेन लिङ्गेन पार्वति !।
पश्यतां सर्वदेवानां न्यमज्जत्सन्निवेशितम् ॥ ५० ॥
तस्मिँल्लिङ्गे लयम्प्राप्ते शुभे जल्पे वरानने ! । देवो जल्पेश्वरः ख्यातो देवैश्चक्रो महीतले
भुक्तिदो मुक्तिदश्चैव सदाभीष्टफलप्रदः ॥ ५१ ॥
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः । जल्पेश्वरस्य देवस्य शृणुकेदारसञ्ज्ञकम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये जल्पेश्वरमाहात्म्यवर्णनं
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

सप्तषष्टिकसङ्ख्याकं केदारेश्वरसञ्ज्ञकम् । देवं शृणु वरारोहे दर्शनात्पापनाशनम्
सृष्टिकाले पुरा देवि ! देवा व्याप्ताहिमेनहि । शीतार्तादिह्वला सर्वे ब्रह्माणंशरणंगताः
हिमाद्रिणाऽर्दिताः सर्वे क्वदेवजगत्पते । त्राहिभीतांश्चतुर्वक्त्रपितामहनमोऽस्तुते
देवानां वचनं श्रुत्वा प्रोक्तं वै ब्रह्मणा प्रिये !।
पीडिता हिमशैलेन शङ्करश्वशुरेण च ॥ ४ ॥
नाहं यातुं समर्थोऽस्मि सत्यमेतन्मयोदितम् । महादेवमृतेदेवागतिरन्या न विद्यते

स एव शरणं देवः सर्वेषां नो भविष्यति । तस्याज्ञया मया सर्वे पर्वतारचिताःपुरा
कृताश्चित्रविचित्रा च हिमाद्रिश्चमयाकृतः । असेव्यःसर्वजन्तूनामधृष्योदुर्गमोगिरिः

हिमाचलस्य तस्यैव शास्ता देवो महेश्वरः ।
तस्माद्यास्याम हे देवाः! कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ८ ॥
यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवदेवो महेश्वरः ।
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा देवैः सार्द्धं ममान्तिकम् ॥
दृष्टोऽहं पूजितस्तैस्तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः ॥ ६ ॥

मया सम्मानिता देवाश्चतुर्वक्त्रः प्रपूजितः । पूजयित्वामयापृष्टो ब्रह्मा गमनकारणम्

किं कार्यं त्रिदशैःसार्द्धमागतोऽसि पितामह !।
कथितं ब्रह्मणा सर्वं श्रुतं सर्वं मया प्रिये !॥ ११ ॥

माचलं समाहूय मर्यादा च कृता मया । शैलानांराजराजत्वे हिमाद्रिश्चप्रतिष्ठितः
गानां विषयाश्चैव गन्धर्वाणां तथैव च । यक्षाणामथ नागानां किन्नराणां तथैव च

विद्याधराणां क्रीडार्थं पृथक्पृथङ्निवेशिताः ।
रूपतो भाति शैलेन्द्रः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥ १४ ॥
जाह्नवीनिर्झरोर्णाप्रः शर्वाणीजनकस्तथा ॥ १५ ॥

र्वदेवमयो दिव्यः सर्वतीर्थमयः कृतः । सर्वाश्रमनिवासश्च सर्वामरनिषेवितः ॥
र्थं संस्थाप्यशैलेन्द्रं लिङ्गमूर्त्तिरहंस्थितः । विख्यातस्त्रिपुलोकेषु केदारेश्वरनामतः
उदकं निर्मितं तत्र मन्त्रपूर्णं मया प्रिये !। माहात्म्यंविविधंप्रोक्तंलिङ्गस्यचजलस्यच

योऽत्रागत्य नरो भक्त्या सम्यङ् मां पूजयिष्यति ।
जलं योऽत्रैव गृह्णाति विधानेन वरानने !॥
तस्योदरे भविष्यामि लिङ्गरूपी न संशयः ॥ १६ ॥

इत्युक्ते वचने देवि! सदेवासुरपन्नगाः । यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतवेतालकिन्नराः ॥
विद्याधरगणाश्चैव मम दर्शनलालसाः । समायाता वरारोहे! पीत्वा तत्र जलं शुभम्

मम मुख्याश्च ते जाताः कलिप्रवृत्तिरे निश्चिताः ॥
अनन्तवासैः सिद्धं शुश्रूषमाणा वसन्ते ॥ २२ ॥
अथ कालेन बहुना श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ।
केदारेश्वरदेवस्य उत्पत्त्या च विशेषतः ॥ २३ ॥
मनुष्याः लघुरावागामन्ये दक्षोपद्रुतानपि । समस्याचार्यविशालाहितः सर्वमालिन्यः
इत्यादिमनुष्याणां न च निश्चलतिष्ठतां । २८ देवोऽत्र देवोऽत्र सत्यमुत्तमेदित्यतः
न मह्यं महादेवि करोऽहं महिमाद्रिनि ।
नित्यलोऽन्ययस्य च तत्र निमन्ते दीनमावसाः ॥
उद्रिक्ता निमग्नमनाश्च येत्तावं परमं गताः ॥ २६ ॥
नात्र दधोनमीधानि न गङ्गा पुण्यदायिनी । न धर्मो न परो लोकः सर्वमनद्विज
एवं विस पुराणपु श्रुतम सर्वदा श्रुतौ । हिमालये च केदारं लिङ्गं मोक्षप्रदायकम्
तत्र तु वदतो मया मानुषाणां यथास्थितिः ।
आकाशादुत्थिता वाणी मया प्रोक्ता तु तत्तथा ॥ २९ ॥
अमार्गं मा वदस्वात्र न निन्दा श्रूयतोऽन्यथा ।
पुराणं शाश्वता प्राक् ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ ३० ॥
ये निन्दन्ति पुराणानि धर्मशास्त्राणि नास्तिकाः ।
न यान्ति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३१ ॥
सदा देवोऽत्र केदारः स्वर्गमोक्षप्रदायकः । विद्यते त्रिदशैः पूज्य सततं नैव दृश्यते
करोति पूजां हिमवान्मासान्षट् च शाश्वतान् ।
हिमाद्रिस्तेन पुण्येन नगेन्द्रस्तु कृतो मते ।
सेव्यश्च रमणीयश्च सर्वतीर्थनमस्कृतः ॥ ३३ ॥
सर्वरत्ननिधानश्च देवानां वल्लभस्तथा । ग्रीष्मे चैव वसन्ते च देवदेवोऽत्र दृश्यते ।
निर्यतैव कालेन मानुषाणां च सर्वदा । यच्छिद्धि परा आना सर्वदा मम दर्शने ।
आख्यास्ये तदुपर्यं च श्रूयतां सावधानतः ।

मा विकल्पोऽत्र कर्त्तव्यः सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥ ३६ ॥
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । प्रलयेऽप्यक्षयं प्रोक्तं महाकालवनं नराः ॥
तत्राहं सम्भविष्यामि लोकानामनुकम्पया । लिङ्गरूपेण शिप्रायास्तटे पुण्ये सुशोभने
सोमेश्वरस्य देवस्य पश्चिमे स्थानमुत्तमम् । प्रसिद्धमुपयास्यामि केदारेश्वरनामतः
सर्वदा दर्शनं तत्र मया स्मादृ भविष्यति । सर्वेषां च प्रदास्यामि सर्वान्कामान्न संशयः
इह यावत्फलं तस्माद्दास्यामि ह्यधिकं ततः । इति ते मानवाः सर्वे श्रुत्वा वाणीमनोरमाम्
आकाशादुत्थितां दिव्यां मनः प्रह्लादकारिकाम् ॥ ४१ ॥
गता वनं महाकालं संस्मरन्तो महेश्वरम् । विकल्पेन विचित्रेण सत्यमेवेति नान्यथा
स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये यावत्पश्यन्ति भास्करम् ।
तावद्दृष्टिपथोत्पन्नं लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥ ४३ ॥
अथ ते हर्षिताः प्रोचुः केदारोऽयं न संशयः ।
दृष्टोऽस्माकं न सन्देहो गङ्गा शिप्राजले स्थिता ॥ ४४ ॥
ततस्ते पूजयामासुः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा । पूजितोऽहं विशालाक्षि तेषां तुष्टो वरानने
दुर्लभोऽतिवरो दत्तः कैलासे स्थानमुत्तमम् । अक्षयञ्च पदं दत्तं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥
अतोऽहं त्रिदशैः प्रोक्तः केदारेश्वरनामतः । प्रार्थितः परया भक्त्या लोकानामनुकम्पया
इहागत्य नरा ये च त्वां पश्यन्ति सुभक्तितः ।
तेषां फलं त्वया देव! दातव्यमधिकं यतः ॥ ४८ ॥
हिमाद्रौ हिमनाथस्य यात्रायाः प्रत्यहं फलम् । लभन्ते च नरा नित्यं नात्र कार्या विचारणा
ब्रह्महा वासुरापो वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः । तत्सम्पर्की नरो यस्तु त्वां दृष्ट्वा किल्बिषाकरः
सोऽपि याति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
चान्द्रायणानां विधिवच्छतानां चैव यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति केदारेश्वरदर्शनात् ॥ ५१ ॥
ते नराः पशवो लोके तेषां जन्म निरर्थकम् । यैर्न दृष्टो महाकाले केदारेश्वरसञ्ज्ञकः
कौमारे यौवने बाल्ये वार्द्धके यदुपार्जितम् । तत्पापं सङ्क्षयं याति केदारेश्वरदर्शनात्

हिमालयकृता यात्रा तस्या प्रोक्तं च यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति केदारेश्वरदर्शनात् ॥ ५४ ॥
इत्युक्तोऽहं तदा देवि देवं प्रणतिपूर्वकम् । तथेति चमयाप्रोक्तेऽपिदेवादिव ॥
एष ते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन । केदारेश्वरदेवस्य पिशाचाख्यमतः शृणु

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्याय·

पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अष्टषष्टिकसङ्ख्याकं पिशाचाख्यमथेश्वरम । शृणु देवि प्रयत्नेन दर्शनात्पापनाशन
आसीत्कलियुगे द्विप्रश्चैव मृद्धनोऽभवत् ।गोमासनामनुपाख्यातोनास्तिकोवेदनिन्दक
अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो निरपत्रप । विश्वासमथ तत्रैव परस्यहरणे रत ॥ ३
त्रिवर्गाहन्ता चान्येषामामकामानुघत्तक । स कस्मिश्चिन्मृतो देवि कष्टेन परमेण
मरुदेश पिशाचोऽभून्नग्नोर्दानो भयावह । नानारूपमपिशाचानामास्वपक्षोच्छेदकारक
बहवो मद्भिनास्तेन पिशाचा बलवत्तरा ॥ ६ ॥
अथतेनैवमार्गेणकदाचिच्छाकटायन । स्वाध्यायनिरतो विद्वान्धार्मी शमपरायण
उदयादित्यसकाशो विभावसुसमद्युति । शकटेन सदा याति स पश्यन्पर्वतात्मजे
गतो ददर्शतं रौद्रं पिशाचं च भयावहम् ।
॥ पिशाच क्षुधाविष्टो भोक्तुकामोऽभ्यधावत ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा त शकटारूढ ब्राह्मण शाकटायनम् । शकटस्य ध्वनिश्रुत्वा रूपदृष्ट्वाद्विजस्य च

तथारूपः पिशाचस्तु कर्णाभ्यां बधिरीकृतः ।
आत्मत्राणपरो भूत्वा नष्टः कष्टेन पार्वति ॥
तं धावन्तं समालोक्य पिशाचं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
पिशाच! भ्रान्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे ।
क्व धावसि समाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥ १२ ॥

पिशाच उवाच

शकटस्यास्यमहतोघोषंश्रुत्वाभयङ्करम् । कर्णाभ्यांबधिरोजातोविसंज्ञस्तवदर्शनात्

ब्राह्मण उवाच

पिशाचानां बलिष्ठाश्च श्रूयन्ते ब्रह्मराक्षसाः ।
स त्वं मां भोक्तुकामोऽसि विख्यातो ब्रह्मराक्षसः ॥ १४ ॥

पिशाच उवाच

पिशाचानां समर्थोऽस्मि नष्टोऽहं तव दर्शनात् ।
दुःखं हि मृत्युः सर्वेषां जीवितं च सुदुर्लभम् ।
अतो भीतः पलायामि जीवहेतोः सुखार्थतः ॥ १५ ॥

ब्राह्मण उवाच

कुतः पिशाचसौख्यतेमरणंश्रेय एव ते । पैशाची कुत्सितायोनिःपापिनामेवजायते

पिशाच उवाच

सर्वत्र हि गतो जीवोभवत्येवसुखाश्रयः । तस्माज्जीवितुमिच्छामिप्रसीदब्रह्मराक्षस

ब्राह्मण उवाच

नाहं त्वां भोक्तुकामोऽस्मि ब्राह्मणोऽहं न राक्षसः ।
सर्वभूतहितार्थाय विचरामि महीतले ॥ १८ ॥
सर्वेषामेव जन्तूनां मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । माकुरुष्वभयं मत्तो मित्रभावगतो ह्यहम्
तस्य तद्वचनंश्रुत्वापिशाचः स्वस्थमानसः । प्रणम्यप्रत्युवाचेदं ब्राह्मणंशाकटायनम्
यदि ते सर्वभूतानां दत्ता ह्यभयदक्षिणा । कर्मणा मनसावाचा मित्रभावं गतो यदि

पृच्छामि त्वां महाभाग संशयो हृदये स्थितः ।
श्रुत्वाऽनुकम्पया सम्यक्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २२ ॥

केन कर्मविपाकेन पैशाचं याति मानवः । पिशाचत्वात्कथं मुक्तिं प्राप्य तथापकर्मी
इति तस्य वचः श्रुत्वा पिशाचस्यवचानने । ममत्वेनावृतस्तस्मै प्रावोचच्छाक्दार
अपहृत्य च विप्रस्य देवस्वं च विशेषतः । तेनपापेन पापिष्ठा पिशाचत्वप्रयान्ति
पितरं मातरं चैव स्त्रियं बालं द्विजं तथा । वञ्चयित्वा हरत्यर्थं स पिशाचो भवेत्
राजद्रव्यं गृहीत्वा तु न यच्छेद्ददाति य । आत्मानमेव पुष्णाति पिशाचत्वमगच्छ
विश्वासघातका ये च परदाररताश्चये । प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं तथा ये वेदनिन्द

निन्दन्ति ये पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
ते भवन्ति पिशाचाश्च ये सदा पिशुना नराः ॥ २६ ॥
इति ते कथितं सर्वं वेदप्रामाण्यतोऽधुना ।
इदानीं कथयिष्यामि यस्त्वं जातोऽसि तच्छृणु ॥ ३० ॥

सोमकोनाम शूद्रस्त्वं परमर्मप्रकाशकः । विश्वासघातको जातो देवब्राह्मणदूष
नास्तिको भिन्नमर्यादो जन्मन्यत्रापि सत्तमे । सकुलपातयित्वाम नरकेदारुणेभृश
पिशाचयोनिं सम्प्राप्तः पुनः प्राप्स्यसिरौरवम् । महारौरवसञ्ज्ञं तुमकचकालसूत्र

यन्त्रपीडनकं रौद्रं मथनं कुम्भवालुकम् ॥ ३३ ॥
इत्येव वदतस्तस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनि ।
सस्मार प्राक्तनं जन्म सत्सङ्गात्कुत्सितं स्वकम् ॥ ३४ ॥
दु खाभिभूतो निर्वेदो विविधमित्यमकद्रुदन् ।
पतितो भूतले दधि इदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अहोऽनेनापि पुण्येन भवता सह दर्शनम् । जातं ममाल्पपुण्यस्य दीनस्य कृपणस्य

नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमा गतिः ।
नास्तिधर्मसमं त्राणं स च नास्ति मम प्रभो ॥ ३७ ॥

मग्नोऽहं दुःखजलधौ मग्नोऽहं पापकर्दमे । भ्रान्तोऽहमन्धतमसितततस्त्वांशरणं गत

नमस्तेऽस्तु महाभाग ! किं करोमि प्रशाधि माम् ।
तत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं प्राप्तं मयाऽधुना ॥ ३६ ॥
एवं निगदतस्तस्य पिशाचस्य वरानने !। कथयामास माहात्म्यंसविप्रःशाकटायनः
पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रगतानिवै । क्षेत्राणियानिसन्तीहतेषांक्षेत्रंसुपुण्यदम्
महाकालवनं क्षेत्रं प्रलयेऽप्यक्षयं गतम् । लिङ्गं तत्र महाक्षेत्रे पिशाचत्वविनाशनम्
ढुण्ढेश्वरस्य देवस्यदक्षिणेत्रिदशार्चितम् । पैशाचं विद्यतेभूयः पिशाचयोनिनाशनम्
तस्य दर्शनमात्रेण पिशाचत्वात्प्रमोक्ष्यसे ॥ ४३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स पिशाचो वरानने !। आजगामत्वरायुक्तो नमस्कृत्यद्विजंतदा
महाकालवने पुण्ये समीहितफलप्रदे । ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्नात्वा शिप्राजले शुभे ॥
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्यसपिशाचो वरानने !। तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु दिव्याभरणभूषितः
दिव्यं विमानमारूढो गतो लोके सनातने । उद्धृत्यसकलं गोत्रं मातृकं पैतृकंतथा
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यंमाहात्म्यातिशयं प्रिये !। प्रोक्तंदेवैर्विमानस्थैःसिद्धैराकाशगैस्तथा
पिशाचोऽपि गतः स्वर्गं अस्य लिङ्गस्य दर्शनात् ।
अतो देवः स विख्यातो भविष्यति महीतले ॥
पिशाचेश्वरसञ्ज्ञस्तु सर्वपापप्रणाशनः ॥ ४६ ॥
येपश्यन्तिनरादेवि! पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् । तेषांहिपितरःसद्योयेचापिनिरयेस्थिताः
पिशाचत्वाद्विमुच्यन्ते स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥ ५० ॥
अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सोऽपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥ ५१ ॥
गयायां पिण्डदानेनयत्पुण्यं समुदाहृतम् । तत्पुण्यमधिकं ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात्
येपश्यन्ति चतुर्दश्यां पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् । प्रेतत्वंचपिशाचत्वं कुलेतेषांनजायते
नवियोनिं नरो याति नरकं चनपश्यति । प्रसङ्गेनापियःपश्येत्पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम्
सर्वैश्वर्यसमायुक्तः सर्वबन्धुसमन्वितः । मोदतेपितृलोके स पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा स्वर्गं च गच्छति ।

स्पर्शनादस्य लिङ्गस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ ५९ ॥
तदैव स नरो मुक्तः संसारनिगडादिति । यदैव वीक्षते लिङ्गं पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम्
यज्ञानां तपसां चैव दानानां चैव यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं जायते तस्य दर्शनात्
यदि पश्येच्चतुर्दश्यां वैशाखे कार्त्तिके तथा । तस्य पुण्यमसङ्ख्यातं जायते नात्र संशयः
एतत्ते कथितं देवि प्रभावं पापनाशनम् । पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयतां सङ्गमेश्वरम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्ट
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सङ्गमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकोनसप्ततिं देवि शृणु पार्वति यत्नतः । यस्य दर्शनमात्रेण सङ्गमो जायते सदा
कलिङ्गविषये देवि सुबाहुर्नाम पार्थिवः । बभूव भुवि विख्यातो यज्वा परमधार्मिकः
तस्य पत्नी विशालाक्षी दुहिता दृढधन्वनः । काञ्चीपुरनिवासस्य राजश्रेष्ठस्य तस्य या
परस्परानुरागाद् दाम्पत्यप्रीतिरभूत्तयोः । तस्य राज्ञः शिरोऽर्त्तिस्तु मध्याह्ने जायते सदा
आयुर्वेदविदां मुख्यैः शरीरस्य चिकित्सकैः ।
तैः प्रणीता क्रिया योगा व्यथावृद्धिर्दिने दिने ॥ ५ ॥
एवं बहुतरे काले गते देवि महीपतिम् । प्रत्युवाच विशालाक्षी भर्तृदुःखेन पीडिता
कथमेषा शिरोरोगो जातस्ते पृथिवीपते । वैद्याश्च बहवो देव नानाशास्त्रविशारदाः ।
प्रयतन्तेऽस्य नाशाय तथाऽप्येष न शाम्यति ॥ ७ ॥
एवं स प्रियया प्रोक्तः सुबाहुः पृथिवीपतिः ।

प्रत्युवाच प्रियां भार्यां प्रेम्णा प्रणयवत्सलाम् ॥ ८ ॥
सुखदुःखाश्रयं देवि शरीरंसर्वदेहिनाम् । पूर्वकर्मानुसारेण सुखं दुःखं च जायते ॥
इति सम्बोधिता राज्ञी तेन राज्ञा वरानने !।
पुनः प्रोवाच हार्द्देन तमेवार्थं सुदुःखिता ॥ १० ॥
यदासावारितात्यर्थं पृच्छत्येव पुनःपुनः । तदाराजाप्रहस्यैव तां च राज्ञीमुवाच ह ॥
यदि त्वं श्रोतुकामासि रोगस्याऽस्य समुद्भवम् ।
कारणं तत्त्वतो देवि ! नाख्यास्याम्यहमत्र वै ॥ १२ ॥
महाकालवनंगत्वा सिद्धगन्धर्वसेवितम् । तत्र ते कथयिष्यामि यदि कौतूहलं तव
श्वः प्रभाते गमिष्यामि त्वया सार्द्धं शुचिस्मिते !।
इति तस्य वचः श्रुत्वा सा राज्ञी विस्मिता स्थिता ।
उत्सुका गमनार्थाय महाकालवनं शुभम् ॥ १४ ॥
अथसारजनीवृत्ता प्रभाते नृपसत्तमः । प्रतस्थे भार्यया सार्द्धं सैन्येन महताम्वृतः ॥
आजगाम क्रमेणैव महाकालवनं शुभम् । आवासंचिदधेधीमाञ्छिप्रातीरे नृपस्तदा
पातालवाहिनी तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी । द्वितीयानीलगङ्गा च शिप्रया सहसङ्गता
तासां च सङ्गमस्तत्र तल्लिङ्गं सङ्गमेश्वरम् । पूजितं गङ्गयासार्द्धं शिप्रयानीलगङ्गया
अथ प्राप्ते सुबाहौच सारा्ज्ञीविस्मयान्विता । पप्रच्छप्रणयोपेताकथ्यतामत्रकारणम्
यत्त्वयोक्तं पुरा देव! कथयिष्यामि तत्र वै ॥ १६ ॥
एवमुक्तः सुबाहुस्तु प्रियया पृथिवीपतिः । प्रत्युवाच प्रियांप्रेम्णाप्रहस्यच पुनः पुनः
सुखं स्वपिहि भद्राङ्गि! श्रान्ता वयमनिन्दिते ।
प्रभाते कथयिष्यामि शिरोरोगस्य कारणम् ॥ २१ ॥
अथ सा रजनी वृत्ता प्रभाते नृपसत्तमः । कथयामास माहात्म्यं देवस्य परमेष्ठिनः
अहमासं कुशूद्रस्तु सर्वदा वेदनिन्दकः । विश्वासघातकोनित्यं त्वमप्येवं तथाविधा
पुत्रो जातस्तुदुःशीलो देवब्राह्मणवञ्चकः । कुरूपः कर्कशो दुष्टः प्रकृत्या पापपूरुषः ॥
स्थदीर्घेणकालेन द्वादशाब्दं भयावहा । अनावृष्टिस्तु सञ्जाता सर्वप्राणिभयङ्करी ॥

वियोगस्तु त्वया प्राप्तो मया सार्द्धं सुतेन च । ततोऽहंदु खसन्तप्तो वैराग्यपरमगत इच्छतानिधनसद्यो मयाप्रोक्तमिदं वच । मम पुण्यविहीनस्य पापध्यानरतस्य च सुतेन भार्यया सार्द्धं सङ्गमो दुर्लभ पुन । कथस्त्वपितिपापिष्ठ इत्वापापसुदारुणम् कुटुम्बार्थे करोत्येवमेकाकी निस्तरत्यसौ । धर्म एव परोबन्धुर्धर्मएव परा गति धर्मेण साध्यते सर्वं तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ॥ २९ ॥

इतिचिन्तयतोऽस्यथं ममप्राणा गता प्रिये । विविधा यातनाप्राप्तामयानरककोटिषु अन्तकालेऽपि धर्मस्य प्रशसा यामयाकृता । मत्स्योऽहतेनपुण्येनजात शिप्राजलेशुभे

त्व च श्येनी ततो जाता तस्मिन्नेव वनोत्तमे ।
प्रावृट्कालेऽथ सम्प्राप्ते माश्लेषागते रवौ ॥ ३२ ॥
नदीप्रवरवेगेण नि सृतोऽह जलात्तत ।
त्वया शिरसि सम्प्राप्तो नखैर्विद्धोऽस्मि सुन्दरि ॥ ३३ ॥

आनीतोऽह त्वयादेवि सङ्गमेश्वरसन्निधौ । कैवर्तैर्निधनप्राप्त त्वया सार्द्धं वरानने म्रियमाणेन मे दृष्टो देवोऽसौ सङ्गमेश्वर । शिप्रयाप्लावितोऽस्यथं गङ्गयानीलगङ्गया तस्यदर्शनमात्रेण जातोऽह पृथिवीपति । कलिङ्गविषये देवि सर्वभूपालवन्दित सुता त्व वल्लभा जाता काञ्चीपुरनिवासिन । प्राप्तनतरतस्यैव सुभगा हृदयन्दन आवा राज्यमवाप्तौ तद्वलिङ्गस्यदर्शनात् । त्वया करदहैर्विद्धो मारितोलगुडैः क्षतै

मध्याह्ने कदम स्पृष्ट्वा ततो मे शिरसि व्यथा ।
स्मरामि जातिमात्मीयामस्य देवस्य दर्शनात् ॥ ३६ ॥

एतत्त कथित देवि पृष्टोऽह यत्त्वया पुरा । गच्छसुन्दरि भद्र ते यत्रते वर्तते मन

स्थातव्य च मयाऽत्रैव सेव्योऽसौ सङ्गमेश्वर ॥ ४१ ॥

तत सा निरवद्याङ्गी नीलोत्पलविलोचना । करुण सुस्वरकृत्वामर्तारमिदमब्रवीत

मयाऽपि सस्मृत देवं पूर्वजन्मनि चेष्टितम् ।
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्तिर्यग्योनिगतावपि ॥ ४३ ॥

प्रमावाद्वा मनुष्यत्व निर्मलेषु कुलेषु च । प्राप्ताश्रीरतुलालोके प्राप्त राज्यमकण्टकम्

प्राप्ताभार्या प्रियाहंतेत्वंच प्राप्तो मया नृप । ख्यातोऽयं त्रिपुलोकेपुनामतः सङ्गमेश्वरः
अस्य देवस्य माहात्म्याद्वियोगो न भविष्यति ।
यथा कृष्णस्य लक्ष्म्या च पार्वत्या च शिवस्य च ॥ ४६ ॥
पुनः प्रणम्य प्रणता सहसा मन्मथाकुला । भर्त्ता सुवाहुर्मेभूयादन्यस्मिन्निहजन्मनि
तव देवप्रसादेन यदि त्वं सङ्गमेश्वरः । ततोविलोक्यसोन्मेषं कुसुमेषु तरङ्गिताम् ॥
कान्तां पिवन्निव दृशा प्राह तां तरलेक्षणाम् ॥ ४८ ॥
सहजेनाभिजन्येन गुणैः कान्त्या विभूषिता ।
मया प्राप्ता विशालाक्षि ! प्राप्तं मज्जन्मनः फलम् ॥ ४९ ॥
ततस्तां भयमन्त्रस्तां कम्पिताधरपल्लवाम् ।
गृहीत्वा च करे कान्तां जगामाऽन्तः पुरं निजम् ॥ ५० ॥
यदन्कन्दर्पसर्पेण दष्टोऽहं दैवतोऽधुना । चचार तत्र निःसारं संसारं कलयन्धिया
पुरे ममवरारोहेचिरंरेमेतया सह । एवं राजाप्रियां प्राप्य निवेद्य च निजां कथाम् ॥
भेजे राज्यं तया सार्द्धं विस्तारितमहोत्सवः ।
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा अर्थिभ्योऽपि ददौ धनम् ॥ ५३ ॥
अपूर्वत्यागिनानेन त्रैलोक्यंविस्मयं ययौ । राज्यंकृत्वाचिरंकालं सभार्यान्नृपसत्तमः
भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्तस्मिँल्लिङ्गे लयंगतः ।
अतो देवि! सुविख्यातो देवोऽसौ सङ्गमेश्वरः ॥ ५५ ॥
यः पश्येत्परयाभक्त्यातल्लिङ्गंसङ्गमेश्वरम् । नवियोगोभवेत्तस्यपुत्रभ्रातृप्रियादिभिः
नियमेन तु यः पश्येत्तल्लिङ्गं सङ्गमेश्वरम् । राजसूयसहस्रस्य फलं तस्याधिकंभवेत्
गाङ्गं च सफलं पुण्यं यामुननार्मदं तथा । जायते चान्द्रभागं च सङ्गमेश्वरदर्शनात्
यः पश्येच्छ्रावणेमासि तल्लिङ्गंसङ्गमेश्वरम् । कार्तिकस्वामिनोयात्राकृतातेन नसंशयः
मासि चाश्वयुजे देवं यः पश्येत्सङ्गमेश्वरम् । कृतं तेन सहस्रं तु वाजपेयं वरानने!॥
यः पश्येत्कार्त्तिके मासि तल्लिङ्गं सङ्गमेश्वरम् । राजसूयसहस्रं तु कृतं तेन न संशयः
चतुरो वार्षिकान्मासान्यः पश्येत्सङ्गमेश्वरम् । सयाति परमं स्थानंममाभीष्टतरंप्रिये

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । सङ्गमेश्वरदेवस्य शृणु दुर्द्धर्षेश्वरम् ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये सङ्गमेश्वरमाहात्म्यवर्णननामैकोन-
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

दुर्द्धर्षेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

शृणु सप्ततिकं देवि दुर्द्धर्षेश्वरमीश्वरम् । यस्य दर्शनतो देवि नरः पापैः प्रमुच्यते
दुर्द्धर्षो नाम राजाऽभून्नेपालविषये पुरा । पुण्यकेतुर्यशस्वी च सत्यसन्धो दृढव्रत
तिस्रस्तस्याभवन्भार्याः कमला सुमनोहरा ।
विहरन्स वनोद्याने वसन्ते पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥
कदा मृगरसाविष्टो देशार्द्रं वानरद्रुमा । तुरगेणोह्यमानः प्राप वनं रुचिरपादपम् ॥
गजेन्द्रमृगशार्दूलसिंहसम्बरसङ्कुलम् । ऋक्षवानरवाराहगण्डकादिविराजितम्
तस्मिन्वने सुविस्तीर्णं कदलीखण्डमण्डितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ६ ॥
ददर्श दर्पणप्रख्यं सरो नीरजराजितम् । कार्त्तस्वरमयवृन्दस्तु पङ्कजकुसुमपिञ्जरम्
ददर्श कन्यां तत्रैव काननस्यैव देवताम् । स तां दृष्ट्वा सुसर्वाङ्गीं मन्मथेन प्रपीडित
श्चित्रन्यस्त इव क्षिप्रमभूद्विस्मयनिश्चलः । तामुवाच सङ्कुसमन्त्रेणेवान्तिकमयं
कन्दर्पकोटिसदृशाम्विभ्रान्तं नृपमब्रवीत् ।
सुता मां विद्धि राजेन्द्र कल्पस्य प्राणवल्लभाम् ॥ १० ॥
तपोरतस्य शान्तस्य सर्वदा ब्रह्मचारिणः ।

मदर्थे प्रार्थ्यतां विप्र! स मां तुभ्यम्प्रदास्यति ॥ ११ ॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा मन्मथेनाकुलीकृतः ।
लज्जां त्यक्त्वा स भूपालो ययाचे विजने च ताम् ॥ १२ ॥
मम प्राणव्ययः सुभ्रूस्त्वां विना समुपस्थितः ।
कार्याकार्यविचारो हि कस्य जीवितशान्तये ॥ १३ ॥
यज्यते प्राप्तममृतंयदेतद्बुद्धिलाघवम् । को जानीतेपरे लोके कस्य किंनुभविष्यति
ाज मामनवद्याङ्गि तवैतद्वदनामृतम् । न पाययसि चेन्मह्यं मृतञ्जानीहि मे प्रिये॥
स्वयं पिबामि चेद्विद्धि परलोकगतं हि माम् ।
श्रुत्वेति चकिता तन्वी प्रोवाच विनयान्विता ॥ १६ ॥
रणायां मयितातस्यविनष्टेकन्यकाफले । कुलं पततिनःसर्वंतस्मादेतद्विचिन्त्यताम्
ादिते परमं प्रेम ममोपरि महीपते! । मदर्थे प्रार्थ्यतां विप्र स मां नूनं प्रदास्यति॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा नान्यथा मे भविष्यति ।
ज्ञात्वा कन्यां द्विजस्यैव कल्पस्य ब्रह्मचारिणः ॥ १९ ॥
ात्वा ययाचेप्रणतः स्थितंनिजतपोवने । मुनीन्द्रश्चन्द्रवदनां स चास्मैतां ददौमुदा
तत्रैव सङ्गतो राजा मन्मथेन वशीकृतः । रेमे रमणकैर्योगैर्न सस्मार निजं पुरम् ॥
कदलीखण्डकुञ्जेषु रम्यासु वनराजिषु ।
बहुलाम्रकदम्बेषु राजा भेजे नवां वधूम् ।
सिषेवे चारु सुरतं स विदग्धोऽतिमुग्धया ॥ २२ ॥
एवं हि वसतस्तस्य दुर्द्धर्षस्य वरानने !। आजगाम सुदुर्द्धर्षो राक्षसोऽतिभयङ्करः
ज्वलितो विटकाकारो दंष्ट्रोत्कटकटाननः । तं नृपंमोहयित्वा तु तरसातरलेक्षणाम्
जहार मन्मथाविष्टो रूपयौवनशालिनीम् ।
राजा च तां हृतां दृष्ट्वा वियोग विषमूर्च्छितः ।
स्मृत्वा स्मृत्वा सुचार्वङ्गीं विललापाऽऽकुलेन्द्रियः ॥ २५ ॥
हा प्रिये प्रेमपीयूषे प्रणयामृतदीर्घिके । हा सुन्दरि! विशालाक्षि कगता मां विहायवै

पुनश्चिन्तुमियानर्म्यकरात्रस्त्यामिनेमुखम् । इतिश्चरायमकरोत्स्मरं स्तां बालहासितं

उन्मत्त इव बभ्राम तत्र तत्र स्मरातुरः ॥ २७ ॥

एवं विलपमानस्य दुर्दैवस्य नृपस्य तु । आजगाम समुद्देशं कश्चो ब्राह्मणसत्तम

ददर्श भूपति तत्र भ्रमन्तं भ्रमरं यथा ॥ २८ ॥

ज्ञात्वा जातमर्थं तस्य वमनमाभ्यास्य यतोऽब्रवीत् ।

यदि दुर्वृत्तं राजेन्द्र गहना कर्मणो गतिः ।

क गतो हि मा पार्थ नैपालविषयस्तव ॥ २९ ॥

कुलीना रूपसम्पन्ना तिस्रो भार्या क्व ये गताः । क मेराज्यं गतं भूप क्व पुत्रीगताः

एवं विलपतं लोके गन्धर्वनगरोपमम् । अनित्य जीवितं भूप राज्यं वै कुकुरोपा

एवमाभ्याभिनो बाला कालेन च पुनः पुनः ।

स्मन्पार मां मुखपङ्क्तीं मन्मथेन प्रपाडितः ॥ ३२ ॥

ब्रूहि मे भगवन्सर्वमद्य यदि मेऽस्ति दया मयि ।

कथं राज्य स्वकाय स्यात्कथं स सुहृदागमः ॥ ३३ ॥

तिस्रो भार्या कथं चिरं पश्यामि पृथिवीतले ।

लावण्यामृतशालिन्यस्तनयपुत्र्या द्विजोत्तम ।

कथं समागमो भूयो भविष्यति मया सह ॥ ३४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा विप्रणोक्त वरानने । गच्छ भूपाल नेपाल महाकालवनोत्त

तस्मिन्क्षेत्र तायवरे लिङ्गं सर्वार्थसाधकम् ।

स्थितं यत्र सूर्येण भगवन्तम सुदुष्करम् ॥ ३६ ॥

शिप्रायास्तु तटे रम्ये पुण्ये ब्रह्मशापक्षिमि । तस्य दर्शनमात्रेण तवाऽभीष्टं भविष्य

कल्पस्यवचनं श्रुत्वा सत्वरो नृपसत्तम । नेपाल च ततोऽवासमाश्वास्यसुहृज्जन

सान्त पुरपरीवारो महाकालवनं गतः । सर्वदा सर्वसिद्धानामाश्रय विषय धिय

तत्र स्नात्वा जले पुण्ये शिप्रायाश्चाऽऽशु सिद्धिदे ।

सूर्येणाराधितं लिङ्गं ददर्श नृपसत्तम ॥ ४० ॥

पूजयामास रत्नैश्च दिव्यैर्वस्त्रैः सुभूषणैः । कर्पूरेण सुगन्धेन लिङ्गपूजा कृता तदा
मुक्ताफलैःसुतारैश्चजलधाराभिरेवच । भक्त्या ननर्त्ततस्याग्रे संस्तुवन्विविधैःस्तवैः
शुश्राव श्रोत्रपीयूषं गीतं देवगृहेशुभे । तच्छ्रुत्वाकौतुकाविष्टोध्वनिंश्रुत्वामनोरमाम्
प्रियामपश्यत्तत्रस्थां लावण्यललनावधिम् ॥ ४३ ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनस्तन्मयोऽभवत् ।
क्षिप्रं तद्दर्शनेनैव स्मरेण तरलीकृतः ॥ ४४ ॥
ज्ञात्वा मे सैव पत्नीयं दृष्टादेवप्रसादतः । सापि लावण्यनलिनीराजहंसंविलोक्यतम्
क्षिप्रं पुलकिता तस्या विरराज कुचस्थली ।
एतस्मिन्नन्तरे देवि! वाणी लिङ्गात्समुत्थिता ॥ ४६ ॥
विश्वावसोः सिद्धपतेः सुतैषा प्राणवल्लभा । कल्पेनपालिता सम्यक्त्वदर्थंनृपसत्तम!
आनीता ते मया पत्नी हत्वा तं राक्षसाधिपम् ।
गृहाण च मया दत्तां भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥ ४८ ॥
इत्युक्तोऽसौ गतो देवि! लब्ध्वा भार्यां प्रियां तदा ।
सान्तःपुरपरीवारो लिङ्गस्याऽस्य प्रभावतः ॥ ४९ ॥
आराधितो नरेन्द्रेण दुर्द्धर्षेण महात्मना । तदाप्रभृति देवोऽयं दुर्द्धर्षेश्वरसञ्ज्ञकः ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातो वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ ५० ॥
ये पश्यन्तिविशालाक्षि दुर्द्धर्षेश्वरसञ्ज्ञकम् । ते दुर्द्धर्षाभविष्यन्तिशत्रूणांसमरेसदा
सङ्क्रान्तौरविवारे च ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः । गत्वाऽर्चयन्ति ये देवि देवं दुर्द्धर्षमीश्वरम्
ते प्रयान्ति विमानेन मदीयं स्थानमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
पापाचाराश्च ये जीवा दुष्कर्मनिरता नराः ।
मुच्यन्ते पातकात्सद्यो दुर्द्धर्षेश्वरदर्शनात् ॥ ५३ ॥
दर्शनात्स्पर्शनात्सद्यो नामसङ्कीर्त्तनादपि । ब्रह्महत्यासहस्रं हि तत्क्षणादेव नश्यति
कृतघ्नो निन्दको दुष्टः पापकर्मा दुरात्मवान् । परदाररतश्चौरो ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दुर्द्धर्षेश्वरदर्शनात् ॥ ५५ ॥
अयने विषुवेचैव सम्प्राप्ते सोमपर्वणि । ये पश्यन्ति च दुर्द्धर्षं स्नात्वाशिप्राजलेशुभे

गङ्गायास्त्रिगुणं पुण्यं जायते नात्र संशयः ॥ ५६ ॥
तत्रतर्द्दीयतेदानमस्यसङ्ख्यानर्चियते । पितरस्तोषितास्तेनयात्मावैतोपितस्त
कल्पकोटिसहस्रं मत्पुरे पूजितो वसेत् ।
यदा याति स भूर्लोके तदाऽसौ भूपतिर्भवेत् ॥ ५८ ॥
मधूष्य शत्रुवर्गेण फलं प्राप्नोति चाऽक्षयम् ।
पदं यस्त्रिदशेशस्य पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ५९ ॥
एवमेकचिमोद्दिष्टि प्रभाव पापनाशनं । दुर्द्धर्षेश्वरदेवस्य प्रयागेशमतः शृणु ॥ ६०
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे दुर्द्धर्षेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

एकसप्ततिकं विद्धि प्रयागेश्वरसंज्ञकम् । अद्वितीयं विशालाक्षि महापातकनाशनम्
हास्तिनेऽभूत्पुरे श्रीमान्कुरुवंशे नृपसत्तमः । वैवस्वतेऽन्तरे कल्पे युगे द्वापरसंज्ञके
स चाद्भुतमहावीर्यो वज्रसंहननो युवा । सर्वशास्त्रेषु कुशलः कलासु च विचक्षणः ॥
बलेनविष्णुसदृशस्तेजसा भास्करोपमः । गङ्गामप्यचारैक सिद्धचारणसेविताम्
स कदाचिन्महाबाहुः प्रभूतरथवाहनः । वनं जगाम गहनं हयनागशतैर्वृतः ॥ ५ ॥
स वा तत्र मृगान्व्याघ्रान्घातयामास लीलया ।
महिषांश्च वराहांश्च विनिघ्नन्नृपसत्तमः ॥ ६ ॥

स कदाचिद्वने तस्मिन्ददर्श परमां स्त्रियम् ।
जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षात्पद्मामिवापराम् ॥ ७ ॥
तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद्विस्मितो रूपसम्पदा । पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यतनराधिपः
सा दृष्ट्वैव च राजानं विचरन्तंमहाद्युतिम् । स्नेहादागतसौहार्दान्नातृप्यतविलासिनी
तामुवाच ततो राजा सान्त्वयञ्छ्लक्ष्णया गिरा ।
देवी वा दानवी त्वं च गन्धर्वी यदि वाप्सरा ॥ १० ॥
पक्षी वा पन्नगी वा त्वं मानुषी वा सुमध्यमे !।
याचे त्वाऽम्भोजगर्भाभे भार्या मे भव शोभने !॥ ११ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचोराज्ञः संस्तुतं मृदु वल्गु च । अङ्गीकृतंतया देवि समयंप्रार्थतो नृपः
वारिता विप्रिये वापि त्यजेयं त्वामसंशयम् ।
न प्रष्टव्या त्वया राजन्काऽसि कस्येति सर्वथा ॥ १३ ॥
एवमस्त्विति तेनोक्तं सत्येन सुकृतेन च । स तस्याः शीलवृत्तेन रूपौदार्यगुणेन च
उपचारेण च रहस्तुतोष जगत्पतिः । दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगा नदी
मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनि !।
राजानं रमयामास यथा रेमे तथैव च ॥ १६ ॥
स राजा रतिसक्तत्वादुत्तमस्त्रीगुणैर्हृतः । सम्वत्सरानृतून्मासान्न बुबोधबहून्गतान्
रममाणस्तयासार्द्धं यथाकामं नरेश्वरः । अष्टावजनयत्पुत्रांस्तस्याममरवर्णिनः ॥
जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि मुक्तये ।
प्रीणामि त्वामहमिति गङ्गास्रोतसि पावने ॥ १९ ॥
नास्यतत्तुप्रियं राज्ञःशन्तनोर्ह्यभवत्तदा । नोवाचकिञ्चित्तांदेवींत्यागाद्भीतोमहापतिः
अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव ।
उवाच राजा दुःखार्त्तः परीप्सन्पुत्रमात्मनः ॥ २१ ॥
मा वधीः कस्य काऽसीति किं विध्वंससि सुतानिति ।
पुत्रहिंसा महत्पापं मा प्राप्सीस्तिष्ठ गर्हिते !॥ २२ ॥

गङ्गोवाच

पुत्रकामा न ते हन्ति पुत्रं पुत्रधनाधर ।। श्रीजंन्तु मम वालोऽयं वधाये ममप
यहं गङ्गा जह सुता महर्षिगणसेविता ।। देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुपिव्याऽहं त्वय
स्मेऽर्थी वसवो देवा महात्मानो महौजसः । वसिष्ठशापदोषेण मानुष्यमुपगत
तेषामावसिता मान्यत्पन्ने भुवि विद्यते । मद्विना मानुषीभार्यानिधेपास्मिन
नम्मात्तस्मर्षीदेनोर्मानुष्यमुपागता । स्वस्तितेऽस्तु गमिष्यामिपुत्रं पाहिमा

सैषमुक्त्वा तदा गङ्गा विष्णुमायाविमोहिता ।
करोद मानुषं भावमाश्रिता तनुमध्यमा ॥ ३८ ॥

सदो वनमहत्कर्ष्ठपद्मा कामिनात्मजा । मथा मृशंसयामोहात्क्षले
हा वस्माहात्मजापुत्राहा नामान्तनया च वै । मां विहाय गता कुत्रहृदयविनर्द
मानमांतेति करुणप्रवाणा व्यधमागता । अयमुखेन्दा पुत्रान्वस्तयन्तीति सौह
कम्य जानु प्रर्णानेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना । समोत्सर्पयमुन्मङ्कं कराङ्कमलविप्य
श्रङ्कप्रत्यङ्गमस्पृशा मनाहृदयमव्यथा । मया तु माया दारयन्ता मारिता निघ्नंग

कल्लोकान्तु गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् ।
कथ पुण्या भविष्यामि पुत्रघ्नी निर्दया सती ॥ ३४ ॥

इत्येव करुण कृत्वा रुदित्वा च पुनःपुनः । मूर्छितापतिताप्याती निश्चेष्टाधरणी
पतन्स्मिन्नन्तरे देवि नारदो मुनिसत्तम । तस्या विलापसकरं समाकर्ण्यसहसा
विन्मयोऽद्भुतनयन किमेतदिति विस्मयन् । ददर्शासावाहर्षी गङ्गापापघ्नी द्युधन्वि
समुद्रमहिषीदिव्याम्पुण्यांत्रिपथगा नदी । मानुष्यभावमाश्रित्य कस्मात्रोदिति वि
इत्येव चिन्तयित्वा च समीपमगमन्मुनि । गङ्गायाविलपन्त्याश्च महापुत्रस्तुनार

उवाचोच्चैर्विधन्योऽस्मि दृष्ट्वा गङ्गे नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥

नारदोऽह महापुण्येकस्मात्रोदिषिपापघ्नि । हिमाद्रिपुत्रीविख्यातदेवगन्धर्वसेवित

धृता शिरसि देवेन शिवेन परमेष्ठिना ॥ ४१ ॥

नारदस्यवच श्रुत्वा दिव्याद्घनदीतथा । अवलोक्यविमानस्थं प्रत्युवाचमहामुनि

मयानारद मोहेन कृतोऽधर्मोजुगुप्सितः। जानन्त्या सुमहत्पापं सप्तपुत्रा हता मया
समुद्रेण वियोगस्तु संजातो ममदैवतः। भार्याजाता मनुष्यस्य पुत्राजाताहताश्चमे
अतो मया विलपितं मग्नयाशोकसागरे। कथ्यतां मम देवर्षे! येन पुण्या भवामि वै
इतितस्यावचः श्रुत्वानारदो मुनिसत्तमः। त्रिकालवेदीशुद्धात्मा गङ्गां वचनमब्रवीत्

नारद उवाच

किं विस्मृतोजगद्वन्द्येदेवानां समयःशुभः। प्रतिज्ञातंत्वया देवि! वसूनांमोक्षकारणे
शप्तास्तेवसवोलोकान्प्रसादात्तवसुव्रते!। त्वयावतारितोदेवि! समुद्रःशन्तनुःस्मृतः
इतितस्यवचःश्रुत्वा नारदस्य महात्मनः। गङ्गात्रिपथगापुण्या प्रत्युवाचमहामुनिम्
सत्यमुक्तंत्वया ब्रह्मञ्ज्ञातंसर्वंमयाऽधुना। किन्तुयोनिर्यतोलब्धा मानुषीतेनमोहिता
पवादभयाद्भीता भवन्तं शरणं गता। दीयतामुपदेशो मे कथ्यतां स्थानमुत्तमम्॥

नारद उवाच

किं विस्मृतो जगद्वन्द्ये देवानां समयःकृतः। अपवादभयाद्भीतायदित्वंदेवि! पुण्यदे
मां पृच्छसि परं स्थानं शृणु त्वं वच्मि सुव्रते!॥ ५२॥
अवन्ती तु समाख्याता सप्तकल्पसनातनी।
तस्यां सखी त्वदीया तु शिप्रा विप्रप्रिया सदा॥ ५३॥

तस्यास्तीरेशुभंलिङ्गं दुर्द्धर्षेश्वरदक्षिणे। विद्यतेत्रिदशैः पूज्यं सर्वतीर्थैश्चसेवितम्
तस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्या भविष्यसि। तस्माद्गच्छमहापुण्येगङ्गे देवर्षिसेविते
इत्युक्ता सा त्रिपथगा नारदेन महात्मना। गता तत्रमहापुण्या सखीं शिप्रां ददर्श ह
संश्लेषं चतदा कृत्वा लिङ्गं दृष्ट्वासुपावनम्। पूजयामास भावेन तत्रैवचचिरं स्थिता
अथ सूर्यसुता देवी यमुना पापनाशिनी। तत्रायातासुहार्देनयत्र गङ्गा व्यवस्थिता
ददर्शदेवींतांगङ्गां ध्यायन्तीशङ्करं शिवम्। सापितत्रैवतिष्ठन्तीपूजयन्तीपरंशिवम्
अथ तेनैव कालेन प्राचीदेवी सरस्वती। समायाता सुगुप्ता च गङ्गायमुनयोर्जले॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि! शक्रं प्राह स नारदः। न दृश्यते प्रयागस्तु महाकालवनं गतः॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्र गुप्ता सरस्वती। प्रयागः स तु विज्ञेयः सर्वपापप्रणाशनः॥

स साम्प्रत प्रयागस्तु महाकालवनोत्तम । केनापि कारणेनैव गतो न ज्ञायते मय
इति तस्यवच श्रुत्वानरदस्य महात्मन । शक्रण सहिता सर्वे ह्यवन्तींतुसमागा

स्तुवन्तो विविधै स्तोत्रैर्गङ्गा त्रिपथगा शुभाम् ।
गङ्गे देवि नमस्तुभ्य सवपापप्रणाशिनि ॥ ६५ ॥

वसुनाजननी देवि वसुना मोक्षदायिनि । त्रैलोक्यपावनीनित्य हरेण शिरसाधृ

सेविता वालखिल्यैश्च कृष्णस्य परमा कला ।
यमुने त्वा नमस्याम कालिन्दीं वरदाहिनीम् ॥ ६७ ॥

सुता [redacted] पावनीदेवि मार्तण्डस्यदिवस्पते । शिप्रदेवि नमस्तुभ्य ब्रह्मदेहोद्भवेशु

प्राची त्वमव विख्याता पुण्यदेहा सरस्वती ।
या प्राची कौरवक्षेत्रे पुष्करे या महालये ॥
सा त्व शिप्रा प्रसिद्धा च सर्वपातकनाशिनी ॥ ६९ ॥
त्व दया सवजन्तूना त्व स्वर्ग शरण नृणाम् ।
त्व माता सवजन्तूना त्व प्राची भुवि गीयस ॥ ७० ॥

यद्गुजन्मकलङ्काङ्क दृष्ट्वायादेहिनाभुवि । करोषिक्षालन देवि सात्वमैलोक्यसंस्थिता

धारा च सङ्गमो यस्तु स प्रयागो बुधै स्मृत ।
अत्रागत्य [redacted] युष्माभि स्थापित ह्यावितोऽधुना ॥ ७२ ॥

सोऽद्यप्रभृति देवोऽयप्रयागेश्वरसञ्ज्ञक । त्रिषु लोकेषुविख्यात स्मरणात्पापनाशन
अत्रागत्य प्रपश्यन्ति येप्रयागेश्वर तत । तेऽनार्या भविष्यन्ति सर्वपातकवर्जिता
कुल च तारित तथा पैतृक मातृक तथा । गङ्गायास्त्रियुग पुण्य चतुर्वर्गफलप्रदम्

जायते नात्र सन्देह प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥ ७५ ॥

गङ्गाया च प्रयागे च देवदारुवने शुभे । नैमिषे पुष्करे चैव श्रीशैले च त्रिपुष्करे ।
त्र्यम्बके धौतपापेच महेन्द्रे मेरवे तथा । गोकर्णेच सुपर्णाख्ये रत्नाकरसिन्धुसङ्गमे ।
पतेषा दर्शनेनैव या सिद्धिर्द्वादशाब्दिका । साल्भ्या मासमात्रेण प्रयागेश्वरदर्शनात्
येपश्यन्ति चतुर्दश्यामष्टम्या च विशेषत । भक्त्या च नियमंकृत्वाप्रयागेश्वरसञ्ज्ञकम्

तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। भोगदं मोक्षदं लिङ्गं भविष्यति महीतले
कलास्तिस्रो भविष्यन्ति लिङ्गेऽस्मिन्मोक्षदे शुभे।
गङ्गा च यमुना प्राची सर्वपातकनाशिनी ॥ ८१ ॥
एवमुक्त्वा स्तुता गङ्गा यमुना च सरस्वती।
देवैः प्रणतिपूर्वेण गताः स्थानं स्वकं तदा ॥ ८२ ॥
देवाः प्रहृष्टाः शक्राद्याः प्रयागेश्वरसञ्ज्ञकम्।
स्तुत्वा च विविधैः स्तोत्रैः पूजयित्वा दिवं गताः ॥ ८३ ॥
। ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । प्रयागेश्वरदेवस्य चन्द्रादित्येश्वरं शृणु

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसम्वादे प्रयागेश्वरमाहात्म्य-
वर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

चन्द्रादित्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

द्विसप्ततीश्वरं विद्धि चन्द्रादित्येश्वरं प्रिये। यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत्
...श्वरेण पुरा देवि! निर्जिताः सङ्गरे सुराः। नष्टा रणं परित्यज्य प्राणत्राणपरायणाः
ग्रस्तं च राहुणा दृष्ट्वा शशाङ्कं भयविह्वलम्।
विनतायाः सुतो ज्येष्ठः प्रोक्तः सूर्येण सारथिः ॥ ३ ॥
महाऽरुण! रथं शीघ्रं यत्र युद्ध न विद्यते। श्रूयते चन्द्रसूर्यौ तौ दैत्यानां बलवत्तरौ
राहुर्दंष्ट्राकरालस्तु स तृतीयो भयङ्करः । न ज्ञायते रणे चन्द्रो मृतो नष्टोऽथवापुनः
स चन ज्ञायते शक्रः क्व गतो वरुणो रणे। यमो न ज्ञायते कुत्र धनदस्य च का कथा

स साम्प्रत प्रयागस्तु महाकालवनोत्तमे । येनापि कारणेनैव गतो न ज्ञायते प्र
इति तस्यवच श्रुत्वानारदस्य महात्मन । शक्रेण सहिता सर्वे ह्यवन्तींतुसमाग

स्तुवन्तो विविधै स्तोत्रैर्गङ्गा त्रिपथगां शुभाम् ।
गङ्गे देवि नमस्तुभ्य सर्वपापप्रणाशिनि ॥ ६८ ॥

यमुनाजलमी देवि यमुना मोक्षदायिनि । त्रैलोक्यपावनानित्य हरेण शिरसाध्

सेविता वालखिल्यैश्च कृष्णस्य परमा कला ।
यमुने त्वा नमस्याम कालिन्दीं वरवाहिनीम् ॥ ६७ ॥

सुता त्व पावनीदेवि मार्तण्डस्यविवस्वतः । शिप्रेदेवि नमस्तुभ्य महादेवोद्भवे

प्राची त्वमेव विख्याता पुण्यदेहा सरस्वती ।
या प्राची कौरवक्षेत्रे पुष्करे या महालये ॥
सा त्व शिप्रा प्रसिद्धा च सर्वपातकनाशिनी ॥ ६९ ॥
त्व दया सर्वजन्तूना त्व स्वर्गं शरणं नृणाम् ।
त्व माता सर्वजन्तूना त्व प्राची भुवि गीयसे ॥ ७० ॥

बहुजन्मकलङ्काङ्क दृष्ट्वायादेहिनांभुवि । करोषिक्षालन देवि सात्वंत्रैलोक्यसंस्थि

आसा च सङ्गमो यस्तु स प्रयागो बुधै स्मृत ।
अत्रागत्य तु युष्माभि स्थापित स्थापितोऽधुना ॥ ७२ ॥

सोऽद्यप्रभृति देवोऽयप्रयागेश्वरसञ्ज्ञक । त्रिषु लोकेषुविख्यात स्मरणात्पापनाश
अत्रागत्य प्रपश्यन्ति येप्रयागेश्वर नरा । तेकृतार्था भविष्यन्ति सर्वपातकवर्जित
कुल च तारित तथा पैतृक मातृक तथा । गङ्गायास्त्रियुग पुण्य चतुर्वर्गफलप्रदम

जायते नात्र सन्देह प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥ ७५ ॥

गङ्गाया च प्रयागे च देवदारुवने शुभे । नैमिषे पुष्करे चैव श्रीशैले च त्रिपुष्करे
त्र्यम्बके धौतपापे च महेन्द्रे भैरवे तथा । गोकर्णे च सुवर्णाख्ये रवाकपिलसङ्गमे
एतेषा दर्शनेनैव या सिद्धिर्द्वादशाब्दिका । साल्भ्या मासमात्रेण प्रयागेश्वरदर्शना
येपश्यन्ति चतुर्दश्यामष्टम्या च विशेषत । भक्त्या च नियमंकृत्वाप्रयागेश्वरसञ्ज्ञकम

किं कारणमिह प्राप्तौ तद्ब्रूतां विगतज्वरौ ॥ २४ ॥
नारायणेनैवमुक्तौप्रोचतुश्चन्द्रभास्करौ । समरे निर्जिता देवाः शम्बरेण दुरात्मना ॥
न ज्ञाताः क्व गतास्ते च आवां नष्टौ प्रयत्नतः ।
अरुणेन इहानीतौ दृष्टस्त्वं देव! दैवतः ॥ २६ ॥
शम्बरेण जिता देवाः सच सर्वत्र दृश्यते । स्थले चैव जले चैव शम्बरः क्रूरपौरुषः
श्यतां त्रिदशेन्द्राणां पृष्ठतःशरवृष्टिभिः । चिच्छेदनखवर्माणिच्छत्राणिचधनूंषिच
चर्माणि च विचित्राणि मुकुटानि महान्ति च ।
पृथूनि चापि चापानि चर्माणि विविधानि च ॥ २९ ॥
जाश्च मदसम्भिन्नकपोलाः कोटिशःसुराः । वाजिनश्चामरापीडा रत्नपर्याणभूषणाः
वेवुश्चाध्वस्तसन्नाहा विगजा विपदातिनः । विपदामाकराकारा बभूवसुरवाहिनी
ततो दैत्याधिपो मानी परिवृत्तो महारणात् ।
निर्जितारिर्महातेजा ज्वालावानिव पावकः ॥ ३२ ॥
वन्द्यमानोमुनिगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः । आनन्दितोजयाशीर्भिः प्रवरैर्दैत्यपुङ्गवैः
तत्र सर्वर्द्धिसम्पूर्णमासनं हेमभूषणम् । अध्यतिष्ठत दैत्येन्द्रस्तत्र मङ्गलवेश्मनि ॥
तत्रोपविष्टः शुशुभे दैत्यराजो महायशाः ॥ ३४ ॥
दिव्यचन्दनपुष्टाङ्गः सुरपुष्पसमुज्ज्वलः । मुकुटाकारजुष्टाङ्गः सितचामरवीजितः ॥
मृनोत्थितैस्तथा दैत्यैर्दैत्याधीशैरधिष्ठितः ॥ ३५ ॥
ऋतुभिर्मूर्त्तिमद्भिश्च सेव्यमानो महाबलः । सर्वपुष्पोत्करयुतैर्नानाविहगनादिभिः ॥
तत्र श्रीरतुलालोके तत्र लक्ष्मीर्निरर्गला । तत्र कान्तिर्द्युतिःशोभा शम्बरोयत्रदानवः
एवंसदैत्यनृपतिःसभृत्यस्तत्र मोदते । स्वयमिन्द्रस्तु सञ्जातश्चन्द्रसूर्यौ कृतौस्वकौ
तयोरिति वचः श्रुत्वा स देवः पुरुषोत्तमः ।
चिरं ध्यात्वा स्वमनसि तदाऽवोचदिदं प्रिये !॥ ३९ ॥
चन्द्रसूर्यौ मया ज्ञातं शम्बरस्य विचेष्टितम् ।
ब्रह्मणो वरदानेन भोक्तव्यं तपसः फलम् ॥ ४० ॥

एवमुक्तोऽरुणो रुणो रविणा रणमध्यत । रथं सम्प्रेरयामास यत्र युद्धं न विद्यं

एतस्मिन्नन्तरे चन्द्रः समायातस्तु तत्क्षणात् ।
राहुग्रहगृहीतोऽपि यत्र देवो दिवस्पतिः ॥ ८ ॥

सन्त्रस्त स विलोक्याथ क्षणमात्रमचेतनः । बभूव सहसा चन्द्रो दृष्ट्वादेवं दिवाक
शम्बरेण रणे रुद्धा रुद्राश्च भयविह्वला । अम्बुर्दिशो दश भयादसुरेन्द्रविभीषिता
साध्या सर्वे भयभ्रान्ता गता यत्र न ज्ञायते । तेषु भग्नेषु देवेषु हतशिष्टेषु सद्यं

व्यधमत्सर्वगात्राणि वर्माणि च जगत्त्रये ।
पलायमानदेवानामसुरो बलवत्तरैः ॥ १२ ॥

पृष्ठतो निजधामाऽथ निरस्ताश्च सहस्रशः । अहं गच्छन्नेवमेव व्यग्रीभूतेऽसुरे व
मातुर रूपमास्थाय प्राणत्राणपरायणः । शीघ्रं च गम्यते तावद्यावद्यायाति याम
इत्युक्त निशिनाथेन भयभीतेन पार्थिव ।। चन्द्रादित्यौ क्षणात्प्रीतावरुणेन स्येन वै
यत्र देवो जगन्नाथो गरुडस्थो जनार्दनः । सुरसङ्घालसङ्कुलतकिन्नराकीर्णकन्दरे
मन्दरे सुरनारीणां नन्दने वरचन्द्रमे । दृष्ट्वा तत्र जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम्

स्तुतिं तौ चक्रतुर्देवौ चन्द्रसूर्यौ यशस्विनि ॥ १७ ॥
नमो लोकत्रयाध्यक्ष स्वप्रभाजितभास्कर ।
नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभान्तक ॥ १८ ॥

नम सर्वक्रियाकर्त्र जगत्त्रात्रे च ते नम । नमश्चक्रायुधाधृष्य नमो दानवघातिने
नम क्रमत्रयाक्रान्तत्रैलोक्यान्तर्हितोद्भव । नम प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महाबल
नमो नाभिहृदोद्भूतपद्मगर्भमहाप्रभ ।। अनिताशेषक्लेशविरञ्जाय महाद्युते ॥२१
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने । नमस्ते विबुधाधीश शरणं भव न प्रभो ।

चन्द्रसूर्यकृत स्तोत्र श्रुत्वा देवो जनार्दनः ।
आश्वास्य स्तुतिपूर्वेण प्राह देवो ह्यधोक्षज ॥ २३ ॥

विष्णुवाच

स्वागत चन्द्रसूर्यौ भो भवन्तौ स्तुतिभाजनौ ।

किं कारणमिह प्राप्तौ तद्ब्रूतां विगतज्वरौ ॥ २४ ॥

नारायणेनैवमुक्तौ प्रोचतुश्चन्द्रभास्करौ । समरे निर्जिता देवाः शम्बरेण दुरात्मना ॥

न ज्ञाताः क्व गतास्ते च आवां नष्टौ प्रयत्नतः ।

अरुणेन इहानीतौ दृष्टस्त्वं देव! दैवतः ॥ २६ ॥

शम्बरेण जिता देवाः स च सर्वत्र दृश्यते । स्थले चैव जले चैव शम्बरः क्रूरपौरुषः

नश्यतां त्रिदशेन्द्राणां पृष्ठतःशरवृष्टिभिः । चिच्छेदनरवर्माणिच्छत्राणिचधनूंषिच

चर्माणि च विचित्राणि मुकुटानि महान्ति च ।

पृथूनि चापि चापानि चर्माणि विविधानि च ॥ २९ ॥

गजाश्च मदसम्भिन्नकपोलाः कोटिशःसुराः । वाजिनश्चामरापीडा रत्नपर्याणभूषणाः

विबुधाध्वस्तसन्नाहा विगजा विपदातिनः । विपदामाकराकारा बभूवसुरवाहिनी

ततो दैत्याधिपो मानी परिवृत्तो महारणात् ।

निर्जितारिर्महातेजा ज्वालावानिव पावकः ॥ ३२ ॥

वन्द्यमानोमुनिगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः । आनन्दितोजयाशीर्भिः प्रवरैर्दैत्यपुङ्गवैः

तत्र सर्वर्द्धिसम्पूर्णमासनं हेमभूषणम् । अध्यतिष्ठत दैत्येन्द्रस्तत्र मङ्गलवेश्मनि ॥

तत्रोपविष्टः शुशुभे दैत्यराजो महायशाः ॥ ३४ ॥

दिव्यचन्दनपुष्टाङ्गः सुरपुष्पसमुज्ज्वलः । मुकुटाकारजुष्टाङ्गः सितचामरवीजितः ॥

नृत्योत्थितैस्तथा दैत्यैर्दैत्याधीशैरधिष्ठितः ॥ ३५ ॥

ऋतुभिर्मूर्त्तिमद्भिश्च सेव्यमानो महाबलः । सर्वपुष्पोत्करयुतैर्नानाविहगनादिभिः ॥

तत्र श्रीरतुलालोके तत्र लक्ष्मीर्निरर्गला । तत्र कान्तिर्द्युतिःशोभा शम्बरोयत्रदानवः

एवंसदैत्यनृपतिःसभृत्यस्तत्र मोदते । स्वयमिन्द्रस्तु सञ्जातश्चन्द्रसूर्यौ कृतौस्वकौ

तयोरिति वचः श्रुत्वा स देवः पुरुषोत्तमः ।

चिरं ध्यात्वा स्वमनसि तदाऽवोचदिदं प्रिये !॥ ३९ ॥

चन्द्रसूर्यौ मया ज्ञातं शम्बरस्य विचेष्टितम् ।

ब्रह्मणो वरदानेन भोक्तव्यं तपसः फलम् ॥ ४० ॥

शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना । हृदये निहतं सोऽपि तथापिनमृतोऽ
गम्यतां च मयाख्यातौ महाकालवनोत्तमे । चन्द्रसूर्यौममादेशात्तत्रसिद्धिश्चलप्स्य

तत्राऽनन्तो महाकालो लिङ्गरूपो महेश्वर ।
तस्य चोत्तरतो देशे लिङ्गं कामप्रदं शिवम् ॥ ४३ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण कृतार्थौ भविष्यथः । तस्य ज्वालासमूहेन मरणं ह्यसुरस्य

भविष्यति न सन्देहस्तस्मात्तत्रैव गच्छतम् ॥ ४४ ॥
इत्युक्तौ वासुदेवेन चन्द्रसूर्यौ यशस्विनि ।
सत्वरं द्युरोमार्गौ महाकालवनं गतौ ॥ ४५ ॥

तत्र दृष्ट्वा महादेवं तेजसो राशिमव्ययम् । स्तुतं नविविधैः स्तोत्रैः पूजितं कुसुमैर्

एतस्मिन्नन्तरे वाणी लिङ्गमध्यात् समुत्थिता ।
आश्वासयन्ती तमसा चन्द्रसूर्यौ हिमात्मजे ॥ ४७ ॥
हतः स शम्बरो दैत्यो भर्ता तौ चन्द्रभास्करौ ।
दैत्यानां निर्मितौ दुर्गौ पातालान्तरसंस्थितौ ॥ ४८ ॥

शत्रुकेतुं प्रहारं तु कृत्वा नमयपूर्वकौ । स्थापितं स्वपदे शक्रो देवैः सह न सरा

स्व स्व स्थानं गताः सर्वे लोकपाला मुदा युताः ।
कान्तिप्रतापसंयुक्तौ भवतां भुवनत्रये ॥ ५० ॥

गगने ग्रहनक्षत्रैः सहितौ विचरिष्यथः । पूर्वपत्पुण्यपापानां साक्षिभूतौभविष्य

इत्युक्तौ चन्द्रसूर्यौ तु तया वाण्या वरानने ।
सन्तुष्टौ हृष्टहृत्यौ तु सञ्जातौ लिङ्गदर्शनात् ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा विमानस्था समागताः । यत्र चन्द्रश्च सूर्यश्च महाकालवनेशु

ज्ञात्वा लिङ्गस्य माहात्म्यं नाम चक्रुः समाहिताः ।
सेवितं चन्द्रसूर्याभ्यां लिङ्गं तेजोमयं परम् ॥ ५४ ॥
चन्द्रादित्येश्वरं नाम ख्यातिं यास्यति भूतले ।
लिङ्गस्यास्य समुत्थेन ज्वालासङ्घेन शम्बर ॥

दग्धो भृत्यजनैः सार्द्धं चन्द्रसूर्यानुसेवनात् ॥ ५५ ॥
इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे समीपे सर्वतःस्थिताः ।
स्तुवन्तो विविधैः स्तोत्रैश्चन्द्रादित्येश्वरं शिवम् ॥ ५६ ॥
चन्द्रादित्यौ च तत्रस्थौ स्थितौ लिङ्गसमीपतः ।
आराधयन्तौ देवेशं पदम्प्राप्तौ च पूर्ववत् ॥ ५७ ॥
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या चन्द्रादित्येश्वरं शिवम् ।
ते यान्ति सूर्यलोकं तु चन्द्रलोकं तथैव च ॥ ५८ ॥
विमानैःसूर्यसङ्काशैस्तथाचन्द्रप्रभैः शुभैः । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्तेषां सुखम्भवेत् ·
चन्द्रसूर्योपरागे तु चन्द्रादित्येश्वरं शिवम् ।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या स्नात्वा शिप्राञ्च पावनीम् ॥ ६० ॥
तेषांकुलशतं यावत्पैतृकं मातृकं तथा । लोके चन्द्रस्यसूर्यस्य मोदतेशाश्वतीःसमाः ·
अमासोमसमायोगे ये पश्यन्ति प्रसङ्गतः ।
चन्द्रादित्येश्वरंदेवं न ते यान्ति यमालयम् ॥ ६२ ॥
एष ते कथितोदेवि प्रभावःपापनाशनः । चन्द्रादित्येश्वरेशस्य श्रूयतां करभेश्वरम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसम्वादे चन्द्रादित्येश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

करभेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

त्रिसप्ततितमं विद्धि करभेशं वरानने । यस्य दर्शनमात्रेण कृतार्थो नैव लभ्यते ॥१॥
वीरकेतुरभूत्पूर्वमयोध्याया महीपतिः । विद्याविनयसौभाग्यलावण्यामृतपूरित
स सम्यक्पालयामास प्रजा पुत्रानिवौरसान् । भक्तानामागतज्ञानपरिनिष्ठितमानम
अथैकस्मिन्दिने राजा जगाम गहनं वनम् । मृगसिंहगजाकीर्णं व्याघ्रसंस्वरसङ्कुल
स तत्र विविधान्वन्यान्विव्याध परवीरहा । मृगांश्च महिषांश्चैव वराहांश्च सहस्रशः
लोडितं तद्वनं सर्वं पशुपक्षिमृगाकुलम् । रहितं श्वापदैः सर्वैः कृतं तेन महीभृता ॥

यदा न श्वापदास्तस्मिन्दृश्यन्ते गहने वने ।
तदा विद्धस्तु करभो बाणेनाऽऽनतपर्वणा ॥ ७ ॥
स चापि करभो देवि बाणमादाय सत्वरम् ।
विद्धोऽपि निःसृतोऽत्यर्थं राज्ञस्तस्यैव पश्यतः ।
स च राजा बली तूर्णं ससार करभं प्रति ॥ ८ ॥

ततो निजस्यैवाश्वस्य स वीरोऽप्यवदाशुग । मुहूर्तेन ततो देवि योजनानि बहून्यपि
तत स राजा तारुण्यादौरसेन बलेन च । ससार बाणासनधृक्सखड्ग सहयोद्धृप
ततो नद्यः पर्वतांश्चैव पल्वलानि वनानि च । अतिक्रम्याजगतिकस्य ससारैव घनेषणम

स चापि करभो देवि मासाद्यासाद्य तं नृपम् ।
पुनरभ्येति जवनो जवेन महता ततः ॥ १२ ॥

स तस्य बाणैर्बहुभिः करभोविद्धलीकृत । पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव पुनरभ्येतिचान्तिकम्

पुनश्च जवमास्थाय पार्श्वे चाग्रे च दृश्यते ॥ १३ ॥
अथाऽरण्ये महारौद्रे प्रविष्टः करभस्तदा ।

अन्तर्धानं जगामाऽऽशु स च राजा वनेऽविशत् ॥ १४ ॥
वेश्यचमहारण्यंतापसानामथाश्रमम् । आससादततोराजाश्रान्ताश्वोपाविशत्पुनः
कार्मुककरं दृष्ट्वा श्रमार्त्तं क्षुधितंतदा । समभ्येत्यर्घ्यस्तस्मैपूजां चक्रुर्यथाविधि
पूजामृषिभिर्दत्तांप्रतिगृह्ययथाविधि । अपृच्छत्तापसान्सर्वांस्तपसोवृद्धिमुत्तमाम्
ते तस्य राज्ञो वचनं प्रतिगृह्य तपोधनाः ।
ऋषयो राजशार्दूलं पप्रच्छुस्तत्प्रयोजनम् ॥ १८ ॥
न भद्र! सुखार्थेन सम्प्राप्तोऽसितपोवनम् । पदातिर्बद्धनिस्त्रिंशोधन्वीबाणीनरेश्वर
तदिच्छामहेश्रोतुंकुतःप्राप्तोऽसिमानद !। कस्मिन्कुलेत्वजातस्त्वंकिंनामाब्रूहिपार्थिव
तः स राजासर्वेभ्योद्विजेभ्यः पुरुषर्षभः । आचख्यौतद्यथान्यायंकुलंगोत्रंयतस्ततः
क्ष्वाकूणां कुले जातोवीरकेतुर्द्विजर्षभाः । चरामिमृगयूथानि निघ्नन्बाणैःसहस्रशः
लेन महता युक्तः सामात्यःसपरिच्छदः । यदा नलब्धोगहने मृगो वासूकरोऽपिवा
हिषश्चित्तलो वापि शशो वा शम्बरोवने । तदामे करभो विद्धो बाणेनानतपर्वणा
स प्रणष्टः क्षणेनैव स बाणो मम पश्यतः ।
तं द्रवन्तमनुप्राप्तो वनमेतद्यदृच्छया ॥ २५ ॥
भवत्सकाशं नष्टश्रीर्हताशः श्रमकर्शितः । भवतां विदितं सर्वं सर्वज्ञा हि तपोधनाः
भवन्तः सुमहाभागास्तस्मात्पृच्छामि संशयम् ॥ २६ ॥
कगतःकरभोविद्धोमयाबाणेन साम्प्रतम् । कत्रप्राप्स्यामिसहसाब्रूतत्सुसमाहिताः
ततस्तेषां समस्तानामृषीणामृषिसत्तमः । ऋषभोदेवि!करभं स्मरन्निदमथाब्रवीत्
गतः स करभो भूप!महाकालवने शुभे । गच्छ त्वं च महाराज! महाकालवने शुभे ॥
यत्र देवो महादेवः कारभं रूपमास्थितः ।
विनोदार्थं च देवानां लिङ्गमूर्त्तिरभूत्पुरा ॥ ३० ॥
पश्चिमे क्षेत्रपालस्यकैलासस्य महीपते । समीपे तस्य विघ्नेशोमोदकप्रियसञ्ज्ञकः
ब्रह्मणा पूजितो राजन्देवानामर्थसिद्धये । स च धर्मध्वजो राजा हैहयानां कुलोद्वहः
तुरगेण कदाचित्तु नीतो बदरिकाश्रमम् ।

प्रसिद्धं त्रिषु लोकेषु नारायणपदाश्रयम् ॥ ३३ ॥

तत्र धीरातिरथस्य कृता चिर ददृश ह। शरात्मपि राजेन्द्र! न केन चि मम द

दृष्ट्वा च हसितो विस्मयेन राजा प्रमादतः ॥ ३५ ॥

यस्माद्धसमि मां दृष्ट्वा तस्मात्त्वं भविष्यसि।

तस्यातः क्षुद्रकस्याश्च विख्यातो विधूमकेतु ॥ ३६ ॥

इत्युक्तस्तेन विप्रस्तोऽपि विह्वलमनसः। त चिर प्रार्यं गतवान् स भ्रुकुटीऽन्वागि

न स पापकृतापूर्वं कदाचिदपि विचरे। अवश्य करमामृत्यापश्चात्मुक्तिमव

यदा त्व करमो जातो पिंडो वै धीरकेतुना।

अथाध्याधिपभूपेन गमिष्यसि शरातुरः ॥ ३८ ॥

महाकालवन दिव्यतर त्व लिङ्गस्थानम्। गमिष्यसि परं स्थानमयतद्यो महा

स वैश्वानरकान्मुक्ता धारकमुमहातम। लिङ्गदर्शनतो मृप! चक्रधनिन्यमान्म

युक्ता त्वरं भूपाल करम चमनाजन। स त्वधाऽमिहनो मृप! बालेनानन्तव

द्रक्ष्यसि त्व विमानस्य विमुक्त लिङ्गदर्शनात् ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा नृपतिस्तेन शरभस्य द्विजेन तु।

आनगाय त्वरायुक्ता महाकालवनं शुभम् ॥ ४२ ॥

तदा तत्र नलिङ्ग पूजित त्रिध्य मन। पतन्निमग्नतरे बाणा धना तत्र महीभृ

विमानस्य पा प्राक्तानुपूर्वे ण मधुमक्षिका। आमारात्मपञ्चमापश्यविमानेवात्युपु

स्थानादस्य लिङ्गस्य प्रासा म पश्यामसि। पयाहताऽहं बाणेनतदाऽहं त्वराहम

समापमस्य लिङ्गस्य त्व म बन्धु परा यम ॥ ४४ ॥

इत्युक्त्वा मन्त्र इचिरम समयराणाम्। गतस्तु परम स्थान निन्यमव्ययमक्ष

ततो देवगणा यान्ति माकण्डमहातमः। यस्माद्भगवदवा मपिच्छावाष्मराप

अत्र तत्र हरिमुख्याश्च विमानदेवि! महिम्ना।

याज्ञवल्क्यमुनिस्तत्र द्रष्टुं कौतुकमानसा ॥ ४८ ॥

विलोक्य करम मुक्त विमानस्य चिरन्तनम्।

लिङ्गदर्शनमात्रेण संस्तुतं विविधैः स्तवैः ॥ ४६ ॥
अच्छत्त्रसमूहेन मुकुटेनोज्ज्वलत्विषा । भासन्तं रविकोटीनां जगदानन्दकारकम्
नामचक्रुस्ततोदेवा दृष्ट्वा माहात्म्यमुत्तमम । दर्शनादस्यलिङ्गस्यमुक्तोऽयंकरभोयतः
तस्मात्त्रिष्वपि लोकेषु विख्यातः करभेश्वरः ।
भविष्यति न सन्देहः पशुयोनिविमोचकः ॥ ५२ ॥
इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे गताः स्वं धिष्ण्यमुत्तमम् ।
अयोध्याधिपतिर्वीरो वीरकेतुः स्वमालयम् ।
समृद्धं निःसपत्नं च ततो राज्यं चकार सः ॥ ५३ ॥
यः पश्यतिनरोदेवि! करभेश्वरसञ्ज्ञकम् । सप्रयात्यक्षयाँल्लोकान्पूज्यमानोगणाधिपैः
यदा कालादिहायातो राजराजेश्वरो महान् ।
पृथिव्यामेकराड् भूत्वा क्रमान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
नदुःखं जायतेतस्य व्याधिशोकभयं तथा । ये पश्यन्ति प्रसङ्गेन तल्लिङ्गं करभेश्वरम्
सर्वमेधेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । तत्फलं त्वधिक देवि ! करभेश्वरदर्शनात्
व्याधयो नोपजायन्ते दारिद्र्यं न कदाचन । ऐश्वर्यंचातुलंनैषां जायते दर्शनात्सदा
पशुयोनिगता ये च पितरो|दुःखितास्तु ये ।
तिष्ठन्ति चाम्बरे ते तु चिन्तयन्तः स्वगोत्रजम् ॥ ५६ ॥
आगमिष्यति नः पुत्रोनसावासन्ततोविह । कदा पश्यति देवेशं करभेश्वरमीश्वरम् ॥
तेन दर्शनमात्रेण मुक्तिर्नो भविता ध्रुवम ॥ ६० ॥
यो यमुद्दिश्य वै कामं दर्शनं तु करिष्यति ।
तस्य तज्जायते सर्वं मृतस्य परमा गतिः ॥ ६१ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः । करभेशस्य देवस्य श्रृणुराजस्थलेश्वरम्
इतिश्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य उमामहेश्वरसम्वादे करभेश्वरमाहात्म्य-
वर्णनंनाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

राजस्थलेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

अथ सप्ततिकं विद्धि शिवं राजस्थलेश्वरम् । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमु
विष्णुयत्ने पुरा वृत्ते मन्वन्तरमुखप्रिये । अराजके महीपृष्ठे प्रजा विनाशपरोऽ
न मनुष्यैर्विना तथा समर्था लोकधारणे । ध्यानेन जपतो यथा प्रजार्तैर्दुःखमुत्त
सोऽयं राजा प्रजापालो भवेत्प्रजाधनासह ।
सोऽप्यद्यस्य राजर्षिजनस्य च रिपुञ्जयम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा सर्वगुणाकीर्णं धर्मनिष्ठं महाव्रतम् ।
समुपागम्य धर्मात्मा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

रिपुञ्जय निबोधेदं वचनं मम पुत्रक । राज्यं न पाल्यते धर्मं देवकर्मैव वै
यत्र न तपसा मान्यं कल्पान्ते साम्प्रतम् । धर्मेण विविधा सर्वेऽपि च लोकानां
नियतान्प्रभुना लोकपालेन [illegible] समाहृता । यत्र परोपकारोऽपि फलं देहस्य दृष्टि
न धर्माद्रह्मकार्येऽप्यस्ति न धार्म्योऽप्यस्य साधकः ।
नियतोऽप्यपि अत्र उपकृत्य धर्मस्य वै ॥ ९ ॥
नाऽप्यकारणं भूतानामपि अत्र कृतनेत्रता । समस्तं लोककार्यार्थं महाप्राणीयया
पृथ्वीं समुद्रवसनां प्रजार्थं च प्रपालय ॥ १० ॥
इत्युक्तः स तु राजर्षिर्ब्रह्मणा पद्मजन्मना । प्रोवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः
स्वभावमात्मनः पूर्वमपरापूर्वं विनिर्मिता । पितृदेवार्चनं लोकानुग्रहमस्य निर्मी
वचनं मम पृथ्वीपालनार्थे पितामह । देहि मे सर्वं स्थानमपरं समवस्था
मनुष्यत्वेऽपि विख्याता भवन्तु पाप्मनाशकाः ।

स्वर्गच्युतानां देवानां निवासार्थं प्रतिष्ठिता ॥ १४ ॥
मर्यादामनुवर्त्तेयुर्यदि मे नाकवासिनः । अदत्ते चमया स्थाने न वासःकस्यचिद्भवेत्
अनेन विधिना पृथ्वीं पालयिष्याम्यहं प्रभो !॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्येव तेकामोयस्त्वयोक्तो नरोत्तम !। येकेचित्त्रिदशाः सन्तिमर्द्दोस्ववशेनते
तवादेशं करिष्यन्ति सदा त्वद्वशवर्त्तिनः ॥ १६ ॥
नाथेतिवै नाम भविष्यति वसुव्रत । इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा हंसयानंसमास्थितः
अथ राजा प्रतिज्ञाय ब्रह्मणा भूमिपालनम् ।
पृथ्व्यामुद्घोषयामास प्रोवाच त्रिदिवौकसाम् ॥ १८ ॥
तांविहितः स्वर्गो मनुजानांचभूतलम् । येचात्र कन्दरस्ताः स्थले वाभूधरेषु च
स्थितायान्तुनेदेवामनुजानामियंधरा । तच्छ्रुत्वाघोषितं तस्यराज्ञोभयनिपीडिताः
त्रिदशा ब्रह्मणो वाक्याद्दोस्वात्त्रिदिवंगताः ॥ २० ॥
प्रजाः स नृपतिर्धर्मेणावर्धयत्तदा । पुत्रवत्स्नेहयुक्तेन हृदयेनातिनिर्वृताः ॥ २१
प्रजास्ततसुखसम्वृद्धा जरामृत्युविवर्जिताः ।
पुत्रिणो धनधान्याढ्याः सर्वकामसमन्विताः ॥ २२ ॥
यौवनस्थाश्च निर्द्वन्द्वाः सततं धर्मसंश्रयाः ।
नासीत्पृथिव्यां शैलन्तु स्थलो वा द्वीप एव च ॥ २३ ॥
कृष्टपच्यापृथिवास्वादवद्भिःफलैर्युता । देवलोक इवासीद्भूःसर्वकामगुणोज्ज्वला
एवं व्रजति काले वै राज्ञि राज्यं प्रकुर्वति । महामर्षपगादेवाविप्रकार्यार्थमुद्यताः ॥२५
प्रजानां बहुदुःखानि मुहुः कुर्वन्त्यनेकशः । अथानावृष्टिमकरोत्सुदीर्घांपाकशासनः
तथा संह्रियमाणेषु लोकेषु नृपसत्तमः । मेघो भूत्वा दिवं प्राप्य सुवृष्टिमकरोन्नृपः ॥
तेनैवाऽऽप्यायितो लोकः सुखी जातो यशस्विनि !।
ततः काले तु कस्मिंश्चिद्दर्पात्पाकशासनः ॥
सम्वर्त्तो वारिदो भूत्वा मेघान्वै विन्यपातयत् ॥ २८ ॥

तनस्तुमारुतोभूत्वानृपतिस्तामधारयत् । ततोऽनन्तमहीऽभूत् सर्वतः पृथिवीतल
नयवान् जपोहोमो नवपंक्तिरवर्तत । लोकश्च व्याधिसङ्घमुक्तस्तदाभूद्विपदान्वि
तत स राजोत दृष्ट्वा त्वमथ हव्यवाहन । सोऽधारयत् प्रजा सर्वा यज्ञाश्च विविधांश्च
एतस्मिन्नन्तरे देवि त्वया सार्द्धमथागत । दर्शनार्थं स्वनगरीमह भूतगणैर्वृत
ततो देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः । मयस्तरक्षोगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगा
भूता प्रेता पिशाचाश्च येऽन्ये गगनेचराः । मन्दारसागराश्चैव सर्वा नार्यादिसिन्ध
गङ्गा च यमुना सिंधुश्चन्द्रभागा सरस्वती । नर्मदा वेत्रवती रम्या पुण्या गोदावरी त

विपाशा ... पुण्या शरयू कौशिकी तथा ।
गोमती ... च ... च ... ॥ ४२ ॥

पारा ... महाशिवा । ... समागत
पुष्करश्च प्रयागश्च प्रभासो नैमिषस्तथा । पृथूदकं ... तथैवामरकण्टक
गङ्गाद्वार कुशावर्तो बिल्वको नीलपर्वत । वाराहपर्वतश्चैव तीर्थं कनखल तथा
भृगुतुङ्ग ... पावनि । कालिञ्जर सकेदारो रुद्रकोटिमहालय
स्थानानि ... च । मेरुमहेन्द्रौ मलयो ... गन्धमाद
मुनयो वालखिल्याश्च ... । एत चान्ये च ये च समायाता मया स

अनन्तर मया सह ... ।
... स्थिता देवि उपविष्टाः सदैव त ॥
नियुक्ता मातरा पार्श्वे ... ॥ ४३ ॥

अथ ... । ... माहृष्टासमायातस्तुमार्ग

... दह्यमानोऽपि ... ।
मातोऽपि ... कोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥

स्थलेऽस्मिन् नृपराजाहमयाप्युक्तविनोदत । चतुर्वर्गश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्वासस्थितोऽप
ममाह भवना ... सत्रयामरे । अनन्तर स्तुतस्तेन भक्त्या परमयाप्य
प्रभावमतुलं दृष्ट्वा महाय व्यापक परम् । भक्त्या परमया देवि स च मा शरणगत

भूयः स्तुतोऽपि तेनाऽहं तुष्टो वै तस्य भूपतेः ।
तेनोक्तं यदि मे देव! तुष्टस्त्वं परमेश्वर !॥ ४६ ॥
भक्तिर्मे सुदृढाभूयात्त्वयि सर्वेश! शाश्वती । तुष्टोऽहं तेन वाक्येनपुनः प्रोक्तोमयानृप
एवं भविष्यतीत्युक्त्वा पुनर्मां ब्रूहि पार्थिव !।
हृदि स्थितश्च ते कामःसर्वकालं भविष्यति ॥ ५१ ॥
अधृष्यः सर्वदेवानांसर्वदा सम्भविष्यसि । तेनाऽहं प्रार्थितो देविभूयोवरमनुत्तमम्
अतीव राजते देव स्थलोऽयं तव सन्निधौ । मेरुरेव न सन्देहो वल्लभः सर्वदा तव
राजस्थलेश्वरोऽसि त्वंविख्यातोभुवनत्रये । भविष्यसियथा देवतथात्वंकर्तुमर्हसि
अत्रागत्य च यो देवभक्त्यापरमया युतः । यात्रां करोतिभावेनपुराणोक्तविधानतः
तस्य त्वया प्रदातव्यं सर्वं मनसि चिन्तितम् ।
अणिमादिगुणाः सर्वे गुटिकासिद्धिरञ्जनम् ॥ ५६ ॥
खड्गं च पादुकां चैव जलवासं रसायनम् ।
राजस्थलेश्वरं यस्तु भक्त्या पश्यति मानवः ॥ ५७ ॥
दशम्यां तु विशेषेण कृत्वानियमपूर्वकम् । देवानामपि देवत्वं सम्प्राप्नोति महेश्वरः
पूजनीयस्तु त्रिदिवैर्यथा देवः पुरन्दरः । दृष्ट्वा राजस्थले देवं योऽत्रयात्रांकरिष्यति
तस्य श्रीर्विजयश्चैवभवत्येव वरोमम । शत्रवः सङ्क्षयं यान्तु सम्पद्यन्तां मनोरथाः
वृद्धिर्भवतु वंशे च दर्शनात्तव शङ्कर !॥ सर्वेऽत्र देवास्तिष्ठन्तु मेरुरत्रैवतिष्ठतु
तिष्ठन्तु सागराः सर्वे तव देव! समीपतः ॥ ६१ ॥
इत्युक्तोऽहं तदा तेन मया चोक्तं वरानने !। सुद्युम्नोनामभूपालोयदात्रैवागमिष्यति
पुत्रार्थं भार्यया सार्द्धं तदा दास्यामि वाञ्छितम् ।
तदा समुद्राश्चत्वारः स्थास्यन्ति सफलाः स्वयम् ॥ ६३ ॥
तस्याराधनतो भूप!पुत्रंदास्यामिशोभनम् । येचात्रमानवाराजन्यात्रांकुर्वन्तिभक्तितः
तेषां मनोरथावाप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ ६४ ॥
राजा रिपुञ्जयो भक्त्या गणाधीशः कृतो मया ॥ ६५ ॥

एष ते कथितो देवि प्रभाव पापनाशन । राजस्थलेश्वरेशस्य श्रूयतां वडलेश्व

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये राजस्थलेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम

चतुःसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्याय

वटलेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

पञ्चसप्ततिकं देव वडलेश्वरसञ्ज्ञकम् । विद्धि पापहरं देवि दर्शनात्कामदं शुभम् ।

धनदस्य सखा देवि मणिभद्रो यमूवह । तस्याभवत्सुतो वडलोनाम कोपन

रूपवान्सचढ कामी सदा मत्तो बलाधिक ।

कदाचि स गतो रथ्या नलिनी धनदस्य च ॥ ३ ॥

रत्नयथं कामलवाय गुना रहसि निर्मिताम् । ददर्श कुसुमैरढ्यां पक्षपैर्नूपभूषित

ता वै विद्रुमसञ्जाममुक्तादामविराजिताम् ।

सुरम्या वितुल्लायां स्वर्णपद्मसशोभिताम् ॥ ५ ॥

कुवेरमवनात्प्राह वल्लभा धनदस्य च । आक्रीड वानराजस्य कुवरस्य महात्मन ।

राक्षसैः किन्नरैश्चैव गुप्ता खड्गधरैः सदा । ता दृष्ट्वा परमप्रीतो बभूव वडलस्तदा

प्रियया सहितो रम स्थाने गुप्त मनोहर । रम रमणकर्योगैरनङ्गन पशाहत ।

तत्र गुप्ता रण शूरा राक्षसा रणकोविदा । रक्षन्ति शतसाहस्रा सर्वायुधपरिच्छदा

न तु दृष्ट्वैव वडलं मणिभद्रसुत प्रिये । मन्थैः सम्पूरितमुख दिव्यचन्दनभूषित

केतकागमरनामर्दैन्तर्दिव्यतरानमम् । युद्धार्थे वद्धनिस्त्रिंशराशियुक्तमरिन्दमम् ।

मायासहायमुन्मत्त पर्यङ्क च स्थित सदा ।

रत्यर्थमागतं ज्ञात्वा अन्योन्यमभिचुक्रुशुः ॥ १२ ॥
मा वीरानेनमार्गेण सभार्यो गन्तुमर्हसि । आक्रीडोऽयं कुबेरस्य धनदस्य महात्मनः
देवा देवर्षयो यक्षा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । आमन्त्र्य यक्षप्रवरं विहरन्तिरमन्ति च
नेह शक्यं विनादेशाद्विहर्तुं क्रीडितुं चिरम् । भ्रात्रामात्येन सुहृदा केनापिचसुतेनच
येनकेनचिदन्यायादृत्वमन्य धनेश्वरम् । विहारः क्रियते दर्पात्स विनश्येदसंशयम् ॥
एवं स राक्षसैर्घोरैर्घडलो विनिवारितः । मामेवमिति सक्रोधंभटसंयद्भिः समन्ततः
कदर्थीकृत्य तु स तान्राक्षसान्भीमविक्रमः । व्यगाहत महातेजास्ते सर्वेतंन्यवारयन्
गृह्णीत बध्नीत निकृन्ततैनं पिबाम खादाम च वृत्तहीनम् ।
क्रुद्धा ब्रुवन्तो ह्यपतन्द्रुतं ते शस्त्राणि चोद्यम्य विवृत्तनेत्राः ॥ १९ ॥
ततः स गुर्वीं यमदण्डकल्पां महागदां काञ्चनपट्टनद्धाम् ।
प्रगृह्य तामभ्यपतत्तरस्वी ततोऽब्रवीत्तिष्ठत तिष्ठतेति ॥ २० ॥
ते तस्य वीर्यं च बलं च दृष्ट्वा विद्याबलं बाहुबलं तथैव ।
न शक्नुवन्तः सहितुं समेता हताः प्रवीराः सहसा निवृत्ताः ॥ २१ ॥
विदार्यमाणास्तत एव तूर्णमाकाशमास्थाय विमूढसञ्ज्ञाः ।
कैलासशृङ्गाण्यभिदुद्रुवुस्ते यक्षार्दिता रक्षपालाः प्रभग्नाः ॥ २२ ॥
स शक्रवद्दानवदैत्यसङ्घान्विक्रम्य जित्वा मद्नाभितप्तः ।
विगाह्य तां पुष्करिणीं समर्थः कामं स चिक्रीडति यक्षपुत्रः ॥ २३ ॥
ततस्तु ते रक्षपालाः समेत्य धनेश्वरं वै घडलेन नुन्नाः ।
यक्षस्य धैर्यं सुबलं च सङ्ख्ये यथावदाचख्युरतीव भीताः ॥ २४ ॥
तेषां तु वचनं श्रुत्वा मणिभद्रो महायशाः । शशाप पुत्रं दयितं घडलं प्रभुकारणात्
यस्मात्सा नलिनी रम्या सेविता घडलेन तु ।
दयिता धनदस्यापि यथा माता तथैव सा ॥ २६ ॥
तस्मात्पुत्रोमदीयस्तुसर्वभोगविवर्जितः।पङ्ग्वन्धोबधिरोदीनःक्षयरोगमवाप्स्यति
इतिशप्तस्तदाजातोघडलोभोगवर्जितः । पतितोभूतलेचैवतस्मिन्स्थानेगतोऽपिसन्

पीडितः क्षयरोगेण शशाक चिचेष्टितुम् ।
अन्धोऽथ बधिरो जातो गुरुशापहतस्तदा ॥ ३१ ॥
चिन्तयामास सहसा शापमत्यद्भुतं महत् । शप्तोऽहं केनसहसा जीवन्योन्यन्तरं
कथं शप्तोऽस्मि,तातेन मणिभद्रेण वल्लभ । पुत्रो युवा च शूरश्च शत्रुपक्षक्षयं
धन्योऽसौ मणिभद्रोऽपि मत्तातो येन भूतले ।
प्रभुभक्त्या निजः पुत्रः शप्तस्त्यक्तश्च तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥
पद्मलेन पुनः प्रोक्तं धन्योऽहं प्रभुकारणात् ।
उत्सवो निधनं नाम मत्तं पिण्डोपजीविनम् ॥ ३३ ॥
अन्यायेन यथाकामं प्रारब्धं सञ्चितं चिरम् ।
तेनाहं शापमा प्राप्तो यास्यामि नरकं ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
एवं विलपमानस्य पद्मलस्य वरानने ॥ आजगामतमुद्दिश्य मणिभद्रो महायश
ददर्श पुत्रं पद्मलं च क्षयरोगप्रपीडितम् ॥ ३५ ॥
श्वसन्तस्तु कालविलपन्तपुनः पुनः । स गुवाचसुतयक्षो मणिभद्रोऽतिदुःखि
मया कुपिता हा वत्स शप्तस्त्वं प्रभुकारणात् ॥ ३६ ॥
त्वयैव नलिनी रम्या धनदस्यातिवल्लभा । सेविता कामतस्तेन प्रवरा राक्षसा ह
तस्मात्पुत्रमयाशप्तो न मिथ्यासंभविष्यति । प्रभुर्देवः प्रभुः स्वामीप्रभुर्माताप्रभुः पि
स्वाम्यर्थे य प्रियान्प्राणान्परित्यजति सङ्गरे ।
स याति परमं स्थानं ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ३८ ॥
मन्त्रसाध्य शापोऽयं नौषधनयतन च । नियमेन न दानेन तस्मात्पद्मलवत्स कु
मया श्रुतं शक्रलोके पुराणं स्कन्दकीर्तितम् । ध्रुवतो नारदस्यैवदेवानांसन्निधौ पु
प्रभावोर्वर्णितस्तत्र महाकालवनस्य च । क्षेत्रे ह्यस्मिन्महालिङ्गं स्वर्गद्वारस्यदक्षि
विद्यतव्याधिशमनरूपसौभाग्यदायकम् । तत्राहंत्वाच नेष्यामिविमानेनाशुगामि
इत्युक्त्वा मणिभद्रेण समानीतः सुतस्तदा ।
यत्र देवाधिदेवोऽसौ स्वर्गद्वारस्य दक्षिणे ॥ ४४ ॥

स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य चक्षुष्मान्रूपवान्बली । सुपादःश्रुतिसंयुक्तस्तक्षणादभवत्तदा
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यं मणिभद्रेण पार्वति !। कृतं नाम सुहृष्टेन स्वीयपुत्रस्य नामतः ॥
चक्षुष्मान्वडलो जातो लिङ्गस्याऽस्य प्रभावतः ॥ ४६ ॥
अद्यप्रभृति देवोऽयं वडलेश्वरसञ्ज्ञकः । भविष्यति त्रिलोकेषु विख्यातोनेत्रदायकः
पूजयिष्यन्तियेदेवं वडलेश्वरसञ्ज्ञकम् । लिङ्गंलोकेषु विख्यातंतेप्राप्स्यन्तिमनोरथम्

दृष्टो हरति पापानि स्पृष्टो राज्यं प्रयच्छति ।
अर्चितो भक्तिभावेन मोक्षं दद्यान्न संशयः ॥ ४९ ॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य तिथिर्वै द्वादशी भवेत् ।
तस्यां ये पूजयिष्यन्ति वडलेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ ५० ॥

नं तैः सततं दत्तं ते यान्ति परमं पदम् । प्रयागे च प्रभासे च गङ्गासागरसङ्गमे ॥
पस्तत्संभवेत्तेस्तु ते मुक्तानात्र संशयः । गर्भवासे न जायन्तेसर्वसौख्य समन्विताः
ाणपत्याभविष्यन्तिशङ्करस्यसदाप्रियाः । सौभाग्यरूपसम्पन्नाःपुत्रपौत्रैश्चसंयुताः
जायन्ते मानवा लोके वडलेश्वरदर्शनात् ॥ ५३ ॥
र्भवासेमहाकष्टे यस्य चात्मो न रोचते । सोऽभ्यर्चयतु भावेन वडलेश्वरमीश्वरम्

न लिङ्गेन विना सिद्धिर्दुर्लभं परमम्पदम् ।
गतिर्न जायते स्वर्गे यावल्लिङ्गं तु नार्चयेत् ॥ ५५ ॥

लिङ्गार्चनविहीनानां सिद्धिश्चापिसुदुर्लभा । ममपुत्रेणसम्प्राप्तमीप्सितंलिङ्गतोयतः
इत्युक्त्वामणिभद्रोऽपि सुतेन सहितोययौ । यत्र देवोधनाध्यक्षःस्थानंस्वंपरमंगतः

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।
वडलेश्वरदेवस्य श्रूयतामरुणेश्वरम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसम्वादे वडलेश्वरमाहात्म्यवर्णनं
नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

अरुणेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

षट्सप्ततितमं देवमरुणेश्वरसंज्ञकम् । विद्धि पापहरं देवि! दर्शनात्कामदं नृणा
पुरा देवयुगे देवि! प्रजापतिसुते शुभे । आस्तां भगिन्यौ रूपेण समुपेतेऽद्भुतेऽनघे
ते भार्ये कश्यपस्याऽऽस्तां कद्रूश्च विनता तथा ।
प्रादात्ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसमः पतिः ॥ ३ ॥
कश्यपो धर्मपत्नीभ्यां मुदा परमया युतः । वरातिसर्गं श्रुत्वैव कश्यपादुत्तमं तु
हर्षादभ्यधिकां प्रीतिं प्रापतुः स्म वरस्त्रियौ । वव्रे कद्रूः सुतान्नागान्सहस्रं तुल्यवर्चस
द्वौ पुत्रौ विनता वव्रे कद्रूपुत्राधिकौ बले । ओजसा तेजसा चैव विक्रमेणाधिकौ वरं
तस्यै भर्ता वरं प्रादाल्लप्स्यसे पुत्रकोत्तमौ ।
एवमस्त्विति तां चाह कश्यपो विनतां तदा ॥ ७ ॥
यथा च प्रार्थितं लब्ध्वा वरं तुष्टाऽभवत्तदा ।
कृतकृत्या तु विनता लब्ध्वा वीर्याधिकौ सुतौ ॥ ८ ॥
कद्रूश्च लब्ध्वा पुत्राणां सहस्रं तुल्यतेजसाम् ।
धार्यौ गर्भौ प्रयत्नेन इत्युक्त्वा स महातपाः ॥ ९ ॥
ते भार्ये वरसंहृष्टे कश्यपो वनमाविशत् । कालेन महता कद्रूर्नागानां सा शतान्दश
जनयामास चार्वङ्गी द्वे चाण्डे विनता तदा ॥ १० ॥
तयोरण्डानि निदधुः प्रहृष्टाः परिचारिकाः । सोपस्वेदेषु भाण्डेषु पञ्चवर्षशतानि च
ततः पञ्चशते काले कद्रूपुत्रा विनिर्गताः ।
अण्डाभ्यां विनितायास्तु मिथुनं न व्यदृश्यत ॥ १२ ॥
ततः पुत्रार्थिनी देवी व्रीडिता सा तपस्विनी ।

अण्डं चिभेद विनता तत्र पुत्रं ददर्श ह ॥ १३ ॥
पूर्वार्द्धकायसम्पन्नमितरेणाप्रकाशितम् । स पुत्रो रोषसंरब्धःशशापैनामितिश्रुतम्
योऽहमेवं कृतो मातस्त्वया लोभपरीतया । शरीरेणासमग्रेण तस्माद्दासीभविष्यसि
पञ्चवर्षशतान्यस्या यया विस्पर्द्धसेसदा । एष तेचसुतोमातर्दास्यार्द्धंमोक्षयिष्यति
यद्येनमपि मातस्त्वं मामिवाण्डविभेदनात् ।
न करिष्यस्यनङ्गं वा पुत्रं चाऽतितरस्विनम् ॥ १७ ॥
प्रतिपालयितव्यस्ते जन्मकालोऽस्य धीरया ।
विशिष्टबलमीप्सन्त्या पञ्चवर्षशतान्यतः ॥ १८ ॥
एवंशप्त्वाततोदेवि! विनतां मातरंस्वकम् । अरुणो विललापाथबाष्पशोकपरिप्लुतः
हाहामया नृशंसेनमाता स्वजननीस्वका । शप्ताविनापराधेन कथं यास्यामिसद्गतिम्
माता देहारणिः पुंसां माता दुःखसहा परा ॥ २० ॥
गर्भक्लेशेपरंदुःखंमाता जानातियादृशम् । वात्सल्यंचाधिकं मातुर्दृश्यतेनतुपैतृकम्
गुरूणामेव सर्वेषां माता गुरुतरास्मृता । एकस्यापिसुतस्यैवन दृष्टानिष्कृतिःश्रुतौ
यदि पिण्डप्रदानं तुगयायां कुरुतेसुतः । गते पितरिपश्चात्वं माता पुत्रस्य निर्वृतिः
न च मातृविहीनस्य ममत्वं कुरुते पिता ॥ २३ ॥
विकलोमातृहीनस्तुपुत्रोहि प्रोच्यतेतदा । यदास वृद्धो भवति तदाभवतिदुःखितः
तदा शून्यं जगत्सर्वं यदा माता वियुज्यते ॥ २४ ॥
सोऽहं पापसमाचारो जातो मातृविहिंसकः ।
मरिष्यामि न सन्देहः साधयित्वा हुताशनम् ॥ २५ ॥
जातोऽहं विकलाङ्गस्तु प्राक्कृतेनैव कर्मणा ।
न माता कारणं यस्मात्स्वकीयं कर्म भुज्यते ॥ २६ ॥
एवंविलपतस्तस्य कश्यपस्य सुतस्यच । अरुणस्य विशालाक्षि!नारदः समुपागतः
दृष्ट्वाऽरुणं सुदुःखार्त्तं विलपन्तं पुनः पुनः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदः प्रहसन्निव
अरुणोऽयमहो रौति कश्यपस्यात्मसम्भवः ।

विनताया सुतो ज्येष्ठ सम्भूतस्तपसा निधि ॥ २९ ॥
उत्पादितोऽयमण्डाद्वैरर्द्धकायो महाबल । एनमाश्वासयिष्यामि विनतागर्भसम्भ
मोहेन विल्पन्तं च श्रेयो मे भविता ध्रुवम् ॥ ३० ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसि पावयैमामृतोपमै । प्रत्युवाचारुण तत्र नारदो द्विजस
तात कश्यपदायाद विनतागर्भसम्भव । तेजोराशे गुणाढ्य सन्ताप मा वृथा कुर
भाविनोऽर्था भवन्तीह दु खस्य च सुखस्य च । यत्त्वया विनता माता गृहस्य देवनिर्मि
यद्विनेऽसितनुर्णाविशेषमाऽऽत्मजननीत्वया । तदागच्छ ममादेशान्महाकालवनशु
उत्तरे देवदेवस्य यात्रशम्य च पुण्यदम् । विद्यते त्रिदशै पूज्यं सर्वदा सर्वदशि
अरुणस्त्वेवमुक्तस्तु नारदेन महात्मना । आजगाम क्षणार्द्धेन महाकालवनं शुभ
ददृश तत्र तल्लिङ्ग तेज कूटोपम शुभम् । पूजयामास विधिवत्पुष्पमाल्यसमन्वि
लिङ्गेनोक्तोऽरुणो देवि साम्प्य कुरु सर्वदा ।
सूर्यस्य भ्रमतस्तस्य त्वत्तुल्यो नास्ति सारथि ॥ ३८ ॥
मयावत्त तुसामर्थ्यं सूर्यस्य पुरत सदा । कद्रवस्तेऽरुणप्राप्ते पश्चात्सूर्यउदेष्य
त्वत्प्रसादात्त्रिषु लोकेषु ख्यातोऽहमरुणेश्वर । भविष्यामि न सन्देहो नृणामर्थप्रदाय
ये मां पश्यन्ति सतत त्वनाम्ना चारुणेश्वरम् ।
ते यास्यन्ति पर स्थान चाहमलयवर्जितम् ॥ ४१ ॥
मोदिष्यन्तिकुले सार्द्धं पितृमातृसमुद्भवै । कल्पकोटिसहस्त्र तु येपश्यन्तिसमाहि
नतु स जायते तेषां येपश्यन्ति रवेर्दिने । ससारसागरोत्थ वै याघदिन्द्राश्चतुर्दश
य पश्यति चतुर्दश्यां कृष्णायामरुणेश्वरम् ॥ ४४ ॥
स नेष्यति पितॄन्स्वर्गेनरकस्थान्नसशय । सङ्क्रान्तौ रविवारे च पश्येदरुणेश्वर
शुण्डीरस्वामिनो यात्रा कृता तेन न सशय ॥ ४५ ॥
इत्युक्तस्तेन लिङ्गेन विनतानन्दनस्तदा । आगत कृतकृत्यात्मा यत्र देवो दिवस्पति
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्कश्यपस्याऽऽत्मसम्भव ।
अरुणो दृश्यते व्यो[illegible]स्य पुरत सदा ॥ ४७ ॥

एतते कथितो देवि! प्रभावःपापनाशनः । अरुणेश्वरदेवस्य पुष्पदन्तेश्वरं शृणु ॥४८

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्येऽरुणेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

पुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

सप्तसप्ततिकं देवि! पुष्पदन्तेश्वरं शृणु । यस्य दर्शनमात्रेण गर्भवासो न जायते ॥ १
शिनिर्नामद्विजोदेवि! सचापुत्रोऽभवत्पुरा । पुत्रार्थं चिन्तयामास सतपांसिबहूनि ह
वायुभक्षोऽम्बुभक्षश्च निराहारोर्ध्वबाहुकः ।
शाकमूलफलाहारः पर्णाश्येकद्वि पर्णभुक् ॥ ३ ॥
एवमादीनि चान्यानि तपांसि श्रेयसेपरम । एतेषां तपसां मध्ये तप एकं समाश्रये
परं विघ्नोपशान्त्यर्थंतोषयिष्येऽहमीश्वरम् । एवं सञ्चिन्त्यमनसाऊर्ध्वबाहूर्ध्वपादकः
याभ्यां न स दुराराधो नापराधो भविष्यति ॥ ५ ॥
तथाचकार स मुनिर्वर्षाणां द्वादशीवहि । तपस्यन्तं व्रतं दृष्ट्वा नियमे परमे स्थितम्
विज्ञातोहं त्वया देवि! मन्दरे चारुकन्दरे । करोत्येव तपः क्रूरं पुत्रहेतोर्मुनिर्महान् ॥
तेजसा दीपयञ्छैलं शोषयन्सलिलाशयान् । तपसादुष्करेणैव क्षुभितानाकवासिनः
व्यालेन्द्रा व्याकुलीभूता लुलिताश्चाऽचलेश्वराः ।
मुनयो विस्मृतिं प्राप्ताः कम्पेते चापि रोदसी ॥ ९ ॥
अयोनिजः शिनिर्विप्रः पुत्रमिच्छत्ययोनिजम् ।
त्वं योनिर्गुणसङ्घानां त्वं योनिस्तपसामपि ॥ १० ॥

त्वं तपस्त्वं परं धाम शशिचन्द्रार्कलोचन ।। सर्वेश्वर सुतोऽर्थीह किं न विप्राय दीयते
सुरासुरगुरो किं न पुत्रमस्मै प्रयच्छसि । तपसा क्षीणदोषस्य ब्रह्मत्वेभावितात्मनः

शिने पुत्रप्रदानं त्वं कुरु मद्वचनाच्छिव ।
तपसा दुष्करेणैव गाढं क्लिष्टो महामुनिः ॥ १३ ॥
तेजांसि ज्योतिषामेव महता च विधिस्थित ।
अहस्तेजसा स्वेन तमासीच दिवाकर ॥ १४ ॥

त्वद्भक्तस्य च देवेश व्यर्थं कस्मात्परिश्रम । उदितेऽर्केतमासीह न भवन्तिपरायण
त्वत्परस्य ॥ देवेश युक्ता तु वयमीपिका । इत्यहं प्रार्थितो देवि त्वयापर्वतपुत्रिके
विप्रार्थमनुकम्पार्थं पुत्रार्थं चयितोऽस्म । आकारिता मया देवि गणास्तत्र द्विरेणतु
रुद्राश्च हरमत्ताश्चकूष्माण्डागणनेश्वरा । रोमरोद्रामहानीला शिखावन्त सकोकिला

अन्ये च विविधाकारा कालास्या हरिपिङ्गला ।
जटाजूटधराश्चान्ये वीचिमक्षत्रधारिण ॥ १६ ॥
नीलग्रीवा कृष्णमुखा पिङ्गपीतजटासटा ।
उग्रतेजिविण्डिमहाकालो लाङ्गुलिश्च महेश्वर ॥ २० ॥

घण्टाकर्णो विशालश्चपरिवीगणपाश्च ये । वृषारूढा कामगुत्या कामरूपबलास्तथा
शूलवज्रधरा सर्वेसर्वेतुल्यपराक्रमा । ममादेशात्समायाता कृताञ्जलिपुटा स्थिता

स्तुवन्तो विविधै स्तोत्रैरुद्रेव समाहिता ।
किं कर्तव्यमिहास्माभिरादेशो दीयता प्रभो ॥ २३ ॥
गणाना वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा भक्ति च तादृशीम् ।
महातप प्रमाणोऽस्य शिनिविप्रस्य कीर्तित ॥ २४ ॥

पुत्रार्थंतप्यतितप शिनिब्राह्मणसत्तम । मद्वाक्यात्कोनुविप्रस्य ,पुत्रत्वंसंप्रदास्यति

तस्याऽहं सम्प्रदास्यामि सर्वान्कामान्यथेप्सितान् ।
अमरं चाजरं पुत्रं मुनिर्वाञ्छति साम्प्रतम् ॥ २६ ॥

मद्भक्तस्य न सङ्कल्पो मिथ्याभवितुमर्हति ॥ २७ ॥

मदीयंवचनंश्रुत्वा सर्वेकम्पितकन्धराः। सर्वे चावाङ्मुखाजाताःसर्वेध्यानपरायणाः
न कश्चिद्वापतेकिञ्चिन्न कश्चिद्वीक्षते तदा। अथोक्तं पुष्पदन्तेनरभसान्मानितेन तु
मम चित्तमविज्ञाय गणानामनुकम्पया। न यास्यन्तिगणादेवत्वांविहायमहातलम्

इह स्थास्यन्ति सततं त्वत्समीपे न संशयः।
कथं योनिं प्रयास्यन्ति सम्प्राप्य मुदमुत्तमाम् ॥ ३१ ॥
हीनां रजोऽधिकां दीनां तमोबहुलधारिणीम्।
कथं स्वर्गं परित्यज्य यास्यामो नरकं परम् ॥ ३२ ॥

ब्रुवन्नेवं भ्रमेणैव भाव्यर्थेन प्रणोदितः। उक्तोमया विशालाक्षिपुष्पदन्तोगणाग्रणीः
पत त्वं मानुषेलोकेयस्मान्मेविप्रियं कृतम्। शप्त्वातंपुष्पदन्तं तु वीरकःप्रेरितोमया
विप्रस्यपुत्रतांतूर्णंपुत्रगच्छममाज्ञया। ततस्तेसंप्रदास्यामिसर्वान्कामान्यथेप्सितान्
इत्युक्तोवीरकोदेवि!गतोविप्रस्यपुत्रताम्। पुष्पदन्तोऽपि करुणंविललापसुदुःखितः

पश्चात्तापेन संयुक्तो निःश्वस्य च पुनः पुनः।
अहो तत्सफलं जन्म यदाज्ञाक्रियते नरैः ॥ ३७ ॥

प्रभूणामेकचित्तेन ते भृत्या दुर्लभाः स्मृताः। तेषामर्थश्चधर्मश्चकुलं चैवसतारितम्
प्रसन्नास्त्रिदशास्तेषां प्रभुभक्ताश्चये नराः। सेवाधर्मोहि गहनोयोगिनामपि दुष्करः
न ज्ञेयः केन तत्त्वेन दुराराध्यःप्रभुर्भवेत्। एकेनाप्यपराधेन प्रकोपं कुरुते प्रभुः ॥४०॥

विनश्यन्त्युपकाराणि तस्मात्सेवा सुदुष्करा।
स्वामी सर्पश्च वह्निश्च तत्प्रभावं व्रजन्ति हि ॥ ४१ ॥

तस्माद्यत्नेन संसेव्या आत्मरक्षणतत्परैः। सोऽहंभूमौ निपतितःप्रभोरादेशभञ्जकः

कांस्तु लोकान्गमिष्यामि कलुषीभ्रूणहा इव।
एवं विलप्य बहुशो मामेव शरणं गतः।
उवाच दीनया वाचा प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
दीनोऽस्मि ज्ञानहीनोऽस्मि प्रणतोऽस्मि च शङ्कर !।

कुरु प्रसादं देवेश! अपराधं क्षमस्व मे ॥ ४४ ॥
नहि निर्वहणं यान्ति प्रभूणामाश्रिता रुज । प्रसीद देवदेवेश! दीनस्य कृपणस्य च
अपि कीटपतङ्गत्वं गच्छेयंतव शासनात् । भक्तोऽहं सर्वदा देव! पुत्रत्वेहिप्रतिष्ठित
इति तस्य वच श्रुत्वा पुष्पदन्तस्यपार्वति! । ममत्वेनतदादेविप्रोक्तमित्थं वयावच
गच्छ पुत्र ममादेशान्महाकालवनं शुभम् ।
लिङ्गमाराधय क्षिप्रं तस्त्वन्नाम्ना भविष्यति ॥ ४८ ॥
कीर्त्तिस्ते भविता पुत्रयावद्‌भूतमस्प्लवम् । इत्युक्ते तुदवयादेविमयाप्युक्त वरानने
न मे मिथ्या वच पुत्र! भविष्यतिकथञ्चन । दर्शनादेवलिङ्गस्यममामीप्योभविष्यसि
विमाने पुष्पपादे समारूढो भविष्यसि ।
पुष्पै सम्पूज्यमानस्तु पद प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ५१ ॥
गणै सार्द्धं मयावैवमुदितोविचरिष्यसि । ममापि परतिवत्सभविष्यतित्वयाविना
अह तत्रागमिष्यामि महाकालवने शुभे । तुष्टोऽह सर्वदा वत्सगणानामग्रणी कृत
अनया शुद्धया भक्त्या लोकानामुपकारक ।
भविष्यसि न सन्देहस्तस्मिन्क्षेत्रे गतो ध्रुवम् ॥ ५४ ॥
इत्युक्तो हि मयादेवि पुष्पदन्तोगण प्रणी । आनीममाज्ञयामीतोमहाकालवनेशुभम्
लिङ्गमाराधयामास दुर्वासेशाद्यथोत्तरे । लिङ्गतोवस्तु सहसा तुष्टोऽह गणसत्तम!
त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यामि प्रसादस्ते कृतोऽधुना ॥ ५६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि! त्वया सार्द्धमह गत । शक्राद्यैस्त्रिदशै सार्द्धंगणैर्नानाविधैस्तथा
दृष्टस्तु पुष्पदन्तोऽपि पुष्पपद्मासने शुभे ।
पुष्पै प्रकीर्यमाणोऽपि पुन प्राप्तो ममाऽऽन्तिकम् ॥ ५८ ॥
मया सश्लेषित स्नेहादुत्सङ्गेऽप्यधिरोपित ।
स्थान दत्त विशालाक्षि! इदमुक्त मया तदा ५९ ॥
येपश्यन्तिनरालिङ्गत्वयासम्पूजितभुवि । तेयास्यन्तिपुष्पकेणत्रीडन्तोवैत्रिविष्टपम्
गणाध्यक्षा भविष्यन्तिसर्वकामैरलङ्कृता । ममलोकेगणाध्यक्षायावदिन्द्राश्चतुर्दश

दर्शनात्क्षीयते पापमैहिकं पूर्वकं तथा। ततः प्रसादान्मे सर्वं ज्ञानं सम्यग्भविष्यति
यः पूजयेच्चतुर्दश्यामष्टम्यां सोमवासरे । अमरैः सहसंहृष्टो मोदते दिवि सर्वदा॥
पैतृकैर्मातृकैः सार्द्धं कुलैस्तु सप्तभिर्युतः। नवदेत्केनचित्सार्द्धं नरोयः प्रातरुत्थितः
पुष्पदन्तेश्वरंदृष्ट्वा सोऽश्वमेधफलं लभेत्। मुच्यतेपातकाद्यैश्च यःशाठ्येनापिपश्यति
नतस्यसन्ततिच्छेदोयः पश्यति दिनेदिने । नियमेन गणाध्यक्षजायतेब्रह्मणोदिनम्

ऐश्वर्यं सप्तलोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथाक्रमम् ।
पृथिव्यामेकराड्भूत्वा ममाङ्गे सम्भविष्यति ॥ ६७ ॥

एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः। पुष्पदन्तेश्वरेशस्य अविमुक्तेश्वरं शृणु॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य उमामहेश्वरसम्वादेपुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्य-
वर्णनंनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

अविमुक्तेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अष्टसप्ततिकं विद्धि अविमुक्तेश्वरं प्रिये ।यस्य दर्शनमात्रेण तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥
शाकले नगरे देवि! चित्रसेनोमहीपतिः। बभूव भुविविख्यातोरूपवान्मन्मथाधिकः

तस्य चन्द्रप्रभा भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
पतिव्रता धर्मशीला रूपयौवनशालिनी॥ ३ ॥

अपुत्रस्यापि नृपतेः पुत्रीजाता मनोरमा। तस्या नाम तदा चक्रे पितापार्थिवसत्तमः

सर्वलक्षणसम्पन्ना कन्या लावण्यवत्यपि।
सापि जातिस्मरा देवि! सस्मार च पुरातनम् ॥ ५ ॥

वैराग्याद्ब्रह्मचर्यं च चचारतनुमध्यमा । कन्यापि यौवनं प्राप्ता सा पृष्टा नृपेण वै ॥
उन्मदे च निजे दृष्ट्वा मूर्ध्न्याघ्राय हर्षितः । पुत्रि प्रदानकालस्ते कस्मै देयाऽऽपरस्य
नराय नरपुत्राय सम्मताय द्विजाय वा । वृद्धाय बहुमर्यादमार्गशीलाय च पुत्रिके ॥

इत्येवं वादिनीं राजा पुनः पप्रच्छ तां सुताम् ॥ ८ ॥

पृष्टा च सा यदा देवी न चोत्तरमुपाददौ । अधोमुखी समभ्रान्ता पुनःशोकात्पितेन्दु
परि महद्यत् पुत्रि प्रतिभाति न मानसम् । वयस्ते वैकल्पयापुत्रि कुरुष्वाद्य स्वयंवरम्

इत्युक्ता सा नृपतिना पित्रा प्रोक्ता पुनः पुनः ।

रुरोद सा वै करुणं श्रुत्वा तां कुत्सितां गतिम् ॥ ११ ॥

उद्दाम वाऽभिहासेन पुनः श्वासमुखमुक्तवति । अहर्निशं पुनश्चिरं प्राप्य बाष्पमुद्गति
मानवम्यागता दृष्ट्वा दुर्धामुग्मकेतनाम् । किमेतदिति भूपालो विस्मितः किमहोमयं

भुजगः को विशन्तेऽत्र सुता रूपवती सुता ।

इति चिन्तापरो राजा यत्नं जातो यथाविधि ॥ १४ ॥

तदाश्चर्यमिदं पृष्टाला नाम विहग भव । तमप्रस्ता ग्रहेऽपीह ॥ भूतेन न रक्षसा ॥
न पिशाचेन यक्षेण नव कन्या गृहीता न । जातिस्मराऽहमुत्पन्नाभूतत्ता ममजन्म च
प्राग्ज्योतिषे पुरे विवाहसम्बन्धसम्भवः । मयाऽहं तु मगधजातस्त्वविप्रस्य पार्थिव
रूपयौवनसम्पन्ना तस्य सा प्रियाविमी । सदाविद्वेष्यसंयुक्तो मयि निष्ठुरकारक

सत्यमेव कश्चिद्दृष्टा सुतया सा पृथिवीपते ।

पार्श्वसंस्पर्शकाले न शक्ते पार्श्वविलोकिना ॥ १६ ॥

अहमृद्धा कुलानेन द्विजेनाभिगुप्ता च । स पाश्वलोकिनो विप्रो गृहे पुत्रैश्च राधिप
तेन न वल्लभा राजन् साऽहं नम्यवल्लभा । स सदाचारसंयुक्तो वेदाध्ययनतत्परः ॥
नान्यत्र कुरुते भाव ब्रह्मचर्यनेनिष्ठित । तथाऽहं क्रोधसंयुक्ता पर्याकरदत्तरदा ॥

अपृच्छ प्रशान्तेन यान्यवक्त्रा पतितेभि किल ॥ २२ ॥

नाभिरुक्ता इह भूप वशगो भर्ता भविष्यति ।

अस्माकं प्रत्ययो जातस्तस्मात्त्वं वक्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

भेषजैर्विविधैश्चूर्णैर्मन्त्रैर्मोहकरैः परैः । तैस्तैस्तु कृतलेपोऽपि भविता दासवत्पतिः
ततोऽहंत्वरिता गत्वातासां वाक्येन भूपते !। चूर्णं मन्त्रंगृहीत्वाच प्राप्ताभर्तृ गृहंपुनः
प्रदोषे पयसायुक्तश्चूर्णोभर्त्त रियोजितः । ग्रीवायांचमयामन्त्रोन्यस्तःसर्वाङ्गसन्धिषु

यदा पीतश्च चूर्णस्तु मन्त्रेणातीवगुण्ठितः ।
वशगस्तत्क्षणाज्जातो मन्त्रचूर्णप्रभावतः ॥ २७ ॥
द्वारदेशे स्थितः क्रन्दन्दासोऽस्मि तव शोभने !।
त्राहि मां शरणं प्राप्तं त्वद्वशोऽहं च शोभने !॥ २८ ॥
तत्तस्य रुदितं ज्ञात्वा मन्त्रमाहात्म्यतो नृप !।
स्वस्थीकरणयोगेन तदा स्वस्थः कृतः पतिः ॥ २९ ॥

ततःप्रभृतिकान्तोमे वश्योऽभूद्भवनेस्थितः । पश्चत्मंत्वगता काले तथानारकयातनाम्
ताम्रभ्राष्ट्रे चदग्धाहंयुगानि दशपञ्चच । सूक्ष्माणि तिलमात्राणिकृत्वाखण्डान्यनेकशः

छेदिता कालसूत्रेण पीडिता प्राणयन्त्रके ॥ ३१ ॥

क्वाथीभूता तप्ततैलैर्घटे दर्व्याथ लोडिता। पिष्टाचैव शिलापृष्ठे कुट्टिता लोहमुद्गरैः ॥
दलिता दन्तदलने दग्धाहं रौरवेभृशम्। अधोमुखी विनिक्षिप्ता त्वमेध्येपूयशोणिते
यान्यापि युवती तात भर्तुर्वश्यं समाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा पच्यतेनरकेभृशम्
भर्त्ता नाथो गुरुर्भर्त्ता भर्त्ता वै दैवतं परम । भर्त्तास्वामी सुहृद्भर्त्ताभर्त्ताचपरमंपदम्

तुष्टे भर्त्त रि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
विमुखे विमुखाः सर्वे तस्मात्सेव्यः सदा पतिः ॥
भस्मीभवति सा नारी यया भर्त्ता न तोषितः ॥ ३६ ॥
यस्य प्रसादात्प्राप्यन्ते भोगाश्च विविधाःसदा ।
तं वश्यं कुरुते या च सा कथं सुखमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

तिर्यग्योनिशतंयातिकृमिपक्षिशतानिच । तस्मात्तत्तत्सदाकार्यं स्त्रीभिर्भर्तृ वचःकिल
एवं पुनर्मया भुक्तानरका भृशदारुणाः । तिर्यग्योनिसहस्रं तु कर्मणा कुत्सितेन च ॥

किञ्चित्पातकशुद्ध्यर्थं चण्डालस्य च वेश्मनि ।

जाताऽहमतिरूपेण पीडिता विविधैर्वणैः ॥ ४० ॥

सारमेयैश्च सा दीना भक्ष्यमाणा पुनः पुनः ।

दुष्टाऽहं भक्ष्यमाणाऽपि मार्गे रुद्धा सूकरैरहम् । तैरहं तुद्यमानापि महाकालवनं गता ॥

दृष्टो मया महादेवो दैवतो मृयमाणया । समीपे देवदेवस्य पिप्पलादेश्वरस्य च ॥

तस्य दर्शनमात्रेण गता शक्रपुरंप्रति । विमानेन सुदीप्तेन किङ्किणीजालमालिना ॥

दिव्याम्बरधरा दिव्या दिव्यमालाविभूषणा ॥ ४३ ॥

तत्राऽहंपूजिता देवैः स्तुताऽहं चारणैस्तथा । दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य जाताऽहं तव वेश्मनि

वल्लभा रूपसम्पन्ना शाकले नगरे शुभे ।

स्मृत्वा तु कुत्सितां योनिं विलापश्च कृतो मया ॥ ४५ ॥

स्मृत्वा लिङ्गस्य माहात्म्यं हर्षो जातस्तु तत्क्षणात् ।

तस्मै नैव च वान्यस्य गृहीतो न प्रहेयः च ॥ ४६ ॥

जाताजातिस्मरा ता ब्रह्मचर्यव्रतस्थिता । अतो यास्यामि तं देवं दर्शनार्थं पुनः प्रभो

यथा न भूयो मे जन्म स्याच्च संसारसागरे ॥ ४७ ॥

इति पुत्रीवचः श्रुत्वा चित्रसेनो महीपतिः । सभृत्यमन्त्रिसहितो महाकालवनं गतः

ददर्श तत्र तल्लिङ्गं पूजयामास भक्तितः । साऽपि दृष्ट्वैव तल्लिङ्गं तस्मिंल्लिङ्गे लयं गता

राजा च पुत्रवाञ्जातो लिङ्गदर्शनतः प्रिये ॥ बभूव चक्रवर्ती स यथा स्वायम्भुवो मनुः

एतस्मिन्नन्तरे देवि दृष्ट्वा दिवं स्वर्यं गताम् ।

राजपुत्री महादेवि कृतं नाम सुरान्वितैः ॥ ५१ ॥

अविमुक्तस्य लिङ्गस्य दर्शनादेवतत्क्षणात् । अविमुक्तेश्वरो देव इति ख्यातो भविष्यति

योऽसौ काश्यां प्रसिद्धोऽस्ति देवो विश्वेश्वरः शिवः ।

स चैवाऽत्र सुविख्यातोऽविमुक्तेश्वरसञ्ज्ञया ॥ ५३ ॥

वाराणसी यथा पुण्या तथाऽवन्ती च मुक्तिदा ।

तस्या दशगुणं पुण्यं श्रूयतेऽत्र विशेषतः ॥ ४ ॥

तस्माद्विश्वेश्वरो देव समायातः कुशस्थलीम् । —

यत्रागत्य सुविद्वांसो मानवाः शंसितव्रताः ॥ ५५ ॥
पश्यन्तिपरयाभक्त्याह्यविमुक्तेश्वरंशिवम् । तेषां मुक्तिर्नसन्देहोभविष्यतिसुनिश्चला
अमुक्ता नैव पश्यन्ति मुक्ता पश्यन्ति सर्वदा । ब्रह्मचर्यव्रतैःसम्यगिष्टैः सर्वमखैर्भवेत्
तत्फलं प्राप्यते सम्यगविमुक्तेशदर्शनात् । नैःश्रेयसीगतिःपुण्या दर्शनादेव जायते
यागतिः प्राप्यते साङ्ख्यैर्योगैर्वा या गतिर्भवेत ।
सा गतिः प्राप्यते सम्यगविमुक्तेशदर्शनात् ॥ ५६ ॥
जन्ममृत्युभयं हित्वा स याति परमां गतिम् ।
यः पूजयति भावेन ह्यविमुक्तेश्वरं शिवम् ॥ ६० ॥
ब्रह्महाऽपि च यो गच्छेदविमुक्तेश्वरं यजेत ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्सर्वपापान्निवर्त्तते ॥ ६१ ॥
शाठ्येनापिचयःपश्येदविमुक्तेश्वरंशिवम् । समुञ्चतिजरांमृत्युं जन्मचैतदशाश्वतम्
स्मृतःसम्पूजितो भक्त्या स्तुतो वा विविधैः स्तवैः ।
मुक्तिं ददाति देवेशो ह्यविमुक्तेश्वरः शिवः ॥ ६३ ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।
अविमुक्तेश्वरेशस्य हनुमत्केश्वरं शृणु ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे-चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसम्वादेऽविमुक्तेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्याय.

हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

एकोनाशीतिकं विद्धि हनुमत्केश्वरं प्रिये । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वाभिहितफलं लभेत्
प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते । आगता मुनयो देवि राज्यप्रतिनन्दितुम्
रामेण पूजिता सर्वे ह्यगस्त्यप्रमुखा द्विजा । प्रहृष्टमनसो विप्रा राम वचनमब्रुवन् ॥

दिष्ट्या निहतो राम रावण पुत्रपौत्रवान् ।

दिष्ट्या विजयिनं त्वाऽद्य पश्याम सह भार्यया ॥ ४ ॥

हनूमता च सहितं वानरेण महा मना । दिष्ट्या पवनपुत्रेण राक्षसान्तकरेण च ।
चिरञ्जीवतु दीर्घायुर्वानरो हनुमान्सदा । अञ्जनीगर्भसम्भूतो रुद्रांशो हि वरानने ॥

भास्वद्दहलोऽग्निर्यमान्तको वै निर्ऋतिस्तथा ।

वरुण पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिव ॥

ब्रह्मणा सहिताश्चैव दिक्पाला॰ पान्तु सर्वदा ॥ ७ ॥

श्रुत्वा तेषां तु वचनं मुनीनां भावितात्मनाम् ।

विस्मयं परमं गत्वा राम प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ८ ॥

किमयं लक्ष्मणं त्यक्त्वा वानरोऽयं प्रशंसित॰ ।

कीदृश किंप्रभावो वा किंवीर्यं किंपराक्रम ॥ ६ ॥

अयोध्यु सत्यमेवैतत्कारणं विनतोत्तम । न त्वस्य सदृशो वीर्ये विद्यते भुवनत्रये ॥
एष इव महाप्राज्ञो योजनानां शतं प्लुत । धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं गत॰
प्रादेशमात्रसमितं कृत रूपमनन्त वे । दृष्टा सम्भाषिता सीता पुन विश्वासिता तथा
सेनाग्रगामिप्रमुखा किङ्करा रावणात्मजा॰ । हता हनुमतानेन ताडिता रावणादपे
भूयो बन्धविमुक्तेन सम्भाष्य तु दशाननम् ।

लङ्का भस्मीकृता तेन पातकेनेव मेदिनी ॥ १४ ॥
नकालस्यनशक्रस्यन विष्णोर्वधसोऽपिवा। श्रूयन्तेतानिकर्माणियादृशानिहनूमतः

राम उवाच

एतस्यबाहुवीर्येणलङ्कासीताच लक्ष्मणः । प्राप्तोमम जयश्चैवराज्यंमित्राणिबान्धवाः
सखायं वानरपतिमुक्त्वैनं हरिपुङ्गवम् । प्रवृत्तिमपिकोवेत्तुं जानक्याःशक्तिमान्भवेत्
वाली किमर्थमेतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया । तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धस्तृणवत्कथम्
नाहं विदितवान्मन्ये हनुमानात्मनो बलम् । उपेक्षितःक्लिश्यमाने किमर्थं वानराधिपे
एवं ब्रुवाणं रामं तु मुनयो वाक्यमब्रुवन् । सत्यमेतद्रघुश्रेष्ठ यद्ब्रवीषि हनूमतः ॥

न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतावपि ।
अमोघवाक्यैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा ॥ २१ ॥

न ज्ञातं हि बलं येन बलिना वालिमर्दने । बाल्येऽप्यनेन यत्कर्म कृतं नाम महात्मना

तन्न वर्णयितुं शक्यमेतस्य तु बलं महत् ।
यदि श्रोतुं तवेच्छाऽस्ति निशामय वदामहे ॥ २३ ॥
असौ हि जातमात्रोऽपि बालार्क इव मूर्त्तिमान् ।
ग्रहीतुकामो बालार्कम्पुप्लावाम्बरमध्यतः ॥ २४ ॥

तूर्णमाधावतो राम! शक्रेण विदितात्मना । हनुस्तेनास्य सहसाकुलिशेनैवताडितः
ततो गिरौ पपातैव शक्रवज्राभिताडितः । पततोऽस्य महावेगाद्वामो हनुरभज्यत

अस्मिंस्तु पतिते बाले मृतकल्पेऽशनिक्षतात् ॥ २६ ॥

ततो वायुः समादाय महाकालवनं गतः। लिङ्गमाराधयामास पुत्रार्थं पवनस्तदा ॥
स्पृष्टमात्रस्तु लिङ्गेन समुत्तस्थौप्लवङ्गमः । जलसिक्तंयथासस्यंपुनर्जीवितमाप्तवान्
प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा पवनो हर्षितस्तदा । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुत्रमादाय सत्वरम्

स्पर्शनादस्य लिङ्गस्य मम पुत्रः समुत्थितः ।
हनुमत्केश्वरो देवो विख्यातोऽयं भविष्यति ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे शक्रः समायातः सुरैर्वृतः । नीलोत्पलमयीं मालांसम्प्रगृह्येदमब्रवीत्

मत्करोत्सृष्टवज्रेण यस्मादस्य हनुर्हता । तदेष कपिशार्दूलो हनुमांस्तु भविष्यति

वरुणोऽस्य वरं प्रादात्पाशान्मृत्युर्भविष्यति ।
यमो दण्डादवध्यत्वमारोग्यं धनदो ददौ ॥ ३३ ॥

सूर्येण च प्रभा दत्ता पवनेन गतिर्दत्ता । लिङ्गेन च वरो दत्तो देवानां सन्निधौ तदा आयुधानां हि सर्वेषामवध्योऽयं भविष्यति । अजरश्चामरश्चैव भविष्यति न संशय अमित्रभयदश्चैव मित्राणामभयप्रद । अजेयो भविता युद्धे लिङ्गलोकं पुनः पुनः शम्भोर्यल्लोकेऽस्मिन्नाराधयप्रीतये सदा । कियत्कालं बलं स्वायत्तं स्मरिष्यति शापतः

हते तु रावणे भूयो रामस्यानुमते स्थितः ।
विभीषणं प्रार्थयित्वा मामत्र स्थापयिष्यति ॥ ३८ ॥
ततो मां त्रिदशाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भाविताः ।
तेनैव नाम्ना विख्यातिं पुनर्यास्यामि भूतले ॥ ३९ ॥

अथ गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत् । अञ्जनायै तदाख्यच्च वीरलब्धिं च लिङ्गतः एवं लिङ्गप्रभावं च कल्पान्मारुतात्मज । न जातस्त्रिषु लोकेषु रामात्तस्मात्प्रशस्यते

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप सौशील्यमाधुर्यनयादिकञ्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥ ४२ ॥
समस्तविष्णोरभितः सागरस्य लोकान्विधग्धोरिव पावकस्य ।
प्रज्ञा जिहासौरिव शान्तकस्य हनूमतः ख्यास्यति कः पुरस्तात् ॥ ४३ ॥

एतद्वः कथितं तुभ्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
हनूमतोऽस्य बालस्य कर्माण्यद्भुतविभ्रम ॥ ४४ ॥

इति समाजितं चापि रामगच्छामहोदयम् । एवमुक्त्वागताः सर्वे मुनयोऽवन्तिमण्डलम्

पूजयामासुरीशानं हनुमत्केश्वरं शिवम् ॥ ४० ॥

समर्चयन्ति ये भक्त्या लिङ्गं त्रिदशपूजितम् । हनुमत्केश्वरं देवं तेषां तापं कलौ युगे यजन्त्येव सुदुष्प्राप्यमनन्तायुरनामयम् । सम्प्राप्यानुत्तमं जन्म लभन्ते मोक्षमव्ययम् ये पश्यन्ति नरा लिङ्गं हनुमत्केश्वरं प्रिये । सोऽपि सर्वफलमाप्नोति सर्वदुःखविवर्जितः

सर्वलोकेषु तस्यैव गतिर्न प्रतिहन्यते। दिव्येनैश्वर्ययोगेन युज्यते नात्र संशयः॥
बालसूर्यप्रतीकाशविमानेन सुवर्चसा। वृतः स्त्रीणां सहस्त्रैस्तु स्वच्छन्दगमनागमः

विचरत्यविचारेण सर्वलोकान्दिवौकसाम्।
स्पृहणीयतमः पुंसां सर्ववर्णोत्तमोऽधुना॥ ५१॥

स्वर्गाच्च्युतः प्रजायेत कुले महति रूपवान्। धर्मज्ञो रुद्रभक्तश्च सर्वविद्यार्थपारगः
राजा वा राजतुल्यो वा दर्शनादस्य जायते। स्पर्शनात्परमं पुण्यं यजनात्परमंपदम्
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः। हनुमत्केश्वरेशस्य स्वप्नेश्वरमथो शृणु

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य उमामहेश्वरसंवादे हनुमत्केश्वरमाहात्म्य-वर्णनंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

स्वप्नेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

अशीतिकं विजानीहिदेवंस्वप्नेश्वरं प्रिये!। यस्यदर्शनमात्रेणदुःस्वप्नंनश्यतिध्रुवम्

कल्मापपादेति ख्यातो लोके राजा बभूव ह।
इक्ष्वाकुवंशजो देवि! तेजसा सूर्यवद्भुवि॥ २॥

स कदाचिद्वने राजा वशिष्ठसुतमौरसम्। शक्तिं परमधर्मज्ञं ददर्श विजितेन्द्रियम्॥

मार्गस्थितं तपोनिष्ठमपगच्छेति चाऽब्रवीत्॥ ३॥

अमुञ्चन्तं तु पन्थानं तमृपिं नृपसत्तमः। जघान कशया मोहात्तदा राक्षसवन्मुनिम्॥
कशाप्रहाराभिहतस्ततः स मुनिपुङ्गव!। तं शशाप रुपाविष्टो वाशिष्ठःक्रोधमूर्च्छितः
[illegible] े भविष्यति

सततं पिशितामत्स्यभक्षरिष्यसि महीमिमाम् । सनुशतन्वदातेन तत्क्षपाद्धेनरोत्तम
जगाम शरणं शान्तिं प्रसादयितुमर्हयन् । यदा न तुष्टो विप्रर्षिः शक्तिःपादमशोभन
प्रसाद्यमाना भूपेन तदा तेनापि भक्षिता ॥ ८ ॥
शान्तिं न भक्षयित्वा तु वशिष्ठस्याऽपरान्सुतान् ।
भक्षयामास सहसा सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ९ ॥
तदारभ्य मञ्जन् पुरवासी नृपोत्तम । रात्रौ पश्यति दुःस्वप्नान्पापसङ्गेनमाहि
दृष्ट्वा भयानकान्स्वप्नान्स राजा पर्यतप्यत ।
पश्चात्तापेन महता विललाप सुदुःखितः ॥ ११ ॥
अथान्युरमात्यधिकरापिमहापते । कस्मात्त्वंनिष्प्रभा कान्तिर्विवर्णोऽहरिणस्व
स तदा कथयामास दुःस्वप्नाननुपूर्वशः
स्वप्नेऽहं सागरं शुष्कं चन्द्रं च पतितं भुवि ॥ १३ ॥
उपरुद्धा च नगरी घनेन तमसावृताम् । आत्मानं चाहमद्राक्षं मलिनं मुक्तमूर्धजम्
पतन्तमद्रिशिखरात्कलुषे गोमये ह्रदे । पिशाचज्वलिता तेन हसन्निव मुहुर्मुहुः ॥ १५
तन्नाम्यन्नमथाप्नन्नलभयापगाहयन् । पीठे कार्ष्णायसे चैवनिषण्णोऽहमधोमुख
गायन्ति प्रमदा रक्ता रक्तमाल्यानुलेपना ।
कृष्णाम्बरधराश्चान्या कृष्णमाल्यानुलेपना ॥ १७ ॥
ताभिराकृष्यमाणोऽपि नीतोऽहं दक्षिणां दिशम् ।
पद्भ्यां रज्ज्वा सुवर्णस्य लोहस्य रजतस्य च ॥ १८ ॥
पादुकन्मयामध्ये मग्नोऽहं लोहयन्त्रिकम् । कपोतैस्तुद्यमानोऽहं गृध्रैः काकैश्च दारुणैः
शृगालभक्ष्यमाणश्च स्थितो मद्गुरमस्तके ।
मक्षवानरयानस्था गतोऽहं दक्षिणां दिशम् ॥ २० ॥
नदीं निमग्नो निश्चणो नलहानामहासमाम् । दन्तैर्विदारितो रात्रौ रासभेनाहमर्दित
ताडिता हन्येऽत्यर्थं चरणचक्रमथिम । दृश्यिश्च हन्यतेऽत्यर्थं वेतालैर्लोहशङ्कुभि
कराल कण्टक कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुध । स्वप्नेऽहं ताडितोऽत्यर्थंमममाणे शितशरै

एवमेतन्मया दृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम् ।
सङ्ख्यां कर्तुं न शक्येत दुःस्वप्नानपरान्बहून् ॥ २४ ॥
इमां तु दुःस्वप्नगतिं निरीक्ष्य वै ह्यनेकरूपामविचिन्तितां पुरा ।
भयं महन्मे हृदयं न शुद्ध्यति प्रगृह्य बाहू विलपाम्यनाथवत् ॥ २५ ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा अमात्या भृशदुःखिताः ।
पश्यन्तो दुर्निमित्तांश्च उल्कापातादिकांस्तदा ॥ २६ ॥
सौरिसूर्यकुजाक्रान्तं नगरं दृश्यतेऽधुना । नागंचतुष्पदं विष्टिं किंस्तुघ्नं शकुनिंतथा
करणानि न शस्यन्ते मुहूर्त्ता दारुणाभवन् । विदित्वानृपभङ्गं तु देशभङ्गं कुलक्षयम्
आश्वासयन्तो राजानमिदं वचनमब्रुवन् ।
अलं शोकेन काकुत्स्थ! सत्यासत्या हि विभ्रमाः ॥ २६ ॥
दृश्यन्तेभाविताःपुंसिस्वप्ने धातुवशेनहि । तथापित्रादिदेवांश्चपूजयब्राह्मणांस्तथा
एभिस्ततो मोक्ष्यसे त्वं मानसादधिविभ्रमात् ।
यस्माद्दैवोपघातानां दैवमेव हि रक्षणम् ॥ ३१ ॥
एवमाश्वासितो भूपो ह्यमात्यैर्धर्मकोविदैः । तत्पापं कथयामास गुरुपुत्रवधादिकम्
वशिष्ठस्य सुतोज्येष्ठःशक्तिर्वैभक्षितोमया । नृशंसेन तथामात्या एकोनंभक्षितंशतम्
तेन पापेनसन्तप्तःकथंस्वस्थोभवामि वै । एकापिब्रह्महत्या या सापिदैवात्सुदुष्करा
मया पुनर्नृशंसेन सा तथा न तु वर्जिता ।
कांस्तु लोकान्गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् ॥
राक्षसोऽहमनेनैव शरीरेण कुलान्तकृत ॥ ३५ ॥
जातः कुले रघूणां वै पापात्मा पापसम्भवः ।
सोऽहमत्र मरिष्यामि साधयित्वा हुताशनम् ॥ ३६ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा सौदासस्य सुविस्मिताः ।
अमात्या वेदतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ३७ ॥
अहो पापमिदं भूरि कृतं पापेनसर्वथा । प्रायश्चित्तं न जानीमो वशिष्ठेनविनाऽधुना॥

युक्तो गुरुणा भूयो वशिष्ठेन महात्मना । जगामत्वरितोदेवि! महाकालवनं शुभम्
दर्दर्श तत्र तल्लिङ्गं दुष्टदुःस्वप्ननाशनम् ॥ ५४ ॥
नष्टाः सर्वेऽपि दुःस्वप्नाः सुस्वप्नाश्चाभवंस्तदा ।
राजा निष्कल्मषो भूत्वा पुनः प्राप्नोन्निजं पदम् ॥
अयोध्यायां गतो राज्यं चकार मुदितस्तदा ॥ ५५ ॥
दाप्रभृति देवोऽयं सुस्वप्नेश्वरसञ्ज्ञकः । बभूव भुवनेख्यातः सर्वदुःस्वप्ननाशनः
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां देवं स्वप्नेश्वरं शिवम् ।
दर्शनं ये करिष्यन्ति स्नात्वा शिप्राजले शुभे ॥
आजन्मप्रभवं तेषां दुःस्वप्नं च विनश्यति ॥ ५७ ॥
स एवसर्वदापूज्य इहलोकेपरत्रच । यःपश्यतिनरोभक्त्यादेवंस्वप्नेश्वरं शिवम् ॥ ५८
यंयंकाममभिध्याय मनसाऽभिमतं नरः । तं तं दुर्लभमाप्नोति सुस्वप्नेश्वरदर्शनात्
नियमेन प्रपश्यन्ति देवं स्वप्नेश्वरं सदा । ते प्रयान्तितनुं त्यक्त्वामदीयंभवनंप्रिये
भक्तिहीनः क्रियाहीनो यः पश्यति प्रसङ्गतः ।
सुपुण्यां गतिमाप्नोति योगिगम्यां यशस्विनि !॥ ६१ ॥
ये च पुष्पैर्विचित्रैश्चपूजयन्ति च पर्वसु । तेसर्वकामसम्पन्नाः श्रीबलारोग्यसंयुताः ॥
दीर्घायुषः शुभाचारा जायन्ते देहिनोऽमलाः ॥ ६२ ॥
एतेच ब्रह्मविष्णिवन्द्रकुबेरदहनादयः । सुस्वप्नं परमं प्राप्ताः श्रीस्वप्नेश्वरदर्शनात् ॥
एष ते कथितो देवि! प्रभावःपापनाशनः । स्वप्नेश्वरस्य देवस्य शृणुलिङ्गचतुष्टयम्
इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
उमामहेश्वरसम्वादे स्वप्नेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

पिङ्गलेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

ईश्वर उवाच

चतुर्द्वारस्थितं देवि शृणु लिङ्गचतुष्टयम्। यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत्
अहं पृष्टस्त्वया देवि कौतुकाद्वरानने। अतीव रमणीयं च स्थलं दर्शय मे प्रभो॥
सेवितं बहुभिः सिद्धैः पुनरावृत्तिकाङ्क्षिभिः।
यद्गुह्यं च पवित्रं च प्रलयेऽप्यविनाशि यत्॥ ३॥
अनन्यसदृशं दिव्यं वरीयं वरतपोवनम्। असङ्ख्येयगुणोपेतं भुक्तिमुक्तिकरं शुभ
सुवर्णशृङ्ग- प्रासादा हर्म्याणि विविधानि च।
उद्यानानि विचित्राणि मार्गाश्च विविधाः शुभाः॥ ५॥
समीहितफलावाप्तिर्यत्र लभ्या सुखेन वै। सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोद्गीतनादितम्।
पुण्यलोकोपमस्थानं त्रिविष्टपविभूषणम्। एवमभ्यर्थितो देवि मन्दरे चारुकन्द
मया प्रोक्तं प्रसङ्गेन स्थानं शृणु सनातनम्। महाकालवनं रम्यं स्वर्गात्सुखकरं पर
अनौपम्यगुणोपेतं भुक्तिमुक्तिकरं शुभम्। तत्सम कोऽपि धन्योऽस्यां नहीलोक्य भुवनत्रये
देवगन्धर्वसिद्धैश्च सेव्यं वै मुक्तिकाङ्क्षिभिः।
विनोदार्थं मया सृष्टं त्वत्प्रियार्थं कुतूहलात्॥ १०॥
तिलकं सर्वतीर्थानां जम्बूद्वीपे मनोरमे। इच्छाकामफलावाप्तिरनायासेन लभ्यते॥
जरारोगभयैर्हीनं सर्वव्याधिविवर्जितम्। शक्राग्नियमरक्षोम्बुवायुसोमशसेवितम्॥
स्वर्गे प्रमुदिता देवास्तेऽपि काङ्क्षन्ति सर्वदा॥ १२॥
असङ्ख्येयफलं यत्र श्रद्धया च मति सदा। यैर्नं संसेवितं स्थानं वञ्चितास्ते नरा भुवि
क्षेत्रस्य च गुणान्वक्तुं देवदानवमानवैः। न शक्यते प्रयत्नाच्च स्वयं यत्र स्थितो ह्यहम्
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषकर्मणा। महाकालवनं प्राप्य तत्सर्वं भस्मसाद्भवेत्॥

न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे त्रिपुष्करे ।
या गतिर्विहिता पुंसां महाकालवने सदा ॥ १६ ॥

तिर्यग्योनिगतागत्वामहाकालवनेस्थिताः । तत्रैवनिधनं प्राप्तास्तेयान्तिपरमांगतिम्
मेरुमन्दरमात्रोऽपिराशिःपापस्यकर्मणः । महाकालवनं प्राप्यसर्वोऽपि व्रजतिक्षयम्
श्मशानमिति चाख्यातं महाकालवनं प्रिये । तत्रब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः ॥

योगिनश्च तथा साङ्ख्याः सिद्धाश्च सनकादयः ।
उपासते च मां भक्त्या मद्भक्तया मत्परायणाः ॥ २० ॥

या गतिर्योगतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम् । महाकालवने क्षेत्रे सागतिर्विहितामया
संहरामि च तत्रस्थस्त्रैलोक्यंसचराचरम् । अतोदेवि! समाख्यातंमहाकालवनंशुभम्
एवंबहुविधाञ्छ्रुत्वागुणान्बहुविधांस्तथा । देवि!त्वं विस्मिताजातागमनायमनोदध

क्षेत्रस्याऽऽलोकने चित्तं जातमुत्कण्ठितं तव ।
त्वया सार्द्धं समागत्य महाकालवने शुभे ॥ २४ ॥
पश्य देवि! विचित्राख्यं यन्मया कथितं तव ।
अमरेशपुरस्पर्द्धि वर्द्धितानन्दसुन्दरम् ।
वर्णितं यन्मया देवि! भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥ २५ ॥

त्वया प्रोक्तं विशालाक्षि!दृष्ट्वाक्षेत्रमनुत्तमम् । अस्यस्थानस्यरक्षार्थंभक्तंगणचतुष्टयम्

नियुज्य तां महादेव! मन्तोषाय मम प्रभो !॥ २६ ॥

द्वाराणितत्र चत्वारिक्रियन्तां परमेश्वर !। चत्वारःकलशाश्चैवहैमाःकार्यादृढाःशुभाः
पूर्वादिक्रमयोगेन चतुर्वर्गोनियोज्यताम् । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैव महेश्वर !॥
त्वदीयं वचनं श्रुत्वा मया देवि प्रयत्नतः । अस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं स्मृतंगणचतुष्टयम्

चत्वार ईश्वरास्तेऽपि स्थापितास्तदनन्तरम् ।
पिङ्गलेशो धनाध्यक्षस्तथा कायावरोहणः ॥ ३० ॥

बिल्वेश्वरो गणश्रेष्ठो दुर्दर्शो गणनायकः । एते मया नियुक्ता वै समर्थाः क्षेत्ररक्षणे
पूर्वादिक्रमयोगेन त्वत्प्रियार्थं वरानने !। नियुक्तास्त्वन्मतेनैवपूर्वस्यां दिशिपिङ्गलः

दक्षिणस्या दिशि तथा प्रिये कायावरोहण ।
विल्वेश्वर प्रतीच्या तु दुर्दर्शश्चोत्तरे तथा ॥ ३३ ॥

मानवा ये म्रियन्तेऽत्र क्षेत्रमध्येगणोत्तमा । तेषा रक्षापराकार्यास्त्वद्भिममशासनात
कथा शृणु प्रयत्नेनपिङ्गलेश्वरसम्भवाम् । यस्या श्रवणमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत्

पिङ्गला कन्यका देवि कान्यकुब्जे बभूव ह ।
सुशीला च सुवेषा च सौन्दर्येणातिनिर्मिता ॥ ३६ ॥

पितास्तस्या महाप्राज्ञ सवशास्त्रार्थतत्त्ववित् । ब्रह्मध्यानरतश्चैवस्वाध्यायपरिनिष्ठित

पिङ्गलोनाम विप्रेन्द्रो भार्या तस्य पतिव्रता ।
पिङ्गाक्षी विश्रुता लोके सा च पञ्चत्वमागता ॥ ३८ ॥
ततस्तेन स तु त्वेन गृहस्थाश्रमनिस्पृह ।
तपोवन जगामाथ गृहीत्वा तनया स्वकाम् ॥ ३९ ॥

ऋषिभि सेवित पुण्य शाकमूलफलाशन । ततस्तु मुनिभि सार्द्धं ध्यानयोगपरायण
निवासकृतवान्देवि पिङ्गलायाश्च रक्षणम् । पालयामासधर्मात्मापुत्रिकाहृदयोपमा
तामेव सतत साध्वी मन्यमानोमहातपा । तथापि प्राहयामासमातृहीनेतिचिन्तय

विरक्तोऽपि महाभाग समारा सर्वधर्मवित ।
पुत्रिका प्रेक्षयन्सम्यक्तमभ्यास नाकरोद्दशी ॥ ४३ ॥

अथ मरण्यचराला म तुहीनातपस्विनीम् । सयुक्त कालधर्मेणस विप्र स्वयजगाम
तत सापिङ्गलादीनाहीनापित्रासुदु खिता । विललापाऽऽतुरादेवि पतिताशोकसाग

पिङ्गलोवाच

अद्यमे च पितादैवात्कालधर्ममुपेयिवान् । मा यतना गतचानेकोदयालुर्नि स्पृहोयथा
सतम सर्वभूतेषु ममा यन्त हिते रत । मामेकामपरित्यज्यपरलोकमितो गत ॥
साऽहं परमदुःखार्ता पितृशोकेन विह्वला । शरीर धारयामीद कृपणं व्यर्थजीवितम्

ब्रह्मज्ञोऽपि हि तातो मे शान्तो दान्तो जितेन्द्रिय ।
मामेव पालयामास मातृहीनेति चिन्तयन् ॥ ४६ ॥

येन संरक्षिता बाल्ये येनाऽस्मिपरिवर्धिता । तेनपित्राविमुक्ताऽहंन जीविष्येकदाचन
नद्यां वा निपतिष्यामिसमिद्धेवाहुताशने । पर्वताद्वापतिष्यामि पितृहीनानिराश्रया
इति शोकातुरावालाविलपन्ती पुनःपुनः । बोध्यमानामहाभागैः सदारैऋषिसत्तमैः

कन्यकाभीरुदन्तीभिर्वयस्याभिः समन्ततः ।
आलिङ्ग्यालिङ्ग्य बहुशः पीड्यमाना सुदुःखिता ॥
आगत्य करुणाविष्टो धर्मः परहिते रतः ॥ ५३ ॥

स्थविरोब्राह्मणोभूत्वाप्रोवाचेदं वचस्तदा । अलंबालेविशालाक्षि!रोदनैरतिदारुणैः

न भूयः प्राप्यते तातस्तस्मान्नार्हसि शोचितुम् ॥ ५४ ॥

अनित्यंयौवनं रूपंजीवितंद्रव्यसञ्चयः । प्रियैःसहचसम्वासस्तन्न शोचन्तिपण्डिताः

त्वया वै तत्कृतं कर्म पूर्वजन्मनि शोभने ।
येन पित्रा वियोगः स्यादरण्ये मुनिसेविते ॥ ५६ ॥

त्वां विहाय गतःक्वापिपश्य बाले विधेर्बलम् । इदंकृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्
एवमीहासमासक्तं मृत्युः प्रकुरुते वशे । तस्माद्दुःखं समुत्सृज्य श्रोतुमर्हसिशोभने!

पितृभ्यां च वियोगश्च येनाऽभूत्तव कर्मणा ।
पुरा त्वं सुन्दरीनाम वेश्यारूपेण सुन्दरी ॥ ५९ ॥
नृत्यगेयादिनिपुणा वीणावेणुविचक्षणा ।
आदिश्च पण्यनारीणां भूषणाच्छादनादिभिः ॥ ६० ॥

तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नांसुवेषां सुविभूषिताम् । ब्राह्मणोगुणवान्कश्चिद्बभूवमदनातुरः
तं विदित्वा तथाभूतं ब्राह्मणं मदनातुरम् । समाश्वस्तस्तेन त्वं रमिताकामिनाततः
सोऽथ पापरतिर्मूढो ब्राह्मणोविषयात्मकः । इतः शूद्रेणकेनापि कामिनातववेश्मनि

विहाय भार्यामप्रौढां शुभां द्वादशवार्षिकीम् ।
प्रयातो नरकं घोरं शूद्रासम्पर्कदूषितः ॥ ६४ ॥
ततस्तस्य पिता विद्वान्माताऽतीव च दुःखिता ।
आर्त्ता पुत्रवियोगेन शापो दत्तो भयावहः ॥ ६५ ॥

मातोवाच

औषधादिप्रयुक्तं च वशीकर्तुं ममात्मजम् । यदस्माकं वियोगाय यत्नितोऽधुना त्वया ॥
यस्माच्च मम पुत्रेण सा वियोगमकारयत् । तेनजन्मान्तरे दीनापतिहीनाभवत्वसौ

पितोवाच

बाल्ये वयसि वर्तन्ती मातृहीना सुदुःखिता ।
बहिष्कृता विवाहेन पितृहीना भविष्यसि ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच

तस्मात्पूर्वकृतेनैव कर्मणा वरवर्णिनि । इदं तु समनुप्राप्ता कन्यका भवती सती ॥

पिङ्गलोवाच

त्वया जन्मान्तरे वृत्तं मम प्रोक्तं द्विजोत्तम ।
तस्माद् ब्रूहि महाप्रश्न (महाप्रश्नं) पृच्छाम्यहं निश्चयं स्वकम् ॥ ७० ॥
इत्थं सुघोरपापाऽहं पापाचारतयाऽधमा । क्व [illegible] ब्राह्मणेनाऽहमुत्पन्ना ब्रह्मवादिना
दशावृत्तासमश्वको दशघेनुसमो ध्वजः । ध्वजपञ्चसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः
एव वदन्ति धर्मज्ञा ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
तस्माद् द्विजोत्तमाऽहमात्कथं जन्माऽभवन्मम ॥ ७३ ॥

ब्राह्मण उवाच

पापाचारपराऽपि त्वं ब्राह्मणानां कुले शुभे । उत्पन्ना तत्र वक्ष्यामि कारणं शृणु पिङ्गले
ब्राह्मणो विषयासक्तः कश्चिद्वृद्धो नृपाज्ञया । चौर्यकर्मकृतं तेन वेश्यालयेऽसुरारि
मुच्यता च त्वयाऽप्युक्तं न चौरोनैव पातकम् । यदानेनकृतं चौर्यं तन्मयैव कृतं भवेत्
दशाभिवित्तमधिकं मुच्यता द्विजपत्तन । इत्युक्त्वा गृहमानीय तेनैव सहिता पुरा
गृहं च कल्पितं शुभ्रं पुष्पधूपादिवासितम् । रमितश्चत्वया विप्रो यथासुखमनुत्तमम्

तस्य पुण्यस्य माहात्म्याद्गता स्वर्गमनुत्तमम् ।
समुत्पन्ना कुले पुत्री ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ ७९ ॥
शापाच्चैव वियोगं त्वं प्राप्ता पुत्र्यधुना परम् ॥ ८० ॥

पिङ्गलोवाच

पूर्वजन्मनि वेश्याहं जाता दुष्कृतकारिणी । परद्रव्यपरा दुष्टा शौचाचारविवर्जिता
इदानीं दुःखिता जाता पितृमातृवियोगतः ॥ ८१ ॥
पाणिग्रहणधर्मेण वर्जिता शापतः प्रभो !। प्रसादं कुरु मे विप्र कोभवान्कथयस्व मे
कथंजन्म न मेभूयात्कथं मुक्तिर्भवेन्मम । भवबन्धविनिर्मुक्ताकथं यास्यामिसद्गतिम्

विप्र उवाच

धर्मोऽहं द्विजरूपेणत्वां जिज्ञासुरिहागतः । ममोपदेशात्तन्वङ्गिलिङ्गस्यैकस्यदर्शनात्
क्षेत्रस्य च प्रसादात्त्वं परां मुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ८४ ॥

पिङ्गलोवाच

कस्मिन्क्षेत्रे परा मुक्तिः कस्य लिङ्गस्य दर्शनात् ।
लभ्यते सहसा धर्म! एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ८५ ॥

धर्म उवाच

अस्ति गुप्ततमं क्षेत्रं महाकालवनं शुभम् । सर्वेषामेव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये स्थाने योजनविस्तृते ।
लिङ्गं मोक्षप्रदं पुत्रि! पूर्वस्यां दिशि संस्थितम् ॥
तस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिमाप्स्यसि पिङ्गले !॥ ८७ ॥
स्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मस्य च यशस्विनि !। जगामपिङ्गलातूर्णं यत्रतल्लिङ्गमुत्तमम्
ददर्श परया भक्त्या पस्पर्श च पुनः पुनः ॥ ८८ ॥
दर्शनात्तस्यलिङ्गस्य तस्मिँल्लिङ्गेलयङ्गता । अत्रचावसरेदेवाः प्रोचुस्तत्रैवसंस्थिताः
अन्यजन्मनि पापिष्ठा मुक्ता त्वं पिङ्गलेक्षणा ॥ ९० ॥
अतोलोकेषुविख्यातः पिङ्गलेश्वरसञ्ज्ञकः । भविष्यति न सन्देहो महापातकनाशनः
दिशि पश्यन्ति ये गत्वा पूर्वस्यां पिङ्गलेश्वरम् ।
तेषां शतक्रतुस्तुष्टः पूजां सम्यग्विधास्यति ॥ ९२ ॥
देवा वश्याभविष्यन्तिस्वर्गस्तेषां न संशयः । भविष्यतिचवशगानगरी चामरावती

चन्द्रेणापि तथाशप्तो दक्षः प्राचेतसःकृतः । अयजत्सोऽश्वमेधेनभूत्वाप्राचेतसात्मजः
नामन्त्रितोऽहं मोहेन दक्षेण पर्वतात्मजे । तत्र देवनिकायानां यज्ञभागानशेषतः ॥ ८

हव्यवाहस्तदा युक्तो वहन्मन्त्रैः समीरितः ।
त्वया दृष्टो विशालाक्षि! निरालम्बेऽम्बरे स्थितः ॥ ६ ॥

स्मरन्त्या पूर्ववैरं तु विज्ञप्तोऽहं त्वया प्रिये । त्वंदेवःसर्वदेवानां गतिश्च शरणं तथा

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारो होताऽध्वर्युस्त्वमेव च ।
त्वया विना कथं यज्ञो वर्त्तते सर्वदेवप !॥ ११ ॥

देवानां भागधेयानिवहत्यग्निरयं भयात् । सगर्वश्चाऽवलिप्तश्च दक्षः प्राचेतसः किल
अनुस्मरन्पूर्ववैरं नैव दास्यत्यशासितः । कायहीनश्च कर्त्तव्यो दक्षो वह्निस्तथैव च
ये च यज्ञे समानीता देवा दक्षस्य शङ्कर । ते सर्वे कायरहिताः कार्यास्त्रिपुरसूदन
एवमुक्ते त्वयादेवि! मयाऽप्युक्तं वरानने !। पूर्वजन्मनि दक्षोऽयं पितातवशुचिस्मिते

वह्निश्चादेशकारी च देवाः क्रीडनकाः प्रिये !।
मदीयं वचनं श्रुत्वा कृतः क्रोधस्त्वया प्रिये !॥ १६ ॥
ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा प्रोच्छ्वसन्त्या पुनःपुनः ।
क्रोधात्करेण नासाग्रं मर्दितं बहुशस्तदा ॥ १७ ॥
तस्मिन्सम्मर्द्यमाने तु नासाग्रे पर्वतात्मजे !।
जाता स्त्री भ्रूकुटीवक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा त्रिलोचना ॥ १८ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्रा च कवचाबद्धमेखला!। सखड्गासधनुष्का च सतूणा सपताकिनी
सहस्रास्या शतभुजा सहस्रचरणोदरी । प्रतिकूलैः पदैर्देवि कम्पयन्ती तथा भुवम्
कृतंनामत्वया देवि! तां दृष्ट्वा च तमोमयीम् । भद्रकालीचमायात्र सर्वलोकनमस्कृते
मयासृष्टस्तु पुरुषस्तादृशो लोमहर्षणः । स चाऽपि प्राञ्जलिर्भूत्वामामुवाचपुनःपुनः

आज्ञापय सुरेशान! किं करोमि जगत्प्रभो !॥ २२ ॥
ततो देवि! मयाऽऽज्ञप्तो भावं ज्ञात्वा त्वदीयकम् ।
कृत्वा नाम मनोज्ञन्तु वीरभद्र इति स्मृतः ॥ २३ ॥

धीरभद्र समादेशाद्भद्रकाल्या महाऽनया । प्राचेतसात्मजं दक्षं सगर्वं सहदैवतम् ॥२४
विध्वस्य गणाध्यक्ष सयज्ञं सपरिग्रहम् । दत्तं मया महत्सैन्यमसह्यदेवगुणस्य च
त्वयाऽपि भद्रकाल्यास्तु दत्तं सैन्यं मयावहम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तं मातृणां गणमक्षयम् ॥ २६ ॥
ततस्तौ तेन सैन्येनमहतातिसमावृतौ । अगमतुस्तत्रयत्राऽऽस्तेदक्ष प्राचेतसोयजन्
देवैः परिवृतो देवि सदस्यब्राह्मणैः सह । ततोदेवा सुसंक्रुद्धास्ते तेनसैन्येन पार्वति
विध्वस्ता मन्त्रपूतं तु पिबन्त सोममध्वरे ॥ २८ ॥
त्रिनेत्रेण त्रिशूलेन त्रिदशाधिप ईश्वर. । शासित सहसा शक्रोगणेनाध्वरमध्यगः
यमाख्येन गणेनथ यमकल्पप्रभेण च । सोमपाने प्रसक्तश्च यमश्चाकर्षितोऽध्वरे ॥
पाशान वरुणो बद्ध पाशान गणपेन तु । पश्चिमाशाधिपो वीर प्राणेन परमेश्वरि ॥
ताडितोऽनिल एवाथ उत्तरे नरवाहन । उत्तराशाधिपो देवि निधाने सहितोऽध्वरे
यारमञ्जुनियुनास्ते वज्रयुद्ध सुदारुणम् ॥ ३२ ॥
अथ युद्ध चकारोग्रंभद्रकाली भयावहा ।
विकराला महाकाला कालिका कलशोदरी ॥ ३३ ॥
प्रज्वालज्वलनाकारा शुष्कमांसातिभैरवा ।
एताश्चान्याश्च शतशो नरमालाविभूषणा ॥ ३४ ॥
कपालकर्त्रिकाहस्ता जग्मुर्देवगणास्तथा ।
इति मातृगण क्रुद्ध संग्रामे सुरास्तदा ॥
दृष्ट्वाऽभ्युपगता देवास्तुपिता युद्धलालसा ॥ ३५ ॥
केचिच्च चिक्षिपु शक्तीः कचित्प्रासास्तथापरे ।
कचिच्च तोमरैस्ताडण केचित्खड्गैश्च पट्टिशै ॥ ३६ ॥
अर्दितो मातृसङ्घस्तु पाडिता अमथा यदा । भद्रकाली तदाक्रुद्धागदया रणवृष्टिभि
खड्गादिभि षडक्षांशु पाडयामास सयुगे । भगस्यनेत्रेपूष्णस्तुदशना सुदितामुखात्
करान्दिनकरस्य च चरणौ भास्करस्य च । मुशलेनहता येऽपीघसघो रणकोविदा

वमन्तो रुधिरंतेऽपिनष्टा जर्जरमस्तकाः। विदेहाश्च कृता युद्धे तुषिता रणगर्विताः
बद्धः प्राचेतसो दक्षः पाशेन सुदृढेन च। शेषाश्च त्रिदशा भीता ब्रह्माणं शरणं गताः
वृत्तान्तः कथितः सर्वाविस्तरेणयथातथा। आद्याये तुषितादेवा विदेहाश्चैवतेकृताः
नष्टाश्च वसवो देवाः पीडिता भास्करा रणे। नज्ञायतेसहस्राक्षो न यमो नधनेश्वरः
वरुणो यादसां नाथः क्व गतः परमेश्वरः ॥ ४३ ॥
भद्रकाल्या हतं सर्वं वीरभद्रगणेन च। भग्नश्च यज्ञयूपो वै विध्वस्तं कलशं तदा ॥
प्रदीपिता महाशालाभग्नं वै यज्ञतोरणम्। तेषांतु वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः
आजगाम कृपाविष्टो यत्राऽहं मन्दरे स्थितः ॥ ४५ ॥
स्तुतिंकृत्वा मदीयां तुवाक्यमुक्तमिदंतदा। आद्याये तुषिता देवाविदेहाश्चैवतेकृताः
भद्रकाल्या महादेव! वसवो जर्जरीकृताः। पीडिताभास्करा युद्धेशेषानष्टादिशोगताः
कायावरोहणं देव तुषितानां कथं भवेत्। ब्रह्मणोवचनं श्रुत्वा मया प्रोक्तं वरानने !॥
महाकालवने क्षेत्रे गच्छन्तु तुषितास्त्वमी।
लकुटीशो गतो यत्र कायावरोहणाद्गृहम् ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाश्च ममादेशाच्चतुःशिष्यैःसमन्विताः। द्वापरेसमतिक्रान्ते प्राप्ते कलियुगेतथा
तत्र कायमनुप्राप्ता मम शिष्या ममोपमाः।
अवसन्त क्षितौ धन्या रक्षणार्थं द्विजन्मनाम् ॥ ५१ ॥
क्षेत्रस्य दक्षिणे तस्य विद्यते लिङ्गमुत्तमम्।
सर्वसम्पत्करं दिव्यं सिद्धानां कायदायकम् ॥ ५२ ॥
प्रसादात्तस्य लिङ्गस्य कायान्प्राप्स्यन्त्यमी सुराः।
मदीयं वचनं श्रुत्वा गतास्ते तुषिताः प्रिये !॥ ५३ ॥
मुदिता ब्रह्मणा सार्द्धं यत्र तल्लिङ्गमुत्तमम्। प्रसादात्तस्य लिङ्गस्यप्राप्तंकायमनुत्तमम्
पुनस्ते तादृशाजातास्तुषिता यादृशाऽभवन्। अतोदेवैः कृतं नाम कायावरोहणेश्वरः
समीहितप्रदो नित्यं ख्यातो देवो भविष्यति ॥ ५५ ॥
ये गत्वा दक्षिणामाशां देवं कायावरोहणम्।

पश्यन्ति परया भक्त्या यमस्तेषां पिता भवेत् ॥ ५६ ॥
जन्मकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम्। तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनादेव नान्यथ
स्वकर्मणागता येनरके पितरो मम। दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य तेषां मुक्तिर्भविष्यति
येपश्यन्ति प्रसङ्गेन देवं कायावरोहणम्। स तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि
स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य पापिनोऽपि हि ये नराः।
ते यास्यन्ति परं स्थानं सर्वपापविवर्जितम् ॥ ६० ॥
शाठ्ये नपूजितो देवः कायावरोहणेश्वरः। ददातिराज्यं भोगांश्चस्वर्गलोके नराः
द्वादश्यां ये प्रपश्यन्ति स्नात्वा कायावरोहणम्।
ते भित्त्वा भास्करं यान्ति परमां गतिम् ॥ ६२ ॥
एवं ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः। कायावरोहणेशस्य बिल्वेश्वरमथो शृ
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे कायावरोहणेश्वरमाहात्म्य
वर्णनंनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

बिल्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीहर उवाच

बिल्वेश्वरस्य माहात्म्यं शृणु सुन्दरि सादरम्। यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकै
आदिकल्पे महादेवि लोकानामनुकम्पया।
कल्पवृक्षास्ततो जाता ब्रह्मणा ध्यायता पुरा ॥ २ ॥
तेषां मध्ये बिल्ववृक्षः श्रीवृक्ष इति गीयते। अधस्तात्तस्य वृक्षस्य पुरुषः काञ्चनप्रभ
उपविष्टस्तदादृष्टो ब्रह्मणा लोककर्तृणा। फलानि तस्य पत्राणि विविधानि निरन्तरम्

भक्षयत्यतिसन्हृष्टो हृद्यानि च मृदूनि च। वद्धगोधाङ्गुलित्रश्चशरीभन्वी तथैव च ॥
खड्गी किरीटमाली च कुण्डली कवची तथा।
महोरस्को महोत्साहः सिंहसंहननो युवा ॥ ६ ॥
ब्रह्मणा चकृतं नामविल्व इत्यभिविश्रुतम्। तमिन्द्रोवरयामास राजा त्वं भूतलेभव
त्रिविष्टपस्य भूमिस्थः सखाभूतो मम प्रियः।
ददामि ते वैजयन्तीं मालाममलानपङ्कजाम् ॥ ८ ॥
यस्याः प्रभावतःशस्त्ररणे न प्रभविष्यति। सोऽब्रवीद्यदि मे वज्रमायुधंत्वंप्रयच्छसि
तस्यां पृथिव्यां राजाहं नान्यथा रोचते मम।
ततोऽहं पालयिष्यामि सत्येनेमां वसुन्धराम् ॥ १० ॥

इन्द्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते भव राजा प्रजाहितः। स्मरणादेव वज्रस्तेकरेयास्यति नान्यथा
स एवमुक्तस्तेजस्वी विल्वो राजा वभूवह। कपिलोनाम धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः
सखा वभूव विल्वस्य तस्यविप्रर्षिसत्तमः। स तेन सह संगम्य सुखासीनोवरानने!
चक्रे कथा विचित्रार्थाः प्रीयमाणःपुनःपुनः। तथा कथान्तरे वादः परस्परमभूत्तयोः
दानं प्रधानं तीर्थं तु विल्वेनोक्तं पुनःपुनः। ब्रह्म श्रेष्ठं तपः श्रेष्ठमित्युक्तं कपिलेन तु

विल्व उवाच

दानाद्राज्यं सुखं भोगाऐश्वर्यंस्वर्गमक्षयम्। प्राप्यते द्विजशार्दूल!कथं ब्रह्म प्रशंससि

कपिल उवाच

वेदाद्यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते वेदादिष्टिश्च कामिका । प्रवर्त्तन्तेक्रिया वेदाद्वेदमूलमिदं जगत्

विल्व उवाच

संसारे पार्थिवाः श्रेष्ठाः समर्थालोकपालने। लोकपालोपमालोकेकथंब्रह्म प्रशंससि

कपिल उवाच

मुख्या वै ब्राह्मणाः प्रोक्ताः शापानुग्रहकारकाः।
पितरः पार्थिवानां तु किं त्वं विल्व न मन्यसे ॥ १६ ॥

एवं कौतूहले जाते कपिलो द्विजसत्तमः । विप्रेण ताडितो मूर्ध्नि वज्रेणानन्तपर्वणा

वज्रेण स द्विधा छिन्नः कपिलो महाप्रियया ।
सन्धाय स्वशरीरं तु समाऽगत्य मुपागतः ॥ २१
स्तुतोऽहं विविधैः स्तोत्रैः स्तवशाराधितो ह्यहम् ।
मया दत्तमपरस्य कुशिष्याद् ब्राह्मणस्य तु ॥ २२ ॥

द्विज समागताविदं पुन सद्यमभूत्तया । पुनस्तु ताडतोवाद सञ्जात पर्वतात्म यामपादन चाऽदैवं विप्रो विप्रमताडयत् । पुनश्च वज्रमादाय महानैन तदा इद न सूतितच्यातस्वनद्वयमकरोत्पुन । मवन्तरमयोत्तार्याविवन्तस्यमहात्म नारायणमथास्तवप्रायबामासचेरितम् । वरदोऽस्मीतिनुष्टेनविष्णुनासद्यमोदिर

प्रोवाच प्रणतो विष्णुमिदं देवि महात्मना ॥ २३ ॥

विप्र उवाच

कपिलोनाम विप्रविप्रयऽन्यऽस्य वच च । सखा मम हृषीकेश स च मामाहतिन्यह

विभेम्यह न देवस्य राक्षसस्याऽसुरस्य च ॥ २७ ॥
पिशाचस्याऽपि यक्षस्य न चैवान्यस्य कस्यचित् ।
बिभमाति यथा प्राप्त तथा त्व कर्तुमर्हसि ॥ २८ ॥

एवमुक्तस्तु विप्रेनसद्य पुरुषोत्तम । एव भविष्यतीत्युक्त्वाकपिलस्याश्रमगत म प्रविश्याश्रम दव कपिलेन प्रपूजित । कपिल प्रत्युवाचेद सामपूर्वं जनार्दन । भगवन्ब्राह्मणश्रु यस्त्वद्गुरवः । वरमेक वृणोम्यद्य विप्रेन्द्र ! दातुमर्हसि ॥ ३१ प्रमाणितोऽद्य विप्रन शृण्वन् पुन पुन । वरदोऽस्मीति चाप्युक्तो वरदमेनमहामुनेः त्वया प्रोक्त विभेमाति त्वहितम्यावानुग्रहात् । भमीतस्त्व तथाप्यमदर्थंतुवदस्मो कपिलस्त्वेवमुक्तो वै विष्णुना मधुरं वच । उवाच न विभेमीतिभूयोभूयोजनार्दन

नाह वक्ष्ये विभेमाति तनोक्त नोच्यते मया ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कपिलस्य जनार्दन ।
उवाच चक्रमुद्यम्य मत विप्रस्य स्पर्शयन् ॥ ३५ ॥

न चेद्दास्यसि भीतोऽहं चक्रं ते प्रहरामि वै ॥ ३६ ॥

कपिल उवाच

किं वृथा प्रियचक्रस्य विष्णो! क्लेशमिहेच्छसि ।
नाहं चक्रस्य ते गम्यः प्रसादात्त्र्यम्बकस्य हि ॥ ३७ ॥

ततः स मुष्टिमादाय कुशानां कपिलस्तदा । वासुदेवं समासाद्य तिष्ठतिष्ठेत्यभाषत
अद्य गर्वं च दर्पं च बलं चक्रमथाऽद्भुतम् । तत्सर्वं नाशयिष्यामि तिष्ठेदानीं जनार्दन
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् । निमेषान्तरमात्रं तु कृष्णस्य कपिलस्य च
दिव्यास्त्राणांकुशानांचयुद्धंसमभवद्दृढम् । निरालम्बेऽम्बरेदेविदेवानांभयमाविशत्
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सुरैः परिवृतस्तदा । आजगामातिसत्त्वरः कृष्णं वचनमब्रवीत्
भगवन्भूतभव्येश! भवबन्धभयापह !। हृषीकेश हृषीकेश सृष्टिसंहारकारक !॥ ४२ ॥
समाराध्यजगन्नाथशक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।वसन्तिमुदिताःसर्वेसर्वकामसमन्विताः
आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं त्रैलोक्यं सचराचरम् । उत्पादितंधृतंव्याप्तं विष्णुनाप्रभविष्णुना
तेनैकेन विशुद्धेन सर्वगेन महात्मना । इति स्म मुनयः सर्वे उदिता मुनिसत्तमाः ॥

वदन्ति कारणं चाऽस्य त्रैलोक्यस्य जनार्दनः ।
देवदानवदैत्यैश्च मुनिचारणपन्नगैः ॥ ४७ ॥

वरार्थिभिश्चप्रवरैः पूज्यसे गरुडध्वज !। किं भवानेवगोविन्द वृथायुध्यसिसद्द्विजैः

कपिलस्य च विप्रस्य हराल्लब्धवरस्य च ।
किं न वेत्सि यथा ह्येष प्रसादात्पारमेश्वरात ॥ ४९ ॥

अवध्यत्वमनुप्राप्तो ह्यजेयत्वं संयुगे । न चैवं त्वद्विधा देवब्राह्मणेषुविकुर्वते ॥ ५० ॥
ब्रह्म च ब्रह्मणो मूलं स्वयमेवप्राक्प्रतिश्रुतम् । तस्मादाशुनिवर्तस्वमत्वैनंब्राह्मणंविभो

इत्थं निशम्य देवेशो वाक्यं ब्रह्ममुखाच्च्युतम् ।
योगेन तद्बलं ज्ञात्वा कपिलस्य तु शङ्करम् ॥ ५२ ॥

जगाम परमं लोकं पूज्यमानस्त्रिविष्टपैः । गते जनार्दने विल्वो विललाप पुनः पुनः ॥

युद्धं सुदारुणं श्रुत्वा कृष्णस्य कपिलस्य च ।

कथं जेष्यामि कपिलं कथं मे निवृतिर्भवेत् ।
कस्याहं शरणं यामि को मे त्राता भविष्यति ॥ ५५ ॥
न जितः कपिलो युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
मया मन्दर्द्धिना नित्यं कथं जेयो भविष्यति ॥ ५७ ॥
भगवा ब्राह्मणा युद्धे शापानुग्रहकारका । भस्म कुर्युर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्
ब्राह्मं हि परमं तेजो देवैरपि दुरासदम् । एवं विल्पतस्तस्य वासवः समुपागतः ।
विल्पन्तं तथा विल्वं वचश्चेदमुवाच ह । मघवानाह भगवन् प्रत्युवाच पुरन्दरः ।
अलं शोकेन भूपाल शृणु मे वचनं परम् । यथाहं दंशितो युद्धे शम्बरेण दुरात्मना
यल्लिङ्गस्य दर्शनेन तदा पूर्वे मया गुरुः ॥ ५६ ॥
बृहस्पतिर्महातेजास्तेनोक्तं तु तदा नृप । गच्छ शक्र समादेशात्त्वं महाकालवनं शुभम्
यत्र सन्ति सुदिव्यानि लिङ्गानि विविधानि च ।
भुक्तिमुक्तिकराण्येव वाञ्छितार्थप्रदानि च ॥ ६१ ॥
तेषां मध्ये लिङ्गमेकमाराधय शचीपते ।
यस्य दर्शनमात्रेण रणे पूर्णो भविष्यसि । तस्य तद्वचनाद्दिव्यं सम्यगाराधना कृता ।
मया लिङ्गस्य दर्शनेन जितोऽयं शम्बरस्तदा । प्रसिद्धिं तु गतो देव सर्वेन्द्रेश्वरसंज्ञक
तस्मात्त्वं पश्चिमामाशां गत्वा क्षेत्रस्य तस्य वै ।
समाराधय यत्नेन लिङ्गं वरदमूर्जितम् ॥ ६४ ॥
तल्लिङ्गं त्रिषु लोकेषु त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ।
कपिलस्त्वन्मया विप्रो जितोऽस्मीति वदिष्यति ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याज्जितस्माच गमिष्यति ॥ ६७ ॥
इत्युक्त्वा तु गतः शक्रो देवलोकं यशस्विनि । पूजयामास मार्गेण पुष्पैर्द्रव्यैः सुगन्धिभिः
जगाम विल्वो भूपालो महाकालवनं शुभम् । पश्चिमे भागे लिङ्गं त्रिदशैरूर्जितम्
मुक्ताफलैश्च रत्नैश्च वासोभिर्भूषणैस्तथा ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव कपिलोऽपि समागतः ॥ ६८ ॥

ददर्श विल्वं भूपालं पूजयन्तं पुनः पुनः । शरीरे तस्य विल्वस्य मदीयं रूपमुत्तमम्

दृष्ट्वा मत्वा महादेवं जितोऽस्मीति द्विजोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥

प्रार्थयामित्वयासख्यमनन्तं शिवसन्निधौ । एवमुक्तस्तदा विल्वः कपिलेनमहात्मना

प्रसन्नःप्राञ्जलिर्भूत्वा कपिलं द्विजसत्तमम् । एवं भवतु भद्रं ते कृतार्थोऽहंमहात्मना

सख्यं तदेव भवतु शश्वद्ददसि मन्यसे । एवमन्योन्यमुक्त्वातौकृत्वासख्यमनुत्तमम्

विक्रीडतुश्चिरंकालं परं हर्षमुपागतौ ।

तस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद्भूयो राज्यं चकार सः ॥ ७३ ॥

स हि मित्रेण भूपालो विल्वो देवि! मुदान्वितः ।

तदा प्रभृति विख्यातो देवो विल्वेश्वरः क्षितौ ॥

विल्वेनाराधितो लोके वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ ७४ ॥

येपश्यन्तिविशालाक्षिदेवंविल्वेश्वरंपरम् । तेकृतार्था भविष्यन्तिमहापातकवर्जिताः

येऽनुमोदन्ति देवस्य दर्शनं पर्वतात्मजे !। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताःप्रयान्तिमम मन्दिरे

समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः । मम लोकं नयत्याशु तस्य लिङ्गस्यदर्शनात्

प्रयान्ति पितरोहृष्टा मम लोके ह्यतन्द्रिताः ।

विमुक्ताः पातकैर्घोरैः कृत्वा लिङ्गस्य दर्शनम् ॥ ७८ ॥

कृत्वापि पातकंघोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः । तत्पापंविलयं याति श्रीविल्वेश्वरदर्शनात्

या तिथिः श्रूयते देवि! कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।

सा प्रोक्ता वल्लभा तस्य सर्वपातकनाशिनी ॥ ८० ॥

येऽर्चयन्ति नरास्तस्यां देवं विल्वेश्वरं प्रिये !। न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारगह्वरे

कर्मणामनसावाचायत्पापंसमुपार्जितम् । तत्क्षालयतिदेवोसौतिथौतस्यांसमर्चितः

एत ते कथितो देवि प्रभावो पापनाशनः । विल्वेश्वरस्य देवस्य श्रूयतामुत्तरेश्वरम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्ये विल्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

उमरेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमहादेव उवाच

उमरेश्वरमाहात्म्य[illegible] । [illegible] शृणु पार्वति
[illegible] । [illegible]
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥
अथ [illegible] पुष्करिणी [illegible]
[illegible] ॥ ७ ॥
स दृष्ट्वा [illegible] ॥ ८ ॥
कन्या [illegible] ॥ ९ ॥
अथ [illegible] पुष्पाणि
चिन्वन्ती [illegible] राज्ञः समीपे पर्यागमत् ॥ १० ॥
[illegible] कन्याऽपि सा कन्या परमरूप[illegible] पुष्पाणि चिन्वन्ती ॥ ११ ॥
[illegible] ॥ १२ ॥

राजोवाच

भार्या तवाऽस्मीति ॥ १३ ॥

अथोवाच कन्या

समयेनाहं त्वया शक्योपालब्धु नान्यथेति ॥ १४ ॥
ता राजा स पृच्छत्कस्ते समय इति ॥ १५ ॥
तत कन्या तमुवाच मोदक दर्शयितव्यमिति ॥ १६ ॥

राजा बाढमित्युक्त्वा तां समागम्य तया सहाऽऽस्ते ॥ १७ ॥

[ततः त]त्रैवासन्ने राजनि सेना त्वागच्छत् तया सहोपविष्टं राजानं परिवार्य चातिष्ठत् ॥

सभाजितश्च राजा तथैव शिबिकया प्रायात्। अथ झटिति तया सह [...]तं नगरमनुप्राप्य रहसि तया सह रममाणः सन्नान्यं किञ्चिदपश्यदथ प्रधानोऽमा[...]त्यस्तस्याभ्याशचरास्ताः स्त्रियोऽभ्यपृच्छत् ॥ १९ ॥

किमत्र प्रयोजनं विद्यते इत्यब्रुवंस्ताः स्त्रियोऽपूर्वमेव पश्यामस्तदुदकं [...]नात्राध्रियत इति ॥ २० ॥

अथाऽमात्यश्च निरुदकं कारयित्वा दारुवृक्षं वृद्धपुष्पफलं शरद्व्युपलभ्य राजानामब्रवीत्। वनमिदमनुदकं साध्वत्र रम्यतामिति ॥ २१ ॥

स तस्य वचनात्तयैव सह देव्या वनं प्राविशत् ॥ २२ ॥

सकलत्रस्तस्मिन्वने रम्ये तयैव सह रेमे ॥ २३ ॥

प्रविश्य च राजा सह प्रियया सुधाधवलसलिलपूर्णां वापीमपश्यत् ॥ २४

वापीं दर्दुरैः पूर्णां दृष्ट्वैव च तां तस्या एव तीरे तया देव्याऽतिष्ठत् ॥२५

अथ तां देवीं राजाब्रवीत्। शान्ततरं वापीसलिलमिति ॥ २६ ॥

सा च तद्वचः श्रुत्वा तीर्थवापी न्यमज्जन्न पुनरुदमज्जत्। तां मृगयमाणो [रा]जा नापश्यत् ॥ २७ ॥

वापीं दर्दुरैः पूर्णां दृष्ट्वा आज्ञापयामास भृत्यान्सर्वदर्दुरवधः क्रियतामिति ॥२८

यो ममार्थी स तैर्दर्दुरैरुपायनैर्मामनुतिष्ठेत् ॥ २९ ॥

अथ कश्चिन्महान्दर्दुरो दर्दुरवधे क्रियमाणे सर्वासु दिक्ष्वभ्यगात् ॥ ३०

उपेत्यचैनमुवाचेदं ज्ञात्वा क्रोधवशङ्गतम् ।

प्रसादंकुरुनार्हसि दर्दुराणामनपराधिनां वधं कर्तुमिति ॥ ३१ ॥

श्लोकश्चाऽत्र भवति

मा दर्दुरान्प्रभिन्द्यास्त्वं कोपं सन्धारयाऽच्युत ।
प्रक्षीयते महाधर्मो जनानां परिजानताम् ॥ ३२ ॥

तमेवं वाग्दिनमिथुनवियोगे शोकपरीतात्मानं स राजा प्रोवाच ।
न हि कामसम्प्येतातिरस्कामेन नियहंणीया इति ॥ ३३ ॥
यतेद्दु रात्मभिर्मे त्वां भक्षिता सर्वथैव प्रिये वध्या दर्दुरा ।
नाऽस्मि विद्वन्तुपरोद्धुमिति ॥ ३४ ॥
ततस्तावदमुपसृत्य व्यथितेन्द्रियमना । प्रोवाच प्रसीद राजन्नहमायुर्नाम भूप ॥
प्राप्ता सा मम दुहिता । सा कन्या नागलोकं गता ।
अत्राऽऽस्ते नागचूडो नागराज । स्नुषा मागमिष्यति ॥ ३६ ॥
तामप्रयाद्राजा ता स्नुषाऽऽनीय मे दीयतामिति ॥ ३७ ॥
अथैना स्नुषा राज्ञे अदात् । अब्रवीच्च ॥ ३८ ॥
मयाऽपरमितो गालवो महामुनिः तपसा कर्शिताङ्गः ।
आश्रमवरो दर्दुरव्यालयात्प्रकोपित तेनाह इत्थं ,
यस्मादमनादृत्य दर्दुरव्याल्याद्ग्पहसितस्तस्माद्दर्दुरो भविष्यसि ॥ ३९
प्रसादितस्तु विप्र प्रत्युवाच ॥ ४० ॥
अभिमघोऽय मम शापस्तस्मादन्यजन्मनि दर्दुरराजो भूत्वा त्वं हि,
दुहितरमिक्ष्वाकुकुलोत्पन्नाय सर्वगुणान्विताय दत्त्वा यदा,
यास्यसि महाकालवने तस्योत्तरदिग्भागे, तदा लिङ्गस्य दर्शनेन मुक्तिमवाप्स्यसि
दुहिता किय पाताल यास्यति स्नुता चाऽऽगमिष्यति ।
स्वस्ति तेऽस्तु साधयिष्यामि कार्याणि, इत्युक्त्वा दर्दुरो महाकालवनमगच्छत्
तस्योत्तरं लिङ्गं ददर्श तस्य दर्शनादनेकमाणिक्यरचित,
सिद्धगन्धर्वसचित विमानवरमारुह्य शक्रलोकं गत ॥ ४३ ॥
तस्य माहात्म्यमवलोक्य देवाचार्यो बृहस्पतिर्वाक्यं जगाद ॥ ४४ ॥
अहो लिङ्गस्य माहात्म्यमहो लिङ्गस्य वैभवम् ।
सरप्राप्तोवासव लोक शापभ्रष्टो हि दर्दुरः ॥ ४५ ॥
आयुराख्यो हि भूपालो मुक्तो दर्दुरता गतः ॥ ४६ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवाचार्यस्य पार्वति !।देवास्ते हृष्टमनसोनाम चक्रुः समाहिताः
यस्माद्दर्दुरभूपालो मुक्तो दर्दुरयोनितः ।
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य तस्मात्ख्यातो भविष्यति ॥ ४८ ॥
उत्तरेश्वरदेवश्च शापपापप्रणोदकः । इत्युक्त्वा त्रिदशैः सर्वैः पूजितो ह्युत्तरेश्वरः ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदो देवि!महापातकनाशनः । क्षेत्रस्य रक्षणार्थाय नियुक्तो योमया गणः
दर्दुरो हि दुराधर्षः स चापीश्वरतां गतः ॥ ५० ॥
उत्तराशामथो गत्वा यःपश्येदुत्तरेश्वरम् । ससर्वैश्वर्यसंयुक्तोयाति लोकमथोत्तरम्
सुभगः सर्वदा दान्त सुरूपः पुत्रवानिति । नीरोगःपुण्यशीलश्च जायते जन्मजन्म च
या वृद्धिस्तु कुबेरस्य शक्रस्य च यमस्यच । वरुणस्यचया वृद्धिःसावृद्धिरुत्तरोत्तरा
जायते नात्र सन्देह उत्तरेश्वरदर्शनात् ॥ ५३ ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां ये पश्यन्ति यशस्विनि !। उत्तरेश्वरसञ्ज्ञं तुनेकृतार्थाःकलौयुगे
किं दानैः किं तपोभिश्चकिं यज्ञैर्बहुदक्षिणैः । दर्शनाल्लभते राज्यं स्वर्गं मोक्षंक्रमेणतु
आजन्म च कृतं पापं स्वल्पं वा यदिवाबहु । तत्सर्वंनाशमायाति उत्तरेश्वरदर्शनात्
इत्येवं चतुराशीतिः सङ्ख्याता ईश्वरास्तव । कथिता येत्त्वया पृष्टामहाकालवनेमया
य एतेषां देवि! यात्रां प्रतिलोमानुलोमतः ।
करिष्यन्ति नरा भक्त्या ते यास्यन्ति परं पदम् ॥ ५८ ॥
यश्चाऽपि पूजयेत्तत्र लिङ्गंभक्त्यातुमानवः । स कुलं तारयत्येवपैतृकं मातृकं शतम्॥
एषते कथितो देवि!प्रभावःपापनाशनः । चतुराशीतिलिङ्गानांकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
चतुरशातिलिङ्गमाहात्म्य उमामहेश्वरसम्वाद उत्तरेश्वरलिङ्गमाहात्म्य-
वर्णनपूर्वकचतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्यवर्णनंनाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

शुभम्भूयात्

—◌*◌—



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—:०:—